तुलसी और त्यागराजु का प्रगीत-काव्य

संरचना का तुलनात्मक अध्ययन

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
की
पी. एच. डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध - प्रबंध

1982

प्रस्तुतकर्ता
कोला कृष्णमूर्ति, एम. ए., एम. फिल.,

निर्देशक :
डॉ. वै. वेंकटरमण राव,
एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (तेलुगु), पी.एच.डी.,
रीडर, हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद ।

अध्यक्ष :
डॉ. चन्द्रभान रावत,
एम. ए., पी.एच.डी., डी. लिट्.,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

C E R T I F I C A T E

Certified that this thesis is a bonafide record of work done by Sri K.Krishna Murthy, M.A., M.Phil., Senior Research Fellow, for Ph.D, Hindi, University of Hyderabad, Hyderabad, under my guidance and supervision during the period 1979-82 and this thesis has not formed in whole or part, the basis for the award of any other Degree, Diploma or any other similar title.

SUPERVISOR

Hyderabad
Date: 5.5.1982

राम को गुलाम, नाम `रामबोला` राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूं कहत हौं ।
रोटी लूगा नीके राखै, आगेहूं की बेद भाखै,
भलो ह्वै है तेरो ताते आनंद लहत हौं ।
-- तुलसी ।

आगमांत विहारिवै यलरु नीकु
रागतालादियुत गान रसमु चेत
बागु मीरंग संतोष परवुनट्टि
त्यागराजनु पेरिट दनरिनाड ।
-त्यागराजु ।

प्राक्कथन

प्राक्कथन

मध्यकालीन भक्ति साहित्य समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य का वसन्त है। भक्त कवियों ने अपनी सुदीर्घ सांस्कृतिक और दार्शनिक विरासत को साहित्य में रचनान्तरित किया। इस अनुष्ठान को अपने समकालीन जीवन से भी उन्होंने असंबद्ध नहीं होने दिया। परिणामत: आज भी उनकी प्रासंगिकता बनी हुई है। उस समय में इस प्रकार के राष्ट्रीय चरित्र के काव्य की रचना कर सकना एक बडी भारी उपलब्धि ही कही जायेगी। यदि भाषाओं के आवरण के आर पार हम देखें तो इस साहित्य की मूलभुत एकता असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो जायेगी। इस काव्य की तीन विशेषताएं हैं। पहली विशेषता इस के राष्ट्रीय चरित्र की है। दूसरी विशेषता यह है कि दर्शन और साहित्य एक दूसरे के साथ अविभाज्य रूप से जुड गये: दोनों में अभेद हो गया। तीसरी विशेषता यह है कि काव्य और संगीत के मिश्रण से प्रेषण-तंत्र अभुतपूर्व प्रभावों से युक्त हो गया। ये तीनों ही विशेषताएं तुलसी और त्यागराजु के गीत साहित्य में परिलक्षित की जा सकती हैं।

तुलसी और त्यागराजु के बीच कुछ असमानताएं भी मिलती हैं। एक तो दोनों काल की दृष्टि से समकालीन नहीं थे। दूसरे तुलसी की प्रातिभ साधना में प्रबन्धकाव्य और गीत काव्य दोनों युगपथ संरचित हुए जबकि त्यागराजु गीत-संगीत की साधना और उनकी आध्यात्मिक परिणति में निरत रहे। साथ ही कुछ समानताएं भी हैं, जैसे दोनों के इष्टदेव राम ही हैं। दोनों की भाव-साधना विनय और दास्य की भूमियों पर विकसित हुई। त्यागराजु के संकीर्तन और विनयपत्रिका के गीत प्रेष्य और प्रेषण तंत्र की दृष्टि से बहुत कुछ समान हैं। दोनों ही अपने अपने क्षेत्र में समान रूप से लोकप्रिय भी रहे। जिस प्रकार तुलसी की लोकप्रियता कुटी से लेकर महल तक और सामान्य जन से लेकर विद्वत् मंडली तक व्याप्त है, उसी प्रकार त्यागराजु सामान्य जनता से लेकर शिष्ट और परि-निष्टित समाज तक समादृत हैं। इसलिए दोनों का तुलनात्मक अध्ययन एक संगत शोध विषय हो जाता है।

आरंभ से लेकर जब मुझे हिन्दी भक्ति साहित्य का संसर्ग प्राप्त हुआ तब से मैं तेलुगु भक्ति साहित्य के साथ उस को रखकर देखने के लिए एक आन्तरिक प्रेरणा का अनुभव करता रहा । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से पूर्व हिन्दी और तेलुगु भक्ति साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की एक परम्परा भी बन चुकी है । कबीर और वेमना, सूर और पोतना, सूर और अन्नमाचारी जैसे विषयों पर शोधकार्य संपन्न हो चुके हैं । तुलसी और त्यागराजु की भक्ति भावना को लेकर भी एक तुलनात्मक अध्ययन किया जा चुका है । मुझे इस विषय के दुसरे पक्ष ने आकर्षित किया और मैं दोनों के गीत काव्य की संरचना के विश्लेषण में प्रवृत्त हुआ ।

संरचना समकालीन ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में एक पारिभाषिक शब्द है । साहित्य के क्षेत्र में भी इस शब्द और सिद्धान्त का प्रवेश बहुत बल के साथ हुआ है । `स्ट्रक्चरलिस्ट पोयटिक्स` (कुल्लर) तथा `स्ट्रक्चरलिज़्म` (पैगाट,जान) जैसी पुस्तकों ने साहित्यिक समीक्षा में इस सिद्धान्त के व्यवहार के औचित्य को सिद्ध किया है । कुछ विद्वानों का तो यहां तक विचार है कि तत्त्व कुछ है ही नहीं, जो कुछ है वह संरचना ही है । यह तो नहीं कहा जा सकता कि संरचनावादी सिद्धान्त का पुर्ण व्यवहार प्रस्तुत प्रबन्ध में हुआ है, किन्तु इतना निश्चित है कि जो तुलनात्मक निष्कर्ष निकाले गये हैं वे रचना-संरचना के आधार पर ही निकाले गये हैं ।

यद्यपि जब भक्ति साहित्य पर विचार किया जाता है तब विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का व्यवहार करके ब्रह्म, जीव, जगत आदि की रूपरेखा प्रस्तुत की जाती रही है । यह व्यक्तिपरक या विषय परक पद्धति ही है । जहां तक मैं समझता हूं इन विषयों पर संरचना की दृष्टि से वस्तुपरक पद्धति का व्यवहार करके निष्कर्ष अब तक नहीं निकाले गये हैं । प्रस्तुत प्रयास इसी दिशा में है । तुलसी और त्यागराजु दोनों का साध्य दार्शनिक दृष्टि से `तत्त्व` है । यह तत्त्व नाम, रूप, गुण, लीला, जीव और जगत में संक्रमित होकर विविध संरचनाएं ग्रहण करता है और जब यह भाषिक रचना-तंत्र में ढलता है तो यह तत्त्व संज्ञा, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, वाक्य और प्रोक्ति

की संरचनाओं में उजागर होता है। प्रस्तुत प्रयास तत्त्व की भाषिक संरचना के आधार पर निष्कर्ष निकालने के लिए कृत संकल्प है। भाषिक संरचना के आधार से निकले हुए निष्कर्ष और विषयपरक पद्धति से निकाले हुए निष्कर्ष बहुत कुछ समान ही होते हैं। संरचना की सरलता, जटिलता, आवृत्ति, विस्तृति आदि के आधार पर कवियों के द्वारा बल निक्षेप की प्रविधियां स्पष्ट होती चलती हैं। साथ ही संरचना के वैविध्य में सौंदर्यतात्त्विक प्रविधियां भी खिलती चलती हैं। और साहित्यिक सौंदर्य को तत्त्व की तटस्थ स्थिति के साथ संलग्न कर दिया जाता है।

तुलसी और त्यागराजु के गीतों की भाषिक और सौंदर्यतात्त्विक संरचना को देखने का प्रयास प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है। दार्शनिक सिद्धान्तों को अध्यारोपित करने के स्थान पर रचना-संरचना के आधार पर कथ्य के संबन्ध में निष्कर्ष खोजे गये हैं। इस प्रकार गीत की अन्तर्बाह्य संरचना में निष्कर्ष मुखरित हुए हैं। इस पद्धति का प्रयोग हिन्दी शोध क के क्षेत्र में नया ही है। इसलिए इस पद्धति के प्रयोग की कुछ सीमाएं भी प्रस्तुत प्रबन्ध में दिखलाई देंगी। साथ ही आरंभिक प्रयास में भावी संभावनाएं अवश्य झलक जाती हैं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत प्रबन्ध में ब्रह्म, जीव, काव्य और संगीत के मिश्रित कला रूप तथा काव्यरूप की संरचना को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि तत्त्वगत निष्कर्ष ऊपर तैरकर आ जायें।

पहले अध्याय में तुलसी और त्यागराजु के व्यक्तित्व की संरचना में बुने हुए रेशों को अध्ययन का विषय बनाया गया है। इस संरचना में विरासत और वातावरण के तंतुओं की सम्मिलित परिणतियों को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि यह प्रयास मात्र विवरणात्मक जीवन परिचय होने से बच जाय। साथ ही उन तंतुओं को विशेष रूप से उभारा गया है कि जो एक विशेष प्रकार से संरचित होकर दोनों कवियों के व्यक्तित्व को प्रगीतात्मक संरचना में संक्रमित कर देते हैं।

दूसरा अध्याय दोनों कवियों के साध्य की तात्विक संरचना और संक्रमिति से संबन्धित है। तुलसी और त्यागराजु दोनों की प्रगीत प्रेरणा का स्रोत और उनकी आस्था का केन्द्र उनका साध्य ही है। दोनों ही कवि अपने साध्य को प्रगीतात्मक भाव संरचना और रूप संरचना में ढालने के लिए विकल हैं। इसी प्रकार से अरूप का सम्मुर्तन हो सकता है। दोनों ही कवियों का साध्य ब्रह्म की स्थिति से विष्णु और राम की भावात्मक रचनाओं में ढलता है। इस-लिए साध्य की संरचना में प्रयुक्त शब्दों की ड्रामा देखने को मिलती है। निर्गुण ब्रह्म में गुणों की संरचना समाविष्ट होकर विष्णु की आकृति ग्रहण करती है और विष्णु की सगुण आकृति लीलात्मक व्यवहार में प्रविष्ट होती है। प्रस्तुत अध्याय में रचनात्मक आधार पर इन्हीं परिणतियों को स्पष्ट किया गया है। एक प्रकार से यह ब्रह्म की संज्ञा संरचना ही है।

तीसरे अध्याय में साध्य को रूपाइत करने की संरचनात्मक प्रविधियों पर विचार किया गया है। आलोच्य कवि अरूप को रूप देने की साधना में प्रगीत की भाषिक संरचना को अत्यन्त स्फीत बनाते हैं। भाषिक संरचना व्याकरण और अलंकरण दोनों ही छोरों पर स्फीत हुई है। ब्रह्म नराकार रूप ग्रहण करता है और उसकी नराकृति न जाने कितनी कल्पनाओं से सजीव होती है। साध्य का नख-शिख जैसे आन्तरिक गुणों की बाह्य अनुकृति ही बन जाता है। उपमानों के लिए धरती और आकाश के सभी सौंदर्य प्रतीकों को संरचना में लाया जाता है। इसी रचना-विधान को भाषिक संरचना के विश्लेषण के द्वारा प्रस्तुत अध्याय में प्रकट किया गया है।

साध्य के गुण और रूप की समन्वित संरचना को तीसरे अध्याय में देखने के पश्चात् चौथे अध्याय में उसके लीलावतार की रचना को देखा गया है। मुख्य रूप से लीलावतार की संरचना उस की उदात्त क्रियाओं की ही संरचना है। क्रियाएं रंजन और रक्षण से संबन्धित होकर अपने लिए एक व्यापक `कर्म` रचना करती हैं। कीट-पतंग, पशु, मनुष्य के विविध रूपों तथा देवता तक `कर्म` की रचना विस्तृत होती है। क्रिया और कर्म की रचना को विस्तृत करने का उद्देश्य कर्ता (साध्य) की रचना को अनन्त बनाना ही है।

पांचवें अध्याय में जीव की संरचना का विश्लेषण अभीष्ट है। जीव ब्रह्म से व्युच्चरित और मायावश होकर जीवन के विविध संतापों, विसंगतियों और अन्तर्विरोधों में उलझ जाता है। उसकी क्रियाएं भ्रमित और दिशाहीन हो जाती हैं। तात्पर्य यह है कि विभिन्न विकृतियों के बीच में पड़कर वह अत्यन्त दीन, हीन, असहाय और निरुपाय हो जाता है। जीव की इस स्थिति से जो करुणा विकीर्ण होती है, वह आलोच्य कवियों के गीतों में अनेक संरचनाएं ग्रहण करती हैं। जीव की इसी संरचना के साथ साध्य की संरचना आकर जुड़ जाती है। धीरे धीरे जीव की क्रियाओं का दिशान्तरण हो जाता है और क्रमशः वह उदात्त भूमियों में प्रविष्ट होता हुआ तत्व के साथ सान्निध्य प्राप्त करता है। भक्ति कालीन प्रगीत काव्य में जीव की स्थितियां ही सब से अधिक संरचित हुई हैं। जीव की विस्तृत संरचनाओं को देखने का प्रयास प्रयास प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

छटवें अध्याय में उन प्रविधियों को देखा गया है जिन के द्वारा संगीत साधना और आध्यात्मिक साधना एकाकार होती है। आलोच्य कवियों के लिए इन दोनों साधनाओं में कोई अन्तर नहीं है। नाद तत्व को अर्थ तत्व के साथ संलग्न करके जो कला रचना प्रस्तुत की गयी है, वह भाव चेतना के विभिन्न केन्द्रों पर प्रतिफलित होती हुई निःश्रेयस की ओर उन्मुख होती है। भक्ति साधना में अनेक संगीत-वाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं और भक्ति साहित्य में भी इनकी प्रतीकवत स्थिति है। इस साहित्य में साध्य के नाम, गुण, रूप, लीला का कथन नहीं होता। उसका गायन होता है। आन्तरिक भावात्मक रचना घनीभूत होकर किस प्रकार काव्य और संगीत की समन्वित संरचना में ढली है, इस का विवेचन ही प्रस्तुत अध्याय में आयासित है।

अन्तिम अध्याय में काव्यरूप की दृष्टि से आलोच्य कवियों के प्रगीतकाव्य को देखा गया है। जहां साध्य की नाम, गुण संरचना स स्तोत्र गीत में मंत्र शक्ति का संचार करती है, वहां उसकी रूप संरचना गीत में बिम्ब-विधान बनकर उपस्थित होती है। इसी प्रकार साध्य की लीला रचना प्रसंग-

गीतों या प्रबन्धगंधी गीतों का रूप ग्रहण करती हैं। इस प्रकार काव्यरूप की दृष्टि से आलोच्य कवियों के गीत शुद्ध रहस्यवादी गीतों की संरचना से भिन्न हो जाते हैं। जहां रहस्यवादी गीतों में साधक और साध्य के बिन्दु जुडकर रेखाकार रूप ग्रहण करते हैं, वहां आलोच्य कवियों के गीत त्रिकोणात्मक हैं -- भक्त, भगवान और लीला। लीला के माध्यम से ही भक्त भगवान से जुडता है। इस विशिष्ट गीत रचना के साथ लोकगीतों की रचना सम्मिलित होकर सजीवता की सृष्टि करती है। इस में आदिममानस की गंध भी सम्मिलित हो जाती है और प्रेषण व्यापार भी जन-जन व्यापी बनता है। कवि इस संरचना के द्वारा एक विस्तृत राग प्रवण वातावरण को बनाने में सफल होता है।

अन्त में उपसंहार के रूप में निष्कर्ष दिये गये हैं।

यह सारा शोध अनुष्ठान सहकारी रूप में संपन्न हुआ है। सामग्री संकलन के लिए संबद्ध स्थानों पर जाकर विभिन्न विद्वानों से परामर्श किया गया है और उनके मूल्यवान परामर्श मेरे लिए संबल रहे हैं। उनके प्रति मैं आभारी हूं। विभागाध्यक्ष श्रद्धेय डा० चन्द्रभान रावत भक्ति साहित्य के विशेषज्ञ हैं। उनसे अत्यन्त मूल्यवान सुझाव और दिशा निर्देश समय समय पर मिलते रहे हैं। मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूं। मेरे प्रबन्ध के निर्देशक आदरणीय डा० वै० वेंकटरमण राव तो विषय चयन से लेकर प्रस्तुतीकरण तक की हर स्थिति में मेरे साथ छाया के समान रहे हैं। मुझे आश्चर्य है कि उन्होंने इतना समय मुझे दिया। उनको धन्यवाद देना तो एक औपचारिकता ही है। मैं उनका चिर ऋणी हूं। विभाग के अन्य गुरुओं से भी जो सहयोग मुझे मिला है उसको मैं सधन्यवाद स्वीकार करता हूं। मेरे शोध साथी भी समय समय पर सहायता और प्रोत्साहन देते हरे रहे हैं। उन को भी मैं धन्यवाद देता हूं। अनेक विद्वानों के ग्रंथों से जो सहायता मुझे मिली है, उसको भी मैं हृदय से स्वीकार करता हूं। सरस्वती पुस्तक महल, तंजाऊर, सेंट्रल लाइब्रेरी, मदुरै, श्री वेंकटेश्वर विश्व विद्यालय के ग्रंथालयों, तथा राजकीय पुस्तकालय, हैदराबाद के अधिकारियों से इस अनुष्ठान में जो सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है तदर्थ मैं

उन सब के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूं ।

अस्तु शोध प्रबन्ध बुधजनों के समक्ष प्रस्तुत है ।

कोला कृष्णमूर्ति
(कोला कृष्णमूर्ति) 5/5/52

क्रमणिका

क्रमणिका

पृ० संख्या

प्राक्कथन i से vii

पहला अध्याय : व्यक्तित्व संरचना 1 से 73

० - प्रास्ताविक

१ - व्यक्तित्व संरचना के घटक तत्त्व

१ - १ संस्कार

१ - ११ पारिवारिक परंपरा

१ - १२ अवतरण और आरंभिक संस्कार

१ - १३ पारिवारिक परिवेश

१ - २ वातावरण तथा प्रभाव

१ - २१ यात्रा और पर्यटन

१ - २२ गुरु और संत संसर्ग

१ - २३ परिचित वर्ग और लोकप्रियता

२ - व्यक्तित्व संरचना की परिणति : साधना पक्ष

२ - १ आध्यात्मिक साधना

२ - २ संगीत या नाद साधना

२ - ३ साहित्य साधना

३ - लोकगत व्यक्तित्व

३ - १ शिष्य परंपरा

३ - २ व्यक्तित्व का मिथकीकरण या अलौकिकीकरण

३ - ३ प्रभु स्तुति बनाम नर स्तुति

४ - अन्तिम समय

५ - निष्कर्ष

दूसरा अध्याय : साध्य : तत्त्व संरचना 74 से 161

० - प्रास्ताविक

१ - राम = ब्रह्म

१ - १ निषेधात्मक विशेषण

१ - २ विधि परक विशेषण

१ - ३ ब्रह्म = साध्य

१ - ३१ गूढ

१ - ३२ अतीत

१ - ४ अद्वैत

१ - ५ पूर्ण

१ - ६ मायापति

१ - ७ जगत् और ब्रह्म

१ - ८ ब्रह्म = प्रकाश और नाद

१ - ९ ब्रह्म = मुल तत्त्व

१ - ९१ आत्मा रूप

१ - ९२ व्यापक

१ - ९३ सच्चिदानन्द

२ - राम = विष्णु

२ - १ आगम और विष्णु

२ - २ निवास स्थान

२ - २१ वैकुण्ठ

२ - २२ क्षीर सागर

२ - २३ शेषशय्या

२ - ३ विष्णु का रूप

२ - ४ लक्ष्मी और विष्णु

२ - ५ भूपति

२ - ६ गरुडगामी विष्णु

२ - ७ उद्धारकर्ता विष्णु

२ - ८ विष्णु के अवतार

२ - ६ रामावतार

३ - नाम संरचना

३ - १ राम नाम

३ - ११ स्थल परक नाम रचना

३ - १२ वंशपरक नाम रचना

३ - १३ रामनाम संरचना - संबन्ध संदर्भ

३ - १३१ पारिवारिक संबन्ध

३ - १३२ देव संबन्ध

३ - १३३ ऋषि मुनि संबन्ध

३ - १३४ पार्षद और भक्त संबन्ध

३ - १३५ शत्रु संबन्ध

३ - २ कृष्ण नाम

३ - २१ वंशपरक नाम रचना

३ - २२ स्थलपरक नाम रचना

३ - २३ वर्णपरक नाम रचना

३ - २४ सौंदर्यपरक नाम रचना

३ - २५ उपकरण मुलक नाम रचना

३ - २६ संबन्ध परक नाम रचना

३ - २७ लीलापरक नाम रचना

४ - गुण संरचना

४ - १ संबन्धों के आधार पर गुण कथन

४ - ११ भक्त और साधु वर्ग

४ - १२ दीन और अनाथ वर्ग
४ - १३ पतित और नीच वर्ग
४ - २ उदात्त गुण
४ - २१ सत्य
४ - २२ शिवत्व
४ - २३ सुंदर
४ - २४ शील
४ - २५ शक्ति
४ - २६ करुणामूर्ति
४ - २७ ज्ञान बन्धु
४ - २८ कलाप्रिय
४ - ३ अन्य गुणवाची विशेषण

५ - निष्कर्ष

तीसरा अध्याय : साध्य : रूप संरचना 162 से 239

० - प्रास्ताविक
१ - नख-शिख
१ - १ विशेष्य : संज्ञा संरचना
१ - २ विशेषण संरचना
१ - ३ अलंकरण की संरचना
चरण, नख, जंघा, कटितट, नाभि, उर, कर, ग्रीवा, अधर और दान्त, नासिका, नयन, भौंह, कपोल, वदन, बाल ।
२ - शुभ चिह्न
२ - १ संज्ञा पद की रचना
२ - २ संज्ञा पदबन्ध की रचना

२ - ३ अधिकरण संरचना

२ - ४ ~~स~~ शुभ लक्षणों के सहवर्ती तत्व

२ - ५ शुभ लक्षणों की आलंकारिक संरचना

३ - दिव्य उपकरण

३ - १ विष्णु से आगत उपकरण

३ - २ अन्य उपकरण

४ - वस्त्र

५ - आभूषण

६ - वर्ण

६ - १ राम वर्ण

६ - २ राम - लक्ष्मण वर्ण

६ - ३ वर्ण का अलंकरण

७ - सर्वांग सौंदर्य

७ - १ सर्वांग विशेषण संरचना

७ - २ सर्वांग अलंकरण

८ - निष्कर्ष

चौथा अध्याय : साध्य का लीला संदर्भ : क्रिया संरचना 240 से 324

० - प्रास्ताविक

१ - ऐश्वर्य द्योतक क्रियाएं : जीव के प्रति

१ - १ सामान्य जीव के प्रति

१ - २ विशेष जीव के प्रति

२ - माहात्म्य द्योतक क्रियाएं

२ - १ सृष्टिपरक

२ - २ त्रिमुर्तिपरक

३ - क्रियाओं की काल रचना

३ - १ भूतकालिक रचना : अवतार मुलक क्रियाएं

३ - ११ अवतरित होना

३ - १११ अवतरण की सामान्य क्रियाएं

३ - ११२ अवतरण की विशेष क्रियाएं

३ - १२ पूर्वकालिक कृदन्त की रचना : अवतरण की क्रियाएं

३ - १३ अवतरित होने के पश्चात् की क्रियाएं

३ - १३१ विनाश की क्रियाएं

३ - १३२ रक्षण संबन्धी क्रियाएं

३ - २ वर्तमानकालिक रचना : स्वभाव कथन

३ - २१ मानवोचित क्रियाएं

३ - २२ प्रभुत्व द्योतक क्रियाएं

३ - २३ दान देना

३ - २४ आलंकारिक रचना

३ - २५ केवल तुलसी की रचना

३ - ३ भविष्य काल की रचना : प्रबोध या आश्वासन की क्रियाएं

४ - क्रियाओं की वाक्यगत संरचना

४ - १ क्रिया की एक वाक्यीय संरचना

४ - २ प्रश्नवाचक संरचना

४ - २१ प्रश्नवाचक सर्वनाम पर आधारित

४ - २२ अन्य प्रश्नवाचक रचना

४ - २२१ निषेधात्मक रचना

४ - २२२ वक्र क्रिया रचना

४ - २२३ आत्मोन्मुख रचना

४ - ३ एक से अधिक वाक्य : मिश्रवाक्य की रचना
४ - ३१ क्रिया विशेषण मूलक रचना
४ - ३२ विशेषण मूलक रचना
४ - ३३ संज्ञा मूलक रचना
४ - ४ संयुक्त वाक्य की रचना
५ - निष्कर्ष

पांचवां अध्याय : जीव संरचना 325 से 458

० - प्रास्ताविक
१ - तत्त्व का संरचनात्मक संक्रमण
२ - ब्रह्म → जीव
२ - १ स्थित्यंतरण = नामान्तरण
२ - २ तत्त्ववाचक नाम
२ - ३ जीव : ब्रह्म की क्रियाओं का कर्म
३ - जैविक संरचना
३ - १ माया संबन्ध : प्रभाव और उपाय
३ - २ अविद्या : प्रभाव और उपाय
३ - ३ कलिकाल : प्रभाव और उपाय
३ - ४ जगत : प्रभाव और उपाय
३ - ५ कर्म (= भाग्य) : प्रभाव और उपाय
३ - ६ तन
३ - ७ इंद्रियां
३ - ८ मन
४ - जीव की कोटियां : मानव वर्ग, मानवेतर वर्ग
४ - १ संज्ञा संरचना

४ - ११ जातिवाचक ⟶ व्यक्तिवाचक = प्रगीत की ओर

४ - १२ वर्गवाची शब्द

४ - १२१ मानव वर्ग

(क) मुल शब्द तथा व्युत्पन्न शब्द

(ख) जाति वाचक संज्ञाएं = व्यक्तिवाचक संज्ञाएं

(ग) शुभ क्रियाओं वाले जीव : ऋषि, मुनि वर्ग

(घ) भक्त वर्ग

(ङ.) सामाजिक वर्ग

(च) वन जातियां

४ - १२२ मानवेतर वर्ग

(क) पशु

(ख) पक्षी

(ग) राक्षस

४ - २ विशेषण संरचना

(क) कुत्सार्थक

(ख) महत्त्वार्थक

५ - जीव : साधना

५ - १ भाव साधना : संबन्ध परिकल्पना

५ - ११ तात्त्विक संबन्ध

५ - १२ पारिवारिक संबन्ध

५ - १३ सामाजिक संबन्ध

५ - १४ भक्ति संबन्ध

५ - १५ संबन्ध सूचक उपमान युग्म

५ - २ क्रियामूलक साधना

६ - मोक्ष

६ - १ मोक्ष के वाचक शब्द

६ - २ संबद्ध लोक

६ - ३ मोक्ष के प्रकार

६ - ४ मोक्ष के अर्थ

६ - ४१ अद्वैत

६ - ४२ जन्म-मरण राहित्य

६ - ४३ हरि रस

६ - ४४ परम सुख : आनन्द

७ - निष्कर्ष

छठवां अध्याय : काव्य संगीत : मिश्रित संरचना 459 से 514

० - प्रास्ताविक

१ - आध्यात्मिक काव्य संगीत : परम्परा

२ - भक्ति और काव्य संगीत

३ - काव्य और संगीत : प्रवृत्तिगत भेद

४ - तुलसी, त्यागराजु और काव्य-संगीत

४ - १ संगीत ज्ञान

४ - २ संगीत की पारिभाषिक शब्दावली

४ - २१ वादन

४ - २२ गायन

४ - २३ नर्तन

५ - तुलसी, त्यागराजु : राग चयन

५ - १ प्रयुक्त राग

५ - २ रागों का नाम विकास

५ - ३ कोमल स्वरवाले राग

५ - ४ शुद्ध स्वरवाले राग

५ - ५ सन्धि प्रकाश राग (समय सिद्धान्त)

५ - ६ राग और ताल

६ - राग और भाव संरचना

६ - १ रागों का वर्गीकरण

६ - २ भाव संरचना और संगीत

६ - ३ भाव सिद्धान्त

६ - ४ लय सिद्धान्त और रस

६ - ५ भक्ति भाव : संरचना

६ - ५१ लीला की भाव संरचना

६ - ५२ शृंगार और शान्त के राग

७ - तुलसी और त्यागराजु के राग और भाव संरचना

७ - १ समान राग

७ - २ असमान राग

८ - निष्कर्ष

सातवां अध्याय : काव्यरूपगत संरचना 515 से 554

० - प्रास्ताविक

१ - आत्मपरक गीत

१ - १ स्तोत्र

१ - ११ उद्देश्य

१ - १२ श्री संप्रदाय में स्तुति या स्तोत्र साहित्य

१ - १३ तुलसी और त्यागराजु की स्तुतियां

१ - १३१ वैष्णवेतर देवों की स्तुतियां

१ - १३२ वैष्णव स्तुतियां

१ - १३३ राम स्तुतियां

१ - १४ स्तुति संरचना

१ - १४१ मानसिक संरचना

१ - १४२ वस्तु संरचना

१ - १४३ स्तोत्र की भाषा

१ - १४४ शैली संरचना

१ - २ विनय गीत

१ - ३ संकीर्तन गीत

२ - वृत्त गीत : लीला गीत

३ - लोक गीत

३ - १ लोक गीतों के प्रयोग के अवसर

३ - ११ जन्म

३ - १२ नामकरण

३ - १३ दुलार

३ - १४ पालना

३ - १५ विवाह

३ - १६ ऋतूत्सव

३ - १७ मन्दिर : अनुष्ठान

४ - निष्कर्ष

उपसंहार 555 से 560

परिशिष्ट - (१) 561 से 564

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त `गाना` -- क्रिया और संज्ञा शब्दों की आवृत्तिगत सूची ।

परिशिष्ट - (२) 565 से 575

(क) आधार ग्रंथ

(ख) संस्कृत ग्रंथ

(ग) हिन्दी ग्रंथ

(घ) तेलुगु ग्रंथ

(ङ.) पत्र-पत्रिकाएं

(च) अंग्रेजी ग्रंथ

---000---

संकेत

तु.	:	तुलसी
तु.गी. का.	:	तुलसी का गीतकाव्य
वि.	:	विनयपत्रिका
गी.	:	गीतावली
कृ. गी.	:	कृष्ण गीतावली
मा.	:	रामचरित मानस
त्या.	:	त्यागराजु कीर्तनलु
प्रभवि.	:	प्रह्लाद भक्ति विजयमु
सं.	:	संज्ञा
सं.प.	:	संज्ञा पदबन्ध
विशे.	:	विशेषण
विशे. प.	:	विशेषण पदबन्ध
क्रि.	:	क्रिया
क्रि. वि.	:	क्रिया विशेषण
~	:	वैविध्य
>	:	विकास
/ /	:	मूल पाठ से गृहीत
√	:	धातु
#	:	मौन
Ø	:	शून्य

पहला अध्याय

व्यक्तित्व संरचना

व्यक्तित्त्व संरचना

०• प्रास्ताविक :

भारत में भक्त-कवियों का एक अखिल भारतीय व्यक्तित्त्व मिलता है । चाहे यह भक्त-कवि गुजरात का हो या बंगाल का, हिन्दी क्षेत्र का हो अथवा दक्षिण का, एक ही प्रकार की मानसिकता और एक ही प्रकार के व्यक्तित्त्व को लिए हुए दिखलायी पडता है । यदि उसकी जिज्ञासु आत्मा आध्यात्मिक आकाश की ऊँचाइयों में आरोहण करती है तो उसकी रागात्मक वृत्तियाँ गुप्त और रहस्यमय राग-केन्द्रों से शक्ति संगृहीत करती हैं । उसकी आध्यात्मिक-साधना ललित कलाओं के पंखों से उडकर न जाने किन अज्ञात लोकों की उडान भरती है । भक्त के कंठ में दिव्य गीतों के स्वर मुद्रित होते हुए मिलते हैं और उसकी भावात्मक साधना सांगीतिक सुर-सरणियों के साथ एकाकार होकर चलती है । तात्पर्य यह है कि सभी भक्त-कवियों के व्यक्तित्त्व की मूल-भूमि एक है, चाहे बाह्य संभार स्थानीय परिस्थितियों से प्रभावित होकर कुछ भिन्न हो गया हो । तुलसीदास और त्यागराजु में नाम, रूप और स्थानीयता की भिन्नता हो सकती है, उनकी मूल भावनायें और प्रेरणायें, शक्तियाँ और परिणतियाँ एक ही हैं ।

व्यक्तित्त्व की संरचना और कृतित्व की संरचना में घनिष्ट सम्बन्ध रहता है । यदि अत्युक्ति न हो तो यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व की संरचना का रूपान्तरण ही कृतित्व की संरचना में होता है । इसीलिए यह उचित होगा कि आलोच्य कवियों के प्रगीतात्मक कृतित्व के संरचनात्मक अध्ययन से पूर्व उनकी व्यक्तित्त्व-संरचना पर विचार कर लिया जाय । सामान्य रूप से व्यक्तित्त्व की संरचना में त्रिविध तन्तु विधान रहता है : संस्कार, वातावरण तथा प्रभाव । इन्हीं तीन सूत्रों से घटित होती हुई व्यक्तित्त्व की संरचना साधना पक्ष में परिणति प्राप्त करती है तथा इस परिणति से व्यक्तित्त्व का लोकगत पक्ष भी उभर आता है । प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं विशिष्ट पहलुओं पर विश्लेषण किया गया है ।

1. व्यक्तित्त्व संरचना के घटक तत्त्व : ....

1.1. संस्कार :

इस शीर्षक के अन्तर्गत आलोच्य कवियों के पारिवारिक और जातीय उत्तराधिकरण पर विचार किया गया है । इसी उत्तराधिकरण में वे संभावनाएं सन्निहित रहती हैं जो अनुकूल या प्रतिकूल वातावरण में गति और दिशा प्राप्त करती हैं ।

1.1.1. पारिवारिक परम्परा :

व्यक्तित्त्व निर्माण में पारिवारिक परम्परा और पर्यावरण का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । पारिवारिक विशिष्टताएं, परम्पराएं, संस्कार आदि व्यक्तित्त्व-निर्माण में बचपन से ही सक्रिय रहते हैं । इनका सम्यक दर्शन व्यक्तित्त्व की संरचना की जानकारी के लिए आवश्यक हो जाता है ।

त्यागराजु :

त्यागराजु का जन्म जिस परिवार में हुआ, उसकी एक सुसंस्कृत परंपरा मिलती है । उनके प्रपितामह काकर्ल पंचनद ब्रह्मम् वेदविद् और पुराण प्रवचन में निपुण थे । * इनके पाँचवें पुत्र, त्यागराजु के पितामह गिरिराज ब्रह्मम् तंजाऊर राजाओं[2] के दरबार में विद्वान तथा वाग्गेयकार के रूप में प्रसिद्ध थे । त्यागराजु के पिता रामब्रह्मम् भी संस्कृत और तेलुगु के पण्डित थे । कहा जाता है कि रामब्रह्मम् की योग्यता और विद्वत्ता से प्रभावित होकर तंजाऊर के राजा तुलजाजी (द्वितीय) ने उनके लिए तिरूवैय्यारू में एक मकान बनवाया और आजीविका के लिए कुछ भूमि भी दी ।[3] त्यागराजु को तेलुगु की आरंभिक शिक्षा और संस्कृत भाषा एवं शास्त्र का ज्ञान देनेवाले रामब्रह्मम् ही थे । त्यागराजु की माता सीतांबा कर्णाटक संगीत विशारदा थी जिन्होंने उनको संगीत की आरंभिक शिक्षा दी और उन्होंने ही त्यागराजु को भक्ति में भी प्रवृत्त किया ।[4] उनके मातामह वीणा कालहस्तय्या संगीत विद्या में निष्णात थे । इनसे भी उनको संगीत की प्रेरणा मिली थी ।[5] इससे स्पष्ट ही है कि त्यागराजु को जिस परिवार में पलने का अवसर मिला उसके सभी सदस्य लब्ध-प्रतिष्ठ, पण्डित, विद्वान, संगीतज्ञ, भक्त और सुसंस्कृत विचार धारावाले थे ।

---

* विस्सा अप्पराराव, त्यागराजु कीर्तनलु, पृष्ठ 1-2,

2 सन् 1684 से सन् 1712 तक शहाजी और सन् 1712 से सन् 1728 तक शरभोजी (प्रथम) के दरबार में रहकर इन्होंने यक्षगान और पद लिखे ।

– बालांत्रपु रजनीकांतराव, आन्ध्र वाग्गेयकार चरित्रमु, पृष्ठ 275

3 डा० ई० पांडुरंगाराव, संत त्यागराजु, पृष्ठ 6

4 "छुटपन में ही त्यागराजु की माता ने भद्राचल रामदास, पुरंदरदास आदि भक्तों के गीत, गा गाकर उनके जीवन को भक्ति की राह दिखाई थी ।"

– हिन्दी साहित्य सम्मेलन (स्मारिका अंक, 1977), पृष्ठ 38

5 विस्सा अप्पाराव, त्यागराजु कीर्तनलु, पृष्ठ 3

ब्राह्मण होने के नाते भी इनको सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई । ये ब्राह्मण वर्ण के काकर्ल वंशज* मुलकिनाटि प्रशाखा और भारद्वाज गोत्रज[2] के अन्तर्गत आते हैं । इस प्रकार त्यागराजु के व्यक्तित्व की बुनावट में जातीय गौरव, विद्वत्ता और संगीत कला का तंतु-विन्यास था ।

तुलसीदास :

तुलसी का जन्म जिस परिवार में हुआ उसका विशेष परिचय प्राप्त नहीं है । अंतःसाक्ष्य, बहिःसाक्ष्य एवं यहाँ तक कि किंवदंतियों से भी तुलसी के पितामह का भी नाम अनुपलब्ध है । उनके पिता श्री आत्माराम दुबे और माता हुलसी का नामोल्लेख मात्र ही मिलता है ।[3] उनके विशिष्ट

---

* त्यागराजु ने अपनी "नौका चरित्रमु" नामक कृति के आरंभ में अपने वंश का परिचय यों दिया - "काकर्लाब्धि चन्द्रुडु, श्रीकरुडगु त्यागराज चित्तनिवेश नौकाचरित्र मोनर्चेद, श्रीकांत चित्तगिपु श्री रघुराम ।" - अर्थात् काकर्ल वंश के चंद्र त्यागराजु जिसका हृदय श्रीकर राम का धाम है, वही मैं नौका चरित की रचना करता हूँ । हे श्रीकांत । श्री रघुराम । तुम इसे स्वीकार करो ।

2. विस्सा अप्पाराव, त्यागराज कीर्तनलु, पृष्ठ 2; बालांत्रपु रजनीकांतराव, आंध्र वाग्गेयकार चरित्रमु, पृष्ठ 316; नेदुनूरि गंगाधरमु, त्यागराजु कृतिरत्नाकरमु, पृष्ठ 6; मंगिपूडि रामलिंग शास्त्री, आंध्र गायकुल चरित्रलु, पृष्ठ 12, डा.चाविलि सूर्यनारायण मूर्ति, दक्षिण के संत, पृष्ठ 145 - सभी विद्वान इस संबंध में एकमत हैं ।

3. दुबे आत्माराम हैं पिता नाम जग जान ।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुन गान ।।
- इंडियन ऐंटीक्वेरी, खंड-22, 1893 ईसवी, पृष्ठ 265
हरिकृष्ण अवस्थी के ग्रंथ "तुलसीदास परिवेश, प्रेरणा, प्रतिफलन" के पृष्ठ 29 से उद्धृत ।

व्यक्तित्त्व के संबंध में प्रकाश डालनेवाले कोई भी पुष्ट आधार अप्राप्य हैं। केवल इतना संकेत मिलता है कि वे अत्यंत दीन थे और उदर पालन भी बहुत कठिनाई से होता था। *

तुलसी का ब्राह्मण होना असंदिग्ध और निर्विवाद है।[2] किंतु उनकी शाखा के संब्रंध में मतभेद बना हुआ है। कुछ विद्वान तुलसी को सरयूपारीण [3] कहते है तो कुछ कान्यकुब्ज [4] और कुछ सनाद्य[5]। उनके गोत्र के संबंध में जो जनश्रुति मिलती है उसके अनुसार वे पाराशर गोत्रीय थे।[6] जाति-शाखा कुछ भी हो, इतना समझ रखना पर्याप्त है कि वे उच्च

---

* राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, पृ॰ 2

2 दियो सुकुल जनम, सरीर सुंदर, हेतु जो फलजारिको।
-- वि॰ 135/1

3 डा॰ ग्रियर्सन, पं॰ रामगुलाल द्विवेदी, ठाकुर सिवसिंह सेंगर, इनसाईक्लोपीडिया बिटानिका, पं॰ रामचन्द्र शुक्ल - तुलसीदास : जीवनी और विचारधारा के पृ॰ 117 पर राजाराम रस्तोगी द्वारा उल्लिखित।

4 राजा प्रतापसिंह, शिवनंदन सहाय - वही॰ पृ॰ 117 पर उल्लिखित

5 राजाराम रस्तोगी, तुलसीदास : जीवनी और विचारधारा, पृ॰ 118

6 काष्ठ जिह्वास्वामी, बाबा बेणी माधवदास - तुलसीदास : जीवनी और विचारधारा के पृ॰ 117 पर राजाराम रस्तोगी द्वारा उल्लिखित।

कोटि के भक्त और कवि थे । यह भी निश्चित है कि पारिवारिक संस्कार और वैशिष्ट्य से भी तुलसी का व्यक्तित्व लाभान्वित नहीं हो सका । क्योंकि वे या तो परिवार में उपेक्षित रहे या परिवार का उन्होंने त्याग कर दिया ।

तु ल ना :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि त्यागराजु और तुलसी के व्यक्तित्वों को प्रभावित करनेवाली पारिवारिक - परंपराओं में वैषम्य ही अधिक हैं । इतनी ही समानता है कि वर्ण की दृष्टि से दोनों ब्राह्मण थे । जहाँ त्यागराजु के व्यक्तित्व विकास में परिवार ने अनुकूल तत्व दिये वहाँ तुलसी का व्यक्तित्व उससे वंचित रहा । यद्यपि प्रतिभा अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियों में सृजनात्मक रूप से सक्रिय रहती है, तथापि सृजन की प्रकृति और उसकी मूल भूमियों में यत्किंचित अंतर आ जाता है । यही कारण है कि जहाँ त्यागराजु को ऋजु-सरल पथ प्राप्त हुआ वहाँ तुलसी के व्यक्तित्व में कुंठाओं तथा उदात्तीकरण का ताना-बाना रहा ।

1.1.2. अवतरण और आरंभिक संस्कार :

त्यागराजु :

संत त्यागराजु का जन्म * उसी कावेरी तट पर हुआ जहाँ पर

* Belonging to the desendants of Venkataramana Bhagavatar, a disciple of Tyagaraja, the author describes here the M-SS on musicology and those containing the works of Thyagaraja, whose date of birth as restored in one of them is Vaishakha Sudda Saptami, Monday, Sarvajit Samvatsara Salivahana shaka, 1689.

--- Prof. P. Sambamurthy, The Walajahpet Manuscripts, JMA. XIV, pp.86-91.

तदनुसार ईसवी सन् 4 मई 1767 तिथि में त्यागराजु का शुभ अवतरण हुआ । विस्सा अप्पाराव, प्रो. वी. राघवन्, रजनीकांतराव, नेदुनूरि गंगाधरम् आदि अनेक विद्वान इस तिथि पर सहमत हैं ।

कभी आलवारों के अमर गीतों की ध्वनियाँ गूँजी थीं । उनका जन्म-स्थान तंजाऊर जिले का तिरूवारूर गाँव था । यहाँ शैव भक्ति की लहरें साहित्यिक और सांगीतिक क्षितिजों का प्रक्षालन करती हैं । पारिवारिक संस्कारों के रूप में शैव प्रभाव उनको उत्तराधिकार में मिले । * अपने पिता रामब्रह्मम् से त्यागराजु को राम का तात्त्विक और रागात्मक रूप प्राप्त हुआ । प्राय: त्यागराजु रामायण के श्लोकों का संगीतमय पाठ करते थे और उनके पिता उसी श्लोक का तत्त्वाख्यान कर देते थे । इसी संदर्भ में एक दिन अनायास इनके मुँह से राम संकीर्तन का एक गीत फूट पड़ा ।[2] इसी गीत में त्यागराजु का भावी रूप सन्निहित था और उसका व्यक्तित्त्व उस भावलोक में संक्रमित हुआ शैव और वैष्णव छायायें अभिन्न होकर समन्वित होती हैं । इस समन्वय की प्रक्रिया के ऊपर उनके आराध्य देव राम की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

त्यागराजु को शैव और वैष्णव संगीत के जो संस्कार अपने परिवार से प्राप्त हुए वे संस्कार कुछ समकालीन संगीतज्ञों [3] के संस्पर्श से प्रस्फुटित हो उठे । इस प्रकार संस्कार और वातावरण के सहयोग से उनकी सांगीतिक रूचि नाद की सतत साधना में ढल गयी । इस

---

* डा० ई॰ पांडुरंगाराव, संत त्यागराजु, पृ॰ 5,6

2 " नमो नमो राघवाय अनिशं नमो नमो "

-- विस्सा अप्पाराव, त्यागराज कीर्तनलु, पद॰ 259

त्यागराजु का यह पहला गीत उनके अंदर जमे हुए जन्म जन्मांतर के प्राक्तन संस्कारों का आकस्मिक प्रस्फुटन था ।

3 इनमें शोंठि वेंकट रमणय्या का नाम उल्लेखनीय है जिनकी संगीत पाठशाला से उन्होंने आरंभिक प्रशिक्षण प्राप्त किया ।

नाद-साधना में उनके भाइयों के द्वारा कुछ बाधा भी उपस्थित की गयी। किंतु त्यागराजु की साधना उर्ध्व से ऊध्र्वतर होती गयी । इस नादोपासना के साथ योग-साधना भी समन्वित हुई ।

कावेरी तट का प्राकृतिक सौंदर्य भी उनके मन पर अमिट छाप छोड़ने लगा । " ई महिलो सोगसैन चोल देशमु " जैसी पंक्तियाँ उनकी जन्मभूमि के प्रति प्रेम से आप्लावित हैं । कावेरी का कल-कल निनाद इस अमर गायक के संगीत स्वरों में समाया हुआ है । * कावेरी नदी के तट पर स्थित पंचनद-क्षेत्र उन की संगीत-साधना का भी क्षेत्र रहा ।[2] भक्ति और संगीत की समन्वित सरिता से यह क्षेत्र संसिक्त था ।

तुलसीदास :

तुलसी का जन्म [3] उसी पावन सरयू के तट पर हुआ जिसके किनारे कभी तुलसी और त्यागराजु के आराध्य देव राम अवतरित हुए थे । यहीं उन्होंने रामराज्य की स्थापना की और इसी तट पर अपनी लीला का संवरण भी किया । रचनाओं के आधार पर यह भी स्पष्ट होता है कि

---

* " सारिवेडलिन ई कावेरिनि जूडरे " वाले कीर्तन में त्यागराजु कावेरी नदी के कल-कल निनाद एवं प्रकृति सौंदर्य का वर्णन किया है ।
-- त्या. 594

2 E.N. Purushothaman, Tyagopanishad, Preamble, P.P. XI & XII

3 " ...... तो विश्वास हो जाता है कि सं. 1589, भाद्रपद एकादशी मंगलवार को हम कवि की जन्मतिथि के रूप में ग्रहण करें और इस विवद ग्रस्त विषय को समाप्त कर दें । "
-- राजाराम रस्तोगी, तुलसीदास : जीवनी और विचारधारा, पृ. 95

तुलसी शिव विमुख नहीं थे । * इस दृष्टि से उनका व्यक्तित्व त्यागराजु से तुलनीय है । पावन गंगातट पर स्थित शिव और सरयू तटवासी राम का समन्वित प्रभाव सम्भवत: तुलसी के व्यक्तित्व और भाव-लोक में बुन गया । तुलसी की संगीत-साधना के संबंध में तो स्पष्ट और निर्भ्रांत उल्लेख नहीं मिलते । इस क्षेत्र में आरंभिक संस्कारगत प्रभाव खोजना कठिन है।[2]

तु ल ना :

सम्भवत: त्यागराजु के परिवार की अपेक्षा तुलसी का परिवार आर्थिक दृष्टि से दीन था -- " जायो कुल मंगन " ।[3] त्यागराजु को अपने पिता की सुखद और स्वस्थ छाया प्राप्त हुई, किंतु तुलसी को कुछ कारणों से माँ-बाप ने ही बचपन में त्यागा[4] और उन्हें द्वार-द्वार भटकना पड़ा ।[5] आरंभिक जीवन तुलसी का बहुत संघर्षपूर्ण था, त्यागराजु

---

* सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं । रामहि ते सपनेहु न सोहाहीं ।
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू । राम भगत पर लच्छन एहू ॥
-- मानस॰ बाल॰ 104/3

2 कहा जाता है कि सूर से संपर्क जनित प्रभाव का फल ही "कृष्ण गीतावली", "राम गीतावली" है और " विनय पत्रिका" उनकी अंतिम रचना है । गीत रचना की दृष्टि से ये ही प्रमुख है ।

4 " जननी जनक तज्यो जनमि,करम बिनु बिधिहु सृज्यो अबडेरे ।"
-- वि॰ 227/2

3 कवितावली, उत्तर॰ 73

5 " हाहा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार,
परी न छार मुँह बायो । "
- वही॰ 276/2

का इतना संघर्षपूर्ण नहीं । जितनी दीन-हीन अवस्था का सामना तुलसी ने किया * उतना त्यागराजु ने नहीं । त्यागराजु का यदि हलका-सा संघर्ष हुआ तो अपने बडे भाई से जो चाहते थे कि त्यागराजु राजाश्रय स्वीकार करके अपने गरीब परिवार को संपन्न बनायें । इस संघर्ष ने त्यागराजु के व्यक्तित्त्व को बहुत अधिक प्रभावित नहीं किया । बस इतना ही हुआ कि वे अपने भाई से अलग रहने लगे । इसके विपरीत तुलसी का व्यक्तित्त्व ऐसी परिस्थितियों से प्रभावित हुआ जिनमें उनकी विनय-भावना तथा दास्य-भाव के बीज बहुत कुछ खोजे जा सकते हैं ।

1.1.3. पारिवारिक परिवेश :

पारिवारिक परिवेश व्यक्तित्त्व निर्माण का एक महत्वपूर्ण अंग है । स्वस्थ मानसिक विकास और निश्चल जीवनयापन के लिए स्वस्थ पारिवारिक परिवेश की आवश्यकता है । इसमें मिलनेवाले व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों और प्रेम-व्यवहारों के आधार पर ही मनुष्य का व्यक्तित्त्व विकास आधारित रहता है और उसकी दिशा निर्धारित होती है । यहाँ त्यागराजु और तुलसी को प्राप्त पारिवारिक परिवेश का विश्लेषण, उनके आधार पर व्यक्तित्त्व-निर्माण के साधक-बाधक तत्त्वों का निरूपण और व्यक्तित्त्व-संरचना में उनके योगदान पर विचार करना असमीचीन नहीं होगा ।

त्यागराजु :

त्यागराजु के पारिवारिक परिवेश में उनपर प्रभाव डालनेवाले कुल तेरह व्यक्तित्त्व उल्लेखनीय हैं । वे इस प्रकार हैं -- काकर्ल पंचनद ब्रह्मम -

---

* दीन-हीन अवस्था के लिए द्रष्टव्य - हनुमान बाहुक . 29,40,41 ; कवितावली . उत्तर. 56,57,72,73 ; विनय पत्रिका . 227, 276

प्रपितामह, गिरिराज ब्रह्मम् - पितामह, राम ब्रह्मम् - पिता, सीतांबा - माता, वीणा कालहस्तय्या - मातामह, जपेशय्या - बडे भाई, रामनाथम् - मँझला भाई, पार्वती - प्रथम पत्नी, कमलांबा - द्वितीय पत्नी, सीतालक्ष्मी - इकलौती पुत्री, कुप्पुस्वामी - दामाद, पंचापकेश - पौत्र और गुरवम्मा - पौत्र की पत्नी । * पितामह इनके जीवनकाल में नहीं रहे । पर विद्वान के रूप में लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तित्त्व के कारण त्यागराजु के व्यक्तित्त्व - विकास में इनका परोक्ष प्रभाव रहा है । अन्य व्यक्तियों में एक बडे भाई जपेशय्या को छोडकर बाकी सबने उनको सहज प्रेम और वात्सल्य ही दिया है । इतना ही नहीं माता, पिता और मातामह के व्यक्तित्त्वों ने त्यागराजु को नादोपासना में प्रवृत्त किया है । जपेशय्यया का व्यक्तित्त्व भौतिकवादी दृष्टिकोण से प्रेरित होने के कारण त्यागराजु को सांसारिक प्रपंच में डालने का प्रयत्न अवश्य करता है । इस दृष्टि से कुछ हदतक बाधक भी सिद्ध होता है । किंतु उनके मन में त्यागराजु के प्रति किसी प्रकार से वात्सल्य की कमी नहीं है। उनका यह दृष्टिकोण भी त्यागराजु के आध्यात्मिक व्यक्तित्त्व को सक्रिय बनाने में अवश्य क्रियाशील रहा है । इससे सिद्ध होता है कि त्यागराजु के पारिवारिक संबंध प्राय: सामंजस्यपूर्ण ही रहे ।

तुलसी :

तुलसी का ज्ञात परिवार बहुत छोटा है । इसके अंतर्गत आत्माराम दुबे - पिता, हुलसी - माता, रत्नावली - पत्नी, तारक - पुत्र और दीनबंधु पाठक - ससुर - इन पाँचों के अतिरिक्त अन्य किसी का नामोल्लेख

---

* इस संबंध में विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य - डा• ई• पांडुरंगा राव - संत त्यागराजु और विस्सा अप्पाराव - त्यागराज कीर्तनलु ।

नहीं मिलता । पारिवारिक वातावरण से प्राप्त होनेवाली सहज ममता, वात्सल्य, प्रेम आदि से तुलसी प्राय: वंचित ही रहे ।* पत्नी से प्रेमातिरेक के स्थान पर तिरस्कार की घटना और गृहत्याग से पहले ही संतान की मृत्यु उनके पारिवारिक जीवन को झकझोरनेवाली घटनाएँ हैं । [2]

तु ल ना :

दोनों आलोच्य कवियों के पारिवारिक परिवेश के तुलनात्मक अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि त्यागराजु का पारिवारिक परिवेश सामंजस्यपूर्ण और सहयोगी रहा है तो तुलसी का संघर्षमय । माता-पिता से त्यागराजु को सहज वात्सल्य मिला है । तुलसी के संबंध में यह बात नहीं है ।

जहाँ त्यागराजु का गृहस्थ-जीवन बड़ा सुखद और सहयोगपूर्ण रहा वहाँ तुलसी का यौवन और उनका गृहस्थ-जीवन उथल-पुथल और संघर्षमय रहा । तुलसी के यौवन में जितना रागोन्माद और जितनी उद्वेलित काम-भावना थी उतनी त्यागराजु के यौवन में नहीं । तुलसी आकंठ अपनी पत्नी रत्नावली की आसक्ति मेंम निमज्जित मिलते हैं । त्यागराजु की इतनी प्रगाढ़ आसक्ति पत्नी में नहीं थी । पत्नी के द्वारा उदबुद्ध होकर तुलसी

---

* मातु पिता जग जाय तज्यो बिधिहू न लिखी कछु
भाल भलाई ।
नीच निरादर भाजन का दर कूकर टूकन लागि लगाई ।।
-- कवितावली॰ उत्तर॰ 57

2 विस्तृत परिचय के लिए द्रष्टव्य - श्यामसुंदरदास तथा पीताम्बर बड्थ्वाल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ॰ 36 से 44॰

ने राग पर विजय प्राप्त की और अपने राग को राम-भक्ति में परिणत कर दिया । इस प्रकार की कोई घटना त्यागराजु के जीवन में नहीं घटी । उनका पत्नी प्रेम इस बात से ध्वनित अवश्य है कि अपनी पत्नी की मृत्यु के एक वर्ष के पश्चात् ही वे नाद-ब्रह्म में लीन हो गये । किंतु इसका मतलब यह नहीं कि उनका पत्नी-प्रेम भौतिक दृष्टि से चरमबिंदु पर पहुँच गया हो । जहाँ त्यागराजु अपने जीवन के अंत तक पत्नी के साथ रह सके वहाँ तुलसी को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ । इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी और त्यागराजु का यौवन-काल और उनका वैवाहिक-जीवन कुछ भिन्न था । यदि कोई झीनी समानता मिलती है तो वह यह है कि तुलसी को भी वैराग्य की प्रेरणा अपनी पत्नी से प्राप्त हुई और त्यागराजु के आध्यात्मिक जीवन में भी उनकी पत्नी का सहयोग रहा । संतान से भी तुलसी को सुख-शांति नहीं मिली । इस क्षेत्र में त्यागराजु को संतोष ही मिला है । इस प्रकार दोनों कवियों के पारिवारिक संबंधों में वैसा दृश्य ही सिद्ध होता है । किंतु दोनों को प्राप्त परिस्थितियाँ उनके व्यक्तित्त्वों के विकास में साधक इसलिए मानी जा सकती है कि इनके चक्कर में पड़कर न त्यागराजु अपनी साधना से विमुख हुए और न तुलसी ही।

1.2. वातावरण तथा प्रभाव :

वातावरण वह क्षेत्र है जिसमें रिक्थ और संस्कार के बीज जमकर अपना विकास करते हैं । साथ ही वातावरण की शक्तियाँ एक सीमा तक संस्कार के तत्त्वों में परिवर्तन भी लाती हैं और उनका परिशोधन भी कर सकती है । वातावरण में समाज का सामूहिक रूप ही आता है और इसमें वे विशिष्ट व्यक्ति भी सम्मिलित होते हैं जिनसे प्रभाव की विशिष्ट किरणें फूटकर संस्कारों को और उनकी परिणति को आलोकित करती है । प्रस्तुत शीर्षक के अंतर्गत आलोच्य कवियों के वातावरण की उन शक्तियों का परिचय प्राप्त किया गया है जो उनके व्यक्तित्व की संरचना में प्रविष्ट हुई हैं और जिन्होंने उनके व्यक्तित्त्व को रचनात्मक रूप से अनुप्रेरित किया है।

1.2.1. यात्रा और पर्यटन :

महान् भक्त तथा साहित्य सर्जकों की कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभाओं को प्रेरित करने की क्षमता उनके द्वारा की गयी यात्रा-पर्यटनों में भी मिलती है । भक्तों को तो ये विशेष रूप से भाव-प्रवण बनाती हैं । प्राय: भक्त प्रवर, साहित्यकारों की यात्राएँ तीर्थ स्थानों तथा महापुरुषों के वास स्थलों तक रहती है । यात्राएँ करते समय भक्त अनेक कष्टों को झेलते हुए आगे बढते है । यात्राओं की संख्या भी प्राय: एकाधिक होती है । त्यागराजु तथा तुलसी दोनों ने विस्तृत यात्राएँ की है । इन विस्तृत यात्राओं के संबंध में जो उल्लेख मिलते हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि त्यागराजु ने दो और तुलसी ने तीन प्रमुख यात्राएँ की है जिनका विवरण निम्न तालिकाओं में प्रस्तुत है :

तुलसीदास की पहली यात्रा

पर्यटन स्थान	प्रेरणा	परिणाम विशेष	संदर्भ ग्रंथ
1. प्रयाग	मानसिक	पत्नी (ससुराल) से विरागी तुलसी ने सीधे प्रयाग की यात्रा की	श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बड्थ्वाल, गोस्वामी तुलसी दास, पृ. 45

2. अयोध्या	श्रीरामचन्द्र जी की खोज में	तुलसी का एकमात्र लक्ष्य परब्रह्म राम रह गये । उनके साक्षात्कार की व्यग्रता में उन्होंने अयोध्या की भी यात्रा की । वहाँ कुछ दिन रहकर प्रभु के यशगान तथा श्रवण करते रहे ।	श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बड़थ्वाल, गोस्वामी तुलसी दास, पृ.45
3. जगन्नाथ पुरी	मानसिक	सत्संग तथा देवतार्चन, वाल्मीकि रामायण की प्रतिलिपि कार्य	वही. पृ.46
4. रामेश्वरम्	वही.	सत्संग तथा देवतार्चन, शिवजी के दर्शन	वही. पृ.47
5. बदरिकाश्रम	वही.	व्यासजी के मुंह से मानसरोवर - माहात्म्य श्रवण तथा उसकी दर्शनेच्छा	वही. पृ.47

6. मानसरोवर	मानसिक	मानसरोवर दर्शन से प्रभावित होकर रामचरित की तुलना तुलसी ने मानसरोवर से की ।	श्यामसुदरदास एवं पीतांबर बड्थ्वाल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 47
7. रूपाचल तथा नीलाचल	वही.	परमभक्त काकभुशुंडी जी के दर्शन	वही. पृ.48
8. चित्रकूट	वही.	आश्रम बनाकर रहना, रामकथा प्रवचन संत समागम, प्रेत और हनुमानजी की सहायता से राम-लक्ष्मण के दर्शन	वही. पृ.48

तुलसीदास की दूसरी यात्रा

पर्यटन स्थान	प्रेरणा	परिणाम विशेष	संदर्भ ग्रंथ
काशी	से	आरंभ →	
1• गायघाट	मानसिक	भृगु आश्रम, हंसनगर होते हुए गायघाट पहुंचे । राजा गंभीर देव का आतिथ्य स्वीकार	श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बड्थ्वाल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ• 54
2• ब्रह्मपुर	वही•	ब्रह्मेश्वरनाथ महादेव जी के दर्शन	वही• पृ• 54
3• कांत-ब्रह्मपुर	वही•	मंगरू नामक अहीर बालक का आतिथ्य स्वीकार, उसका भक्ति का वरदान	वही• पृ• 54, 55
4• बेलापतार	वही	धूर्त भक्त साधु धनी दास को सुधारना, राजा रघुनाथ सिंह, भक्त ब्राह्मण गोविंद मिश्र तथा भक्त जोरावरसिंह से सत्संग	वही• पृ•55, 56

5•जनकपुर	मानसिक	हरिहर क्षेत्र में संगम स्नान षट्पदी होते हुए जनकपुर पहुँचे । षट्पदी में सीता जी बालिका के रूप में तुलसी को खीर परसी ।	श्यामसुंदरदास, एवं पीतांबर बड्थ्वाल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ० 54
6• हाला	वही•	मानसिंह,अब्दुर्रहीमखान खाना आदि दरबारी मित्रों की मदद से ब्राह्मणों की तिरहुत सुबा के नवाब से छीनी गयी वृत्ति को वापस दिलाना।	वही• पृ• 56,57
काशी	वापस	लौट गये ।	

तुलसीदास की तीसरी यात्रा

पर्यटन स्थान	प्रेरणा	परिणाम विशेष	संदर्भ ग्रंथ
काशी	से	आरंभ →	
1 अयोध्या	साधु बनखंडी के अनुरोधपर नैमिषारण्य के जीर्ण मंदिरों का उद्धार तथा उनको पूर्व गौरव पर पुनः प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा से	मंदिरों में गीतावली का गायन, गायकों को गीतावली की एक प्रति भेंट करना, भक्त हरिदास, महात्मा मु मुरादिदेव तथा मूलूकदास से सत्संग सौभाग्य ।	श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बड़थ्वाल, गोस्वामी तुलसीदास पृ0 58
2. लखनऊ	वही.	दामोदर भाट की कविता की प्रशंसा, इससे उसकी प्रसिद्धि ।	वही. पृ. 58
3. मडिहाऊँ	वही	भक्त भीष्मसिंह ने अपना नख-शिख ग्रंथ तुलसी जी को सुनाया	वही. पृ. 58

4• मलिहाबाद	वही•	ब्रजवल्लभ भाट के यहाँ ठहरे और मानस की एक प्रति इनको तुलसी ने दी	वही• पृ• 58
5• कटोरागाँव	वही•	भक्त एवं कवि अनन्य माधव जी से सत्संग, " मै हरि पतित पावन सुने" - तुलसी ने इस पद को यहीं बनाया माना जाता है ।	वही• पृ•58,59
6•बिठूर (ब्रह्मावर्त)	वही•	स्नान करते समय कीचड में पाँव धँस गया तो किसी स्त्री (सीताजी) की सहायता से बाहर निकालना	वही• पृ•59
7•नैमिषारण्य	वही•	जीर्ण मंदिरों का उद्धार कर उनको पूर्व गौरव पर पुनः प्रतिष्ठित किया ।	वही• पृ• 60
8• वृन्दावन	नाभाजी से मिलने	नाभाजी, नंददास, हित हरिवंश के पुत्र गोपीनाथ से मिलन । नाभाजीके सत्संगमें वृन्दावनके प्रसिद्ध स्थानों के दर्शन	

9. चित्रकूट	-	विषयवासनाओं में फंसे सत्यकाम का उद्धार करके अपने शिष्य बना लिया	वही. पृ.61, 62
10 महावन	-	भगीरथ नामक ग्वाले को अपने शिष्य बना लिया ।	वही. पृ. 62

दिल्ली, अयोध्या होते हुए काशी वापस लौट गये ।

त्यागराजु की पहली यात्रा

पर्यटन स्थान	प्रेरणा	परिणाम विशेष	संदर्भ ग्रंथ
1. तिरुवत्तियूरु	शिष्य वीणा कुप्पय्यर के अनुरोध पर	देवी त्रिपुर सुंदरी के दर्शन तथा उन पर पंचरत्न कीर्तन गीत* रच कर गाये ।	विस्सा अप्पाराव त्यागराज कीर्तनलु पृ. 16
2. चेन्न पट्टनम् (मद्रास)	त्यागराजु के भक्त कोवूरु सुंदरेश मुदलियार के अनुरोध पर	पार्थ सारथी के दर्शन एवं उन पर गीत गाये ।[2]	वही पृ. 16

* रागसावेरी - "कन्नतल्लि", राग आरभी - " सुंदरीनिनु"; राग बेगड - " सुंदरी नन्निंदरिलो; राग कल्याण - " सुंदरी नी दिव्य रूपमु " तथा राग शुद्धसावेरी - "दरिनितेलुकोंटि त्रिपुर सुंदरी" -- ये देवी पंचरत्न कहलाते है ।

2 राग असावेरी - " सारिवेडलिन पार्थ सारथिनिगनरे "

3. कोवूरू	वही	स्वामी सुंदरेश्वर के दर्शन तथा " कोवूरू पंचरत्न गीत* बनाकर गाये	वही पृ.16, 17
4.नागुलापुरमु	तिरूपति जाने का मार्ग	कुछ चोर इनको पीछा करना, राम-लक्ष्मण तीरों से मारना, चोरों का भक्तों में परिवर्तन	वही. पृ.17 18

* राग शहना - " ई वसुध नीवंटिदैवमु", राग खरहरप्रिय - " कोरिसेविंपरारे कोर्के लीडेरा", राग पंतुवरालि - " शंभो महादेव", राग कल्याण - " नम्मि वच्चिन नन्नु", राग शंकराभरणम् - " सुंदरेश्वरूनि चूचि " - ये कोवूरू पंचरत्न गीत के रूप में प्रसिद्ध है ।

2 इस घटना के संबंध में प्रचलित गीत ये है - " मुदु वेनुक इरू पक्कल तोडै" , " एवरिच्चिरिश " तथा " वाचामगोचरमे" ।

5•कालहस्ती के स्वर्णमुखी तट वर्ती विष्णु मंदिर	वही	भगवान् विष्णु के दर्शन और उनपर गीत - "नीवेगानि नन्निवरू गातुरे " - राग बिलहरी ।	डा• ई•पांडु रंगाराव, संत त्यागराजु पृ• 23
6 तिरूपति	भगवान श्री बालाजी दर्शनिच्छा से	बालाजी श्री वेंकटेश्वरजी के दर्शन के समय परदा लगा हुआ था तो -- "तेरतीयग रादा"- राग गौलिपंतु गाते ही परदा स्वयं हट गया ।	विस्सा अप्पाराव त्यागराज कीर्तनलु पृ•18
7 पुत्तूरू	कांची जाने का मार्ग	मृतक व्यक्ति को - " ना जीवाधार "- राग बिलहरि गाकर पुनर्जीवित करना	वही• पृ•19
8 कांचि	स्वामी उपनिषद् ब्रह्मेन्द्र जी के अनुरोधपर और देवी-देवताओं की दर्शनिच्छा से	वरदराजस्वामी, कामाक्षी तथा एकांबरनाथ स्वामी के दर्शन तथा उन पर गीत-रचना।*	वही• पृ•19

* राग सर्वभूषणी - " वरदराज निनु कोरि वच्चिति", राग पंजर - "वरदा नवनीताशा", राग मध्यमावती - "विनायकुनि वले ब्रोवने" आदि गीत बनाकर गाये ।

९· वालाजापेट	शिष्य वेंकट रमण भागवतार तथा कृष्ण स्वामी भागवतार के अनुरोध पर	त्यागराजु का शिष्यों द्वारा सम्मान, जुलूस निकालना आदि ।	डा॰ ई॰ पाण्डुरंगा राव, संत त्यागराजु पृ॰22

त्यागराजु की दूसरी यात्रा

पर्यटन स्थान	प्रेरणा	परिणाम विशेष	संदर्भ ग्रंथ
१· श्रीरंगम्	भागवद् दर्शनकी इच्छा	श्री रंगनाथ स्वामी के दर्शन तथा उत्सव संप्रदाय कीर्तनों का प्रणयन तथा गान । *	नेदुनूरि गंगाधरम, त्यागराजकृति रत्नाकरमु, पृ॰१९

* राग आरभि - " चूतमुरारे सुदतुलार रंगपतिनि",
राग सारंग - " करूणजूड्वय्या", राग कांभोजी - " ओ रंगशायी",
राग देशिक तोडि - " राजु वेडले जूतामु",
राग देव गांधारी - " विनरादा नामनवि" ।

2 नागपट्टणमु	वही	देवीश्री नीलायताक्षी के दर्शन तथा गीत रचना । *	वही॰ पृ॰ 20
3॰तपस्तीर्थमु	वही	देवी श्रीमती के दर्शन तथा उनपर कीर्तन बनाकर गाये ।[2]	वही॰ पृ॰ 20
4॰ शोलिंगपुरमु	वही॰	4 योगलक्ष्मी नरसिंह स्वामी, तथा योगाजनेय स्वामी के दर्शन एवं गीत रचकर गाना ।[3]	वही॰ पृ॰ 20

* राग सावेरी - " कम्मि बलवंत मारे "

2 राग भैरवी - " ललिते श्री", राग मध्यमावती - " देवी श्री तपस्तीर्थ ", राग तोडी - " गतिनीवनि", राग काभोजी - - " महित प्रवृद्ध " ।

3 राग बिलहरि - " नरसिंहा ननु ब्रोववे " - नरसिंह स्वामी पर तथा राग वसंत वरालि -- " पाहि रामदूत " - योगाजनेय पर लिखे गये कीर्तन है ।

तुलना :

उक्त तालिकाओं से स्पष्ट होता है कि दोनों भक्त-प्रवरों ने कई स्थानों की यात्राएँ की हैं । तुलसी की प्रथम यात्रा अपने विरक्त मन को संयमित करने के उद्देश्य से प्रेरित लगती है । इस यात्रा में उन्होंने प्रयाग से आरंभ कर उन सभी स्थानों की यात्रा की जिनका संबंध किसी न किसी रूप में राम से प्रायः जुड़ा था । त्यागराजु के सामने इस प्रकार की स्थिति नहीं आयी । अन्य दो यात्राओं में से दोनों व्यक्तित्त्वों के सामने एक यात्रा की प्रेरणा विशिष्ट व्यक्तित्त्वों से मिली थी । त्यागराजु को प्रेरित करनेवाला महान व्यक्तित्त्व कांची के स्वामी उपनिषद् ब्रह्मेन्द्र थे तो तुलसी को नैमिषारण्य वासी साधु बनखंडी और बृन्दावन के नाभादास जी थे ।

दोनों की यात्राओं में राजाओं से लेकर सामान्य भक्त-जनों तक से मिलने की बात देखी जा सकती है । लेकिन उद्देश्य लौकिक न होकर पारमार्थिक ही रहा है । मुख्य लक्ष्य या तो भक्तों से मिलने का रहा है अथवा तीर्थ-स्थानों में भगवद्दर्शन का । त्यागराजु ने प्रायः जिन तीर्थ-स्थानों का दर्शन किया उन स्थानों के अधिदेवताओं पर अवश्य गीत रचे । किन्तु तुलसी के संबंध में यह बात साधार कही नहीं जा सकती । इतना अवश्य है कि राम संबंधी स्थानों के दर्शन से पुलकित मन राम-कथा प्रसंगों में अपनी भाव-प्रवणता को लेकर व्यक्त हुआ है । तुलसी के जीवन और उनके सृजन साधना का काशी से उसी प्रकार का संबंध है जिस प्रकार त्यागराजु का संबंध पंचनद क्षेत्र से है । पंचनदीश्वर शैव क्षेत्र त्यागराजु में वैष्णव उद्गार उसी प्रकार भर सका जिस प्रकार काशी तुलसी में भर सकी । अयोध्या में तुलसी को राम की बाल-लीलाओं की प्रेरणा मिली । "मानस" की रचना का प्रारंभ भी अयोध्या में ही हुआ । चित्रकूट में राम की मधुर लीलायें घटित हुईं । यहाँ के प्राकृतिक

सौन्दर्य का तुलसी पर प्रभाव पड़ा ।

निष्कर्षत: देखा जा सकता है कि त्यागराजु और तुलसीदास के व्यक्तित्त्व-निर्माण में इन यात्राओं का अपना महत्त्वपूर्ण योगदान है । तुलसी की प्रथम यात्रा उनके व्यक्तित्त्व में संयम लाने में सहायक हुई है तो दोनों कवियों की अन्य दो यात्राएँ उनकी भावगत भास्वरता को प्रकट करने में । इन यात्राओं में दोनों ने अपने संपर्क में आनेवाले व्यक्तित्त्वों को प्रभावित किया और परिवर्तित भी । इस संदर्भ में अन्तिम बल्कि प्रमुख विशेषता यह मिलती है कि दोनों भक्त-प्रवरों ने अपनी यात्रा की योजना में शैव और वैष्णव तीर्थों के बीच भेद नहीं किया, वरन् समदृष्टि रखी ।

1.2.2. गुरू और संत संसर्ग :

व्यक्तित्त्व संरचना में उल्लेखनीय प्रभाव गुरूजन वर्ग का है । व्यक्ति जीवन में गुरू का स्थान अपरिहार्य रहा है । भारतीय परंपरा में गुरू की महत्ता का बोध निम्न उक्ति से हो जाता है -

" गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु:गुरूर्देवो महेश्वर: ।
गुरूस्साक्षाद् परब्रह्म तस्मैश्रीगुरूवेनम: ॥"

इतनी ही प्रसिद्धि प्राप्त उक्ति कबीर की भी है -

" गुरू गोविंद दोनों खडे, काके लागों पाय ।
बलिहारी गुरू आपने, जिन गोविंद दियो मिलाय ।।"

संत स्वभावी भक्त-प्रवरों के जीवन में दो प्रकार के गुरूजन वर्गों का साक्षात्कार होता है - 1. शैक्षिक तथा 2. आध्यात्मिक । तुलसी और त्यागराजु के गुरूजन और उनके प्रभावों को निम्न तालिका से देखा जा सकता है ।

गुरूजन वर्ग	त्यागराजु	प्रभाव	तुलसी	प्रभाव
1.शैक्षिक गुरु	माता	संगीत की प्राथमिक शिक्षा*	माता	-
	पिता	संस्कृत, तेलुगु एवं व्याकरण की शिक्षा[2]	पिता	-
	मातामह	संगीत-वीणा[3]	-	-
	शोंठि-वेंकट रमणय्या	संगीत-शिक्षा[4]	शेष सनातन	शास्त्रीय शिक्षा, वेद, वेदांग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि की शिक्षा[5]

---

* बालान्त्रपु रजनीकांत राव, आंध्र वाग्गेयकार चरित्रमु, पृ.317

2 दक्षिण के संत (भाग-2), डॉ. चावलि सूर्यनारायण मूर्ति के निबंध - अमर भक्त गायक - गीतकार - त्यागराजु, पृ.145,146

3 डा. ई. पांडुरंगाराव, संत त्यागराजु, पृ.8

4 विस्सा अप्पाराव, त्यागराज कीर्तनलु का उपोद्घात, पृ.3

5 आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, गोस्वामी तुलसीदास, पृ.36 एवं 136

2• आध्यात्मिक गुरु (लौकिक व्यक्ति)	माता	भक्तों की कहानियां, गीत तथा तत्संबंधी विवरणों की जानकारी प्रदान करना *	माता	-
	पिता	पुराणों का अध्ययन व्याख्या [2]	पिता	-
	परिव्राजक रामकृष्णानंद स्वामी	"राम" तारक मंत्र उपदेश तथा रामभक्ति में प्रवृत्त करना। [3]	नरहरिदास	राम-कथा वर्णन एवं रामभक्ति में प्रवृत्त करना [4]
	परमहंस ब्रह्मेन्द्रानंद स्वामी	सन्यास दीक्षा दिया (अंतिम समयमें) [5]	रत्नावली	पारिवारिक जीवन से विमुख बनने में सहायिका बनी। [6]

* E.N. Purushothaman, Tyagopanishad, Preamble, P. XIII

2 दक्षिण के संत (भाग-2), डा• चावलि सूर्य नारायण मूर्ति के निबंध - अमर भक्त गायक - गीतकार त्यागराजु, पृ• 146

3 मंगिपूडि रामलिंग शास्त्री, आन्ध्रगायकुल चरित्रमु, पृ• 14

4 आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, गोस्वामी तुलसीदास, पृ• 35-36

5 बालांत्रपु रजनीकांत राव, आन्ध्रवाग्गेयकार चरित्रमु, पृ• 344

6 डा• राजाराम रस्तोगी, तुलसीदास - जीवनी और विचारधारा, पृ• 124

आध्यात्मिक गुरू ﴾अलौकिक व्यक्ति﴿	नारद	"स्वरार्णव" नामक संगीत-शास्त्र ग्रंथ त्यागराजु को प्रदान करके नादोपासना में प्रवृत्त करना *	हनुमान	तुलसी को हनुमानजी के दर्शन हुए तथा उनको अपने गुरू माने । [2]
	-	-	शिव	तुलसी ने शिवजी को भी गुरू माना और रामचरितमानस की रचना भी शिव-पार्वती संवाद के रूपमें की । [3]

==

* नेदनूरि गंगाधरम्, त्यागराजकृति रत्नाकरम्, पृ॰ 8

2 डा॰ चन्द्रभान रावत, तुलसी साहित्य : बदलते प्रतिमान, तथा हनुमान बाहुक, पृ॰ 40

3 "बन्दे बोधमयं नित्य गुरूम् शंकर रूपिणम्" ।

-- मानस, बाल

श्लोक॰ 3॰

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि त्यागराजु के कई प्रेरक गुरु थे और सभी नादयोग के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति की साधना करनेवाले सन्यासी थे। शोंठि वेंकटरमणय्या ने त्यागराजु की चेतना में नाद बीज का वपण किया। ज्ञान की अपेक्षा नाद-ब्रह्म की उपासना में ही त्यागराजु लीन हुए। नाद-योग का संबंध योग और सन्यास से है। त्यागराजु ने अपने जीवन की अंतिम वेला में ब्रह्मेन्द्रानंद स्वामी को ज्ञान गुरू बनाया था। कावेरी के तट पर वेदांत ज्ञान के स्थान पर नादयोग की स्थापना भी की गयी थी और इसके द्वारा मोक्ष को संभव बताया गया था। उदाहरण के लिए अद्वैती अवधूत सदाशिव ब्रह्मेंद्र को लिया जा सकता है जो स्वयं संगीतज्ञ थे। इसी प्रकार नारायण तीर्थ ने " कृष्ण लीलातरंगिणी " की रचना की थी। ये भी सन्यासी थे। इनका प्रभाव भी त्यागराजु पर पडा था। * कांचीपुरम के उपनिषद् ब्रह्मेन्द्र से त्यागराजु की संगीत पद्धति और रामनाम की भक्ति प्रभावित हुई। उन्होंने अपने " नौकाचरित्रमु " में रामकृष्णानंदस्वामी की भी गुरू के रूप में वंदना की है।

जिस प्रकार त्यागराजु को रामकृष्णानंद स्वामी से राम का मंत्र प्राप्त हुआ उसी प्रकार तुलसी को भी एक गुरू मिले। उनका नाम नरहरिदास था। मानस में तुलसी ने इनकी वंदना की है -- " बंदउं गुरू पदकंज कृपासिंधु नर रूप हरि"। [2] तुलना की दृष्टि से एक अंतर यह अवश्य प्रतीत होता है कि त्यागराजु को रामनाम मंत्र देनेवाले गुरू के अतिरिक्त संगीतज्ञ संतगुरू भी मिले थे। किंतु तुलसी को जो गुरू मिले उन्होंने राम-भक्ति की आध्यात्मिकता और संगीत के स्थान पर काव्य की प्रेरणा दी। वाल्मीकि की प्रेरणा दोनों को समान रूप से मिली।

---

* Introduction by Dr. V. Raghavan, The Spiritual Heritage of Tyagaraja, P.P. 6-7

2 मानस, बाल॰ छंद॰5॰

यदि वाल्मीकि ने 24 हज़ार श्लोकों में राम-कथा लिखी तो अनुश्रुति के अनुसार त्यागराजु ने भी 24 हज़ार कीर्तनों में राम का गायन किया ।* तुलसी ने भी " मानस " के आरंभ में आदि कवि को नमन किया है ।[2]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि त्यागराजु में योग, भक्ति, संगीत की त्रिवेणी प्रवाहित हुई जब कि तुलसी की गुरू-परंपरा ने उनको शुद्ध भक्ति और काव्य के मिलन बिंदु पर स्थापित कर दिया । त्यागराजु के कृतित्व में काव्य का स्थान द्वेतीयिक है और तुलसी के कृतित्व में संगीत का । शैक्षिक गुरू वर्ग तथा आध्यात्मिक गुरू वर्ग दोनों भक्त-प्रवरों के व्यक्तित्त्व निर्माण में समान रूप से सहयोगी और क्रियाशील रहे हैं ।

त्यागराजु के व्यक्तित्त्व का उन्नयन साधु और संतों के माध्यम से भी हुआ । आरंभ में उनको भक्त या सन्यासियों से ही प्रेरणा मिली । तुलसी के जीवन को भी संघर्षों से उभारकर सुदृढ़ आध्यात्मिक धरातल प्रदान करने का कार्य साधु एवं संतों से ही हुआ । तुलसी ने तो किसी संत विशेष का नाम नहीं लिया, लेकिन उन्होंने " विनयपत्रिका" में संत साहाय्य को अवश्य स्वीकार किया --

" दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माहूं ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परि हरे न, सरन गये
रघुबर ओर निबाहूं ॥ "[3]

इसी प्रकार त्यागराजु को भी संत और सन्यासियों से भक्ति की उदात्त-भूमि प्राप्त हुई । अंतर इतना है कि संतों की कृपा तुलसी पर उनके दैन्य के कारण हुई और त्यागराजु अपनी प्रतिभा के कारण संत-समागम के अधिकारी बन सके ।

---

* E.N. Purushothaman, Tyagopanishad, Preamble, P. XIII.

2 बंदउँ मुनिपद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित ॥ - मानस•बाल• ।4 (घ)

3 वि• 275/3

1.2.3. परिचित वर्ग तथा लोकप्रियता :

व्यक्तित्व का ज्ञान किसी व्यक्ति के मित्रों और साथियों के आधार पर भी होता है । यह भी यहाँ देखा जाता है कि वह व्यक्ति किन-किन व्यक्तियों से अपना संपर्क स्थापित करता है । व्यक्तित्व निर्माण तथा व्यक्तित्व-प्रकाशन पर आलोचना करते समय इनका निरीक्षण-परीक्षण आवश्यक होता है । त्यागराजु और तुलसी दोनों के संसर्ग में आये विशिष्ट वर्ग का अनुशीलन, उनके व्यक्तित्व-विकास के दर्शन में सहायक होगा । विशिष्ट व्यक्तित्व कभी भक्त-प्रवरों से मिलने आते हैं तो कभी भक्त-प्रवर ही विशिष्ट व्यक्तित्वों से मिलने जाते हैं । इससे दोनों का महत्व बढ़ता ही है । कुछ ऐसी स्थितियाँ भी मिलती हैं जहाँ संत व्यक्तित्ववाले भक्तों का वैशिष्ट्य सामान्य जन के साथ-साथ समकालीन शासक वर्ग को भी अपनी ओर आकर्षित करता है । इस प्रकार की अनेक स्थितियाँ तुलसी और त्यागराजु के जीवन में देखी जा सकती है । इसके परिचयात्मक विवेचन के स्थान पर विश्लेषणात्मक तालिका यहाँ अधिक समीचीन होगी जो निम्न रूप से उभरती है ।

तालिका-1 : तुलसीदास

परिचित वर्ग	तुलसी से मिलने आये	तुलसी मिलने गये	स्थान	मिलने का उद्देश्य
हितहरिवंश	✓	-	ब्रज	प्रियादास की प्रेरणा से तुलसी से आशीर्वाद मांगने -- मूलगोसाई चरित, दोहा• 27
सूरदास	✓	-	ब्रज	सूरसागर की प्रति को तुलसीको दिखाने आये । सूरसागर देखकर तुलसी में राम गीतावली, कृष्ण गीतावली लिखने की प्रेरणा-- श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बडथ्वाल, गोसाईं तुलसीदास, पृ0 89
गोकुलनाथ	✓	-	ब्रज	सूरदास की प्रेरणा से -- मूल-गोसाई चरित, दोहे 29,30
मीराँबाई	-	-	-	सुखपाल नामक ब्राह्मण द्वारा तुलसी से पत्राचार - राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, पृ• 16

टोडरमल	✓	✓		काशी	घनिष्ठ मित्रता, काशी के अस्सीघाट पर तुलसी के लिए एक आश्रम बनवा दिया । -- श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बड्थ्वाल, पृ. 92से 95
नंददास	✓	✓		मथुरा वृंदावन	गुरु भाई संबंध - वही. पृ. 95, 96
मूलूकदास हरिदास महात्मा मुरारिदेव	✓		- -	अयोध्याके मंदिर	गीतावली का पाठ सुनने -- वही. पृ. 58, 62
अब्दुर्रहीम खानखाना	✓	✓		मथुरा काशी	मित्र - इनके आग्रह पर तुलसी ने बरवै रामायण ग्रंथ लिखा । - वही. पृ. 96
मानसिंह (आमेर के महाराजा) जगतसिंह (महाराजा का भाई)	✓		-	काशी (तुलसी आश्रम)	व्यक्तित्व से प्रभावित हो तुलसी के दर्शन के लिए -- वही. पृ. 97
गंग कवि	✓		-	वही	वही. पृ. 97

केशवदास	✓	-	वही	"मानस" को देखकर " रामचन्द्रिका" लिखने की प्रेरणा, तुलसी को दिखाने के लिए रात भर में ग्रंथ का प्रणयन। -- वही। पृ. 98
बलभद्र, घनश्याम, घासीराम, यादव, प्रकाश, करुणेश, चित्सुखाचार्य, दिगंबर परमहंस, दत्तात्रेय, देवी विभवानंद, दक्षिण के पिल्ले आदि	✓	-	वही	व्यक्तित्त्व से आकर्षित होकर -- वही। पृ. 99
भीष्मसिंह और एक भाट	✓	-	वही।	तुलसी के भक्त -- व्यक्तित्त्व से आकर्षित होकर - वही। पृ102,103
जहाँगीर	✓	-	वही	व्यक्तित्त्व से प्रभावित होकर - वही। पृ. 103
नाभादास	✓	✓	~~वही~~ काशी वृंदावन	नाभाजी के सत्संग में वृन्दावन के प्रसिद्ध स्थानों के दर्शन -- वही। 61
मधुसूदन सरस्वती	✓	✓	काशी	मित्र संबंध -- सं. भगवतीप्रसाद सिंह, तुलसीदास : व्यक्ति और रचना संदर्भ, पृ. 119

तालिका - 2 : त्यागराजु

परिचित वर्ग	त्यागराजु से मिलने आये	त्यागराजु मिलने गये	स्थान	मिलने का उद्देश्य
रामशेष शास्त्री तथा भाष्यम कृष्ण शास्त्री	✓	✓	तिरूवैय्यारु	गाँव के प्रसिद्ध विद्वान, त्यागराजु के गीतों को सुनकर बड़ी प्रशंसा की । -- नेदुनूरि गंगाधरमु, त्यागराज कृतिरत्नाकरमु. पृ. 10
श्यामा शास्त्री तथा मुत्तुस्वामी दीक्षितुलु	✓	✓	वही	समकालीन प्रसिद्ध संगीतज्ञ-मित्र- त्यागराजु से वाद-प्रतिवाद, संगीतशास्त्र चर्चा के लिए मिलते थे । - डा. वी.राघवन, भूमिका, दि स्पिरिच्युअल हेरिटेज़ आफ त्यागराज, पृ. 13
मेलटूरि वेंकट रामशास्त्री	–	✓	वही	समकालीन संगीतज्ञ, त्यागराजु से वयोवृद्ध, - बालान्त्रपु रजनीकांत राव, आंध्र वाग्गेयकार चरित्र, पृ.356

त्रिभुवनम् स्वामि- नाथ अय्यर	–	✓	वही	"आनंद भैरवी" के नाटक देखने गये जहाँ इस राग आनंद भैरवी के प्रसिद्ध कलाकार त्यागराजु ने अय्यर की प्रार्थना से आगे कभी इस राग में कीर्तन रचना करना त्याग दिया । – डा॰ ई॰ पाण्डुरंगराव, संतत्यागराजु, पृ॰ 16
गोविंद मारार दाम	✓	–	वही	व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मिलने आये । षट्काल में गायन करने में सिद्ध कलाकार मारार की प्रशंसा त्यागराजु ने की । – वही॰ पृ॰ 17
तुमुनर सिंह दास	✓	–	वही	गुंटूर जिले के प्रसिद्ध संत एवं गायक त्यागराजु के व्यक्तित्व से आकर्षित होकर उनसे मिलने आये । – वही॰ पृ॰ 18
गोपीनाथ भट्टाचार्य	✓	–	वही	भजन मंडलियों के द्वारा कीर्तन सुनकर त्यागराजु से मिलने की प्रबल इच्छा से सुदूर काशी से आये और त्यागराजु का आदर पात्र रहे । – वही॰ पृ॰ 19

गोपालकृष्ण भारती	✓	–	वही.	त्यागराजु की नाद-साधना पर मुग्ध होकर उनसे मिलने आये और आपके आशीर्वाद पाकर अपनी रचनाओं में एक नई चेतना पायी । – वही. पृ. 19
वड्डिवेलु	✓	–	वही.	तिरुवान्कूर के राजा स्वाति तिरुनाल के द्वारा त्यागराजु को अपने दरबार में लाने के लिए भेजा हुआ पंडित । राजा की आज्ञा और संत की मन:स्थिति के बीच में पिसता है । त्यागराजु के रोज चलनेवाले मार्ग पर एक कुटिया बनाकर वीणावादन करने लगता है । इससे प्रसन्न त्यागराजु उनसे वर मांगने के लिए कहते हैं तो राजा से मिलने का वर मांगता है । किन्तु त्यागराजु कहते हैं कि दोनों का मिलन परलोक में ही होगा । -- विस्सा अप्पाराव, त्यागराजकीर्तनलु, पृ. 21
उपनिषद् ब्रह्मेन्द्र	–	✓	कांचि	पहला व्यक्तित्व जो त्यागराजु को तिरुवैय्यार से दूसरी जगह यात्रा कराने में सफल हुए । यात्रा में जाकर इनसे त्यागराजु ने आशीर्वाद प्राप्त किया । -- वही. पृ.16

कोवूरु सुंदरेश्वर मुदलियार	✓	✓	कांचि कोवूरु	उपनिषद् ब्रह्मेन्द्र जी के अनुरोध पर ही त्यागराजु मुदलियार के यहाँ गये । - वही. पृ. 16
तंजाऊर राजा का सेवक	✓	-	तिरुवैय्यारु (कावेरी तट)	सेवक की भक्ति पर प्रसन्न होकर त्यागराजु ने उसके लिए एक सरल कीर्तन बना कर दिया । - वही. पृ. 9
राजा शरभोजी	✓	-	तिरुवैय्यारु	राजा शरभोजी ने त्यागराजु को अपने दरबार में गाने का निमंत्रण दिया तो इसका ~~कि~~ तिरस्कार त्यागराजु ने किया । कुछ घटना क्रम के बाद, त्यागराजु की महत्ता को समझकर उनसे मिलने राजा स्वयं आये । - डा. चावलिसूर्यनारायण मूर्ति, दक्षिण के संत - भाग 2, पृ. 153

तुलना :

उपर्युक्त तालिकाओं के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि तुलसी और त्यागराजु का संपर्क प्राय: भक्त और संतों से हुआ था । इनके अतिरिक्त दोनों के व्यक्तित्त्व से प्रभावित होकर कुछ शासक वर्ग के लोग भी आये । तुलसी का संसर्ग जिन महान व्यक्तियों से हुआ वे अपने समय के हिन्दी-साहित्य तथा वैचारिक जगत के प्रसिद्ध व्यक्ति थे । ऐसे व्यक्तियों के पास जाकर मिलने में तुलसी की महानता और उभरी है । तुलसी के साथ त्यागराजु को रखकर देखें तो यह स्पष्ट होता है कि त्यागराजु से आकर मिलनेवाले सब व्यक्ति तुलसी से आकर मिलनेवाले व्यक्तियों की तुलना में कम महत्वपूर्ण हैं । फिर भी सभी अपने समय के प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे । इस प्रकार देखा जा सकता है कि तुलसी और त्यागराजु के व्यक्तित्त्व लोकप्रियता की दृष्टि से समान महत्वपूर्ण है । दोनों की लोकप्रियता के मूल में भक्ति और काव्य आकर्षक तत्त्व के रूप में स्थित है । त्यागराजु में यह संगीत तत्त्व से भी अनुप्राणित है ।

2• व्यक्तित्त्व संरचना की परिणति : साधना पक्ष :

व्यक्तित्त्व की जो संरचना संस्कार, वातावरण तथा प्रभाव से घटित हुई, उसकी परिणति साधना में हुई । जैसा कि व्यक्तित्त्व की संरचना के तंत्र-विधान से स्पष्ट है, उसमें भावात्मक अध्यात्म और अध्यात्मोन्मुख कला के तत्त्व अनुस्यूत हो गये थे । इस संरचना की परिणति द्विविध साधना में हुई - आध्यात्मिक साधना और कला साधना । वैसे यह विभाजन अध्ययन की सुविधा के लिए ही किया गया है - वास्तव में उनकी साधना अखंड थी जिसके दो आयाम थे - अध्यात्म और कला । कला के अन्तर्गत संगीत तथा साहित्य आते हैं जो उनकी अध्यात्म साधना के अंग थे ।

व्यक्तित्व विकास का एक पक्ष साधक की विभिन्न क्षेत्रीय साधनाओं के बीच उभरता है । व्यक्तित्व विकास के साधना-क्षेत्रों में आध्यात्मिक साधना क्षेत्र का प्रमुख स्थान है । यदि भक्त अपने आराध्य को कविता कुसुमों की पूजा अर्पित करना चाहता है तो साहित्य साधना क्षेत्र भी उसके साथ प्रमुख होता है । भक्ति का संबंध जिस व्यक्तित्व में संगीत से संयुक्त होता है, उसमें तीनों की त्रिवेणी समन्वित रूप से बहती है । इन तीनों साधना पक्षों का एक आकर्षक रूप तुलसी और त्यागराजु में पाया जाता है ।

2.1. आध्यात्मिक साधना :

आध्यात्मिक साधना व्यक्ति निष्ठ होती है । व्यक्तित्व के विकास में इसका विशेष महत्व होता है । इसके द्वारा ही व्यक्ति निःश्रेयस और अभ्युदय के रूप में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । यह साधना समग्र व्यक्तित्व के द्वारा ही साधित होती है ।* आध्यात्मिक साधना के पथ में अनेक बाधायें भी आती हैं । इन बाधाओं पर विजय पाने के लिए उपाय भी बतलाये गये हैं । यह साधना ज्ञानपरक, कर्मपरक तथा उपासना परक होती है । भागवत-धर्म में उपासना मार्ग प्रधान है । इसमें भी सगुणमार्ग सामान्य जन के लिए सुगम और स्वाभाविक है । तुलसी और त्यागराजु ने

इनमें से

---

* इस संबंध में डॉ. वी. राघवन् जी का मत उल्लेखनीय है -

" Neither Jnāna nor Bhakti is a matter of glib talk of vain claim, but one of sustained practice. One's life has to be entirely geared up to a new scheme of values and reorganised in a manner different from the daily humdrum or dissipation. For a spiritual aspirant or devotee who wants to realise his goal, a new syllabus of conduct is needed and a constant endeavour to aquire these new accessories and an external vigil to keep oneself up on the path can alone, in good time, bring him near his objective."

--- Inroduction by Dr. V.Raghavan, The Spiritual Heritage of Thyagaraja, p.56.

उपासना मार्ग को ही श्रेयस्कर मानकर चुना । * दोनों की साधना प्रकृतित: समान है ।

भक्ति और उपासना की दार्शनिक पृष्ठभूमि जहाँ "ब्रह्मसूत्र" के चिंतन और उनके आचार्योक्त भाष्यों से निर्मित है वहाँ उसका व्यावहारिक पक्ष श्रीमद्‌भागवत और विष्णु पुराण तथा नारद एवं शाण्डिल्य के भक्तिसूत्रों के द्वारा निर्धारित हुआ । इस श्रृंखला में पांचरात्र आगम को और सम्मिलित किया जा सकता है । इस परंपरा से तुलसी और त्यागराजु दोनों ही समान रूप से प्रभावित रहे । नारद ने जिन ग्यारह आसक्तियों [2] का उल्लेख किया है उनमें से तुलसी और त्यागराजु की साधना मुख्यत: इन आसक्तियों से अनुप्राणित है : गुणमाहात्म्यसक्ति, दास्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति और तन्मयासक्ति । दोनों ने ही भागवतोक्त नवधा भक्ति के सोपानों को न्यूनाधिक रूप से अपनी साधना में स्थान दिया ।[3] तुलनात्मक निष्कर्षों के लिए दोनों कवियों से संबंधित तालिकायें नीचे दी गयी हैं :-

---

* तुलसी जहाँ भक्तिमार्ग को "गुरू कह्यो रामभजन नीको, मोहिं लगत राज डगरो सो" ﴾वि•प•।73﴿ कहकर स्वीकारते हैं वहाँ त्यागराजु भी - "चक्कनि राजमार्गमु लुण्डगा संदुलु दूरनेले ओ मनसा ••••• श्री साकेत रामुनि भक्तियने" ﴾त्या•की• ।8।﴿ अर्थात्‌ हे मन । साकेत राम की भक्ति रूपी सीधा राज-मार्ग हो तो गलियों में घूमने यानी अन्य मार्गों पर जाने की क्या आवश्यकता है - कहकर भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता को स्पष्ट करते हैं ।

2 नारद भक्ति सूत्र, 2

3 श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्‌ ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्‌ ।।

-- श्रीमद्‌भागवत्‌ 7/5/23

भागवत नवधा भक्ति

पद्धति	तुलसीदास	त्यागराजु
1• श्रवण	मा•7/63/2	त्या•454
2• कीर्तन	वि•193/8	त्या•417
3• स्मरण	मा•1/21/3	त्या•576
4• पादसेवन	मा•2/325	त्या• 306
5• अर्चना	दोहा•454	त्या• 219
6• वंदना	वि•64/1	त्या•496
7• दास्य	मा•7/119 (क)	त्या• 211
8• सख्य	मा•7/192/4	त्या•589
9• आत्मनिवेदन	वि• 273/1	त्या• 159

नादर भक्तिसूत्र : ग्यारह आसक्तियाँ

आसक्ति	तुलसीदास	त्यागराजु
1•गुणमाहात्म्यासक्ति	मा•1/47/2	त्या•72
2• रूपासक्ति	गी•2/19	त्या• 4
3• पूजासक्ति	वि•47	त्या•326
4• स्मरणासक्ति	वि• 129	त्या• 379
5• दास्यासक्ति	मा•2/130/4	त्या• 362
6• सख्या सक्ति	मा• 7/7/4	प्रभवि•की•37
7• कांतासक्ति	मा•1/326	प्रभवि•की• 23

8• वात्सल्यासक्ति	कृगी• 1	त्या•18॥अ॥
9• आत्मनिवेदनासक्ति	वि•101	प्रभवि•की•17
10 तन्मयासक्ति	मा•2/239/1	प्रभवि•की• 21
11 परमविरहासक्ति	गी•2/59	प्रभवि•की•35

तुलसी के राम शबरी के प्रति नवधा भक्ति का उपदेश करते है ।* जिसका स्रोत आध्यात्म रामायण है । इसी प्रकार त्यागराजु पर भी आध्यात्म रामायण का प्रभाव स्पष्ट है ।[2] उनके कीर्तनों में भी नवधा-भक्ति का यह स्वरूप मिल जाता है । दोनों भक्त कवियों की साधना के क्षेत्रों में उपास्य के प्रति जो क्रियायें संपन्न होती है उनकी तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है :-

उपचार क्रियायें	तुलसीदास	त्यागराजु
आवाहन॥स्वागत॥	मा•3/33/5	त्या•2॥अ॥
आसन समर्पण	मा•3/33/5	त्या• 275
पाद्य	मा• 3/33/5	त्या• 336
अर्घ्य ॥तर्पण॥	मा• 2/128/4	त्या• 336

---

* मानस• 3/34/2 से 3/35/3

2 " .... and an entire school of Rama Bhakti developed by saints and books, like Ramananda, Tulasidas, the Adhyatma Ramayana and Ramadas gave his (Thyagaraja) imagination every thing that was needed in his pilgrim's progress for the realisation of Ramachandra. "

----- Introduction by Dr. V.Raghavan, The Spiritual Heritage of Thyagaraja, p.34.

आचमणीय	-	त्या•336
मधुपर्क	-	त्या• 197
स्नान	गी•1/10/1	त्या• 165
वस्त्र	गी•1/8/2	त्या•474
अनुलेपन (गंध)	-	त्या• 173
पुष्प	गी•7/21(16	त्या• 217
धूप	वि• 47	त्या• 336
दीप	वि• 47	त्या. 165
नैवेद्य	मा• 1/200/2	त्या• 29
तांबूल	वि• 47	त्या• 216
नीराजन (आरती)	वि• 47	त्या• 9 (अ)
नमस्कार	मा•2/87/2	त्या•259
प्रदक्षिणा	मा• 2/198/1	त्या• 488
नाट्य	गी. 1/5/2	त्या• 494
वाद्य	गी•7/21/17	त्या• 12
गीत	वि•191/7	प्रभवि•की•25
आंदोलक	गी• 1/18/1	त्या• 53
लोरी	गी•1/19/1	त्या• 14 (अ)
शयनसेवा	--	त्या• 363
प्रभातसेवा	गी• 7/2/1	त्या• 20 (अ)
उबटन	गी•1/10/1	त्या•6 (अ)
मंगल गाना	--	त्या• 24 (अ)
शृंगार करना	गी•1/22	त्या•197
डिठौना	गी•1/24/6	त्या• 22 (अ)
विवाहोत्सव	जा• मं• 120	त्या• 4 (अ)
समर्पण	मा• 2/87/1	त्या• 130

उपर्युक्त विवेचन तथा तालिकाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि त्यागराजु एवं तुलसीदास के व्यक्तित्त्वों के विकास में भारतीय परंपराओं का अत्यधिक प्रभाव रहा है । संप्रदाय की दृष्टि से देखा जाय तो तुलसी रामानंद द्वारा प्रभावित होने के कारण रामानुजाचार्य के द्वारा प्रवर्तित श्रीसंप्रदाय की ओर झुकाव रखनेवाले हैं । त्यागराजु स्मार्त ब्राह्मण परंपरा के हैं जो शिव और विष्णु दोनों की महत्ता को स्वीकार करते हैं । वैसे त्यागराजु के कुलदेवता तिरूवारूर के श्री त्यागराज स्वामी (शिवजी) हैं । तेलुगु क्षेत्र के भक्तों की परंपरा में अनेक स्मार्त ऐसे मिलते हैं जिन्होंने एक ओर शैव भक्ति-संबंधी ग्रंथों की रचना की है तो दूसरी ओर वैष्णव-भक्ति से संबंधित ग्रंथों की । तेलुगु क्षेत्र में शिव और केशव के बीच का अपूर्व सामरस्य हरिहरनाथ की युगलोपासना में परिणत दिखाई देता है । यहाँ यह उल्लेखनीय बात है कि तेलुगु के आदिग्रंथ "श्रीमदांध्र-महाभारत" में कविवर तिक्कनामात्य कृत अंश शिव-केशव की युगल मूर्ति " हरिहरनाथ " को ही समर्पित है । " हरिहरनाथ " के मंदिर आंध्र में आज भी हैं । इस भावना से प्रेरित एक अपूर्व-व्यक्तित्त्व त्यागराजु में उभरा है । इस संबंध में चर्चा करते हुए डा॰ ई॰ पांडुरंगाराव ने लिखा है -- " चूँकि त्यागराजु की मूर्ति शिव की है, इसलिए जब कभी त्यागराजु ~~की मूर्ति शिव~~ अपने आराध्य राम को "त्यागराजनुत" कहते हैं, उससे दो अर्थ निकलते हैं -- एक तो भक्त त्यागराजु से कीर्तित और दूसरा भगवान त्यागराजु (शिव) से कीर्तित । दूसरा अर्थ लेने से शिव- केशव का सामरस्य भी व्यंजित होता है । तभी तो कहा गया है : " ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति । " *

---

* संत त्यागराजु : पृ॰ 16

इसी प्रकार की समन्वय वृत्ति से प्रेरित व्यक्तित्त्व तुलसीदास जी का भी है जो " हरिहर" तत्व की महत्ता को व्यक्त करता है --

" हरि हर पद रति मति न कुतरकी । तिन्ह कहुँ मधुर कथा
रघुबर की । " *

आध्यात्मिक साधना : प्रेरक व्यक्तित्त्व

भारतीय भक्ति-परंपरा में भक्तों के सामने अपने साधना-मार्ग को चुनने में कुछ आदर्श व्यक्तित्त्व रहे हैं, चाहे ये पौराणिक हों अथवा ऐतिहासिक । तुलसी की साधना में प्रेरक और सहायक पौराणिक व्यक्तित्त्व भक्त प्रवर हनुमान का है । अन्य भक्त जैसे नारद, अगस्त्य, मार्कण्डेय, सनकादि, काकभुशुंडि, शिव, प्रह्लाद, शबरी, गजेन्द्र आदि का नामोल्लेख चाहे जगह-जगह पर किया हो तथा उनकी भक्ति के आदर्शों को प्रतिपादित भी किया हो, फिर भी निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उन पर हनुमान का साधनामार्ग छाया हुआ है । तुलसी की " विनय-पत्रिका", "हनुमानबाहुक" तथा " हनुमान चालीसा" जैसी रचनाएँ इस बात को पुष्ट करती हैं । तुलसी द्वारा हनुमान-मंदिर निर्माण इसका भौतिक साक्ष्य है ।

त्यागराजु के प्रेरक पौराणिक व्यक्तित्त्वों में आदर्श हैं -- नारद और प्रह्लाद । त्यागराजु ने भी अपने कीर्तनों में भृंगी, नटेश (शिव), हनुमान, अगस्त्य, मतंग, सनक, सनंदन, शबरी, गजेन्द्र आदि भक्तों का आदर्श प्रतिपादित किया है और उनके मार्गों पर चलने का आदेश भी दिया है । किंतु कहा जा सकता है कि उनका आदर्श नारद और प्रह्लाद के व्यक्तित्त्व हैं ।

==

* मानस• 1/8/3

भक्तों के लिए उपासना-मार्ग निर्देशन करनेवाले कुछ ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व भी रहे हैं। इनमें गुरू और भक्तगण आते हैं। कुछ व्यक्तित्त्व समकालीन भी हो सकते है।

तुलसी को प्रभावित करनेवाले ऐतिहासिक व्यक्तित्त्वों में वाल्मीकि, नरहरिदास आदि हैं। तुलसी ने प्राय: ऐतिहासिक व्यक्तित्त्वों का कम उल्लेख किया है। फिर भी अन्य आधार पुष्ट करते हैं कि तुलसी को प्रभावित करनेवाले कुछ ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व रहे हैं।

तुलसी की तुलना में त्यागराजु ने अनेक ऐतिहासिक भक्त-प्रवरों का उल्लेख* किया है और उनकी पद्धति को अपने लिए आदर्श माना है। इनमें वाल्मीकि, रामकृष्णानंद स्वामी, तुलसीदास, पुरंदरदास, रामदास (कंचर्ल गोपन्ना) -- ये पाँच ऐसे व्यक्तित्त्व हैं जिनकी उन्होंने स्तुति भी की है। पांडुरंग, नामदेव, ज्ञानदेव, सहदेव, जयदेव, तुकाराम और नारायण-तीर्थ ऐसे व्यक्तित्त्व हैं जिनका उन्होंने वंदना मात्र की है। इनमें जिनका उल्लेख कविता में हुआ है वे राम-भक्त हैं और अन्य भक्त-प्रवर हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि रामभक्त, त्यागराजु को अधिक प्रभावित करनेवाले रहे और उनका उल्लेख विशेष रूप से किया गया है।

इस प्रकार त्यागराजु और तुलसी के द्वारा उल्लिखित पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तित्त्वों एवं उनके द्वारा स्वीकृत साधना-मार्गों से आलोच्य दोनों कवियों के साधना-मार्गों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

==

* प्रभवि॰पृ॰ ।

2.2. संगीत या नाद साधना :

पद और संकीर्तन शब्द समानार्थी है और भक्ति-साधना के अंग भी । संगीत के माध्यम से मुक्ति-साधना के प्रवर्तक नारदमुनि हैं । नारद से तारक मंत्र का उपदेश पाकर वाल्मीकि ने रामायण का गान किया है। उसी परंपरा में तुलसीदास जी ने भी " मानस" की रचना की है । भक्ति-साधना में जबसे संगीत एक अभिन्न अंग बन गया तब से कीर्तनों की रचना भक्तों के द्वारा होने लगी । संगीत-शास्त्र ने इस दिशा को एक और सुदृढ़ रूप दिया है । प्राय: सभी भक्तों ने पद रचना की है ।

भगवान को नाद-स्वरूप मानकर नादोपसना मॆं रमनेवाले भक्तों की भारतीय परंपरा में कमी नहीं रही है । संगीत जब अपनी नाद तरंगों के माध्यम से भावुक हृदय को हिलोर देता है तब भक्त के हृदय में एक अपूर्व तन्मयता छा जाती है । इसीलिए नादोपासना सगुण-भक्ति परंपरा में विशेष रूप से व्याप्त रही है । * त्यागराजु और तुलसीदास दोनों ने नादोपासना को अवश्य मान्यता दी है । त्यागराजु को नादोपासना में प्रवृत्त करने का श्रेय भी नारद को दिया जाता है । नादोपासना की ओर अपनी मानसिकता को व्यक्त करनेवाली उक्तियों से भी यही पता चलता है कि त्यागराजु और तुलसी दोनों ने स्वात: सुखाय ही नाद-साधना अपनायी है । इस संबंध में कुछ उद्धरण आगे प्रस्तुत हैं ::-

---

* " These songs and references cover every aspect of the art, musical criticism, elucidation of musical concepts, thebest way to practise music, music as a help to spiritual effort and above all, music itself as a yoga and a Siddhi, a path and a realisation."

---- Introduction by Dr. V.Raghavan, The Spiritual Heritage of Thyagaraja, p.36.

त्यागराजु :
----

§1§ " नाद सुधारसंबिलनु नराकृताय मनसा " । *

§2§ " शोभिल्लु सप्तस्वर सुंदरूल भजिंपवे मनसा" । [2]

§3§ " नादलोलुडै ब्रह्मानंद मंदवे मनसा " ।[3]

§4§ " नादोपासनचे शंकर नारायण विधुलु वेलसिरि मनसा"।[4]

तुलसी ने यद्यपि नाद-साधना की बात संगीत के संदर्भ में स्पष्टत: नहीं कही है, फिर भी जगह-जगह पर लीला गान, चरित गान, कथागान की बात अवश्य कही है । [5] उन्होंने भगवान के विरूद गायन की परम्परा को वेदों से जोडा है -- " वेद विदित बिरूदावली कबि कोविद गावत गीत । " [6] " गीतावली " तो तुलसी की नाद-साधना वृत्ति

==

* " रे मन । नाद सुधारस पृथ्वी पर नराकृति धारण कर आया ।"
-- त्या॰ 272

2 " रे मन । शोभापानेवाले सप्तस्वर रूपी सुंदरों को भजो । "-वही,567

3 " रे मन । नाद लोलुप बनकर ब्रह्मानंद प्राप्त करो । "
-- वही॰ 270

4 रे मन । नादोपासना से शंकर, नारायण और ब्रह्म व्यक्त हुए । "
-- वही॰ 274

5 तुलसी साहित्य में " गाना" शब्द से संबंधित संज्ञा, क्रिया की आवृत्ति 449 बार हुई है जिसकी सूची परिशिष्ट में दिया गया है।

6 वि॰ 191/7

की ओर अवश्य हमें आकृष्ट करती है । " गीतावली " में नाद-साधना अथवा कीर्तन-गायन की ओर उनकी प्रवृत्ति निम्न उद्धरणों मेंं देखी जा सकती है -

(1) "गावत प्रेम-पुलकि तुलसी है ।" *

(2) "दीजे मति बिमल गावै चरित बर तिहारे ।" [2]

(3) "रघुवीर के गुनगान नित दास तुलसी गावहीं ।" [3]

(4) "तुलसी कल कीरति गावहिं, जो कलिमल-समनी ।" [4]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि त्यागराजु और तुलसीदास दोनों के व्यक्तित्त्वों में एक अपूर्व योग नाद-सादना के क्षेत्र में भी मिल जाता है । नाद-साधना में प्रवृत्त होने के लिए जो विशेष प्रकार की संगीत-साधना की आवश्यकता है, वह दोनों में समान रूप से पायी जाती है । अन्तर इतना है कि त्यागराजु ने राम को नादब्रह्म के रूप में स्वीकारा है तो तुलसी के राम और रूपों से भी युक्त हैं । इसीलिए त्यागराजु का झुकाव नादमय संगीत की ओर और तुलसी का झुकाव शब्दार्थमय काव्य की ओर हो गया ।

2.3. साहित्य साधना :

यद्यपि त्यागराजु ने अपना जीवन संगीत-संकीर्तन की साधना में समर्पित कर दिया था, तथापि उनके गीतों का साहित्यिक महत्व भी कम नहीं है । तेलुगु-भाषी क्षेत्र से दूर रहते हुए भी त्यागराजु ने अपनी मातृ-भाषा तेलुगु में ही संकीर्तन-गीतों की सृष्टि की । एक प्रकार से तंजाऊर का पंचनद-क्षेत्र तेलुगु-भाषा साहित्य का केन्द्र ही बन गया । जब विजयनगर साम्राज्य का ह्रास हुआ तो तेलुगु वाङ्‌मय की प्रगति कुछ

---

* गी॰ 1/31/6

2 वही॰ 1/39/3

3 वही॰ 7/19/5

4 वही॰ 7/20/4

ठिठक गयी । * एक प्रकार से तेलुगु साहित्य का पुनर्जन्म तंजाऊर के प्रान्त में हुआ जहाँ तेलुगु के कवियों को राज्याश्रय मिला । जब उस क्षेत्र में लौकिक श्रृंगार और वासना से विकल साहित्य राज्याश्रय में पनप रहा था तब त्यागराजु ने एक क्रांति प्रस्तुत की । फलतः साहित्य लोकोत्तर माधुरी से छलक उठा । इस प्रकार भक्ति, साहित्य और संगीत की एक त्रिवेणी संत त्यागराजु की साधना से प्रकट हुई जहाँ श्रीराम की प्रतिष्ठा है ।[2] कहा जाता है कि वाल्मीकि ने जिस प्रकार 24 हजार श्लोकों में रामायण की रचना की थी, उसी प्रकार त्यागराजु ने भी 24 हजार गीतों में राम का गुणगान किया था । किंतु दुर्भाग्य से वे सारे गीत अबतक सुरक्षित न रह सके और लगभग सात सौ संकीर्तन गीत ही प्राप्त हैं ।[3] तेलुगु गीति-साहित्य के इतिहास में अन्नमाचारी के गीतों के पश्चात् त्यागराजु के गीतों का प्रमुख स्थान है ।

स्फुट गीतों के अतिरिक्त उन्होंने तीन संगीत-रूपक भी लिखे - §1§ प्रह्लाद भक्ति विजयमु §2§ नौका चरित्रमु और §3§ सीताराम विजयमु । इनमें से अन्तिम अप्राप्य है । "नौका चरित्रमु" का सम्बन्ध कृष्ण-गोपी संदर्भ से है । इसमें वह प्रसंग आया है जो श्रीमद् भागवत में भी नहीं मिलता । प्रसंग इस प्रकार है - एक दिन कृष्ण गोपिकाओं के साथ नौका-विहार कर रहे थे । उसी समय उन्होंने अपनी माया से नौका में एक छेद कर दिया और नौका में जल आने लगा । तब कृष्ण ने

---

* डा॰ ई॰ पाण्डुरंगाराव, संत त्यागराजु, पृ॰ 12

2 वही पृ॰ 13

3 " We do not know how many songs Thyagaraja had actually composed. He is helieved to have composed 24,000 songs, according to tradition. But only about 700 of them are now extent with notations ......"

..... E.N.Purushothaman, Thyagopanishad, Preamble, p. XIII.

उनसे कहा कि अपने सभी वस्त्र दे दो जिससे यह पानी रोका जा सकता है । गोपियों ने पहले तो संकोच किया और पीछे वस्त्र दान करके स्वयं निर्वसन हो गयीं । अन्त में श्रीकृष्ण की कृपा उन्हें प्राप्त हुई । दूसरा संगीत-रूपक "प्रह्लाद भक्ति विजयमु" भक्त प्रह्लाद की भक्ति-भावना का प्रसार करने वाला है जिसमें त्यागराजु का भक्त हृदय भी रमा है । श्रीमद्भागवत के प्रह्लाद प्रसंग को भक्त प्रवर त्यागराजु ने अपनी मौलिक कल्पनाओं से रससिक्त किया है । इसमें भक्ति-पक्ष की भी पुष्टि हुई है । इस रूपक में राम ही प्रह्लाद के आराध्य देव हैं । त्यागराजु की दृष्टि में राम एक अवतार पुरूष नहीं, बल्कि साक्षात् परब्रह्म हैं । आदर्श भक्त अनेक कठिनाइयों का सामना करके अपनी अनन्यता का परिचय देता है । यही प्रह्लाद चरित के द्वारा इसमें प्रतिपादित है ।

इन संगीत-रूपकों के अतिरिक्त त्यागराजु ने अनेक स्तोत्र भी रचे । इनमें उनकी एक उदार दृष्टि मिलती है । उन्होंने शैव और वैष्णव दोनों ही क्षेत्रीय देवताओं की स्तुतियाँ लिखीं । देवी और त्रिपुरसुंदरी भी उनके स्तोत्रों में स्थान पा सकीं । इस प्रकार विभिन्न संप्रदायों के देवताओं से त्यागराजु ने समान दृष्टि से प्रेरणा ग्रहण की । "विनयपत्रिका" के स्तोत्रों में भी यही उदार दृष्टि परिलक्षित होती है । त्यागराजु के साहित्य का मुख्य भाग गीत-संकीर्तन हैं । इनकी दार्शनिक, भावात्मक और संरचनात्मक भूमिकाओं पर यथा स्थान विचार किया गया है ।

तुलसी की साहित्य-साधना का माध्यम अवधी और ब्रज भाषाएँ रहीं । "रामचरित मानस" की भाषा एक परिनिष्ठित भाषा है जिसकी प्रकृति मिश्रित है । त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी ने अधिक काव्य रूपों का प्रयोग किया । त्यागराजु ने स्फुट गीतों के अतिरिक्त तीन संगीत-रूपकों की रचना भी की । किंतु तुलसी ने महाकाव्य, शुद्ध मुक्तक, गीत मुक्तक, लोक काव्य, प्रसंग काव्य, मंगल काव्य जैसे रूपों के द्वारा भावनाओं की

अभिव्यक्ति की । तुलसी की साहित्य-साधना के संबंध में डा॰ रमेशकुंतल मेघ लिखते हैं -

"प्रवृत्ति प्रधानता की दृष्टि से उनके सृजनात्मक कार्य के दो चरण प्रतीत होते हैं । पहला वह है जब वे केवल आदर्शवादी है, महाकाव्यात्मक भव्यता तथा आध्यात्मिक उन्मेष में महत् ललित रचना करते हैं । "रामचरित-मानस", "जानकी मंगल", "पार्वती मंगल", "वैराग्य संदीपनी", "रामाज्ञाप्रश्न" आदि इस चरण की देन हैं । दूसरे चरण में वे आदर्श से यथार्थ की ओर भी मुड़ने लगते हैं, उल्लास से गांभीर्य की ओर बढ़ते हैं; और "मानस" के "परब्रह्म" राम की परमपद दायक गाथा के स्थान पर "कवितावली" के लोकमंगल के "नायक" का जीवन गाने लगते हैं । इस चरण में उनकी महाकाव्यात्मक भव्यता का स्थान वेणुगीतात्मक (लिरिकल) वैयक्तिकता ले लेती है ; आध्यात्मिक उन्मेषवाली आस्था-श्रद्धा-विश्वास के साथ-साथ नैतिक प्रायश्चित-पश्चात्ताप, तथा सामाजिक संदेश-तर्क आदि का भी समावेश हो चलता है, महाकाव्य वृत्त के स्थान पर प्रगीत वृत्त के पद, कवित्त, सवैये ढलने लगते हैं । "गीतावली", "श्रीकृष्णगीतावली", "विनय पत्रिका", "बरवै", "दोहावली", "सतसई", "हनुमान बाहुक" आदि मुक्तक कृतियाँ इस चरण की देन हैं । इसी वेणु गीतात्मक चरण में वे अपनी आत्मकथा कहने एवं समाज की निर्भ्रांत आलोचना करने की नयी जीवनदृष्टि एवं सामर्थ्य पाते हैं ।" *

त्यागराजु की मुख्य साधना संगीतात्मक थी । वे नयी राग-रागिनियों और तालों के आविष्कारक थे और पुराने संगीत की प्रविधियों का नव संस्कार भी उन्होंने किया । इसके विपरीत तुलसी की साहित्य-साधना

---

* डा॰ रमेशकुंतल मेघ, तुलसी:आधुनिक वातायन से, पृ॰ 105,106

मुख्यत: काव्यात्मक थी और सांगीतिक कृतियाँ पूरक रूप में उन्होंने रची थी । त्यागराजु की ख्याति संगीतज्ञ के रूप में ही विशेष थी, किंतु तुलसी कवि के रूप में ख्यात हुए ।

काव्य के वर्ण्य-विषयों या काव्य के दिव्य संदर्भों की दृष्टि से तुलसी और त्यागराजु बहुत कुछ समान हैं । जहाँ तक स्तोत्रों, विनय गीतों तथा भावगीतों का संबंध है दोनों कवियों की मूल प्रवृत्ति समान दिखलाई पड़ती है । अन्तर केवल इतना है कि "गीतावली" में तुलसी ने जिन प्रसंगापेक्षी गीतों की रचना की है वे त्यागराजु के कृतित्व में नहीं मिलते ।

3. लोकगत व्यक्तित्व :

जब व्यक्तित्त्व की संरचना और साधना की संरचना एक अपूर्व उदात्तीकरण के साथ एकाकार हो जाती है तब इस संरचना के प्रति लोकमानस की प्रतिक्रिया होती है । यह प्रतिक्रिया आकर्षण के रूप में होती है । आकर्षित होकर लोकमानस इस नवोदित-परंपरा को स्वीकार करके इसके साथ संबद्ध हो जाना चाहता है । इसी प्रक्रिया में शिष्य-परंपरा जन्म लेती है । साथ ही लोक व्यक्तित्त्व और साधना की समन्वित प्रतिमूर्ति के प्रति अपने भावविह्वल मन की अभिव्यक्ति भी करता है । इस अभिव्यक्ति की प्रमुख पद्धति अलौकिकीकरण या मिथकीकरण की होती है । जब दो संरचनाएँ एक अपूर्व सामंजस्य में ढल जाती हैं तो लोक मानस एक लोकोत्तर स्थिति का अनुभव करता है और लौकिक व्यक्तित्त्व को अलौकिक संदर्भों से जोड़कर अपने मन की भावना की व्यंजना करता है । इन दो सूत्रों को हम तुलसी और त्यागराजु के संबंध में भी देखते हैं । इन पर आगे संक्षेप में विचार किया गया है । एक तीसरा सूत्र लोकोत्तरता को और पुष्ट करता है और वह है भौतिक सुविधा और विलास का परित्याग करके अपने मार्ग पर अविचलित रहना । यह सूत्र नर स्तुति से विमुख होकर प्रभुस्तुति की ओर उन्मुख होने में लक्षित ह किया जा सकता है ।

3.1. शिष्य परंपरा :

भक्त प्रवरों के व्यक्तित्त्वों का एक सम्मोहक पक्ष भी रहता है जो उनके आध्यात्मिक तथा साहित्यिक साधना के आधार पर विकसित होता है। व्यक्तित्त्व के इस पक्ष का प्रभावकारी रूप साधारणत: शिष्य परंपरा के आकलन से स्पष्ट होता है। इस मोहक व्यक्तित्त्व के आस-पास एकत्र होनेवाले शिष्यों की महत्ता गुरु के व्यक्तित्त्वों को और प्रदीप्त कर देती है। अपनी अनवरत साधना से स्वामी त्यागराजु एवं गोस्वामी तुलसीदास ने अपने आस-पास एक शिष्य मंडली को आकर्षित किया था। इस मंडली में आनेवाले शिष्यों में भी अनेक ऐसे व्यक्तित्त्व रहे थे जिन्होंने आगे की पीढ़ियों को प्रभावित किया तथा गुरु की महत्ता को चतुर्दिक विकीर्ण किया।

तिरुवैय्यार के संत की ख्याति भक्त एवं संगीतज्ञ के रूप में चतुर्दिक फैलने लगी। एक ओर पंचनदीश्वर का अनुग्रह पाने के लिए और दूसरी ओर त्यागराजु के भजनों के साथ तादात्म्य प्राप्त करने के लिए अनेक यात्री इस क्षेत्र में आने लगे। त्यागराजु के भजन-मंदिर में विभिन्न भावापन्न राग-रागिनियाँ गूँजती रहती थीं। इन दर्शकों में से कुछ लोग उनके शिष्य भी बनने लगे। धीरे-धीरे शिष्यों की संख्या में वृद्धि होने लगी। वालाजापेट वेंकटरमण भागवतार त्यागराजु के प्रिय शिष्य थे। वे उनके गीतों को लिपिबद्ध भी करते थे। इसी प्रकार तंजाऊर के राज-दरबार का एक द्वार पालक भी उनका शिष्य बना। कुछ जिज्ञासु भी संगीत और रागों के संबंध में शंका-समाधान के लिए उनकी शरण में आया करते थे। *

---

* गोविंद मारार त्यागराजु से मिलने आये थे। आंध्रा के गुंटूर के तूमुनरसिंहदास ने भी इनसे भेंट की। तमिल के गोपालकृष्ण भारती भी उनसे प्रभावित हुए।

तंजाऊर रामाराव भी उनके प्रिय शिष्य थे ।

शिष्य मंडली के परिवेश में संत त्यागराजु स्वामी त्यागराजु बन जाते हैं । उनके शिष्य सांगीतिक दृष्टि से भी थे और आध्यात्मिक दृष्टि से भी । शिष्य वत्सलता के अनेक उदाहरण स्वामी त्यागराजु के जीवन में मिलते हैं । शिष्यों के होते हुए भी उन्होंने किसी संप्रदाय विशेष का प्रवर्तन नहीं किया । स्वच्छंद-भाव से संकीर्तन-साधना में वे अपनी शिष्य-मंडली के साथ संलग्न रहे ।

त्यागराजु के प्रभाव में आनेवाली शिष्य-परंपरा को हम प्रमुख रूप से तीन वर्गों में बाँट सकते हैं -

§1§ त्यागराजु की परंपरा को संकीर्तनकार के रूप में आगे बढ़ानेवाला शिष्य समुदाय ।

§2§ उनके द्वारा रचित संगीत-परंपरा का गायक बनकर प्रसार करनेवाला शिष्य वर्ग तथा

§3§ अन्य ।

प्रथम वर्ग में वे लोग आते हैं जो त्यागराजु के शिष्य थे और त्यागराजु ने जिस संगीत-परंपरा को स्थापित किया था उसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उनकी कीर्ति प्रसारित की थी तथा स्वयं संकीर्तन-रचनाकार बनकर गुरू के दिखाये मार्ग का अनुसरण किया । * द्वितीय वर्ग के शिष्य प्राय: संगीतज्ञ बन गये थे । इन्होंने त्यागराजु के गीतों का संगीत-सभाओं में

---

* इस वर्ग में उल्लेखनीय हैं - वालाजापेट वेंकटरमण भागवतार, वीणाकुप्पय्यर, सुब्बराय शास्त्री, मानांबु चावडि वेंकट सुब्बय्यर तथा वालाजापेट कृष्णस्वामी भागवतार ।

-- रजनीकांतराव, आंध्रवाग्गेयकार चरित्र, पृ॰ 342

गायन किया तथा गुरू के व्यक्तित्त्व को सामान्य जनता के सामने प्रस्तुत किया । * तृतीय वर्ग के शिष्यों में वे लोग आते हैं जो त्यागराजु की बहुज्ञता से प्रभावित थे । मंत्र शास्त्र तथा ज्योतिष-शास्त्र में उनके पांडित्य से प्रभावित होकर ही कुछ लोग शिष्य बनने आये ।[2]

जिस प्रकार त्यागराजु की अपनी एक शिष्य-परंपरा बनी है उसी प्रकार शिष्यों की इस परंपरा ने तुलसीदास की प्रतिष्ठा और बढ़ायी । उनके शिष्यों की लंबी सूची तो नहीं मिलती । किंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस समय तुलसी की शिष्य परंपरा त्यागराजु की शिष्य-परंपरा से कहीं अधिक ही होगी । कारण स्पष्ट ही है । तुलसी ने भक्ति का प्रचार एवं प्रसार किया है, किन्तु त्यागराजु संगीत के कारण अधिक प्रसिद्ध हुए ।

तुलसी की शिष्य-परंपरा में कुछ प्रमुख व्यक्तियों का उल्लेख विद्वानों ने किया है । इन में बाबा बेणीमाधवदास,[3] बाबा रघुवरदास,[4]

---

* इस वर्ग के उल्लेखनीय व्यक्ति हैं - तंजाऊर रामाराव, सुंदर भागवतार, उमयालपुरम कृष्ण भागवतार, गोविंद शिवन्, सभापति शिवन्, तिल्लस्थानम् रामय्यंगार, कन्नय्य भागवतार, अय्या भागवतार, नैकरप्पाट्टि सुब्बय्या, नेमम् सुब्रह्मण्यय्य, वंगवरम् नील कंठय्य, सोजरी सीतारामय्या, सुब्बराय भागवतुलु, गेणेशय्या, लालगुडी रामय्या, कंजिरा विद्वान चित्तूर राधाकृष्णय्या, शेवुना वेंकटाचलपति भागवतार तथा अमृतलिंगम् पिल्ले । - वही॰ पृ॰ 342

2 वालाजापेट पोट्टि ज्योस्युलु तथा कुंभकोणम् अरवामुदय्यंगार - इस वर्ग में उल्लेखनीय है । - वही॰ पृ॰ 342

3 श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बड़थ्वाल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ॰ 18

4 डा॰ बलदेव प्रसाद मिश्र, तुलसी-दर्शन, पृ॰ 3

बेलापतार के जोरावर सिंह,* सत्यकाम,[2] भगीरथ,[3] भृगु[4] आदि आते हैं । इनमें बेणीमाधवदास स्वयं कवि थे जो तुलसीदास जी के व्यक्तित्त्व से अधिक प्रभावित हुए । फलस्वरूप उन्होंने गोस्वामी जी की जीवनी "मूलगोसाईं चरित" नाम से लिखी है । बाबा रघुवरदास ने भी "तुलसी चरित" लिखा था । अन्यों के संबंध में इतना ही कहा गया है कि ये तुलसी के पास रहकर उनके द्वारा उद्धरित हुए । इनके अलावा तुलसी के संबंध में इतना कहा जा सकता है कि उनके संपर्क में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में आनेवाला प्रायः सारा हिन्दू समाज उनका एक प्रकार से शिष्य समाज ही है ।

दोनों के शिष्य वर्ग के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि संख्या की दृष्टि से तुलसी के शिष्य-वर्ग में कम व्यक्तित्त्वों का उल्लेख हुआ है । फिर भी प्रभाव की दृष्टि से तुलसी त्यागराजु की सीमाओं को पार करते हैं । त्यागराजु का शिष्य वर्ग उनकी भक्ति-पद्धति से कमश् नादोपासना से अधिक आकर्षित हुआ है । किंतु दोनों का व्यक्तित्त्व अपने आस-पास के वर्गों पर इतना प्रभावशाली रहा है कि आज तक वह व्यक्तित्त्व उनके उपासकों की परंपरा में उसी रूप में प्रतिष्ठित है ।

3.2. व्यक्तित्त्व का मिथकीकरण अथवा अलौकिकीकरण :

प्रत्येक संत और भक्त के जीवन में कुछ अतिमानवीय सूत्र भी अनुस्यूत मिलते हैं ; अलौकिक प्रेरणा-स्रोत की चर्चा प्रायः की जाती है । कहा जाता है कि परिव्राजक राम कृष्णानंद स्वामी की प्रेरणा के अनुसार त्यागराजु ने 96 करोड बार रामनाम का जप किया । तीस वर्षों में जब यह जप-अनुष्ठान समाप्त हुआ तो उनको राम के दर्शन भी हुए ।[5] राम की इन्हीं झाकियों के

---

* श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बड़थ्वाल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 56

2 वही. पृ. 61   3 वही. पृ. 62

4 वही. पृ. 72

5 बालांत्रपु रजनीकांत राव, आंध्र वाग्गेयकार चरित्रमु, पृ. 346

क्षणों में न जाने कितने अमर गीत कवि की प्रतिभा और कल्पना में लह-लहा उठे थे । इसी प्रकार नारद की प्रेरणा की भी चर्चा की जाती है । एक वृद्ध सन्यासी से उनको नारदकृत "स्वरार्णव" प्राप्त हुआ । उनको ऐसा अनुभव हुआ जैसे उस वृद्ध सन्यासी के रूप में स्वयं नारद ने आकर यह ग्रंथ उन्हें भेंट किया हो । स्वप्न में भी नारद का दर्शन उन्होंने किया । * अंततः त्यागराजु ने नारद को ही अपना संगीत गुरू माना ।

त्यागराजु के कुछ अलौकिक चमत्कार की चर्चा भी की जाती है । उन्होंने पुत्तूरू में एक मृत-व्यक्ति को "राग बिलहरी" में "ना जीवाधारा ना नोमु फलमा....." कीर्तन गाकर जीवन दान दिया ।[2] एक बार त्यागराजु अपनी पालकी में नागलापुरमु के वन से गुजर रहे थे । उनको यह ज्ञात नहीं था कि उनकी पालकी में कुछ स्वर्ण मुद्रायें रखी हुई थीं । चोरों ने पालकी का पीछा किया । जब त्यागराजु को स्वर्णमुद्राओं का पता चला तो उन्होंने यह कहा कि ये मुद्रायें भगवान की हैं और इनकी रक्षा भी भगवान ही करेंगे । तब उन्होंने "राग दरबारी" में एक गीत गाया । इस गीत के प्रभाव से चोर पीछे हटते चले गये । यह पता चला कि उन चोरों को अपने सामने तीर मारते हुए दो बालक दिखलाई पडे थे । ये बालक राम-लक्ष्मण ही थे ।[3]

जिस प्रकार त्यागराजु को राम की कृपा का संबल मिला और उनसे उनको मोक्ष का आश्वासन भी मिला,[4] उसी प्रकार तुलसी ने भी राम भक्ति के आधार पर राम की अनुकंपा प्राप्त की । चित्रकूट में रहते समय उनको प्रेत और हनुमान जी की सहायता से राम के दर्शन हुए ।[5]

---

* प्रो॰ पी॰ सांबमूर्ति, त्यागराजु, पृ॰ 18-19

2 विस्सा अप्पाराव, श्री त्यागराज चरित्र, पृ॰ 42

3 डॉ॰ ई॰ पांडुरंगाराव, संत त्यागराजु, पृ॰ 24

4 नेदुनूरि गंगाधरम्, त्यागराज कृति रत्नाकरमु, पृ॰ 21,22

5 श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बड़थ्वाल, गोस्वाई तुलसीदास, पृ॰ 48 से 51

जिस प्रकार त्यागराजु को नारद से नाद-ब्रह्म की साधना की प्रेरणा मिली, उसी प्रकार तुलसी को भी हनुमान जी से काव्य-रचना की प्रेरणा मिली और जब कभी सृजन के क्षणों में तुलसी के सामने कोई उलझन आती थी तो हनुमान उनकी सृजन प्रक्रिया की उलझनों को दूर कर देते थे । नारद जहाँ दिव्य संगीत के प्रतीक हैं वहाँ "कपीश्वर", "कवीश्वर" हैं । कहा जाता है कि जब तुलसी का अंग-प्रत्यंग गठिया रोग की पीड़ा से गल गया था तब हनुमान जी ने ही उनको रोग मुक्त भी किया था । * "विनयपत्रिका" भी हनुमान के द्वारा ही राम के समक्ष प्रस्तुत की गयी ।

जिस प्रकार त्यागराजु की अलौकिकता को प्रकट करनेवाली अनेक अनुश्रुतियाँ हैं उसी प्रकार तुलसी के आस-पास भी अनुश्रुतियों का जाल फैला हुआ है । त्यागराजु की ही भाँति तुलसी के संबंध में प्रसिद्ध है कि उन्होंने एक मृत-व्यक्ति को जीवित किया था । हंसपुरा में मृत पति का अनुगमन करनेवाली एक ब्राह्मणी ने रास्ते में गोस्वामी जी से मिलने पर उनको प्रणाम किया । तुलसी ने सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया । लेकिन ब्राह्मणी के विधवा होने की बात समझकर उन्होंने बताया कि राम-नाम जप से तुम्हारा मंगल अवश्य होगा । उसी नाम-जप से उसका पति जी उठा ।[2] गोस्वामी जी की राम-भक्ति यहाँ स्पष्ट हो उठी है ।

---

* "हनुमान बाहुक" की रचना रोग से मुक्त करने वाले हनुमान की ही प्रशस्ति में हुई।

-- डा• विजयानंद त्रिपाठी, रामचरित मानस की भूमिका, पृ• 12

2 पं• रामनरेश त्रिपाठी, तुलसीदास और उनका काव्य, पृ• 98

जिस प्रकार त्यागराजु की पालकी को लूटने के लिए आये हुए चोर स्वयं राम-लक्ष्मण के द्वारा आतंकित किये गये और उनका हृदय परिवर्तन हुआ, उसी प्रकार एक दिन तुलसी के स्थान पर भी चोर आये, तो उन्होंने राम-लक्ष्मण को पहरा देते पाया । चोरों की वृत्ति भी बदल गयी । *

तुलसी और त्यागराजु के संबंध में प्रचलित अन्य अनुश्रुतियों तथा अलौकिक घटनाओं की सूचियाँ इस प्रकार हैं -

---

* श्यामसुंदरदास तथा पीतांबर बड़थ्वाल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ॰ 106

सूची -1 : तुलसी

स्थान	तुलसीदास से संबंधित अलौकिक घटना विशेष	संदर्भ ग्रंथ
प्रयाग	याज्ञवल्क्य और भारद्वाज से रामकथा - श्रवण ।	श्यामसुंदरदास एवं पीतांबर बड्थ्वाल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 105
काशी	"मानस" की रचना - शिव जी का स्वप्न में दर्शन देकर तुलसी को प्रेरणा देना ।	वही. पृ. 105, 106
काशी	हनुमान जी का तुलसी को दुष्टों से रक्षा करना	वही. पृ. 107
ब्रज	मदनगोपाल (कृष्ण) की मूर्ति का राम के रूप में परिवर्तन करना	वही. पृ. 109, 110
(अ) चित्रकूट (आ) नैमिषारण्य (इ) ओड्छा	(अ) योग श्रीमुनि (आ) प्रेत और (इ) केशवदास : तीनों प्रेतों का उद्धार	वही. पृ. 112, 113

चित्रकूट	दरिद्र-मोचन शिला का मंदाकिनी से आविर्भूत करना	वही• पृ• 114
काशी	गुम गोसाईंजी की अलौकिक क्रिया (चमत्कार) से राजदूतों को भयंकर काल-रूप दिखाई देना	वही; पृ; 114
हृषीकेश	तुलसी जी अपने तीन भक्तों को जीवनदान देना	वही• पृ•115, 116
चरवाही	स्त्री को पुरुष में बदला देना	वही• पृ• 117
दिल्ली	जहाँगीर से कैद किये जाने पर हनुमान जी की कृपा से कपि-सेना जहाँगीर को सताना और तुलसी को बंधन मुक्त करने पर कपि-सेना वापस लौट जाना	वही• पृ•118,119 120

सूची-2 : त्यागराजु

स्थान	त्यागराजु से संबंधित अलौकिक घटना विशेष	संदर्भ ग्रंथ
तिरुवैय्यारु	कावेरी नदी में भाई जपेश्वय्या के द्वारा फेंकी गयी राम-पंचायतन की मूर्तियाँ नदी से बाहर निकल आना ।	विस्सा अप्पाराव त्या, पृ॰13
तिरुपति	भगवान बालाजी वेंकटेश्वर जी के मंदिर में स्वामी का परदा अपने आप हटकर त्यागराजु को प्रभु-दर्शन प्राप्ति	डा॰चालि सूर्यनारायण मूर्ति दक्षिण के संत भाग-2 पृ॰148
श्रीरंगम्	उत्सव के समय अटका हुआ श्रीरंगनाथ जी का रथ त्यागराजु की विनती से आगे बढ़ना ।	वही॰ पृ॰ 150
तंजाऊर	त्यागराजु को बंदी बनाने की आज्ञा देने के कारण राजा शरभोजी को उदर दर्द होना और आज्ञा का विरमण करने पर स्वस्थ होना ।	वही॰ पृ॰152,153

तिरुवैय्यारु	खाद्यान्न समाप्त होने पर त्यागराजु के उपवास रहना तथा राम,सीता और हनुमान के साथ पधारकर त्यागराजु को खाद्यान्न प्रदान करना ।	वही• पृ•154

प्राय: भक्तों अथवा संतों के संबंध में प्रचलित अनुश्रुतियों की सत्यता पर प्रश्नचिह्न उपस्थित किये जाते हैं । चाहे इन अनुश्रुतियों की प्रामाणिकता सिद्ध हो या न हो, इनसे इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि संतों या भक्तों का प्रभावशाली व्यक्तित्त्व साधारण जन-समुदाय को किस प्रकार आकर्षित करता है । उनकी सत्यता यदि हों तो व्यक्तित्त्व की महानता उभरती है, असत्य ठहरें तो भी महानता कम नहीं होती, बल्कि ये उनकी लोक-प्रियता को अवश्य प्रकाशित करती हैं ।

3•3• प्रभु स्तुति बनाम नरस्तुति :

संत गायकों और कवियों के सामने ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती रहीं जिनमें उनसे नरस्तुति करने के लिए कहा गया । राजा शरभोजी की कामना थी कि त्यागराजु उनकी प्रशंसा में कुछ गीत लिखें । पर त्याग-राजु ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया । वे प्रभु राम के सान्निध्य को छोड़कर और किसी भी पार्थिव प्रलोभन में पडना नहीं चाहते थे ।*

---

* " निधि चाल सुखमो रामुनि स
न्निधि सेव सुखमो निजमुग बल्कु मनसा ।"

(सच्ची बात बतारे मन तू । किस में सच्चा सुख है । रघुपति की सन्निधि या भवनिधि - किस से मिलता सुख है ।) - त्या•285

इसलिए त्यागराजु राज्याश्रय से मुक्त रहे । इसी प्रकार सूरदास ने भी अकबर के आग्रह करने पर कह दिया -- " नाहिंन रह्यौ मन मे ठौर" ।* कुम्भनदास जी ने भी अकबर को लिख भेजा -- " संतनु कहा सीकरी सो काम " । इसी प्रकार पोतना ने राज्याश्रय और राजानुग्रह की उपेक्षा की । तुलसीदास जी ने तो स्पष्ट कह दिया :-

" कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना ।
सिरधुनि गिरा लगत पछिताना ॥ " [2]

इसी परंपरा में त्यागराजु की पंक्तियाँ आती हैं ।[3] तिरूवानकूर के राजा स्वाति तिरूनाल ने त्यागराजु को अपने यहाँ बुलाना चाहा, क्यों कि यह राजा लेखक और गायक था । त्यागराजु भी उनसे संतुष्ट थे, किंतु उन्होंने इनसे मिलना स्वीकार नहीं किया । यदि वे कहीं जा सकते थे तो किसी ज्ञानी या संत के यहाँ ही । कांची के स्वामी उपनिषद ब्रह्मेन्द्र उनको अपने यहाँ बुलाने में सफल हुए । खंड्वाल्लिलक्ष्मी रंजनम् ने त्यागराजु के बारे में लिखा है -- " यह कोई अतिशयोक्ति की बात नहीं है कि आन्ध्र साहित्य संसार में पोतना के समान निर्भीक और निराडंबर जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति त्यागराजस्वामी को छोड़कर और कोई नहीं है । " [4] त्यागराजु की भाँति तुलसीदास भी निर्भीक तथा निराडंबर जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति हैं । दोनों नर-स्तुति के विपक्ष में है । दोनों ने अपना जीवन निर्वाह बहुत दिनों तक उंछवृत्ति को अपनाकर किया । इसका उल्लेख तुलसीदास ने " कवितावली " में किया है :-

" बारें ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन ।
जानत हो चारफल चार ही चनक को ।। " [5]

===

* डा॰ धीरेन्द्र वर्मा : अष्टछाप : प्रसंग 3, पृ॰9
2 मानस : बा॰ 1/11/4
3 " दुमार्गि चराधमुल दोर नीवन जालरा ।"
(मान नहीं सकता मैं प्रभुता दुराचरण के परायणों की ।) - त्या॰240
4 आंध्र साहित्य चारित्र संग्रहमु, पृ॰65
5 कवितावली : उत्तर॰66

त्यागराजु भी उंछ वृत्ति से जो कुछ मिलता था उसे भगवान राम को नैवेद्य चढ़ाकर बाद में अपने शिष्यों के साथ खाते थे । * इन विषयों से दोनों की निर्भीकता और निराडंबरता का परिचय मिल जाता है ।

4. अंतिम समय :

सात वर्ष की अवस्था से पंचनद क्षेत्र में जिस संत ने नाद-साधना आरंभ की थी, वह संत त्यागराजु अठहत्तर वर्ष की अवस्था तक दिव्य-संगीत की साधना में लीन रहा । इसी अवस्था में उनकी पत्नी कमलांबा का देहांत हुआ । इस वियोग ने उनकी वृत्ति को वैराग्योन्मुख कर दिया । इस घटना के बाद अगले वर्ष में त्यागराजु ने एक रात अपने इष्टदेव राम को एक पर्वत पर स्थित देखा । त्यागराजु की आत्मा हर्ष विभोर हो उठी और उनके नेत्र वाष्पाकुल हो गये । सम्भवत: सर्वज्ञ राम समझ गये कि अब भक्त त्यागराजु की आत्मा निर्वाण के लिए मचल उठी । इस घटना से दस दिन पश्चात् पुष्य बदी पंचमी के दिन उनके यहाँ संकीर्तन का अनुष्ठान हो रहा था । * इससे एक दिन पहले उन्होंने परमहंस ब्रह्मानंदेन्द्रस्वामी से सन्यास की दीक्षा ली । गुरू ने उनका नवीन नामकरण किया - नादब्रह्मानंद ।[2] और अब वह अंतिम क्षण निकट आने लगा जब साकार दिव्य-संगीतज्ञ त्यागराजु को प्रभु में लीन होना था । उनके शिष्य सामूहिक संकीर्तन से नाद ब्रह्म को साकार करने में लीन थे तो नादब्रह्मानंद त्यागराजु नाद-साधना की अंतिम परिणति के रूप में ब्रह्मलीन हो गये ।[3]

---

* " परमात्मुडु वेलिगे मुच्चट बाग तेलुसुकोरे "

-- प्राय: यह त्यागराजु का अंतिम गीत माना जाता है । - त्या.329

2 डा. ई. पांडुरंगाराव, संत त्यागराजु, पृ.67

3 तेलुगु पंचांग के अनुसार यह तिथि पुष्य बदी पंचमी पराभव संवत्सर अर्थात् 6 जनवरी 1847 ई. ठहरती है । -- विस्सा अप्पाराव, त्यागराज कीर्तनलु, पृ.25

* 'उप्पु कर्पूरमु वरकुनु उंछवृत्ति चे नार्जिंचि' — त्या. 63/2
(नमक, कर्पूर तक के सभी चीजों को उंछवृत्ति से प्राप्त करके ---)

अपने अंतिम दो गीतों में त्यागराजु ने राम के जिस रूप पर ध्यान केन्द्रित किया है वह उनके द्वारा पर्वतपर दर्शित रूप ही है । * लंका में रावण से युद्ध होने से पहले वे एक सुवेल पर्वत पर आसीन हुए थे । तुलसी ने भी राम की इस झांकी को " रामचरितमानस " में प्रस्तुत किया । [2] त्यागराजु की इस राम-कल्पना पर तुलसी के प्रभाव को भी कुछ विद्वानों ने स्वीकार किया है ।[3]

तुलसी के अंतिम समय का कोई उल्लेखनीय संदर्भ नहीं है । किंतु उन्हें अपने जीवन के अंतिम चरण के बोध होने का उल्लेख हमें " विनय पत्रिका " में मिलता है :-

" तुलसीदास अपनाइये, कीजै न ढील,
अब जीवन-अवधि अति नेरे ।"[4]

===

* " गिरिपैनेलकोन्न रामुनि गुरितप्पक गंटि" - त्या॰ 175

2 एहि विधि कृपारूप गुनधाम रामु आसीन ।
धन्यते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन ।।"

-- मानस॰ 6/11 (क)

3 " The scene depicted by Thyagaraja in this song refers to Rama getting on top of the Suvela mountain, after crossing the sea, and resting there for a time before the war actually began, a scene ~~mxxpxxx~~ of special significance obviously to the school of Rama worshippers; and also in this song, we have probably evidence of the influence of Tulasidas, the great apostle of Rama Bhakti; for in the 'Ramacharita Manas' we find Tulasi saying of this scene. "

----- **Introduction by Dr. V.Raghavan, The Spiritual Heritage of** Thyagaraja, p.5.

4 वि॰ 273/3

इसके साथ-साथ हनुमान बाहुक की रचना के उद्देश्य के पीछे निहित किंवदंती से यह स्पष्ट होता है कि तुलसीदास अपने अंतिम समय में रोगग्रस्त हो गये थे । इस संबंध में स्व॰ विजयानंद त्रिपाठी जी का कथन है - "यदि उक्त रोग (प्लेग) से गोस्वामी जी का देहावसान हो गया होता, तो "हनुमान बाहुक" का अनुष्ठान रोग की निवृत्ति के लिए कदापि न किया जाता । "हनुमान बाहुक" के अनुष्ठान की परिपाटी से ही यह बात सिद्ध होती है कि गोस्वामी जी इस रचना के बल से इतनी बड़ी पीर से विनिर्मुक्त हुए ।" *

जिस प्रकार त्यागराजु ने अन्तिम समय में एक गीत की रचना की थी, उसी प्रकार तुलसी द्वारा रचित एक अंतिम छंद का उल्लेख मिलता है । "कवितावली" का क्षेमकरी दर्शन संबंधी यह छंद इस प्रकार है :-

कुंकुम रंग सुअंग जितो मुख चंदसो चंद सों होड परी है ।
बोलत बोल समृद्धि चुवै अवलोकत सोक बिसाद हरी है ॥
गौरी कि गंग बिहंगिनि बेष कि मंजुल मूरति मोदभरी है ।
पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच बिमोचनि छेम करी है ।।[2]

यद्यपि इस छंद के तुलसी के महाप्रस्थान कालीन छंद होने के संबंध में शंकाएँ हैं, फिर भी साम्य की दृष्टि से महान व्यक्तियों में यह तत्त्व भी जुड़ जाता है । जहाँ तक अन्तिम तिथि का सम्बन्ध है विद्वानों में प्राय: एकमत है । इस संबंध में प्रसिद्ध यह दोहा यहाँ प्रस्तुत है :-

---

* रामचरित मानस, भूमिका, पृ॰ 12

2 कवितावली, उत्तर॰ 180

संवत् सोरह से असी, असी गंग के तीर ।
सावन स्यामा तीज शनि, तुलसी तजे सरीर ॥ *

जिस प्रकार त्यागराजु ने शैव क्षेत्र तिरूवैय्यार में नादब्रह्म में अन्तिम परिणति पायी उसी प्रकार तुलसी भी शैव-क्षेत्र काशी में मर्यादा पुरूषोत्तम में लीन हो गये । तुलसी भी अन्तिम क्षणों में अपनी समस्त चेतना राम को समर्पित करते रहे ।

5. निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आलोच्य कवियों ने संस्कार के क्रमशः उदात्तीकरण के द्वारा अपने व्यक्तित्त्व को अखंड साधना में परिणत किया । यह अखंड साधना लोक मानस के साथ इस प्रकार एकाकार हो गयी कि इन दोनों ही कवियों को अमरत्व की प्राप्ति हुई । जिस समन्वित संरचना में व्यक्तित्त्व ढला वह सृजनोन्मुख होकर उस प्रगीत की रचना में संलग्न हुआ जो लोक और परलोक के छोरों को छूता है : जो लोक की अभिरूचि को अलौकिक संदर्भों से जोडता है : जो लौकिक और अलौकिक की विभाजक रेखा का अतिक्रमण कर जाता है । प्रबंध के शेष भाग में उनके प्रगीतात्मक सृजन का संरचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

---

* बेणीमाधवदास, मूल गोसाईं चरित, पृ. 119 - डा. माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, पृ. 189 से उद्धृत ।

दूसरा अध्याय

साध्य : तत्व संरचना

साध्य : तत्व संरचना

०. प्रास्ताविक :

"तत्व" और "संरचना" परस्पर विरोधी शब्द प्रतीत होते हैं। इन दोनों शब्दों का प्रयोग दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में होता आ रहा है। वैज्ञानिक दृष्टि से तत्व (Element) एक निरपेक्ष तथा अविभाज्य इकाई है। दार्शनिक दृष्टि से भी तत्व को निरपेक्ष, अनिर्वचनीय, अनादि, अनंत, स्वजातीय-विजातीय भेदों से परे, अरूप, अस्ति-नास्ति से निरपेक्ष जैसे विशेषणों का विशेष्य बनाया जाता है। भारतीय भक्ति दर्शन और साहित्य इसी अलौकिक तत्व को लौकिक संदर्भ और लौकिक प्रामाण्य में लाने की साधना को अभीष्ट मानकर चलते हैं। यही तत्व का लौकिक और जीवन्त संदर्भों में अवरोहण है। इसकी प्रविधियाँ जागतिक प्रकृति में स्वत: विकसित हुई हैं। इन प्रविधियों का अलग शास्त्र भी बना है। यदि औपनिषदिक ब्रह्म "तत्व" है और इस रूप में वह किसी भी प्रकार के मानवीय परिज्ञान से ज्ञेय नहीं है तो विष्णु तथा उसके अवतारों की परिकल्पना "तत्व" को ज्ञेय, ध्येय, गेय वचनीय बनाने की ओर अग्रसर है :
ब्रह्म~विष्णु~अवतार ।

तुलसी और त्यागराजु के दृष्टि पथ से "तत्व" ओझल नहीं है, किन्तु दोनों की साधना उसको आन्तरिक और बाह्य संरचना में ढालने के लिए है । "संरचना" तत्व के नैज और आंतरिक गुणों की खोज तथा उनके संबंधों की ऐक्यपूर्ण अन्विति का ही नाम है । तत्व जब इस संरचना में ढल जाता है तभी वह काव्य का आलंबन और गीत काव्य का गेय बन सकता है । अन्य भक्त कवियों की भाँति आलोच्य दोनों कवि तत्व को संरचना की ओर लाने के लिए प्रयत्नशील हैं । सिद्धान्त यह बना कि जिस प्रकार पदार्थ(matter)और ऊर्जा शक्ति (energy)एक दूसरे में परिवर्तनीय हैं, उसी प्रकार "तत्व" और "संरचना" भी एक दूसरे में रूपांतरित हो सकते हैं । वास्तव में ब्रह्म से अवतार की ओर चलने की स्थिति एक संरचना की ही खोज है । दोनों ही कवियों की साध्य-परिकल्पना साध्य= ब्रह्म=विष्णु= अवतार के आंतरिक संबंधों के विकास क्रम को ही प्रस्तुत करती है । यह तत्व को मानवीय या प्राकृतिक संरचना में अवतरित करने का ही उपक्रम है । इस संरचना में आने पर "नाम" और "गुण" की रचना स्वत: उद्भूत हो जाती है । इन्हीं अन्वितियों की स्थिति को तुलसी और त्यागराजु के गीत काव्य में अन्वेषित और निरूपित करना प्रस्तुत अध्याय में आयासित है ।

1. राम = ब्रह्म :

विष्णु और उनके अवतार राम तथा कृष्ण की मान्यता भक्ति-साहित्य में ब्रह्म के रूप में भी मिलती है । ब्रह्म की राममय भावना तुलसी और त्यागराजु दोनों में है ।* जहाँ विष्णु का संबंध वैदिक साहित्य के देव विकास और आगम-साहित्य के चतुर्व्यूह सिद्धान्त से भी है वहाँ ब्रह्म का संबंध वेदांत से है । वेदांत की ब्रह्म संबंधी अनेक धारणाओं का संबंध विष्णु से भी हो गया । यही परंपरा

---

* तुलसी (वि.54) और त्यागराजु (त्या. 353) ने राम को "ब्रह्म" कहा है । ब्रह्मण्य शब्द का भी प्रयोग दोनों कवियों में मिलता है ।

तुलसी और त्यागराजु के साहित्य में मिलती है ।

1.1 निषेधात्मक विशेषण :

ब्रह्म के निरूपण में उपनिषद् ने निषेधात्मक विशेषणों का प्रयोग किया है । निषेधात्मक उपसर्ग "अ"- तथा "नि"- मुख्य रूप से मिलते हैं और कभी-कभी संज्ञा के पश्चात् "-रहित" प्रत्यय शब्द का प्रयोग करके भी निषेधात्मक रचना की जाती है ।

1.1.1 "अ"- उपसर्ग वाली रचना :

(क) तुलसी और त्यागराजु में प्रयुक्त समान शब्दावली:

"अनन्त",* "अनघ",[2] "अज",[3] "अद्वैत",[4] "अमल"[5] और "अविकार~अविकृत"[6] ।

(ख) केवल तुलसी में प्रयुक्त शब्दावली :

"अचल"[7] (वि॰ 56), "अविचल" (वि॰55), "अमाय" (वि॰220), "अमानम्" (वि॰60), "अमानी" (वि॰56), "अव्यक्त" (वि॰56), "अमित" (वि॰56), "अविनासी" (गी॰7/38), "अविरल" (वि॰53), "अनारंभ" (वि॰56), "अनवद्य" (वि॰53), "अगुन" (गी॰7/7), "अनिकेत" (वि॰56), "अविच्छिन्न" (वि॰51), "अकल" (वि॰49), "अजित" (वि॰53), "अद्वितीयम्" (वि॰53) और "अनामय" (वि॰56) ।

---

* वि॰ 49 ; त्या॰ 586 2 वि॰ 141 ; त्या॰ 447

3 वि॰ 50 ; त्या॰ 3 4 वि॰ 56 ; त्या॰ 607

5 वि॰ 55 ; ~~त्या~~ प्रभवि॰ पृ॰19 6 वि॰ 56 ; त्या॰ ।

7 त्यागराजु ने तेलुगु शब्द "कदलेवाडुगाडु" (त्या॰ 135) शब्द को इसके समान अर्थ में प्रयोग किया है ।

§ग§ केवल त्यागराजु में प्रयुक्त शब्दावली :

"अनाथ" §त्या॰14§, "अव्याज" §त्या॰482§, "अकलंक" §त्या॰38§, "अखड रूपा" §त्या॰564§, "अप्रमेय" §प्रभवि॰ पृ॰27§, "अच्युत" §प्रभवि॰ पृ॰21§ और "अनिर्वाच्य चरित" §प्रभवि॰21§ ।

इस प्रकार की शब्दावली में तुलनात्मक दृष्टि से तुलसी का शब्द प्रयोग अधिक वैविध्य पूर्ण है और आवृत्ति भी तुलसी में ही अधिक है । आवृत्ति की तालिका यह है -

तुलसी	त्यागराजु	अंतर
57	38	19

1•1•2 "निर-"～"नि":-उपसर्गवाली रचना :

§क§ दोनों में समान शब्दावली :

"निरंजन", * "निर्मल",[2] "निर्गुण",[3] "निर्विकार",[4] "निरूपाधि"[5] और "निर्मोह" ।[6]

§ख§ केवल तुलसी में प्रयुक्त शब्दावली :

"निर्मानि" §वि॰53§, "निस्सीम" §वि॰56§, "निर्मम" §वि॰53§, "निस्कंप" §वि॰56§ और "निर्मुक्त" §वि॰55§ ।

§ग§ केवल त्यागराजु में प्रयुक्त शब्दावली :

"निर्विकल्प" §त्या॰353§, "निष्कलंक" §त्या॰204§, "निरूपम" §त्या॰269§,

---

* वि॰ 136 ; त्या॰ 401 2 वि॰ 185 ; त्या॰ 238

3 कृ॰गी॰41 ; त्या॰ 269 4 वि॰ 203 ; त्या॰ 238

5 वि॰ 53 ; त्या॰ 302 6 वि॰ 56 ; त्या॰ 407

"निस्संग" §त्या•345§, "निरामय" §त्या•119§, "निश्शंक" §त्या•562§, "निष्काम" §त्या•13§, "निर्दोष" §त्या•343§ और "निरातंक"§त्या•119§,

दोनों की आवृत्ति की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है -

तुलसी	त्यागराजु	अन्तर
35	46	11

इस तालिका में त्यागराजु की आवृत्ति ही अधिक है ।

1•1•3• "वि"- उपसर्ग वाली रचना :

"विमल" §वि•55§, "विरज" §वि•56§, "विपुल" §वि•54§ जैसे शब्द केवल तुलसी ने प्रयुक्त किये हैं ।

1•1•4• "-रहित" प्रत्यय वाली रचना :

§क§ दोनों में प्रयुक्त शब्दावली :

"मायारहित" §वि•56; त्या•376§ वाली रचना ही मिलती है ।

§ख§ केवल त्यागराजु में प्रयुक्त शब्दावली :

"नाम रूप रहित" §त्या•586§, "अंतरहित" §त्या•482§, "आदिमध्यरहित" §त्या•303§, "आद्यंतरहित" §त्या•95§, "आदिमध्यांतरहित" §प्रभवि• पृ•33§, "त्रितापरहित" §त्या•560§ "कुभवपाशरहित" §त्या•506§, "आशरहित" §त्या•503§, "मदमोहरहित" §त्या•23 अ§ "रागरहित" §त्या•49§, "रागविरहित" §त्या•211§, "निद्रालस्य रहित" §त्या•209§ और "तामसादिगुणरहित" §त्या•54§ शब्दावली केवल त्यागराजु में मिलती हैं ।

दोनों की तुलनात्मक तालिका यह है -

तुलसी	त्यागराजु	अन्तर
1	23	22

चारों निषेधात्मक शब्द रूपों की आवृत्ति की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है -

रचना शब्द	तुलसी	त्यागराजु
1. "अ"-	57	38
2. "निर्-~निः-"	35	46
3. "वि-"	6	-
4. "-रहित"	1	23
	99	107

इस प्रकार दोनों की औपनिषदिक ब्रह्म योजना प्रायः समान है ।

1.2. विधिपरक विशेषण :

ब्रह्म का कथन मुख्य रूप से निषेधात्मक विशेषणों के रूप में ही किया जाता है, किंतु कुछ विधिपरक विशेषण भी ब्रह्म के लिए प्रयुक्त होते हैं । तुलसी और त्यागराजु ने भी इस प्रकार के विशेषण राम-ब्रह्म के लिए प्रयुक्त किये हैं, जैसे "नित्य" [*], "सर्वदा"[2], "सदा"[3], "संतत",[4] "नित्य रूप",[5] "नित्य स्वरूप"[6] और "सनातन"।[7]

---

* वि. 56 : त्या. 200

2 वि. 53

3 त्या. 1

4 वही. 506

5 वही. 296

6 वही. 27 अ

7 वही. 311

1.3. ब्रह्म=साध्य :

जहाँ विष्णु की साधना सरल और सहज है वहाँ ब्रह्म की साधना दुष्कर है । इस भाव को व्यक्त करनेवाली शब्दावली दोनों ही कवियों ने राम के लिए प्रयुक्त की है । तुलसी ने ब्रह्म के लिए "ध्येय" (वि.54) शब्द का प्रयोग करके यह प्रकट किया है कि यह ज्ञान-साधना के द्वारा प्राप्य है । इसी तरह त्यागराजु ने राम को "वेदांतवेद्य" (प्रभवि.पृ.19) कहा है । इसका तात्पर्य है कि वेदान्त की साधना से उसको जाना जा सकता है । ब्रह्म की साधना को कठिन बतलाने के लिए तुलसी ने "दु:-" उपसर्ग वाली रचना की है : "दुराराध्य" (वि.54), "दुष्कर" (वि.54), "दुष्पार" (वि.53), "दुष्प्राप्य" (वि.53), "दुष्प्रेक्ष्य" (वि.53), "दुस्तर्क्य" (वि.53), "दुस्तर" (वि.50) "दुर्ग" (वि.50) और "दुर्लभ" (कृ.गी.23) । यह रचना त्यागराजु में अप्राप्य है । तुलसी ने इसी अर्थ में "अगम" शब्द का प्रयोग भी किया है, * जैसे - "मुनिमन अगम" (वि.71) ।

1.3.1 गूढ़ :

ब्रह्म निर्गुण-निराकार है, इसलिए उसके लिए तुलसी ने "गुप्त" (वि.54), "गूढ़" (वि.54), "गूढार्चि" (वि.53), "गूढार्थवित" (वि.54) और "गुनगूढ" (वि.50) विशेषणों का प्रयोग किया है जिससे उसकी अगम्यता ही व्यक्त होती है ।

1.3.2. अतीत :

ब्रह्म को सब से परे बतलाने के लिए "अतीत" रचनावाले शब्द दोनों कवियों ने प्रयुक्त किये हैं । जहाँ तुलसीदास ने ब्रह्म को "भावनातीत" (वि.56), "कल्पनातीत" (वि.54), "गोतीत" (वि.61), "ज्ञान-गोतीत" (वि.49) और "गुन-गोतीत" (गी.7/21) के रूप में देखा है वहाँ त्यागराजु ने "मायातीत" (त्या.353), "त्रिगुणातीत" (त्या.247), "कालातीत"

§त्या•588§ और "आगमनिगमातीत" §त्या•586§ के रूप में ।

इसी अर्थ में प्रयुक्त अन्य शब्दावली दोनों कवियों में इस प्रकार है : "मन-क्रम-बचन-अगोचर" §वि•203§ और "अवाङ्• मौनसगोचर" §त्या•2§ ।

1•4 अद्वैत :

वेदांतवादियों ने ब्रह्म को अद्वैत कहा है । यद्यपि किसी भक्ति-संप्रदाय के आचार्य ने ब्रह्म की अद्वैतता को ज्यों का त्यों नहीं माना तथापि उपनिषद् की शब्दावली का प्रभाव तुलसी और त्यागराजु पर है । दोनों ने राम को "अद्वैत" §वि•56; त्या•607§ कहा है । इसी परंपरा में "एक" वाले शब्द आते हैं । तुलसी ने राम को "एकम्" §वि•53§, "एकरस" §वि•249§, "एक" §वि•249§, और "रस एकराम" §वि•266§ कहा है तथा त्यागराजु ने "एकांत" §त्या•57§, "प्रत्येकुडु" §त्या•342§ एवं "ओकडु" §त्या•54§ कहा है ।

प्रातिभासिक रूप से जगत में वाच्य और वाचक, सिद्ध-साधक और साध्य का भेद प्रकट होता है, किन्तु अद्वैतवादी दृष्टि से तत्व: सभी एक है । तुलसी ने इसी सिद्धान्त को प्रकट करनेवाले कुछ शब्दों का प्रयोग किया है : "सिद्ध-साधक-साध्य" §वि•53§ और "वाच्य-वाचक-रूप" §वि•53§ ।

1•5• पूर्ण :

इस जगत में पूर्ण केवल ब्रह्म है । पूर्ण ब्रह्म की कल्पना दोनों ही कवियों ने राम ~~को~~ के संदर्भ में की है । दोनों कवियों ने समान रूप से राम को "परिपूर्ण" §वि•31; त्या• की• 406§, "परम पुरुष" §वि•203; प्रभवि•पृ•10§, "परब्रह्म" §वि•43; त्या• की•65§, "परम ब्रह्मण्य"

§वि•प•61; त्या•की•353§ जैसे विशेषणों से संबोधित किया है । इसके अतिरिक्त त्यागराजु ने "पूर्ण" §त्या•253§, "पूर्णकाम" §प्रभवि•पृ•22§, "पराप्तर" §त्या•97§ "परवस्तुवु" §प्रभवि•पृ•32§ जैसे विशेषणों का भी प्रयोग राम के लिए किया है । "सर्व" भी इसी का द्योतक शब्द है । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ब्रह्म को "सर्व" §वि•53; त्या•234§ कहा है ।

1•6 मायापति :

शंकराचार्य का मत "मायावाद" भी कहा जाता है । माया ब्रह्म की एक अंतर्भूत शक्ति है । जगत और प्रकृति सब इसी शक्ति का प्रातिभासिक फैलाव है । राम ब्रह्म को तुलसी और त्यागराजु दोनों ने "मायापति" * कहा है । प्रकृति भी माया रूपा है । इस अर्थ में तुलसी के अनुसार ब्रह्म "प्रकृति-स्वामी"[2] भी है ।

1•7 जगत और ब्रह्म :

भक्ति-दर्शन में ब्रह्म और जगत दोनों को ही सत्य स्वीकार करते हुए इन दोनों का परस्पर संबंध स्थापित किया गया है । इन संबंधों के सूचक शब्द हैं : ईस, सर्जक, पालक और नियंता । तुलसी और त्यागराजु में इन संबंध सूचक शब्दों की स्थिति निम्न लिखित विवरण से स्पष्ट हो जाती है ।

1•7•1 ईस :

तुलसीदास और त्यागराजु दोनों ही कवियों ने जगत के पर्याय शब्दों के साथ ईस, पति, नायक, नाथ और प्रभु को जोड़कर ब्रह्म राम के

---

* तुलसी ने "मायापति" §वि•177§ और त्यागराजु ने /मायाधारी/"= माया को धारण करनेवाले" §त्या•437§ के रूप में राम ब्रह्म को देखा है ।

2 वि•49

जगदीश्वरत्व* का निरूपण किया है । ब्रह्म केवल जगत का पति ही नहीं, बल्कि जगत उसका रूप है । इसलिए इन कवियों ने राम के लिए "अगजगरूप" {वि•205}, "अचर चर रूप" {वि•203}, "चराचर रूप" {त्या•506}, "स्थावरजंगम रूप" {त्या•434}, "जगद्रूपुडु" {त्या•8 अ} आदि शब्दों का प्रयोग किया है ।

1•7•2 सर्जक :

दोनों कवियों की दृष्टि में राम जगत के सृष्टि कर्त्ता हैं : "विस्व-कारन-करन" {वि•55}, "सृष्टि-स्रष्टा" {वि•53}, "नियामक" {वि•55}, "निर्मित लोकं" {त्या•269}, "सृष्ट्यादि कर्त्ता" {प्रभवि•पृ•14} और "सकल लोक निदान" {त्या•311} । इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि राम ब्रह्म जगत की सृष्टि के कारण हैं ।

1•7•3 पालक :

पहले कहा जा चुका है कि ब्रह्म जगत के सृष्टि कर्त्ता हैं । इसके साथ साथ वे जगत के पालन कर्त्ता भी हैं । इस रूप में भी दोनों कवियों ने राम ब्रह्म को देखा है : "विश्व-पोषन-भरन" {वि•55}, "विस्व-धृत" {वि•61}, "जगजीवन" {वि•77}, "जगदवन" {त्या•463}, "विश्वाधार" {प्रभवि• पृ•35}, "सर्वलोकाधार" {प्रभवि• पृ•21}, "सकल लोक पालक" {त्या•292}, "सर्व लोक हिताय" {त्या•7 अ}, "अंडकोट्लु पालिंचे वाडु" {त्या•78}, "जगमेलु शूरुडु" {त्या•265} आदि ।

---

* इस अर्थ के द्योतक पदबंध ये हैं : जगपति {वि•136; त्या•482}, लोकनायक {वि•44; त्या•76}, जगदीश {वि•52; त्या•62}, भुवनेश {वि•55; त्या•202}, भुवनैक प्रभु {वि•46}, विश्वभर्त्ता {वि•59}, लोकनाथ {त्या•16}, ब्रह्मांडनाथ {त्या•32} ।

यहाँ अंतिम दो शब्द तेलुगु भाषा प्रकृति के हैं जो त्यागराजु की विशिष्टता को प्रकट करते हैं । तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु की शब्दावली वैविध्य पूर्ण है ।

1·7·4· हर्त्ता :

जैसे राम-ब्रह्म जगत के सृजन और पालन व्यापार में सचेत हैं उसी प्रकार उसके अंत करने में भी । यह रूप केवल तुलसी में ही मिलता है : "कल्पांतकारी" (वि·55) ।

तुलसीदास और त्यागराजु दोनों ने ब्रह्म के जगत संबंधी तीनों क्रिया कलापों के सूचक शब्द प्रयोग भी किया है - "विस्वपालन-हरन-विस्वकर्त्ता" (वि·61) और "सृष्टि स्थित्यंत कारक" (त्या·1) ।

1·8· ब्रह्म = प्रकाश और नाद :

ज्ञान और योग साधना में नाद और बिंदु शब्द महत्व हैं । ब्रह्म नाद रूप भी है तथा बिंदु या ज्योतिर्मय भी है । त्यागराजु ने नादब्रह्म की साधना ही संगीतात्मक पद्धति से की थी । इसलिए उनकी कल्पना में नाद ब्रह्म का बिंब स्पष्ट है : "नादरूप" (त्या·262), "नादात्मक" (त्या·308), "नाद ब्रह्मानंद रूप" (त्या·259) और "नाद ब्रह्मानंद रसाकृति" (त्या·305) । इसी प्रकार दोनों ही कवियों ने प्रकाश रूप ब्रह्म पर भी ध्यान केंद्रित किया है : "सुप्रकाश" (वि·43 ; त्या·312), "स्वयं प्रकाश" (त्या· 71), /भासुर/= प्रकाशमान" (त्या·90) और "ज्योतिर्मय" (त्या·564) ।

1·9· ब्रह्म = मूल तत्व :

सारी दार्शनिक ऊहा ब्रह्म को तत्व रूप में निरूपित करती है । तुलसी और त्यागराजु ने भी राम को सार तत्व के रूप में देखा है - "सर्वसार" (वि·56), "सार रूप" (वि·53), "सार" (त्या·458), "सारतर" (त्या·95),

"सार सार" {त्या॰303}, "सारात्सार" {त्या॰562}, "सर्वसार" {त्या॰506}, "अखिल सार" {त्या॰602}, "सकल वेद सार" {त्या॰44}, "निगम सारतर" {त्या॰1}, "सकल श्रुतिसार" {त्या॰95}, "आदिमूल" {प्रभवि॰ पृ॰22}, "सत्तमात्रमु" {त्या॰494} "सत्व रूप" {त्या॰287} इत्यादि । यहाँ तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु की शब्दावली और आवृत्ति अधिक वैविध्यपूर्ण है ।

1॰9॰1॰ आत्मा रूप :

जिस प्रकार बिंब - प्रतिबिंब न्याय से ब्रह्म बहिर्जगत में प्रतिबिंबित है, उसी प्रकार आत्मारूप से वह सभी में अंतर्व्याप्त है । इस सिद्धान्त के द्योतक शब्द ये हैं : "परमात्मा" {वि॰52; प्रभवि॰पृ॰41}, "अंतरात्मा" {त्या॰108}, "जगदात्मा" {त्या॰ 564}, "विश्वात्मा" {वि॰56; प्रभवि॰ पृ॰ 31}, "अंतर्यामी" {वि॰50}, "सर्वांतर्यामी" {त्या॰465}, "बाहर-अंतरजामी" {वि॰53}, "अंतरंगुडु" {त्या॰488} और "आत्माराम" {प्रभवि॰ पृ॰ 33} ।

1॰9॰2॰ व्यापक :

ब्रह्म सर्व व्यापक है । देश और काल का कोई भी कण ऐसा नहीं है जिसमें ब्रह्म की व्याप्ति न हो । इस व्यापकता के द्योतक शब्द दोनों कवियों में मिलते हैं : "विस्व-विग्रह" {वि॰50}, "बिस्वायतन" {वि॰54}, "व्याप्त" {वि॰203}, "व्यापक" {वि॰54}, "व्योम व्यापक" {वि॰53}, "सकल जगव्यापी" {वि॰117}, "आदिमध्यांत" {वि॰54}, "सर्ववासी" {वि॰55}, "सर्वगत सर्वदा बसत" {वि॰47}, "सब में बसै" {वि॰107}, "अन्निट निंडिन" {त्या॰34}, "अन्निटनेल कोन्न" {त्या॰351}, "चराचरम्मुल वसिइंचे" {त्या॰333} और "एंदुनिंडिचुंडे" {त्या॰291} ।

1.9.3. सच्चिदानंद :

सत्, चित् और आनंद ये तीनों तत्व ब्रह्म में ही स्थित मिलते हैं। जगत् केवल सत है और जीव में सत् और चित् दो तत्वों का समन्वय है, किंतु ब्रह्म में तीनों तत्वों का निवास है। तुलसी और त्यागराजु की कल्पना में राम "सच्चिदानंद" {वि.52; त्या.313}, "सच्चिदानंद घन" {वि.55; त्या.200} और "सच्चिदानंदस्वरूप" {वि.136;प्रभवि. पृ.38} ब्रह्म के रूप में भी आते हैं। तुलसीदास ने इनके अतिरिक्त राम को "सच्चिदानंद मूल" {वि.53}, "सच्चिदानंदकंद" {वि.43} और "सच्चिद व्यापकानंद" {वि.43} ब्रह्म भी कहा है।

सच्चिदानंद के स्थान पर "चिदानंद" {त्या.4} का प्रयोग भी त्यागराजु ने किया है। इसी प्रकार सत् और चित् का युग्म क भी मिलता है। "त्यागराज कीर्तनलु" में केवल चित् के आधार पर भी नाम संबोधन हुआ है : "चिन्मय" {त्या. 247}, "चैतन्य" {त्या.246}, "चिद्घन" {त्या.578}, "चिद्विलास" {त्या.513}, "चिदंबर" {त्या.486}। तुलसीदास ने केवल "सच्चिदानंद" शब्द का प्रयोग किया है जबकि त्यागराजु ने सत्-चित्, चिदानंद तथा, चित् शब्दों का प्रयोग करके ब्रह्म का बोध कराया है। किंतु तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही एक मत से ब्रह्म को आनंद रूप कहा है। केवल आनंदवाली शब्दावली इस प्रकार है : "आनंदघन" {वि.47 ; त्या.19 } और "आनंद कंद" {वि.64; त्या.312}। त्यागराजु ने कुछ अन्य शब्दों का प्रयोग भी किया है, जैसे :- "परानंद सिंधु" {त्या. 355}, "आनंद जलधि" {त्या. 447}, "परमानंद" {त्या.528}, {"वरानंद कंद" {त्या.380}, "आनंद हृदय" {त्या.391}, "सानंद" {त्या.1}, "परमानंद जलधि" {त्या.273}, "अपरि मितानंदबोध" {त्या.337}, "मन मोहनानंद" {त्या.153}, "जगदानंद" {त्या.1} और "ब्रह्मानंद सुखसागर" {त्या.456}। तुलसी के गीतों में भी कुछ विशिष्ट शब्द

मिलते है : "आनंद कंदाकर" §वि•51§, "आनदरासी" §वि•55§, "पूरनानंद संदोह" §वि•53§, "निजानंद" §वि•56§, "निर्भरानंद" §वि•56§, "आनंद-सुधा" §वि•152§, "आनंद भवन" §वि•207§ और "आनंद सिंधु" §वि•136§ ।

संभवत: आनंद के अर्थ में ही "सुख" शब्द का प्रयोग तुलसी ने किया है और इसके आधार पर भी राम के नामों की रचना हुई है : "सुख-रासि" §वि•14§, "सुख-भवन" §वि•46§, " सुख सदन" § गी•7/3§ "सुख-निधान" § वि• 203 §, " सुख-धाम" § वि• 141 §, "सकल - सुख-कंद" § वि•61 §, " सुख-सिंधु" § वि• 81 §, " सुख-सील" § वि• 77 §, " सूख हू को सुख " § वि• 176 § और " सकल सुख की सींव " § गी•1/27§

" मोद" शब्द का प्रयोग भी इसी अर्थ में दोनों कवियों ने किया है : " मोदमय " § वि• 135 §, " मोद कंद " § गी• 1/20 §, " मोद-मनि-खानी" § कृगी•49 §, " मोद-मंगल-मूल" § वि• 159§ और " अतिमोद युक्तुङ " § प्रभवि•पृ•19 § । " भद्र " का भी प्रयोग तुलसी में मिल जाता है : " भद्रसिंधु" § वि• 74 § और " सर्वतो-भद्र-निधि" § वि• 53 § ।

इस प्रकार के निरूपण से यह सिद्ध हो जाता है कि ब्रह्म की निर्विशेष अवस्था से दोनों ही कवियों की वृत्ति सविशेष की ओर चली है । औपनिषदिक संरचना से विधेयात्मक और गुणात्मक संरचना की ओर दोनों ही कवियों की प्रगति हुई । अंत में दोनों ही कवि " सच्चिदानंद " की स्थिति में पहुँच जाते हैं जहाँ अविश्लेष्य की आंतरिक अन्विति जागतिक संदर्भ में आकर विश्लेष्य बनती है । जब सच्चिदानंद की गुणत्रयी उपयुक्त संदर्भ पाने के लिए मचल उठती है तो विष्णु संदर्भ का अन्वेषण होता है ।

2 राम = विष्णु :

तुलसीदास और त्यागराजु दोनों कवियों की भक्ति-भावना का अवलंब विष्णु अथवा विष्णु का कोई अवतार रहा है । विष्णु की अपेक्षा विष्णु का अवतार रूप अधिक सक्रिय और सापेक्ष है, किंतु विष्णु और उनके अवतारों में भक्त-कवि अभेद मानकर ही चलता है । इसलिए विष्णु-नाम भी कविताओं में अवतार का समानार्थक होकर ही प्रयुक्त हुआ है । विष्णु के प्रसिद्ध नाम हैं : विष्णु, हरि, नारायण, केशव और श्रीरंग । तुलसी और त्यागराजु में इन नामों की आवृत्ति निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका से स्पष्ट हो जाती है :

नाम	तु॰ गी॰ का॰	त्या॰
विष्णु ~ विष्णो	5	4
हरि ~ हरे	132	189
नारायण	1	38
केशव	4	2
श्रीरंग	1	24

इस तालिका को देखने से स्पष्ट होता है कि प्रयोग संबंधी एक प्रवृत्ति दोनों कवियों में समान है । अर्थात् दोनों ने ही विष्णु के लिए " हरि " शब्द का सबसे अधिक प्रयोग किया है । हरि की एक व्युत्पत्ति यह है कि विष्णु पाप और दारिद्र्य का हरण करनेवाला है । इसी रूप पर दोनों का ध्यान अधिक केन्द्रित है । श्रीरंग * का प्रयोग त्यागराजु के पदों में ही अधिक है । इससे स्थानीय प्रभाव व्यक्त होता है । दक्षिण में कावेरी के तट पर श्रीरंगम् का मंदिर है, उत्तर में इस प्रकार का मंदिर नहीं है । फिर भी तुलसीदास जी इस नाम का ज्ञान रखते थे । [2]

---

* इस नाम के लिए त्यागराजु ने श्रीरंगपति [त्या॰99], वैभोग रंग [त्या॰519], रंगडु [त्या, 594], कावेटि रंगय्या [त्या॰143], श्रीरंग शायि [त्या॰126],कस्तूरिरंग[त्या॰440] और श्रीरंगनाथुडु[प्रभवि॰ पृ॰20] जैसे नामों का प्रयोग भी किया है ।

2 श्रीरंग [वि॰57]

केशव और नारायण नामों के अतिरिक्त त्यागराजु ने विष्णु के लिए चक्रि §प्रभवि, पृ.22§, गरूड़ध्वज §त्या.515§, शौरि §प्रभवि.पृ.14§ श्रीधर §प्रभवि.पृ.18§, नंदकधर §प्रभवि.पृ.10§, और वटपत्रशयन नामों का प्रयोग भी किया है तो तुलसी ने सुदरसन पानि §गी.6/9§, चक्रपानि §वि.57§ और सारंगपानि §गी.1/4§ नामों का प्रयोग किया है ।

2.1 आगम और विष्णु :

वैखानस और पांचरात्र-वैष्णवागम कहे जाते हैं । वैष्णवागमों में केन्द्रीय सत्ता विष्णु की है और चतुर्व्यूह उसी सत्ता से होता है । आगम का प्रचार मुख्यत: दक्षिण में रहा । इसलिए आगमपति विष्णु की कल्पना भी त्यागराजु ने की, तुलसी ने नहीं । आगम से संबंधित विष्णु नाम ये हैं - "आगम चर" §त्या.141§, "आगमातिचर" §त्या.95§, "आगममूल" §त्या.547§, "आगमसार" §त्या.200§, "आगमविनुत" §त्या.211§, "आगमांत विहारी" §प्रभवि.पृ.2§ ।

2.1.1 आगम निगम और विष्णु :

विष्णु की शुद्ध आगमीय स्थिति को त्यागराजु के द्वारा प्रयुक्त कुछ नाम चाहे व्यक्त करते हों, किंतु इतिहास के क्रम में विष्णु आगम-निगम दोनों से ही समन्वित हो गये । वैदिक देव के रूप में भी विष्णु की मान्यता रही और उसका विकास भी ~~नहीं~~ हुआ । आगमीय तत्व भी उसके साथ समन्वित होकर विष्णु की स्थिति को दार्शनिक व्यापकता प्रदान करते रहे । त्यागराजु के कुछ विष्णुनाम इसी ऐतिहासिक प्रतिनिधित्व का संकेत करते हैं । उदाहरण के लिये ये नाम लिये जा सकते हैं : "निगमागम संचार" §त्या.628§, "निगमागम विहार" §त्या.4§, "निगमागम चर" §त्या.161§, "आगम निगम-चयार्थमु नीवु" §त्या.258§ ।

तुलसी ने न तो विष्णु की आगम परक नाम संरचना को ही साध्य के विधान में स्थान दिया और न निगमागम पर आधारित संरचना को ।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि तुलसी की विचार-संरचना में आगम का स्थान नहीं था । "मानस" के आरंभ में ही तुलसी ने "नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् ·······" * की घोषणा की है । फिर भी शुद्ध आगम की स्थिति तुलसी की विचार संरचना में नहीं है । साध्य के वेद सम्मत रूप को ही लेकर गीतकार तुलसी चले हैं । उन्होंने विष्णु के लिए वेद पर आधारित नामों का प्रयोग अवश्य किया है : "श्रुतिमाध" {वि•55} तथा "वेद विख्यात" {वि•55} । पहले नाम के द्वारा वेद के मूल के रूप में विष्णु की मान्यता स्पष्ट होती है और दूसरे नाम के द्वारा यह ज्ञापित होता है कि वेद के वर्ण्य विषय में विष्णु ही है । "मानस" के मंगलाचरण में उन्होंने वेद की वंदना इस रूप में की है :-

> बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस ।
> जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबीर बिसद जसु ।।[2]

त्यागराजु ने भी विष्णु की निगमीय नाम रचना की है : /वेद सन्नुत/ "= वेद स्तुत्य" {त्या•273}, "श्रुतिमूल" {त्या•506}, "श्रुतिविनुत" {त्या•447}, "श्रुतिनिकर सदन" {त्या•607}, "निगम सारतर" {त्या•1} तथा "निगम नीरजामृत पोषक" {त्या•1} । इस सूची से यह प्रकट होता है कि {1} तुलसी और त्यागराजु दोनों की निगमीय नाम रचना की दृष्टि मूलतः समान है । {2} निगमीय नाम रचना की क्षिप्रता और दीर्घता भी तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु में अधिक है तथा {3} रचनागत विविधता भी तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु में अधिक है । आलंकारिक रचना में वेद की रक्षा और पुष्टि की लीला भी ध्वनित है ।

2•2 निवास स्थान :

पौराणिक दृष्टि से विष्णु के दो निवास स्थान है : वैकुंठ और क्षीरसागर ।

---

* मानस• बाल• श्लोक•7   2 मानस• बाल• 14/3

2.2.1. वैकुंठ :

तुलसी और त्यागराजु ने "वैकुंठ" * शब्द का प्रयोग किया है । इसके साथ ही तुलसी ने विष्णु को "वैकुंठ स्वामी" (वि.55) और "वैकुंठ मंदिर-विहारी" (वि.56) भी कहा है । त्यागराजु की पदावली में वैकुंठ में वास करनेवाले विष्णु का उल्लेख भी मिलता है : "वैकुंठ वासा" (प्रभवि. पृ.13) ।

2.2.2. क्षीरसागर :

तुलसी ने "क्षीराब्धिवासी" विष्णु (वि.57) तथा "क्षीरसागर अयन" (वि.55) का एक-एक बार प्रयोग किया है, किंतु त्यागराजु की वृत्ति क्षीरसागर निवासी विष्णु में अधिक रमी है । उन्होंने क्षीरसागर में विहार करनेवाले और क्षीरसागर में शयन करनेवाले विष्णु को याद किया - "क्षीरसागर विहारा" (त्या.628), "क्षीरसागर शयन" (त्या.629) । क्षीरसागर के स्थान पर केवल "सागर" * का प्रयोग भी किया गया है । सागर के अन्य पर्यायों का प्रयोग करके भी विष्णु के बहुव्रीही परक नामों की सृष्टि की गयी है,‡ जैसे - "जलेश शयन" और "अर्णव सदन" ।[2]

इस आवृत्ति को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि त्यागराजु की वृत्ति गुह्यीय वैकुंठ-लोक में अधिक न रमकर उसी क्षीरसागर में अधिक रमी है जिसके निवासी विष्णु ने गो-ब्राह्मण प्रतिपालन के लिए अवतार किया था ।

2.2.3. शेषशायी विष्णु :

विष्णु का शेषशायी रूप अत्यंत रूढ़ है । शेष के साथ विष्णु का संबंध पांचरात्र-कल्पना में भी है और पौराणिक-कल्पना में भी । शेष के साथ विष्णु का

---

* वि. 53/8, प्रभवि. पृ.14.
* त्या. 79/5   2 वही. 506/5, 353/2

सबसे लोकप्रिय संबंध यह है कि विष्णु शेष-शय्या पर शयन करते हैं । इसलिए अधिकांश नाम इसी संबंध के द्योतक हैं । तुलसी ने विष्णु के लिए "उरग नायक-शयन" (वि•57) का प्रयोग किया है । शेष को इस कल्पना में नागों का राजा माना गया है । त्यागराजु ने अनेक बार विष्णु का ध्यान इस रूप में किया है । शयन के साथ शेष के विविध नाम "त्यागराज कीर्तनलु" में मिलते हैं : नागराज शयन" (त्या•119), "अहिराज शयन" (त्या•563), "पन्नगाधिप शयन" (त्या•421), "फणिराज शयन" (त्या•482), "फणिपति-शायी" (त्या•361), "नागराट्चयन" (त्या•14) और "उरगराज शयन" (त्या•50) । इन सभी नामों में शेष को नागराज के रूप में देखा गया है ।

कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिन में सर्प के शुद्ध पर्यायों का प्रयोग हुआ है । अर्थात् जहाँ त्यागराजु ने नागों के राजा के रूप में नहीं देखा । इस प्रकार के नाम ये हैं : "भोगि शयन" (त्या•36), "भुजग शयन" (त्या•477), "पन्नगशायी" (प्रभवि•पृ•29), "शेषशायी" (त्या•116), "कुंडलि शयन" (त्या•631), "असुगाशन शयन" (त्या•49) और "मंदानिलभोज-शयन" (त्या•8) । तुलसी ने इस पद्धति के शब्दों का प्रयोग विष्णु के लिए नहीं किया ।

विष्णु क शेष की शय्या पर शयन ही नहीं करते अपितु शेष के द्वारा वे वंद्य भी हैं । अर्थात् शेषनाग उनके वंदन-कीर्तन में निरत रहता है । जैसे त्यागराजु का "नागाधिप विनुता" (त्या•412), शब्द शेष और विष्णु के इसी संबंध का द्योतक है ।

शेष को त्यागराजु ने ने भक्त के रूप में भी देखा । शेष के हृदय में विष्णु का उसी प्रकार निवास है जिस प्रकार सागर में कमल का निवास रहता है । इस भाव को प्रकट करनेवाला आलंकारिक नाम यह है : "नागराज हृदसागराब्ज" (त्या•412) ।

विष्णु के शेषपरक नामों को देखने से यह प्रतीत होता है कि तुलसी में

ये नाम नगण्य हैं, किंतु त्यागराजु की कल्पना में शेष और विष्णु का संबंध दृढ़ता से बिंबित है । विष्णु के श शय्या बनने के साथ-साथ त्यागराजु की कल्पना में शेष का भक्त रूप भी उभरता है ।

इस अन्तर का कारण यह हो सकता है कि दक्षिण भारत में रामानुज-संप्रदाय के मंदिरों में लक्ष्मी-नारायण-विग्रह ही प्रमुख है । इसलिए विष्णु के विस्तृत बिंब दक्षिण के साहित्य में उभरते रहे । त्यागराजु का साहित्य भी इसका अपवाद नहीं रहा । किंतु उत्तर भारत के राम-भक्ति-संप्रदायों में और उन संप्रदाय के मंदिरों में लक्ष्मीनारायण की इतनी प्रमुखता नहीं रही । इसलिए तुलसी के साहित्य में भी विष्णु संबंधी विस्तृत बिंब नहीं मिलते ।

2.3 विष्णु का रूप :

विष्णु के रूप पर ध्यान जाते ही उनकी नाभि से उत्पन्न कमल और उस पर स्थित ब्रह्मा पर सबसे पहले दृष्टि जाती है । कमल सृष्टि और उसके विकास का प्रतीक है । ब्रह्मा जो सकल सृष्टि के स्रष्टा है, उसका मूल भी विष्णु ही है । विष्णु के इस रूप पर दोनों की ही वृत्ति अधिक रमी है । तुलसीदास ने "कंज", "पाथोज" और "वनज" जैसे कमल के पर्यायों * के साथ - नाभ जोड़कर विष्णु वाची संज्ञाओं की रचना की । तुलसी के पर्यायों को आधार पर बने हुए नामों से पृथक त्यागराजु के द्वारा प्रयुक्त नाम हैं । त्यागराजु ने "पद्म", "सरसिज", "सरोज" और "अब्ज" जैसे पर्यायों [2] के आधार पर - नाभ जोड़कर नामों की संरचना की । इस प्रकार के पद्मनाथ की शैली के नामों की संख्या भी प्राय: दोनों में समान है : तुलसी = 3बार त्यागराजु = 4 बार ।

उनके वक्ष पर झूलती हुई वनमाला भी एक प्रमुख उपकरण है जिसके आधार पर उनको "वनमाली"[3] कहा जाता है ।

---

* वि॰ 53/7, ~~502~~ 50/2 और 54/6

2 त्या॰201/22, 237/3, 380/5 और 14/1

3 "मंदारमालोरधारी" (वि॰54) और "वनमाली" (त्या॰20/ ।

2.4 लक्ष्मी और विष्णु :

भक्ति की उपासना में इष्टदेव का युगल रूप सामान्य रूप से मान्य रहा । तुलसी और त्यागराजु दोनों ही अकेले विष्णु के प्रति भावुक नहीं हैं । उनके ध्यान में "लक्ष्मीपति" विष्णु का बिंब ही प्रमुख है । इसके अतिरिक्त भक्तों और लक्ष्मी का संबंध भी कुछ नामों से ज्ञापित होता है । तीसरे प्रकार के नाम लक्ष्मी की व्युत्पत्ति से भी संबंधित हैं । इन तीनों का ही प्रयोग आलोच्य कवियों ने किया है ।

2.4.1. पति-पत्नी संबंध :

दार्शनिक दृष्टि से विष्णु मूल तत्व है और लक्ष्मी उसकी नित्य शक्ति है । शक्ति और शक्तिवान का संबंध समस्त भक्ति-साहित्य और दर्शन में विवेचित है । सांख्य के पुरुष और प्रकृति संबंध का रूपायन भक्तों के उपास्य युगल इष्टों में दिखलाई पड़ता है । दिव्य युगल के संबंध को बतानेवाला प्रतीकात्मक संबंध पति-पत्नी का ही है । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने विष्णु और लक्ष्मी को पति-पत्नी के रूप में देखा । लक्ष्मी के जिन नामों के साथ दोनों कवियों ने "पति" शब्द का संयोग किया है वे ये हैं : श्री, रमा । "श्रीपति" शब्द तुलसी के गीतकाव्यों में चार बार * तथा "त्यागराज कीर्तनों" में चौदह बार[2] आया है । इससे यह प्रतीत होता है कि पति-पत्नी भाव त्यागराजु की वृत्तियों को अधिक आकर्षित करता है । "रमापति"[3] शब्द तुलसी और त्यागराजु दोनों में दो-दो बार आया है । यहाँ प्रवृत्ति की समानता दिखलाई पड़ती है ।

---

* वि. 98, 136, 168, गी. 1/16

2 त्या. 40, 63, 85, 142, 412, 446, 477, 481, 492, 509, 545, 550, 560 ; प्रभवि. पृ. 8

3 वि. 136, त्या.257

2•4•2• लक्ष्मीनाथ :

लक्ष्मी के नाथ के रूप में दोनों ही कवियों ने विष्णु को देखा है। त्यागराजु ने यदि श्रीनाथ (त्या•50) का प्रयोग किया है तो तुलसी ने "मानाथ" (वि•56) के रूप में विष्णु को देखा है।

2•4•3• वर-वधु :

वर-वधु के रूप में तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही विष्णु और लक्ष्मी को देखा है। "विनयपत्रिका" में विष्णु को "श्रीवर" (53) के रूप में तुलसी देखते हैं तो त्यागराजु "मावर" (त्या•129), "इंदिरावर" (प्रभवि•पृ•13) तथा "श्रीमद्रमावर" (त्या•569) के रूप में।

2•4•4• रमण-रमणी भाव :

विष्णु और लक्ष्मी के पति-पत्नी भाव से अधिक मृदुलता रमण-रमणी भाव में मिलती है। इस कल्पना में लक्ष्मी को रमणी और विष्णु को रमण कहा गया है। लक्ष्मी को रमणी के रूप में स्पष्ट कहा नहीं गया है, किंतु विष्णु रमण हैं तो लक्ष्मी को रमणी अनुमान करना तर्क पूर्ण होगा। तुलसी और त्यागराजु में समान रूप से तो श्री, कमला, रमा जैसे लक्ष्मीवाची शब्दों के साथ विष्णु का "रमण" वाची शब्द प्रयुक्त है। इनकी आवृत्ति की तुलना निम्न लिखित तालिका से देखी जा सकती है :

नाम	तु• गी• का•	त्या•
श्रीरमण	4	3
कमलारमण	1	1
रमारमण	2	7

इस तालिका में आवृत्तिगत अंतर नगण्य है और प्रवृत्तिगत साम्य स्पष्ट है। तुलसीदास जी ने केवल इन्हीं तीन नामों के साथ "रमण" शब्द का

प्रयोग किया है । क्योंकि उनकी मर्यादावाली मर्यादावाली दृष्टि लक्ष्मी और विष्णु को पति और पत्नी के रूप में देखने को ही श्रेयस्कर समझती है । रमण में जो सरसता है उसकी ओर त्यागराजु अधिक उन्मुख हैं । इसका प्रमाण यह है कि त्यागराजु ने लक्ष्मी के अन्य पर्यायों के साथ भी "रमण" शब्द का संयोग किया है और ये पर्यायवाची वैविध्य की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । "रमण" परक नाम जो तुलसी में नहीं और त्यागराजु में हैं, वे इस प्रकार हैं : "लक्ष्मीरमण" ﴾त्या॰22﴿, "इंदिरारमणुडु" ﴾त्या॰118﴿ और "मारमणुडु" ﴾त्या॰243﴿ । लक्ष्मी के नामों की व्युत्पत्ति परक सृष्टि करके भी त्यागराजु ने "रमण" का योग किया है । जैसे - "क्षीराब्धि कन्यका रमण" ﴾त्या॰544﴿ और "नीरनिधिजारमण" ﴾त्या॰1﴿ । इनके अतिरिक्त त्यागराजु ने लक्ष्मी के नाम की आलंकारिक रचना करके भी इसके साथ "रमण" का संयोग किया है : "मामुखाब्जदिनरमण" ﴾त्या॰595﴿ । "रमण" के साथ त्यागराजु के द्वारा संयुक्त लक्ष्मी के नामों का वैविध्य, उनकी जटिल रचना और अधिक संख्यक होना विष्णु के "रमण" रूप में त्यागराजु की वृत्ति के अधिक रमने के प्रमाण हैं ।

2•4•5• नायक-नायिका भाव :

तुलसी जैसे मर्यादा निष्ट-कवि विष्णु और लक्ष्मी पर नायक-नायिका भाव का आरोप नहीं कर सकते । इस काव्य-शास्त्रीय अध्यारोपण का उदाहरण त्यागराजु में मिल जाता है । त्यागराजु ने आगे लिखे हुए नामों में नायक का संयोग किया है : "श्रीनायक" ﴾प्रभवि॰ पृ॰25﴿ और "श्री सौंदर्य नायकोप" ﴾त्या॰262﴿ । इससे त्यागराजु के उपास्य के प्रति भावना-वैशिष्ट्य दिखलाई पड़ता है । नायक के आधार पर लक्ष्मी के नायिका-रूप को बस अनुमान किया जा सकता है ।

2•4•6• कांत-कांता भाव :

कांत-कांता भाव भी "त्यागराज संकीर्तनों" में प्रयुक्त विष्णु के कुछ

नामों में परिलक्षित होता है । तुलसी की गीत रचना में कांत-कांता संबंध का भी अभाव है । त्यागराजु ने विष्णु के लिए "श्रीकांत" §त्या•106§ का प्रयोग किया । इससे भी त्यागराजु की वैष्णव-भावना का वैशिष्ट्य सिद्ध होता है ।

2•5 भूपति :

पांचरात्र-साहित्य के अनुसार विष्णु की दो पत्नियां हैं - श्रीदेवी और भूदेवी । विष्णु का श्रीपति रूप परवर्ती साहित्य में बहुल लोक-प्रिय रहा । तुलसी और त्यागराजु दोनों में ही श्रीपरक विष्णु के नामों का बाहुल्य है । यद्यपि आवृत्ति की दृष्टि से भूपति विष्णु तुलसी और त्यागराजु दोनों के ही काव्य में अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं, फिर भी तुलसी ने विष्णु को "भूनाथ" §वि•55§ तथा त्यागराजु ने "वसुधामानसकाम" §त्या•10 अ§, "वसुधादिनाथ" §प्रभवि• पृ•18§, "पुडमि चेलि मगडु" §प्रभवि• पृ•20§ और पुडमिवरद §त्या•14 अ§ कहा है । इससे विष्णु की दूसरी प्रिया का भी अस्तित्व सिद्ध हो जाता है ।

2•6 गरूडगामी विष्णु :

विष्णु के बिंबों में शेषनाग के समान ही गरूड का स्थान है । यदि शेषनाग विष्णु की विश्राम मुद्रा से संबंधित है तो गरूड में विष्णु की गति का बिंब है । गरूड विष्णु का वहन करता है । श्री संप्रदाय के मंदिरों में विष्णु के अनेक वाहन रखे रहते हैं । इन सभी वाहनों में गरूड़ प्रमुख है । गरूड ही विष्णु को भक्तोद्धार के लिए ले जाता है और जिस प्रकार हनुमान राम का वाहन भी है और भक्त भी, इसी प्रकार गरूड़ विष्णु का भक्त भी है । श्री वेदांत देशिकाचारी ने तो गरूड संबंधी स्तोत्र भी लिखे हैं और सुना जाता है कि उन्होंने गरूड की सिद्धि भी की है । इस संप्रदाय की मान्यता का परिणाम यह हुआ कि दक्षिण भारत के साहित्य में गरूडगामी विष्णु का बिंब प्रमुख हो गया । प्रत्येक वैष्णव-मंदिर के सामने गरूड की मूर्ति प्रतिष्ठित

मिलती है । दक्षिण के मंदिरों के परकोटों पर भी चारों दिशाओं में गरूड की मूर्ति स्थापित मिलती है ।

त्यागराजु को गरूड़गामी विष्णु के बिंब दक्षिण की वैष्णव-परंपरा से प्राप्त हुए । वैसे तुलसी ने विष्णु के लिए "विहंगराजगामी" (वि॰55) "व्यालारिगामी" (वि॰54), "उरगारिपुगामी" (वि॰227), "उरगारियान" (वि॰61) आदि शब्द लिखे हैं और विष्णु को "खगपति नाथ" (वि॰42) भी कहा है; किंतु त्यागराजु में गरूड़ के जितने अधिक पर्यायों और जितने अधिक वैविध्यों का प्रयोग हुआ है उतना तुलसी के गीत साहित्य में नहीं । कुछ नामों में गरूडवाची शब्द के साथ "गमन" शब्द जोड़कर विष्णुवाची नाम बनाया गया है । जैसे - "गरूडगमन" (त्या॰174), "विनतासुत गमन" (त्या॰599) और "नागाशन सदागमन" (त्या॰49) । कुछ शब्द गरूड वाचक शब्द के साथ "वाहन" जोड़कर कर दिये गये हैं - "विराज वाहन" (त्या॰119) "अंडज सुवाहन" (त्या॰631), "विवाहनुडु" (त्या॰ 96), "वाताशनारि-वरवाहन" (त्या॰601), "विनतासुतवाहन" (त्या॰517) एवं "वरभक्तसुपर्णवाहन" (त्या॰393) । तीसरी पद्धति यह है : गरूड + तुरग, जैसे - "विहगराजतुरग" (त्या;562), "विराज तुरग" (त्या॰3) तथा "नागारितुरग" (त्या॰343) । गरूड के साथ "रथ" शब्द भी संयोग हुआ है, जैसे - "नागारि रथ" (त्या॰412) । "तुरग" और "रथ" दोनों शब्दों का प्रयोग भी किया गया है, जैसे - "गरदाशन तुरग रथ" (त्या॰503) । साथ ही त्यागराजु ने गरूड को विष्णु का चरणानुरागी भी कहा है - "नागारिनुत चरण" (त्या॰343)। यह भावना तुलसीदास में नहीं मिलती । इस प्रकार तुलसी के गीत काव्यों में विष्णु के गरूडपरक नामों की आवृत्ति भी कम है और उन नामों का वैविध्य भी कम है । तुलसी की गीत रचना में गरूड परक विष्णु नाम केवल छः बार आये हैं जबकि "त्यागराज कीर्तनलु" में इनकी आवृत्ति बत्तीस है ।

2.7 उद्धार कर्त्ता विष्णु :

विष्णु के द्वारा गज का उद्धार किया गया था । गजेन्द्रमोक्ष का प्रसंग पोतना के "आंध्र महाभागवत" में बहुत प्रमुख है । वैसे इस प्रसंग का संकेत उत्तर और दक्षिण दोनों के भक्त कवियों के विनय-साहित्य में मिलता है । तुलसी ने दो बार विष्णु को "पील उद्धरन" (वि.248) और "गजराज-उधारन" (गी.1/9) शब्दों का प्रयोग किया है । अर्थात् इसकी आवृत्ति में तुलसी की वृत्ति नहीं रमी है । "पील" शब्द फारसी (फील) का है । त्यागराजु ने इस संदर्भ से प्राप्त विष्णु वरद की आवृत्ति बाईस बार की है । साथ ही गज के विविध पर्यायों का प्रयोग भी किया है । विष्णु गजराज के रक्षक हैं : "गजराज रक्षक" (त्या.16), "वारण रक्षक" (त्या.561), "रक्षित नाग" (त्या.356) और "वारणावन" (त्या.की.432) । विष्णु गजराज-पालन करनेवाले भी हैं : "इभपालक" (त्या.336), "गजेन्द्रपाल" (त्या.446) और "वरवेदंड पालु" (त्या.372) । विष्णु गजेन्द्र को शरण भी देते हैं : "मत्त वारण शरण" (प्रभवि. पृ.29) और "वरवारण शरण" (त्या.171) । विष्णु को, गजेंद्र को वर देनेवाला भी बतलाया गया है : "करि वरद" (त्या.12), "सामजवरद" (प्रभवि. पृ.10), "वरनागवरद" (त्या.95), "गजवरदुडु" (प्रभवि. पृ.29), "इभराजवरद" (त्या.119) और "वरगजराजादि भक्तवरदुडु" (त्या.8अ) । साथ ही गजराज को विष्णु की स्तुति करनेवाला और उनकी वंदना करनेवाला बतलाया गया है : "स्तुतिगजराज" (त्या.447), "इभराजवंदन" (त्या.482) ।

उद्धृत भक्तों में दूसरा स्थान प्रह्लाद का है । त्यागराजु ने चार बार "प्रह्लादहित" (त्या. 139) का प्रयोग किया है तथा तुलसी ने एक बार "प्रह्लाद-अह्लाद-कर्त्ता" (वि.52) कहा है ।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि गजेन्द्र मोक्ष के संदर्भ में घटित विष्णु नाम की आवृत्ति त्यागराजु में बहुत अधिक है । तुलसी में यह नाम

मात्र औपचारिक रूप से आया है ।

2.8 विष्णु के अवतार :

विष्णु के अवतारों की संख्या के संबंध में कई रूढ़ियाँ हैं । कहीं उनकी दशावतार की चर्चा की गयी है और कहीं चौबीस की । कुछ अन्य संख्यायें भी मिलती हैं, किंतु दशावतार रूढ़ि सबसे प्रमुख है । जयदेव ने अष्टपदी में दशावतार का परिगणन किया है । * तुलसी ने एक पद में दशावतार की गणना की है ।[2] इसी प्रकार त्यागराजु ने भी अपने एक कीर्तन में दशावतार की सूची दी है ।[3] अंतर केवल इतना है कि त्यागराजु ने "हलधर" को जोड़कर अवतारों की संख्या ग्यारह कर दी । इन अवतारों में से दोनों ही कवियों ने अपने इष्टदेव के रूप में रामावतार को चुना ।

2.9. रामावतार :

जगत के उद्धार के लिए विष्णु ने नराकार राम का रूप धारण किया । तुलसी ने राम को "नरदेह-धारी" तथा "नररूप-धर" कहा है ।[4] अर्थात् विष्णु का मानव रूप भक्त-कवि की वृत्तियों को आकर्षित करता है । त्यागराजु ने अठारह बार इसी रूप में राम का ध्यान किया है । तुलसी की अपेक्षा इस नाम की रचना भी त्यागराजु में अधिक वैविध्य पूर्ण है : "नरोत्तमा", "नरवर", "नरवेष", "नररूप", "दिव्य नरापधन" आदि शब्द "त्यागराज-कीर्तनलु" में मिलते हैं ।[5] कुछ मानव वाची शब्दों के साथ त्यागराजु ने अवतार शब्द का भी प्रयोग किया है,* जैसे - "मनुषावतार", "मानवावतारुडु", "मनुजावतार" ।[6] इस प्रकार राम का मानव रूप दोनों कवियों के ध्यान केन्द्र में है । त्यागराजु में आवृत्तिगत महत्ता सिद्ध है ।

---

*

2 वि. 52

3 त्या. 239

4 वि. 43, 52

5 त्या. 27, 107, 506, 211, 286, 409

6 वही. 367, 292, 424

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विष्णु की आगमीय और निगमीय रूपाकृति दोनों कवियों के गीत काव्य में प्रतिष्ठित है । यद्यपि तुलसी ने स्पष्ट रूप से विष्णु को आगमपति नहीं कहा, दोनों ही कवियों में विष्णु की आगमीय और निगमीय कल्पना इस प्रकार घुलमिल गयी है कि इनको अलग से रेखांकित करना सम्भव नहीं है । विष्णु की यही धूप-छाँही संरचना दोनों कवियों के गीत काव्य में दिखलाई पड़ती है । यद्यपि विष्णु की आगमीय कल्पना दक्षिण के मंदिरों में और श्रीसंप्रदाय में ज्यों की त्यों भी स्वीकृत हुई है तथापि साध्य की समग्र कल्पना विष्णु के अवतारों में ही उभर सकी । दोनों ही कवि विष्णु के अवतारों की तात्त्विक अभेदता मानते हैं । फिर भी उनका अभीष्ट रामावतार बन जाता है । आगे के पृष्ठों में साध्य के लिए प्रयुक्त विविध नाम संरचनाओं का विवेचन किया गया है ।

3. नाम संरचना :

तुलसी ने "नाम रूप दुइ ईस अपाधी" * कह कर यह ज्ञापित किया है कि ब्रह्म जब जीवंत संदर्भों में अवरोहण करता है तब उसे नाम और रूप की संरचना में आना पड़ता है । भक्ति-साहित्य के प्रायः सभी कवियों ने नाम निरूपण किया है । निर्गुण-सगुण दोनों ही धाराओं में नाम-साधना समान रूप से मान्य रही । "मानस" के आरंभ में तुलसी ने नाम को राम से भी बढ़कर माना है ।[2] भक्ति क्षेत्र में प्रचलित संकीर्तन पद्धति में भी नाम संकीर्तन का महत्त्वपूर्ण स्थान है । डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी ने कहा है - "कीर्तन भी नाम, लीला, रूप और धाम - सब का किया जाता है, फिर भी, नाम के अतिरिक्त अन्य तत्वों के कीर्तन के लिए विशेष श्रवण, स्मरण एवं अध्ययन की

---

* मानस. बाल. 21/1

2 ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि ।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि ।।

— वही. बाल. 25

अपेक्षा है और नाम-कीर्तन में यह सब कुछ भी प्रपंच नहीं है । यही कारण है कि नाम कीर्तन ही अधिकाधिक जीवों के उद्धार के अनुरूप पड़ता है ।" *

तुलसी और त्यागराजु दोनों के ही गेय काव्य संकीर्तन पद्धति का है । संकीर्तन के सभी तत्व इन दोनों के प्रगीतों में मिल जाते हैं । अंतर केवल इतना है कि तुलसी का संकीर्तन-काव्य नाम और गुण की संरचनाओं में होता हुआ लीलातत्व को अधिक विस्तार देता है और त्यागराजु के संकीर्तन में नाम और गुण का प्राधान्य हो जाता है । प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत दोनों के संकीर्तन में प्राप्त नाम संरचना पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है ।

3.1. रामनाम :

भक्ति-संप्रदायों में इष्ट या साध्य के नाम का बहुत महत्व है । नाम-साधना से संबंधित विष्णु-सहस्र-नाम, गोपाल-सहस्र-नाम, जैसे साहित्य की परंपरा चलती रही । इष्ट के नामकरण का एक सामान्य स्तर है जहाँ **प्रकृतनाम** ही प्रयुक्त होता है । तुलसी और त्यागराजु के साध्य का प्रकृतनाम "राम" है । तुलसी ने अपने गीत काव्यों में 455 बार और त्यागराजु ने अपने कीर्तनों में 714 बार केवल रामनाम का प्रयोग किया है । इस का बृहत्तर रूप "रामचन्द्र" है जिसका त्यागराजु ने 49 बार और तुलसी ने केवल 11 बार प्रयोग किया है । अन्य रूप "रामभद्र" और "रामराय" है जिनकी गणना में बहुत अन्तर नहीं है । राम और रामचन्द्र की आवृत्तियों में जो अन्तर है, उससे किसी प्रवृत्ति का स्पष्टीकरण नहीं होता । केवल यह कहा जा सकता है कि नादोपासना में रत त्यागराजु नाम-जप में विशेष समर्पित थे ।

नाम का दूसरा स्तर व्युत्पन्न नामों का है । ये नाम वंश, जन्मस्थल, पारिवारिक संबंध तथा अन्य संबंधों के आधार पर व्युत्पन्न होते हैं और व्यक्ति

---

* आगम और तुलसी, पृ. 44

का विशद परिचय देते हैं । इन नामों में सगुण राम का रूप स्पष्ट होता चलता है । जब निर्गुण-ब्रह्म सगुण बनता है तो वह पहले नाम ही धारण करता है । इनका अध्ययन आगे किया जा रहा है ।

3.1.1. स्थल परक नाम रचना :

यह पीछे देखा जा चुका है कि दोनों ही कवियों ने नररूपधारी राम को साध्य बनाया है । राम ने नर रूप से अवध में जन्म लिया । तुलसी ने स्थानीय संदर्भ के अनुसार अवध और कोसल शब्दों के साथ पति, राजा, राय, इन्द्र, अधीस, पाल, नाथ और धनी शब्द* जोड़कर राम की नाम-कल्पना की है । संभवत: अवध और कोसल नाम ऐतिहासिक युग के हैं । पौराणिक दृष्टि से साकेत शब्द ही राम के स्थानीय संदर्भ में आता है । त्यागराजु ने साकेत के आधार पर स्थल-संदर्भीय नाम-कल्पना की है । उनके राम साकेत धाम में निवास करते हैं - "साकेतवास"[2] ﴾त्या.319﴿ । उनकी दृष्टि में पहले राम साकेत के राजकुमार हैं - "साकेत राजकुमार" ﴾त्या.403﴿ । दूसरी दृष्टि में राम का साकेत विहार स्थल है - "साकेतपुर विहार" ﴾त्या.466﴿ । साकेत के साथ पति, अधिपा, ईस, राजा और नाथ जोड़कर राजाराम की उन्होंने कल्पना की है ।[3]

तुलना की दृष्टि से तुलसी ने जहाँ अवध और कोसल के स्थानीय संदर्भ लिये हैं, वहाँ त्यागराजु ने इन दोनों को छोड़कर साकेत का स्थानीय संदर्भ ग्रहण किया है । यह अन्तर स्थानीय है । कोसल और अवध उत्तर भारतीय राम-कथा के साथ लगे हैं । पौराणिक साकेत अन्य क्षेत्रों में अधिक जाना-माना है । दूसरा अन्तर यह है कि तुलसी की दृष्टि में केवल अवध के राजाराम हैं, इसके विपरीत त्यागराजु उनको सामान्य अवधवासी के रूप में भी देखते हैं ।

---

* गी. 7/21, वि. 139, 220, 46, 43, 163, 210, 271

2 "वास" के लिए "धाम" ﴾त्या.10﴿, "सदन" ﴾त्या.243﴿, "निकेतन" ﴾त्या.537﴿, "निलय" ﴾त्या.570﴿ और आगार ﴾त्या.484﴿, शब्द भी संलग्न किये गये हैं ।

3 त्या. 93, 339, 411, 347, 486

दोनों की दृष्टि में एक और अन्तर मिलता है । तुलसी ने चित्रकूट-गिरिकानन-विहार करते हुए बनवासी राम का भी स्मरण किया है : "पुन्य कानन-बिहारी" {वि॰43}, "अरन्यबासी" {वि॰56} । त्यागराजु की कल्पना में यह बिंब नहीं उतरा है ।

3•1•2 वंश परक नाम रचना :

3•1•21• सूर्यवंशीय राम :

भारत के दो प्रमुख राजवंश – सूर्यवंश और चन्द्र वंश – हैं । राम ने सूर्यवंश में जन्म लिया । तुलसी ने वंश संदर्भ में सूर्य के केवल तीन पर्यायों का प्रयोग किया है *–भानु, रवि और दिनकर जबकि त्यागराजु ने इस संदर्भ में सूर्य के सत्ताईस पर्यायों का प्रयोग किया है[2]– दिनकर, रवि, पूषा, गगनाधिपा, तरणि, भास्कर, सूर्य, आदित्य, द्योत, दिनमणि, विभाकर, मित्र, विरोचन, भानु, दिननाथ, जगत्साक्षी, द्युमनि, नभोमणि, दिनान्वय, इनः । इनके साथ सूर्य के कमल पर आधारित पर्यायों का प्रयोग भी किया गया है – अब्जहित, कंजातबंधु, पंकजाप्त, जलजाप्त, कमलाप्त, सारसहित, नीरजाप्त । इस अंतर के दो आधार हो सकते हैं । एक तो यह कि तुलसी की अपेक्षा नाम प्रयोग में त्यागराजु की दृष्टि अधिक चमत्कार पूर्ण रही । दूसरा यह कि सूर्यकुल के राम के अधिक बिंब त्यागराजु की कल्पना में उतरे हैं । भानु वंश पर आधारित नामों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – सामान्य और आलंकारिक । तुलसी के गीतकाव्यों में सामान्य नाम नहीं प्रयुक्त हुए हैं । त्यागराजु ने भानु वंश में जन्म लेने वाले राम को सामान्य रूप से भी देखा है । जैसे – "कंजाप्त बंधु कुलजात" {त्या॰483}, "अब्जहित कुलजात" {त्या॰484}, "गगनाधिप सत्कुलज" {त्या॰1}, "तरणिकुल संजात" {त्या॰4} । इस कुल के

---

* वि॰ 50, 237, गी॰1/69

2 त्या॰ 385, 421, 506, 1, 432, 548, 482, 343, 58, 238, 219, 281, 548, 328, 314, 591, 185, 89, 408, 214, 318, 483, 363, 202, 138, 548, 303

उत्तम पुरुष के रूप में भी राम को देखा गया है । जैसे - " इनकुलोत्तमा (त्या.214), "आदित्य कुलोत्तमा" (त्या.343) । इसके साथ राम को सूर्यकुल के पति के रूप में भी त्यागराजु ने देखा है । जैसे - "इनकुलपति" (त्या.105), "इनकुलाधिपा" (त्या.6), "पंकजाप्त कुलपति" (त्या० 363) "विरोचन कुलेश्वर" (त्या.548), "मित्र कुलेश" (त्या.281) ।

आलंकारिक नामों को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : लघु रचना और दीर्घ रचना । लघु रचना की तुलनात्मक सूची इस प्रकार है -

	नाम			तु.गी.का.	त्या.
1	भानुकुल केतु *			2	-
2	सूर्य का पर्याय	+	भूषण [2]	1	5
3	"	+	तिलक [3]	-	18
4	"	+	चंदन [4]	-	2
5	"	+	दिया [5]	1	-

इस सूची से स्पष्ट होता है कि नाम के वैविध्य में त्यागराजु ने तुलसी की अपेक्षा अधिक रुचि ली । आलंकारिक बड़ी रचना में पहले सूर्य वंशको उपमित किया गया है और फिर उस उपमान के आधार पर एक और उपमान

---

* वि. 25 , रविकुल रवि. मी. 1/104

2 त्या. जलजाप्रकुलभूषण (264), दिननाथान्वय भूषण (314), दिनकर कुल भूषण (385), वरपूषवंश भूषण (506), तरनिवंश भूषण (432) । तु. - दिनकर कुल मनि (गी. 2/16)

3 त्या. - इन वंश तिलक (304),जल जाप्त कुलवर तिलक (286) दिनमणि वंश तिलक (238), भानुकुल तिलक (328) खद्योतान्वय तिलक (125), आदित्य कुल तिलक (27), तरजिवंश वर तिलक (20)

4 त्या. - सूर्यकुल चंदन (482), इनकुल चंदन (112) ।

5 तु.- दिनकर बंस - दिया (गी.1/68)

जोड़कर नाम व्युत्पन्न किया गया है । इस रचना की तुलनात्मक तालिका इस प्रकारइ है -

नाम			तु॰गी॰का॰	त्या॰
1	सूर्य का पर्याय (वंश)	= कमल → सूर्य *	4	-
2	"	= कुमुद → चन्द्र [2]	2	‡
3	"	= समुद्र → चन्द्र [3]	-	11
4	"	= पर्वत → दीप [4]	-	‡
5	"	= कमल → भ्रमर [5]	-	1

अलंकार की दीर्घ रचना परक सूर्य-वंशीय राम के नामों का वैविध्य त्यागराजु में ही अधिक है। इसमें भी त्यागरजु की चमत्कार दृष्टि प्रमाणित होती है । तुलसी में नाम-चमत्कार पर इतना अधिकार नहीं है ।

---

* भानुकुल-कमल-रवि (वि॰50), भानुकुल-कमल कानन-बिकासी (वि॰44), भानुकुल-कमल-भानु(गी॰1/89)

2 रविकुल-कैरव-चन्द (वि॰152), कुल-कुमद-चन्द (गी॰1/20)

3 इनकुलाब्धि चन्द्र (त्या॰66), अब्ज हितान्वय शशांक (त्या॰318), कमलाप्रकुल कलशवार्दिचंद्र (त्या॰ 138), श्रीमदिनान्वय सागर चन्द्र (त्या॰408), चंड भास्कर कुलाब्धि चन्द्र (त्या॰419), विभाकर हृज्जलेश हरिणांक (त्या॰219)

4 भास्कर-कुलाद्रिदीप (त्या॰ 548)

5 सारसहित कुलाब्ज भृंग (त्या॰548)

3.1.22 रघुवंशीय राम :

मानव रूप से विष्णु ने रघुवंश में जन्म लिया । त्यागराजु ने " रघुराम " (त्या.128) कहकर वंश और व्यक्ति के नाम का संयोग किया । तुलसी में इस प्रकृति का नाम नहीं है । त्यागराजु ने उनको " रघूत्तमा " (त्या.127) भी कहा है और तुलसी में इस नामका भी अभाव है । तुलसी और त्यागराजु ने सामान्य रूप से नंदन, वीर, वर और नायक वाची प्रत्यय लगाकर बनाये हुए नामों का प्रयोग किया है । इनकी तुलनात्मक सूची इस प्रकार है :

नाम	तु.गी.का.	त्या.
रघु * + नंदन	6	7
रघु + वीर	5	1
रघु + राज[2]	106	53
रघु + वर~वर्य	12	14
राघव	10	39
	139	114

इस तालिका से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रघुवंशी राम का बिंब दोनों में प्राय: समान है । " राघव" संस्कृत शैली का शब्द है जिस की आवृत्ति त्यागराजु में बहुत अधिक है । " राज " के "राउ", "राई" और "राय" तद्भव रूप प्राय: हिन्दी की प्रकृति के हैं । इसलिए त्यागराजु में इनका अभाव है । त्यागराजु में संस्कृत प्रकृति का "रघुकुलेश" नाम है जो तुलसी में नहीं है । त्यागराजु की दृष्टि में राम रघुकुल के

---

* रघु, रघुवंश और रघुकुल ये तीन नाम मिलते हैं ।

2 "राज" के स्थान पर नायक, पति, नाथ, राउ, राई, राय, ईश, जैसे शब्द भी संयुक्त हुए हैं ।

उद्धारक भी है -- " रघुकुलोद्धारक " ॥ त्या॰458॥, " रघुवंशोद्धारक" ॥त्या॰451॥ । राम का यह उद्धारक रूप तुलसी की कल्पना में बिंबित नहीं हुआ ।

इन सामान्य रूपों के अतिरिक्त " रघु " पर आधारित अलंकृत नाम भी दोनों कवियों की रचनाओं में मिलते हैं । इनकी तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है :

नाम	तु॰गी॰का॰	त्या॰
रघुकुल तिलक *	3	9
रघुकुल कुल केहरि [2]	1	-
रघुकुल भूषण[3]	4	-
रघुबंस-कुमुद [4]	1	-
रघुबंस-मनि [5]	6	-
रघुकुल रत्नमु [6]	-	1
राघवान्वय-सुप्रदीप [7]	-	1
	15	11

यहाँ त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी की अलंकार-प्रियता और चमत्कार दृष्टि अधिक बढ़ी हुई है । तुलसी ने नामों की बड़ी आलंकारिक रचना का भी प्रयोग किया है । जैसे - " रघुबंस-कुमुद-निसेस " ॥वि॰64॥, "रघुकुल-कुमुद-सुखद चारु चंद " ॥गी॰1/31॥ । इस प्रकार की दीर्घ-रचना त्यागराजु ने "रघुकुलाब्धि सोम" ॥त्या॰464॥ लिखकर दिखलाई है ।

---

* गी॰5/8 ; प्र॰वि॰पृ॰1   2 गी॰ 1/9   3 वि॰144

4 वही॰ 64   5 गी॰ 1/37   6 त्या॰260

7 वही॰ 1

3.1.3. राम नाम संरचना -संबंध संदर्भ

3.1.3.1 पारिवारिक संबंध

राम के नामों में पिता, माता, पत्नी, पुत्र , भाई, सास और ससुर के संबंध भी द्योतित किये गये । दोनों कवियों में यह अंतर है कि तुलसी ने नाम के साथ सास और ससुर के संदर्भ नहीं जोडे, किंतु त्यागराजु ने इनके आधार पर नामों की व्युत्पत्ति की । जैसे : " जनक जामात " ‖ त्या.16‖ और " धर जामात" = पृथ्वी के जामात ‖ त्या.484‖ । तुलसी ने केवल पितृ-परिवार के संबंधों के आधार पर रामनाम रचना की है ।

3.1.3.11 दशरथ-सुत :

दशरथ के आधार पर दोनों ही कवियों की कृतियों में राम के नाम व्युत्पन्न मिलते हैं । तुलसी ने दशरथ के अन्य पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग नहीं किया, किंतु त्यागराजु ने दशरथ के लिए " पंक्ति-रथ राज" ‖ त्या.458‖ और "रघुवर" ‖ त्या.95‖ जैसे पर्यायों को लिया है । इसके अतिरिक्त "पुत्र" के भी पर्यायवाची शब्द तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु में ही अधिक है । त्यागराजु में पुत्र के पर्यायवाची शब्द ये आये हैं : " तनय" ‖ त्या.475‖, "आत्मज" ‖प्रभवि.पृ.10‖ "कुमार"‖त्या.95‖, "तनूज" ‖ त्या.343‖, " अर्भक" ‖ त्या.435‖ । इनके अतिरिक्त पुत्र का तेलुगु पर्याय शब्द " कोडुकु" ‖ त्या.450‖ भी प्रयुक्त हुआ है । तुलसी में इसकी तुलना करते हुए यह कहा जा सकता है कि हिन्दी की प्रकृति के अनुसार " दसरत्थ के " ‖ वि.44‖ और "दसरत्थराज के" = दशरथ के पुत्र ‖ वि.219‖ नाम आये हैं । संस्कृत शैली का " दाशरथि" ‖वि.38, त्या.89‖ दोनों ही कवियों में मिलता है । तुलसी और त्यागराजु ने दशरथ के लिए जातिवाचक शब्द राजा या उसके पर्यायों का प्रयोग भी

किया है । तुलसी और त्यागराजु ने दशरथ या राजा के आधार पर राम के जिन नामों का प्रयोग किया है । उनकी संख्या इस प्रकार है : तुलसी= 31; त्यागराजु = 54 । इससे केवल यही सिद्ध होता है कि राम का राजकुमार रूप त्यागराजु की दृष्टि में प्रमुख है । तुलसी की दृष्टि में इस नाम का बिंब तो है, किंतु त्यागराजु की तुलना में कुछ धुंधला-सा ही है ।

त्यागराजु ने " जनकवचन परिपाल" ﴾ त्या• 14 ﴿ अर्थात् पिता के वचनों का पालन करनेवाले राम का भी याद किया है । इसी प्रकार तुलसी ने " गुरू-मातु-पितु-बंधु-वचनानुसारी " ﴾ वि•43 ﴿ नाम से राम को संबोधित किया है । इन नामों से गुरू जनों के प्रति राम की मर्यदा और भक्ति व्यंजित होती है ।

3•1•3•12 कौसल्या सुत :

तुलसी ने अपने गीत-काव्यों में कौसल्या का संदर्भ देकर राम का नाम नहीं लिया, जबकि त्यागराजु ने मातृ संबंध को स्पष्ट करते हुए राम को " कौसल्या सुपुत्र" ﴾ त्या• 138 ﴿ कहा है ।

3•1•3 13 सीतापति :

सीता के पति राम या सीताराम युग्म दोनों ही कवियों का उपास्य है । सीता के पर्यायों के तीन भाग हो सकते हैं : जनक संदर्भीय नाम, जननी ﴾ भूमि ﴿ संदर्भीय नाम तथा स्थान संबंधीय नाम । इन पर्यायों में से केवल स्थानवाचक " - वैदर्भिभर्त्ता" ﴾ वि•57 ﴿ केवल तुलसी की गीत-रचना में प्रयुक्त हुआ है, त्यागराजु में नहीं । शेष पर्याय समान हैं । जनक पर आधारित नामों में जानकी ﴾ वि•39, त्या•564 ﴿, "जनक सुता" ﴾ वि•45 ﴿ त्या•264 ﴿ और " वैदेही" ﴾ वि•44, त्या•453 ﴿ शब्द दोनों ही कवियों ने दिये हैं । संस्कृत शैली का " जनकजा" ﴾ त्या• 628 ﴿ केवल त्यागराजु में मिलता है । यहाँ अंतर नगण्य है ।

भूमि पर आधारित नामों में केवल " भूमिजा" §वि•39§ तुलसी में मिलता है, जबकि त्यागराजु ने " भूजा" §त्या•375§, "अवनिजा § त्या•431§, "अवनिसुता" § त्या•456§, "धरसुता" §प्रभवि•पृ•21§, पुडामिसुता § त्या•253§, " महिजा" § प्रभवि•पृ•8§, "क्ष्मासुता" § प्रभवि•पृ•27§ जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया है । इनमें से संस्कृत शैली के पर्याय त्यागराजु के चमत्कार पांडित्य से जुडे जा सकते हैं । " पुडमिसुता" तेलुगु पर्याय है जो स्थानीय अंतर है । इन पर्यायों की आवृत्ति संबंधी तालिका यह है :

पर्याय	तु• गी•का•	त्या•
जनक पर आधारित पर्याय	27	26
भूमिपर आधारित पर्याय	24	69
स्थान पर आधारित पर्याय	1	-
	52	95

इस तालिका के आधार पर ये निष्कर्ष दिये जा सकते हैं :

1 रामनाम का सीता संदर्भ त्यागराजु में तुलसी की अपेक्षा अधिक है ।

2 जनक संबंधी पर्यायों के प्रयोग में तुलसी और त्यागराजु का अंतर अधिक नहीं है ।

3 भूमि पर आधारित और सीतानाम त्यागराजु में ही अधिक हैं । भावना की दृष्टि से त्यागराजु का भाव केन्द्र आवृत्ति के आधार निश्चित है । अर्थात उनके भावाकाश में सीता संदर्भीय राम ही अधिक जगमगा रहा है । तुलसी ने सीता परक नामों की आवृत्ति कम की, किंतु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसी की भावना में सीता संबंधी बिंब दुर्बल है । क्यों कि "विनय-पत्रिका" को अपनी संस्तुति के साथ राम के सामने प्रस्तुति करने की प्रार्थना सीता से ही की गयी है --

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ ।
मेरिओ सुधि द्याइबी, कछु करून-कथा चलाइ ।।
§ पद• 41 §

इसके आधार पर भावना का अंतर निर्धारि करना उचित नहीं प्रतीत होता । केवल यही सिद्ध होता है कि आकस्मिक रूप से तुलसी में सीतापरक नामों की आवृत्ति कम है ।

सीता के पर्यायों के साथ " पति" के पर्याय ये प्रयुक्त हुए है :

पति के पर्याय	तु•गी•का•	त्या•
1 नाथ §वि•254, त्या•292§	10	2
2 पति~पा~प §गी•5/28, त्या•12§	12	26
3 रमण § वि•25, प्रभवि•पृ•31§	6	11
4 ईस §वि•74, प्रभवि•पृ•27§	2	1
5 वर § वि•205, त्या•424§	2	5
6 जानि § वि•39, त्या•564 §	1	1
7 नाह § वि• 23 §	1	-
8 भर्त्ता § वि•44 §	3	-
9 दूलह § गी•186 §	4	-
10 पीय ~ पी §गी•2/13§	5	-
11 वल्लभ § त्या• 380§	-	1
12 अधिप § प्रभ वि•पृ•8 §	-	1
13 नायक § त्या•38 §	-	8
14 कांत § त्या• 375 §	-	2
15 लोल § त्या• 31 §	-	3
16 मनोहर §प्रभवि• पृ•1§	-	2
17 समेत § प्रभवि•पृ•39§	-	1

इस तालिका के निष्कर्ष इस प्रकार है :

§1§ आरंभ के छः नाम दोनों कवियों में समान है और इनमें सीता के पति का भाव ही विशेष रूप से निहित है ।

§2§ केवल तुलसी में " दूलह" शब्द उत्तर भारत का स्थानीय शब्द है । "नाह" शब्द हिन्दी की शैली का तदभव शब्द है । यह तेलुगु में प्रयुक्त नहीं होता । इसलिए यह अंतर भी स्थानीय है । " भर्त्ता " का प्रयोग तुलसी में विशिष्ट है जो तेलुगु में होते हुए त्यागराजु की नाम-कल्पना में नहीं आया ।

§3§ अंतिम सात शब्द केवल त्यागराजु में आये हैं जिनमें पति-भाव की अपेक्षा प्रेमी-भाव अधिक व्यंजित है । वैसे अन्यत्र तुलसी-साहित्य में ये नाम प्रयुक्त हैं ।

§4§ त्यागराजु का पर्याय चमत्कार इस सूची में भी कुछ दृष्टिगोचर होता है ।

त्यागराजु का अलंकार चमत्कार इस प्रकार के नामों के साथ भी दिखलाई पडता है । उदाहरण के लिए त्यागराजु के द्वारा प्रयुक्त ये नाम दिये जा सकते हैं : "जनकजा-श्रृंगार जलज-भृंग" §त्या• 628§, "सीतारमणि हृत्सदन" §त्या• 132§, "सीताहृज्जलधि-सोम" §त्या• 552§ और "सीता हृत्कमल खद्योत" §त्या• 484§ । इस प्रकार के आलंकारिक नाम तुलसी की गीत रचनाओं में नहीं मिलते ।

स्थानीय तेलुगु-शैली के नाम भी "त्यागराज कीर्तनलु" में मिलते हैं । जैसे : "वैदेही भाग्यमा" §त्या• 453§, "जनकजा भाग्यमा" §त्या• 14§ और "सीता भागदेया" §त्या• 548§ । एक स्थान पर राम को "पुडमिसुत सहायुडु" §त्या•की• 253§ भी कहा गया है । यहाँ भी अंतर स्थानीय कहा जाएगा ।

3•1•3•3• सीताराम युगल :

तुलसी के गीत काव्यों में सीताराम युगल का बिंब "त्यागराज कीर्तनलु" की तुलना में कम ही उभरा है । आवृत्ति की दृष्टि से त्यागराजु

ने 43 बार युगल* का उल्लेख किया है जब कि तुलसी में युगल नाम[2] केवल 18 बार आये हैं । युगलनाम में एक और अंतर प्रतीत होता है । त्यागराजु ने युगलनाम में पहले केवल सीता का नाम लिया है और बाद में राम का, किंतु तुलसी ने दस बार राम का नाम भी युगल में पहले दिया है ।

3.1.3 14 पिता राम :

तुलसी ने लव-कुश के पिता के रूप में राम को नामांकित नहीं किया । लव और कुश का प्रसंग "रामचरितमानस" में भी नहीं आया है, किंतु त्यागराजु ने राम को "कुशलव जनक" (त्या.407) तथा "कुशलवांतर-हित" (त्या.506) के रूप में स्मरण किया है । राम कथा का यह बिंदु तुलसी की भाव परिधि के बाहर ही है ।

प्रतीकात्मक रूप में राम को तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही जनक या पिता के रूप में देखा । दोनों ने ही राम को "गंग-जनक" (वि.218, त्या.3) और "मंदाकिनी-जनक" (वि.54) (त्या.8(अ) कहा । इसी प्रतीकात्मक प्रविधि को बढ़ाते हुए त्यागराजु ने राम को "ब्रह्माजनक" कहा है और "काम जनक" भी । बिंब को और भी दृश्य करते हुए उन्होंने ब्रह्मा के विविध पर्यायों का भी प्रयोग किया है । जैसे : "अजजनक" (त्या. 95), "राजीवासन जनक" (त्या.46), "चतुर्मुख जनक" (त्या.141), "विधात जनक" (त्या.486), "वागीन्द्र जनक" (त्या.1), "वारिजसंभवतात" (त्या.10) । तेलुगु शैली की नाम-रचना भी की गयी है : "बोम्मदेवरतंड्रि" (त्या.16) । इसी प्रकार विविध पर्यायों के माध्यम से काम जनक राम को भी महत्वपूर्ण बनाया है : "शंबर वैरि-जनक" (त्या.7), "कायज जनक" (त्या.56), "कंदर्प जनक" (त्या.121), "पंचशर-जनक" (त्या.273), "मदन जनक" (त्या.309), "भावज जनक" (त्या.317), "रतिराज-जनक" (त्या. 86), "वलराज-जनक" (त्या.की.565), "कुसुम बाण जनक" (त्या.24), "मरुनि जनकुडु" (त्या.231) और "कम्मविल्तुनितंड्रि" (त्या.22) । तुलसी में राम के प्रतीकात्मक जनकत्व का विस्तार नहीं मिलता ।

* सीताराम (त्या.34); सीताराघव (त्या.265); जनकसुताराम (त्या.562) ।

2. सीताराम (वि.100); सीय-राम (गी.1/70); सिय-रघुबर (गी.2/11); राम-सीय (वि.104); राम-वैदेही (वि.174); राम-सीता (गी.7/18) ।

3•1•3 15 भ्राता राम :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने लक्ष्मण-भ्राता के रूप में राम को देखा है । तुलसी ने "सौमित्ति-भ्राता" (वि•50), "सौमित्र-बंधु" (गी•5/17), "अंभोदनादहन-बंधो" (वि•56) और "सौमित्र-साक" (वि•51) के रूप में राम को देखा ही है, तीनों अन्य भाइयों के साथ भी राम को देखा है - "भरत-सौमित्र-सत्रुघ्न सेवित" (वि•44),। त्यागराजु ने लक्ष्मण की कूट रचना करके राम के नाम की रचना की है -

" सुरेशारि जीवापहर-वर सोदर" (त्या•350)

और "सीतानुजवर सहित" (त्या•312) ।

3•1•3 2 देव संबंध :

देवों के साथ राम के विविध संबंध बतलाकर दोनों कवियों ने राम के विभूति-पक्ष को विशद बनाया है । देवताओं में ब्रह्मा, शिव, गणेश, इन्द्र, कुबेर आदि प्रमुख हैं । इनके साथ सामान्य रूप से भी सुर संबंध स्थापित किया गया है ।

3•1•3 21 सेवक-सेव्य :

राम को विविध देवों के स्वामी के रूप में भी देखा गया है । अर्थात् राम देवताओं के भी सेव्य हैं । तुलसी ने ब्रह्मा, शिव, सिद्ध और अन्य देवताओं के द्वारा राम को सेवित कहा : "विधि-वेद-बुध-संभु-सेवित" (वि•60), "सेवत-पद-पंकज अज-महेस" (वि•64), "सिद्ध-सुर-सेव्य" (वि•50), सकल-सुर-सेवित" (वि•77) । त्यागराजु एक स्थान पर "दिक्पाल सेव्य" (त्या•550) लिखा है । इससे यह आभास मिलता है कि देवताओं और राम के बीच सेवक-सेव्य संबंध तुलसी के गीत काव्यों में अधिक स्पष्ट है, त्यागराजु में उतना नहीं ।

3•1•3 22 पूजक-पूज्य :

राम और देवताओं के बीच पूज्य-पूजक संबंध भी कुछ नामों से प्रकट होता है । यह संबंध केवल "त्यागराजु कीर्तनों" में मिलता है । यह संबंध प्रतीक ये नाम हैं - "राजराज पूजित" = कुबेर सेपूजित §त्या•506§, "सुरपूजित" § त्या•500§ और " सुरपूजितपद" §त्या•555§ ।

3•1•3 23 वंदक-वंद्य :

तुलसी ने इस संबंध की व्यंजना "कामारि वंदित" §वि•54§, " भव वंद्य" § वि•56§ , " केस-वंदित" = शिव और ब्रह्मा द्वारा वंदित § वि•46§ नामों के द्वारा की है । त्यागराजु ने भी " रमापति वंद्य" § त्या•590§ का प्रयोग किया है । यह एक विलक्षण प्रयोग है जिस में राम को विष्णु वंद्य कहा गया है । निश्चित रूप से यहाउनकी कल्पना में ब्रह्म राम है जो त्रिदेव वंदित है । " अज वंदन" § त्या•249§, "अजवंदित" §त्या•604§, " वागधिप वंद्य" § त्या•40§,"राजराज वंदित" §त्या•481§, " शचीरमण वंद्य" §त्या•307§ आदि शब्द भी वंदक-वंद्य संबध की व्यंजना के रूप में त्यागराजु में आये है ।

3•1•3 24 स्तोता-स्तुत्य :

त्यागराजु ने इस संबंध के आधार पर राम के विशेषणपरक नाम बनाये है । ब्रह्मा के अनेक पर्यायों * के साथ नुता, विनुता,सन्नुता या

---

* अज §त्या•55§, धाता §त्या•185§, वागीश §त्या•249§ अब्जभव § त्या•381§, पंकज भव §त्या•432§, कमल संभव§त्या•377§ राजीवभव § त्या•579§, विधाता § त्या•483§, विधि§त्या•312§, कमलासन § त्या• 411§, सरसिजभव § त्या•343§ और जलजोद्भव § त्या•421§

स्तुता शब्द जोड़कर नामों की रचना की गयी है । इसी प्रकार शिव के अनेक पर्यायों * के साथ नुता, विनुता या सन्नुता जोड़कर इस संबंध की व्यंजना की गयी है । राम " अंतक स्तुत" § त्या•506§ भी है । इसी प्रकार गणेश के विविध पर्यायों [2] के साथ इन्हीं शब्दों का प्रयोग करके नाम-रचना की गयी है । एक स्थान पर उन्होंने राम को " दनद नुता" धनदनुत § त्या•141§, " राजराजनुता" § त्या•3§, भी कहा है । इसी प्रकार " सुरनुता" §त्या•433§ और " अमर विनुता" §त्या•171§ कहकर सामान्य रूप से राम को सभी देवताओं के द्वारा स्तुत्य कहा है । देवताओं के स्वामी इन्द्र के पर्यायों [3] के साथ भी नुता का प्रयोग करके राम के नाम संपन्न किये गये हैं ।

तुलसी के गीत काव्यों में इस प्रकार के देव संबंधी -नाम राम के लिए नहीं मिलते ।

---

* नटराज § त्या•260§, काशीश § त्या• 36§, उमावर § त्या•129§, पुररिपु § त्या• 14§, अंतक § त्या•506§, गिरीश § त्या.403§, कपालि§ त्या•380§, राजधर § त्या•95§, भव § त्या•377§, वृषभराजपा § त्या•119§, शशिधर§ त्या•435§, कमलाहितधर §त्या•355§ कामवैरि §त्या•481§, पुर दहन § त्या•503§, शूलधर §त्या•358§ भावजारी § त्या•478§, राजशेखर § त्या•86§, भूतेश § त्या•564§, पराशर § त्या•237§, परमेश §त्या• 4 अ §, भावज दमन §त्या•562§, शंकर § त्या•294§, भीम §त्या•481§, पुरारि§ त्या•562§, मार-मार §त्या•561§, बाल शशांक कलालंकृत § त्या:94§,अगराजात्मजपति§त्या•200§ तारकासुर वैरि §त्या•355§

2 विनायक §त्या•562§, गजमुख §त्या•361§ ।

3 अमरेन्द्र§त्या•154§, वृत्रारि §त्या•281§, सुरराजा§त्या•447§,सुरपति §त्या•239§, पाकारि §त्या•540§ और संक्रंदन §त्या•294§

3.1.3 25 रक्षित - रक्षक :

त्यागराजु ने राम को " अज रक्षक " ‖ त्या.284 ‖ कहा है। तुलसी में इस संबंध का अभाव है ।

3.1.3 26 मित्र संबंध :

त्यागराजु ने राम को " कामारि-मित्र " ‖त्या.138‖, शंकर सखा" ‖ त्या.562‖, "सुरपति मित्र" ‖त्या.211‖ और "दनदपति सखा" ‖त्या.418‖ के रूप में भी देखा है । मित्र संबंध केवल शिव, इन्द्र,और कुबेर के साथ जोडा गया है । तुलसी में इस संबंध का भी अभाव है ।

3.1.3 27 पालित-पालक :

त्यागराजु ने ही " अजमुख पालन " ‖ त्या.200‖,"गणपति हृदयागार पालन " ‖त्या.343‖, "सुरपाल" ‖ त्या.16, "सुरपालक" ‖ त्या.318‖, " अमर पाल" ‖ त्या.432‖ जैसे नामों का प्रयोग किया है।

3.1.3 28 देव प्रिय :

यह नाम दोनों हीकवियों में मिल जाता है । तुलसी ने शिव के विभिन्न पर्यायों * के साथ " प्रिय" शब्द जोड़कर राम का बोध कराया है । इसी प्रकार त्यागराजु ने भी शिव के पर्यायों [2] के साथ " प्रिय " शब्द जोडा है ।

3.1.3 29 रंजित-रंजक :

यह संबंध तुलसी के गीत काव्यों में ही मिलता है । तुलसी ने

---

* कामारि ‖ वि.50‖, अनंग अरि ‖ वि.218‖ ।

2 सदाशिव ‖ त्या.599 ‖, दक्षशिक्षक ‖ त्या. 506‖, शंकर ‖ त्या.406 ‖, कामारि शेखर ‖ त्या. 411 ‖

" कामारि अभिरामकारी " §वि•प•55§, "शंकर-सेष-मुनि-मनरंजन" §वि•प•45 §, " सुररंजन " §वि• प• 64§ आदि नामों का प्रयोग करके राम के रंजक रूप को स्पष्ट किया है ।

3•1•3 2।0 आलंकारिक नाम :

त्यागराजु ने देव संबंधी रामनाम की आलंकारिक रचना भी की है : "भावजारि-भावसदन" §त्या•202§, "नीलगल हृदालय"§त्या•506§, "पाललोचन हृदालय" §त्या•478§, "मनसिज वैरि मानस सदन" §त्या•23§, "भवसारस भव मानस भवन" §त्या•171§, "त्यागराज हृदाब्ज सुभृंग" §त्या•86§ और "शक्तितनय हृदालय" §त्या•408§ ।

तुलसी में भी इस प्रकार के आलंकारिक नाम मिलते हैं : "मारारिपु-हृदय-मानस-मराल" §वि•51§, "सिव-सनेह-मानस-मरालु" §वि•154§ और "मदन-रिपु-कंज-हृदि-चंचरीक" §वि•46§ ।

उपर्युक्त देव-संबंध वाची राम के नाम दोनों ही कवियों ने दिये हैं । त्यागराजु ने विशेषता स्तोता और स्तुत्य को दी है । इसका कारण यह है कि त्यागराजु का भाव-संबंध स्तुतियों से ही था । शेष नामों की प्रवृत्ति लगभग समान है । त्यागराजु का पर्याय चमत्कार तुलसी की अपेक्षा इस स्तर पर भी बहुत अधिक है ।

3•1•3 3 ऋषि-मुनि संबंध :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने राम को ऋषि-मुनि, योगी, सिद्ध से संबंधित करके उनकी नाम-कल्पना की । कभी-कभी शुक, नारद, सनक सनंदन, तुंबुर, कौशिक जैसे व्यक्ति वाचक नाम भी इस रचना में आये हैं । तुलसी और त्यागराजु दोनों ही राम को मुनिवंद्य * के रूप में देखा है,

* वि• 218, त्या• 421

किंतु त्यागराजु ने वंदित शब्द के स्थान पर अधिकांश नुता*, स्तोमा,[2] गेया[3] शब्दों का प्रयोग किया है ।

इस संबंध का कुछ विस्तार त्यागराजु में अधिक मिलता है । जहाँ तुलसी ने केवल एक स्थान पर मारकण्डेय[4] व्यक्ति वाचक नाम प्रयुक्त किया वहाँ त्यागराजु ने कौशिक,[5] नारद,[6] सनक,[7] सनंदन,[8] शुक[9] जैसे कई व्यक्तिवाचक नाम इस संरचना में लाये हैं । जहाँ तुलसी के राम मात्र मुनिवंद्य हैं वहाँ त्यागराजु के राम ऋषियों के मित्र[10] भी हैं, परिवार[11] भी हैं, संरक्षक,[12] भावनीय,[13] ध्येय[14] आदि भी हैं । इस तुलना से प्रतीत होता है कि त्यागराजु के राम का मुनियों से बहुविधि संबंध है ।

त्यागराजु ने मुनि संदर्भीय आलंकारिक नाम भी प्रयुक्त किये हैं : "मुनि मनोसदन" {त्या.534}, "योगि हृदालय" {प्रभवि. पृ.18}, "मुनि हृदयाब्ज भृंग" {त्या.478} । मुनि संदर्भीय आलंकारिक नाम रचना में तुलसी ने केवल एक नाम प्रयुक्त किया है - "मुनि-लोचन-चकोर ससि राघव" {गी.2/21} । इन आलंकारिक नामों से भी त्यागराजु के बिंब-विधान में ऋषि और राम का संबंध अधिक विशिष्ट है ।

3.1.3 4 पार्षद और भक्त संबंध :

3.1.3 41 हनुमत्संबंध :

हनुमान राम के प्रमुख पार्षद और सेवक है । वैष्णव भक्ति के आचार में हनुमान का वही स्थान है जो विष्णु की भक्ति में गरुड का है । तुलसी ने अपने

---

* मुनिनुता {त्या.420}, योगिनुता {त्या.36}
2 सन्मुनि स्तोमा {त्या.298}
3 मुनिग्रेया {त्या.470}, मुनिजन गेयुडु {त्या.483}
4 मारकण्डेय मुनिवर्यहित {वि.60}
5 कौसिक मित्र {त्या.411}
6 नारद सन्नुता {प्रभवि.पृ.18}
7 सनकनुता {त्या.141}
8 सनंदन नुता {त्या.506}
9 शुक नुताय {त्या.259}
10 कौशिक मित्र {त्या.411}
11 मुनिजन परिवार {त्या.408}
12 गादियाग संरक्षक {त्या.1}
13 सनक भावनीय {त्या.125}
14 मौनिध्येय {प्रभवि. पृ.6}

गीत काव्यों में हनुमान से संबंध रखनेवाला राम नाम केवल एक ही प्रयुक्त किया है - "हनुमंत-प्रेम-वापी-मराल" {वि• 64} । त्यागराजु ने हनुमान नाम ही नहीं लिया, किंतु उनके अनेक पर्याय वाची शब्द भी दिये - "पवनसुत" {त्या•377}, "पवनज" {त्या•4}, "पवनतनय" {त्या•414}, "अनिल सुत" {त्या•548}, "समीर तनय" {त्या•141}, "वातात्मज" {त्या•380}, "गतिज" {त्या•36} - ये नाम पवन पर आधारित है । "अक्षर हरण" कहकर हनुमान का दानव दमन रूप भी कल्पित किया गया है - अक्षर राक्षस का दमन करनेवाले {त्या•506} । इन पर्यायों के साथ "प्रिय", "हित", "पक्ष", "सेवित", "स्तुतिपात्र" और "आप्त" शब्दों का प्रयोग करके राम के नाम व्युत्पन्न किये गये हैं ॥

यहाँ भी त्यागराजु की नाम वैविध्यपरक रूचि अधिक प्रकट होती है । वैसे तुलसी ने अपने गीत काव्यों में हनुमान के संकेत त्यागराजु से अधिक दिये हैं ।

3•1•3 42 विभीषण-हित :

त्यागराजु ने राम को "विभीषण सन्नुत" {त्या•281} कहकर राम को विभीषण के द्वारा स्तुत्य माना है, किंतु तुलसी की दृष्टि में विभीषण के उद्धारक राम ही प्रमुख है - "विभीषण हितु" {वि•153} तथा "नमत-पद-रावनानुज-निवाजा" {वि•43} ।

3•1•3 43 अहल्या-उद्धारक :

अहल्या-कथा भी राम-कथा के साथ अनुस्यूत है । इस कथा-सूत्र पर आधारित राम के नाम तुलसी ने छः बार लिये हैं - "साप बस-मुनि-बधू-मुक्तकृत" {वि•50}, "साप बस-मुनिबधू पापहारी" {वि•43}, "मुनिबधू उधारन" {वि•206}, "मुनितिय-तारी" {गी•1/83}, "गौतम की तियतारी" {गी•1/74} और "मुनिबधू उधारी" {गी•1/63} । त्यागराजु ने पाँच बार इस प्रकार के नाम लिये हैं - "पादविजित-मुनि-तरुणी शाप" {त्या 209}, "निर्जित-मुनिशाप" {त्या•299}, "पदनिर्जित-मुनि शाप" {त्या•492},

" जित गौतम-कृत शाप " § त्या.465 § और " पाद विजत मुनि शाप § त्या.। § । अहल्या के संबंध में दोनों कवियों की वृत्ति समान है ।

3.1.3 44 जटायु- मोक्षदाता :

गीध या जटायु को तुलसी ने " गीद गति दायक " §गी.5/29§, " गृध्र-भक्ति-बिबस" §वि.43§ तथा " गीध-स्राध के " § वि.179§ जैसे नामों में स्थान दिया है । त्यागराजु ने " वर जटायु मोक्ष-फलद" § त्या.4§ कहकर जटायु वाची नाम व्युत्पन्न किया है ।

3.1.3 45 केवल तुलसी द्वारा प्रयुक्त नाम :

पार्षद और प्रसिद्ध भक्तों को दृष्टि में रखकर तुलसी ने राम के कुछ ऐसे नाम बनाये है जो त्यागराजु में नहीं है ।

§क§ सुग्रीव-मित्र :

सुग्रीव-राम मैत्री, राम-कथा का एक प्रमुख अभिप्राय है । तुलसी ने " सुग्रीव के संकट-हरता" § वि.152§, " सुहृद-सुग्रीव-दुःख- रासि भंग " § वि.50§ और " समन सोक कपिराज के " § गी.5/29§ कहकर इस अभिप्राय से राम को नामांकित किया ।

§ख§ केवट-मीत :

इस नाम का प्रयोग तुलसी ने एक बार किया है - " केवट मीत" § वि.164§ । केवट-प्रसंग भी तुलसी के कृतित्व का बहुत मार्मिक प्रसंग है । सम्भवतः इस में बहुत कुछ तुलसी की कल्पना का ही फल है ।

§ग§ शबरी सुखद :

तुलसी ने राम को " सबरी सुखद " § गी.5/29§, और

"सबरी-भक्ति-बिबस" ३ वि.43३ कहा है । शबरी की भक्ति भी तुलसी-रामायण का एक प्रमुख प्रसंग है ।

3*.1.3 46 केवल त्यागराजु के द्वारा प्रयुक्त नाम :

त्यागराजु ने राम के लिए यमलार्जुन और अक्रूर पर आधारित कृष्ण-नामों का प्रयोग किया है - " साल विदलन " ३ त्या.249३ तथा "अक्रूर वरद" ३ त्या.14३ । तुलसी में ये नाम नहीं मिलते ।

3.1.3 5 शत्रु-संबंध :

राम के अवतार धारण करने का एक प्रमुख कारण असुर विनाश है । अर्थात असुरों के साथ शत्रु-संबंध है ।

3.1.3 51 रावणारी :

यह तो राम अवतार का प्रमुख उद्देश्य ही था । तुलसी और त्यागराजु दोनों में रावण के दो पर्याय समान रूप से नाम-रचना में प्रयुक्त हुए हैं - रावण तथा दशकंठ । इनके अतिरिक्त त्यागराजु ने लंकेश, सुरवैरी, शक्रारि, वासवरिपु जैसे पर्यायों का और प्रयोग किया है । इनके साथ तुलसी ने "अरि" -- रावणारी ३ वि.55३, "रिपु" - रावण रिपु ३ वि.130३, "हतो" -- हतो सीस दस ३ वि.204३, तथा "दलन" - दलन दससीस ३ वि.50३ जोड़कर राम के नामों की रचना की । त्यागराजु की रचना कुछ भिन्न है। उन्होंने " शोषक" - दोषरावणु मद शोषक ३ त्या.93३, "पाटित" - पाटित लंकेश ३ त्या.312३, "मर्दन" - दशमुख मर्दन ३त्या.239३ तथा " भंग" - सुर वैरिराज भंग ३ त्या.406३ जोड़कर नामों की रचना की । त्यागराजु ने और अधिक लंबी-रचना मेघनाथ के आधार पर की है - " शक्रारि जनक संहरण " ३ त्या.355३ तथा " वासव रिपु जनकांतक" ३ त्या.1३ । तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु ने पर्याय और रचना के वैविध्य का यहाँ भी परिचय दिया ।

3.1.3 52 बालि-घालक :

तुलसी ने बालि पर आधारित राम के नाम की दीर्घ रचना की -- " बालि-बल सालि-बध" §वि.43§, "बालि-बल-मत्तगजराज इव केसरी" §वि.50§ । बालि जैसे सामान्य नाम को छोड़कर त्यागराजु ने उसकी कूट-शैली के पर्यायों का प्रयोग किया है - " ताराधीश दमन " §त्या.343§ तथा " शचीपति सुत मद हर " § त्या.1 §

3.1.3 53 अन्य राक्षस : व्यक्तिवाचक संज्ञा पर आधारित नाम :

अन्य व्यक्तिवाचक राक्षसों में खर, दूषण, मारीच, सुबाहु, विराध, त्रिशिर हैं । इनकी तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है :

नाम	तु.गी.का	त्या.
खर *	3	3
दूषण 2	3	1
मारीच 3	1	-
सुबाहु 4	-	2

इस तालिका में तुलसी और त्यागराजु की स्थिति प्रायः समान है । इन नामों के अतिरिक्त कुछ राक्षस समूह भी नाम-रचना में आये हैं : जैसे तुलसी - " संग्रामजित खर दूषन " § वि.45§, " खर-त्रिसिर-दूषन-चतुर्दस सहज-सुभट-मारीच-संहार कर्ता " § वि.43§ तथा त्यागराजु - " खर, विराध, रावण विद्रावण " § त्या.1§

---

* खरारी § वि.55, त्या.62§

2 दूषनारी §वि.55§, दुसह-दुख-दूषन-हरन § वि.64§, दूषणहर § त्या.281§

3 हरन मारीच माया कुरंग § वि.50§

4 सुबाहुवैरी § त्या.25§ शरजित दानव सुबाहवे § त्या.259§

3.1.3 54 राक्षस: जातिवाचक संज्ञा पर आधारित नाम

~~राम~~

उपर व्यक्तिवाची राक्षसों के संदर्भ में राम के व्युत्पन्न नामों पर विचार किया गया । कुछ नाम राक्षस के जातिवाचक संज्ञाओं पर आधारित है ।

राक्षसों के पर्याय की कई पौराणिक दिशायें है । जैसे - दनु > दनुज, दानव । * यह पर्याय दोनों कवियों में समान रूप से मिलते है । दिति > दैत्य । यह शब्द केवल त्यागराजु ने प्रयुक्त किया है -- " दितिज मद दमन " ॥ त्या.607॥ । रात या अंधेरे पर आधारित : जैसे - राक्षस, निशाचर ।[2] सुर संदर्भीय राक्षसों के पर्याय ये है -- बिबुधारि, सुररिपु, असुर~आशर । इनमें से केवल पहला तुलसी में मिलता है,[3] शेष केवल त्यागराजु में मिलते है ।[4] वन पर आधारित : त्यागराजु ने राक्षसों को " कातार चर " भी लिखा है ।[5]

राक्षसों के पर्यायों के साथ अन्य शत्रुवाची शब्द जोडकर दोनों कवियों ने राम की नाम-रचना की है । इस संरचना में दोनों में समान रूप से मिलनेवाला शब्द है : "-अरि" । [6] तुलसी ने कुछ ऐसे शब्द भी दिये है जो त्यागराज में नहीं है : " - निकंदन " ॥ वि.45॥, " - सूदन" ॥ वि.56॥ इसी प्रकार त्यागराजु ने भी ऐसे शब्द जोडे है जो तुलसी में नहीं है : " - विदारण " ॥ त्या.97 ॥, " - हरण " ॥त्या.239॥

---

* दनुजारि ॥ वि.93, प्रभवि.पृ.42॥, दानव-दैत्य-बंस-निकंदन॥वि.45॥, दानवमर्दन ॥ त्या.234॥

2 ~~इनका~~ राक्षस गणमद शिक्षक ॥ त्या.562॥; निशाचर हरण ॥त्या.200॥

3 दुष्ट-बिबुधारि-संघात - अपहरन ॥ वि.50॥

4 सुररिपु भीम ॥ त्या.247॥, असुर मद हरण ॥ त्या.141

5 कातार-चर-मद-विदार ॥ त्या.303॥ ।

6 दनुजारि ॥ वि.93, प्रभवि. पृ.42॥

"-अंतक" § त्या.412§, " - दमन" § त्या.60§, " - नाशा " § त्या.503 §, " - शिक्षक " = दंड देनेवाला § त्या.562§, " - संहार " § त्या.95§, " - मर्दन" §त्या.534§, " - भीम" § त्या.482§ । इस प्रकार इस स्तर पर भी त्यागराजु का रचनापरक वैविध्य तुलसी की अपेक्षा अधिक दिखलाई पड़ता है ।

राक्षस पर आधारित आलंकारिक नाम केवल तुलसी में मिलते हैं - " दनुजेस-वन-दहन-पादक " § वि.61§, " दनुज-वन-दहन" § वि.49§ और " जातुधान-प्रचुर-मत्तकरि-केसरी " §वि.56§ ।

राक्षसों के अतिरिक्त राम-विरोधी शक्तियों में समुद्र आता है । इसके आधार पर त्यागराजु ने ये शब्द बनाये हैं - " सागर-मद-दमन" § त्या.343§, " शरधि-मद-हरण" § त्या.345§ तथा शरधि-मद -विदार" § त्या.532§ । तुलसी में ये शब्द नहीं है ।

3.2. कृष्ण नाम :

तुलसीदास और त्यागराजु दोनों के इष्टदेव राम हैं । फिर भी विष्णु के दशावतारों के प्रति भी उनमें विश्वास है । संरचना की दृष्टि से राम और कृष्ण के नामों की भिन्नता इन दोनों कवियों के दृष्टि-कोणों को स्पष्ट कर देती है । जैसा कि पहले देखा जा चुका है, राम को दोनों ही कवियों ने ब्रह्म के रूप में भी देखा और परविष्णु के रूप में । किंतु कृष्ण के लिए इन दोनों कवियों ने ब्रह्मपरक विशेषणों और नामोंका प्रयोग नहीं किया है और शुद्ध विष्णु वाचक नामों का भी अभाव है ।

3.2.1. वंश परक नाम रचना

3.2.11. यदु/वृष्णि वंश के द्योतक नाम रचना :

ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्ण का संबंध यदुकुल से था । दोनों ही

कवियों ने इस वंश से संबंधित नामों का प्रयोग किया है । इन नामों की संरचना इस प्रकार है :

				तु.गी.का	त्या.
यदु ~ जदु*	+ नाथ	=	जदुनाथ [2]	✓	x
	+ पति	=	जदुपति [3]	✓	x
	+ राय	=	जदुराई [4]	✓	x
	+ वीर	=	यदुवीर [5]	x	✓
	+ नंदन	=	यदुनंदन [6]	x	✓
यादव ~ जादव	+ राय	=	जादवराइ [7]	✓	x
	+ बाल	=	यादवबाल [8]	x	✓
	+ कुल+ ज	=	यादव कुलज [9]	x	✓

ऊपर की तालिका से यह स्पष्ट होता है कि तुलसी की नाम संरचना राजा रूप कृष्ण की ओर झुकी हुई है । अर्थात् यदुकुल के स्वामी या यदुकुल में उत्पन्न होकर राजा के रूप में अभिषिक्त कृष्ण का बिंब तुलसी की रचना में है । इसके विपरीत त्यागराजु की दृष्टि में उस वंश में उत्पन्न होने का अर्थ देनेवाली संरचना है । एक समान प्रवृत्ति यह है कि दोनों ही कवियों की दृष्टि में यदुवंश से संबंधित कृष्ण की नाम-संरचना मुख्य है । क्षिप्रता की दृष्टि से तुलसी में यदुमूलक संरचना पाँच बार[10] आयी है और त्यागराजु में सात बार ।[11]

---

* त्यागराजु के पदों में यह विकास " जदु" की प्रवृत्ति नहीं मिलती, किंतु तुलसीदास में ब्रज शैली की " जदु" मिलती है । इसलिए यदु~जदु है ।

2 कृगी.50 3 वही.22 4 वही. 1

5 त्या.99 6 वही.173 7 वि.214

8 त्या.632 9 वही.543 10 वि.214, कृगी.1,22,50,51

11 त्या.99,173,180,543,546,588,632

तुलसी के द्वारा प्रयुक्त एक नाम की संरचना वृष्णि जाति या कुल के आधार पर भी हुई है - " वृष्णि-कुल-कुमुद-राकेस " ﴾ वि.52﴿ । वृष्णिकुल भी यादवों से भिन्न नहीं था ।

यदु या यादव परक संरचना का एक संकेत और है । यदुवीर कृष्ण और ब्रज कृष्ण ऐतिहासिक दृष्टि से, व्यक्तित्व की दृष्टि से और भाव-साधना की दृष्टि से परस्पर विषम है । जहाँ सूर आदि कृष्ण भक्तों की दृष्टि में कृष्ण की ब्रजपरक नाम रचना प्रमुख है वहाँ दोनों ही आलोच्य कवियों की दृष्टि में मथुरा कृष्ण या द्वारका कृष्ण ही ~~की~~ प्रमुख है, क्योंकि इन दोनों की दृष्टि ऐश्वर्य और शौर्य पर रही है ।

3.2.2. स्थान परक नाम रचना

3.2.2 1. ब्रजपरक नाम रचना

ऊपर यह संकेत किया गया है कि त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी के नाम प्रतीकों में ब्रज का प्रवेश अधिक है । इस बात की पुष्टि कृष्ण की ब्रजपरक नाम रचना के प्रयोग से हो जाती है । तुलसी ने कृष्ण के इन ब्रज परक नामों का प्रयोग किया है : ब्रजनाथ * ﴾3﴿, ब्रजनायक[2] ﴾1﴿, श्री ब्रजराज[3] ﴾1﴿, ब्रज जन-हितकारी[4] ﴾1﴿ । कुल आवृत्ति छः है । त्यागराजु के गीतों में तो इस रचना का नितांत अभाव है । तुलसी के द्वारा प्रयुक्त नामों की रचना में भी भावुकता की छाया इतनी अधिक नहीं है । उन्होंने मुख्यतः कृष्ण को ब्रज के राजा के रूप में देखा है ।

3.2.22. बृन्दावन परक नाम रचना :

जहाँ कुछ कृष्ण भक्त-कवियों और कृष्ण भक्ति-संप्रदायों में कृष्ण

---

* कृगी. 43,56,57 2 वही.6

3 वही. 24 4 वही.1

के ब्रज जीवन के भाव वैविध्य की मान्यता है * वहाँ कुछ कृष्ण भक्ति-संप्रदायों में केवल बृन्दावन कृष्ण की मान्यता है ।[2] भाव की दृष्टि से बृन्दावन कृष्ण केवल माधुर्य भाव का आलंबन है ।

आलोच्य कवियों में बृन्दावनपरक नाम रचना का प्रयोग समान रूप से हुआ है । तुलसी ने " बिहार वृन्दाकानन" (कृगी.23) का प्रयोग किया है । इस प्रकार तुलसी की नाम रचना बृन्दावन के मधुर विहार का बिंब प्रस्तुत करती है । त्यागराजु ने इस रचना के दो शब्दों का प्रयोग किया है - " बृन्दावन लोलुडु " (त्या.368) तथा " बृन्दालोलुडु " (त्या.77), किंतु इस रचना में बिंबित होनेवाली भावना में कुछ अंतर है । तुलसी मधुर विहार का संकेत देते हैं और तेलुगु में " लोल" शब्द आकर्षित होनेवाले के अर्थ में प्रयुक्त होता है । इसका तात्पर्य हुआ कि कृष्ण इस लीला भूमि की ओर आकर्षित होता है । भावना का यह अंतर तात्त्विक नहीं है, केवल बिंबगत है । तत्त्व की दृष्टि से दोनों ही कवियों की नाम रचना बिहार लीला के भाव को लिये हुए है ।

3.2.3. वर्ण परक नाम रचना :

कृष्ण की नाम संरचना में वर्ण प्रमुख रहा । स्वयं कृष्ण "काला" वर्ण परक शब्द है जो सबसे अधिक प्रचलित है ।[3] इसका विकसित रूप कान्ह भी तुलसी की रचना में आया है : कृष्ण[4] ~ कान्ह[5] ~ कान्ह[6] । यह

---

* उदाहरण के लिए वल्लभ संप्रदाय को लिया जा सकता है ।

2 उदाहरण के लिए राधावल्लभ संप्रदाय और उसके साहित्य तथा सखी संप्रदाय और उसके साहित्य को लिया जा सकता है ।

3 कृष्ण की व्युत्पत्ति आकर्षण करनेवाले के रूप में भी की जाती है ।

4 वि.106 ; त्या.की. 30 5 कृगी.32

6 वही. 25

विकास क्रम ब्रज भाषा में बहुत अधिक लोक प्रिय रहा । त्यागराजु ने इस विकसित रूप का प्रयोग नहीं किया । *

त्यागराजु और तुलसी दोनों ने " श्याम " का प्रयोग किया है । तेलुगु क्षेत्र की अपेक्षा हिन्दी क्षेत्र में इस शब्द की लोकप्रियता अधिक है ।[2] इसलिए क्षिप्रता की दृष्टि से तुलसी में इस शब्द की आवृत्ति (17) त्यागराजु की आवृत्ति (5) से कहीं अधिक है ।[3]

वर्ण परक नाम की अलंकृत संरचना भी बहुत लोकप्रिय है । दोनों ही कवियों ने इस लोक प्रचलित अलंकृत रचना - " घनश्याम "[4] का प्रयोग किया है । नाम रचना की यह प्रवृत्ति तुलसी और त्यागराजु में बहुत कुछ समान है ।

3.2.4. सौंदर्य परक नाम रचना :

कृष्ण का रूप सौंदर्य सर्व विमुग्धकारी है । जो उनको देखता है मंत्र बिद्ध की भाँति विमोहित हो जाता है । यही "मोहन" (कृगी.36) नाम की सार्थकता है । त्यागराज ने इस नाम रचना का प्रयोग नहीं किया है ।

इस नाम का विस्तार " मदन मोहन " (कृगी.19) के रूप में हुआ है । मदन सौंदर्य के चरम का प्रतीक है, किंतु कृष्ण उस कामदेव को भी अपने रूप माधुर्य से विमोहित कर लेते हैं । त्यागराजु ने इस रूपपरक नाम रचना को भी अपने गीतों में स्थान नहीं दिया है । सम्भवतः दोनों ही कवियों की दृष्टि में रूप की अपेक्षा गुणों का बिंब अधिक गहरा है । तुलसी ने केवल औपचारिक रूप में चरम सौंदर्यपरक नाम रचना की है ।

---

* तेलुगु में विकसित रूप कन्नडु या कन्नय्या हो सकता है जो प्रचलित भी है।

2 सूरदास ने सम्भवतः इसी शब्द का अधिक प्रयोग किया है ।

3 तुलसी : वि.22,37,75 , कृगी.3,5,16,23,24,25,29,30,33, 38,41,54,57,58

त्यागराजु : 447,456,482, 4(अ), 15(अ)

4 कृगी.23 ; त्या.482

3.2.5. उपकरण मूलक नाम रचना :

कृष्ण के प्रमुख संरचनात्मक उपकरण ये है : मोर मुकुट, वंशी । दोनों की रचना में इन उपकरणों से सुसज्जित कृष्ण आया है । तुलसी ने जहाँ "काकपच्छधर" (कृश्री.10) कहा वहाँ त्यागराजु ने "शिखिपिछावतंसुडु" (त्या.71) कहा है । फिर यहाँ पर एक बार दोनों की रचनात्मक दृष्टि अलग हो जाती है । त्यागराजु तुलसी की अपेक्षा अधिक संस्कृत गर्भित, जटिल रचना में प्रवृत्त हो जाते हैं ।

त्यागराजु ने वंशी पर आधारित यह नाम रचना की है : "वेणुगान लोलुडु" (त्या.526) और "मुरलीवादन विनोद" (त्या.588) । तुलसी ने वंशीधर कृष्ण को नाम रचना में स्थान नहीं दिया । सम्भवतः धनुर्धर राम के सामने झुकनेवाले तुलसी कृष्ण को वंशीधर के रूप में देखना अपनी प्रगति के विरुद्ध में मानता है ।

3.2.6. संबंध परक नाम रचना :

3.2.6.1 वसुदेव परक नाम रचना :

वसुदेव कृष्ण के पिता थे । यदि वसु शब्द को अलग करके देखा जाय तो यह समृद्धि और संपत्ति का द्योतक शब्द है । वासुदेव शब्द पाँचरात्र की चतुर्व्यूह कल्पना में भी प्रमुख है । * पर वासुदेव, व्यूह वासुदेव आदि शब्द पाँचरात्र की प्रतीक योजना में मिलते हैं ।[2] सूर आदि कृष्ण भक्त कवियों के सौंदर्य-बोध में यह शब्द भी अधिक उपयुक्त ठहरता है । त्यागराजु ने "वासुदेव" [3] या "श्री वासुदेव"[4] नाम का प्रयोग सात बार किया है ।

---

* डा. एन. चन्द्रकांत, तमिल और हिन्दी का भक्ति साहित्य, पृ.305

2 डा. चन्द्रभान रावत, कृष्ण भक्ति साहित्य-वस्तु स्रोत और संरचना, पृ.70

3 प्रभवि. पृ.15

4 त्या.194, 265, 370, 511, 513, 6(अ) ।

तुलसी [redacted] ने कृष्ण की यह नाम रचना प्रयुक्त नहीं की । त्यागराजु की दृष्टि माधुर कृष्ण पर विशेष रूप से केन्द्रित है ।

दोनों ही कवियों ने कृष्ण की जननी देवकी पर आधारित नाम रचना का प्रयोग नहीं किया ।

3.2.62. नंद-यशोदा परक नाम रचना :

तुलसी ने नंदपरक नाम रचना का प्रयोग कई बार किया है, जैसे - नंद कुमार * (3), नंद को नाहरू [2] (1), नंदलाल [3] (5), नंदलला[4] (1), नंदललन[5] (1), नंद सुवन[6] (2), नंद नंदन[7] (2) और नंदादि-आनंद-दाता[8] (1) । इस रचना की समग्र आवृत्ति 16 हो जाती है । त्यागराजु ने केवल एक बार इस रचना का प्रयोग किया है - नंद नंदन ।[9] इससे दोनों कवियों की भाव-दृष्टि का भेद स्पष्ट हो जाता है । नंद के घर में क्रीडाशील कृष्ण का बिंब त्यागराजु की रचना में नगण्य है, जबकि तुलसी की दृष्टि में इस नाम-बिंब की स्थिति त्यागराजु की अपेक्षा अधिक उल्लेखनीय है ।

किन्तु एक बात विशेष उल्लेखनीय है । त्यागराजु ने यशोदा परक नाम-रचना का प्रयोग किया है - "यशोदातनयुडु" (त्या.3) । तुलसी ने कृष्ण की यशोदापरक नाम-रचना को अपने गीत-काव्यों में स्थान नहीं दिया । कृष्ण भक्त कवियों के अनुसार नंद से भी यशोदापरक नाम-रचना अधिक लोकप्रिय रही । सम्भवत: यह आकस्मिक ही है कि तुलसी के गीतों में यशोदा का प्रवेश नहीं हुआ और सम्भवत: यह भी आकस्मिक ही है कि त्यागराजु की गीत रचना में यशोदापरक नाम रचना शून्य नहीं है ।

---

* वि. 188; कृगी. 14, 52,
2 कृगी. 18,
3 वही, 16,25,34,45, 50
4 वही, 43
5 वही, 15
6 वही, 37,48
7 वही, 21,36
8 वि. 49,
9 त्या. 506 ।

3.2.63 गो + कृष्ण :

ब्रज कृष्ण का संबंध गोधन से विशेष है । दक्षिण के विष्णु स्वामी संप्रदाय में गोपाल मंत्र की मान्यता रही है । निंबार्क सम्प्रदाय में भी गोपालमंत्र की स्थिति केन्द्रीय है । इस संबंध की परंपरा वैदिक-साहित्य तक जाती है जहां इन्द्र और विष्णु को "गोप" अर्थात् गायों का पालन करने वाला शब्द कहा गया है । * गोपाल रूप में ब्रज कृष्ण सब से अधिक आकर्षक है । दोनों ही कवियों ने कृष्ण और गोप के संबंध को व्यक्त करने वाली नाम रचना का प्रयोग किया है । "गोपाल" और "गोविंद" नामों का प्रयोग दोनों ही कवियों ने किया है । तुलनात्मक क्षिप्रता इस प्रकार है :-

	तु.गी.का.	त्या.
गोपाल[2]	5	4
गोविंद[3]	3	8
	8	12

इससे यह स्पष्ट होता है कि त्यागराजु की दृष्टि में "गोविंद" शब्द अपनी प्रतीकात्मक विविधता के साथ अधिक प्रयुक्त हुआ है । इसके विपरीत तुलसी में सामान्य "गोपाल" शब्द त्यागराजु की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ है । फिर भी इस रचना की प्रकृति बहुत दूर तक दोनों कवियों की रचनाओं में समान है ।

---

* अमरकोश, द्वितीय खंड, वैश्य वर्ग, 57

2 वि. 203, कृगी. 4,20;23; तुलसी ने "पशुपाल" (वि.133) को भी इसी अर्थ में लिया है । त्या. 68, 562, 29(अ), प्रभवि. पृ. 8

3 वि. 47,49, कृगी.1; त्या.1,81,368,449, 450,482,624, प्रभवि. पृ.7

3.2.64. गोप+कृष्ण :

यदि मथुरा और द्वारका के कृष्ण का संबंध यदुवंश से है तो ब्रज कृष्ण का सम्बन्ध गोप जाति से है । इस जाति के प्रिय कृष्ण हैं जिन्होंने गोप जाति की अनेक बार अनेक संकटों से रक्षा की । इसलिए तुलसीदास जी ने इनको "गोप-गोसुत-बल्लभ" ﴾कृ.गी.23﴿ कहा, किंतु त्यागराजु की कल्पना में कृष्ण और गोप जाति का संबंध नहीं बन पाया । इसलिए गोपपरक नाम रचना उनके गीतों में नहीं मिलती ।

3.2.65 गोपी+कृष्ण :

गोपीनाथ या गोपी वल्लभ जैसी नाम रचना कृष्ण के मधुर सम्बन्ध को बिंबित करती है । दोनों आलोच्य कवि माधुर्य भाव की उपासना में अधिक नहीं रमते । दोनों ही के गीतों में ऐश्वर्यपरक दास्य-भावना ही प्रमुख है । इसलिए तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही इस संबंध को बिंबित करनेवाली नाम रचना औपचारिक रूप से ही किया है । तुलसी ने एक बार "गोकुल-बल्लभी प्रिय" ﴾कृ.गी.23﴿ का प्रयोग किया है तो त्यागराजु ने "गोपिका कामे" ﴾त्या.411﴿ नाम का । किंतु दोनों ही कवियों की कल्पना में गोपी कृष्ण का स्पष्ट सूत्र कहीं नहीं विद्यमान है ।

3.2.66 राधा + कृष्ण :

राधा और कृष्ण का संबंध भी मधुर भावाश्रित है । गोपीकृष्ण सम्बन्ध में जो माधुर्य मिलता है उसका प्रगाढ़तम रूप राधाकृष्ण में हैं । इसलिए दोनों ही कवियों की वृत्ति इस प्रगाढ़ माधुर्य वाली नाम रचना में नहीं रमती । तुलसी ने केवल एक बार "राधारमन" ﴾वि.52﴿ शब्द का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने इस रचना का प्रयोग इ एक बार भी नहीं किया । इसका एक कारण यह हो सकता है कि आन्ध्र प्रदेश में अष्ट महिषियों से घिरे हुए

द्वारका कृष्ण की लोकप्रियता तो है और भागवत के प्रभाव से गोपीकृष्ण की भी सामान्य रूप से मान्यता है, किन्तु राधाकृष्ण की मान्यता साहित्य में बहुत कम है । ले-देकर दो ही प्रमुख रचनाएं तेलुगु में मिलती हैं - "राधामाधवमु" और "राधिकासान्त्वनमु" । इसलिए राधाकृष्ण की आन्ध्र क्षेत्रीय क्षीण परंपरा ने त्यागराजु को आकर्षित नहीं किया । इसके विपरीत हिन्दी क्षेत्र में राधाकृष्ण की भावना ही अधिक मान्य रही । इसलिए दास्य भाव को पूर्व रूप से समर्पित तुलसी के गीतों में यह रचना नाम मात्र के लिए ही प्रविष्ट हुई ।

3.2.67 कुब्जा + कृष्ण :

तुलसी ने एक बार कुब्जापरक नाम रचना भी की है - "कूबरीखन" §कृगी. 37§ । गोपीकृष्ण और राधाकृष्ण के सम्मुख कूबरी की भावना की उपेक्षा ही हिन्दी साहित्य में हुई । फिर भी तुलसी ने मथुरा कृष्ण के माधुर्य की एक ध्वनि इस रचना के द्वारा झलक दिखलाई है । त्यागराजु के गीतों में कुब्जा कृष्ण का प्रवेश नहीं हुआ है । इसका कारण यह हो सकता है कि तुलसी की "श्री कृष्णगीतावली" कृष्ण लीला के विविध और क्रमबद्ध प्रसंगों को लेकर चली है । त्यागराजु के गीतों में कृष्ण चरित की इस प्रकार की क्रमबद्धता नहीं है । आवृत्ति की दृष्टि से तुलसी के गीतों में भी कुब्जाकृष्ण का सूत्र अत्यन्त क्षीण है ।

3.2.7 लीलापरक नाम रचना :

कृष्ण की लीलाओं के द्योतक नाम दो वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं : रस परक लीला द्योतक नाम तथा लोक रक्षण परक लीला द्योतक नाम । पहले वर्ग में यह नाम आता है : "दधिपयोधिवास हरण" §त्या.।§ । इस नाम की संरचना सामासिक है । एक ओर चोरी लीला की ओर यह रचना संकेत करती है और दूसरी ओर चीर हरण की ओर । दोनों ही का संबंध गोपी लीला से है । तुलसी ने गोपी लीला परक नाम संरचना को ग्रहण

नहीं किया है । संभवत: मर्यादा आगे आ जाती है । कृष्ण को चोर और जार के रूप में देखा गया है । जयदेव ने "चोर जार शिरोमणि" कह दिया । प्रकृतिसूचक इस नाम की परंपरा त्यागराजु में तो उभर आयी - "जार चोर" (त्या.506) । किंतु तुलसी को मर्यादा भूमि में यह बीज अंकुरित नहीं हो पाया । इस प्रकार तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु की नाम संरचना रसिक शिरोमणि को अधिक बिंबित करती है ।

दूसरी लीलायें लोक रक्षण परक हैं । कृष्ण के शौर्य, वीर्य और ओज को सर्वाधिक प्रकट करनेवाली दो लीलाऐं हैं : कालीय दमन और गिरिधरन । त्यागराजु ने "नागराजधर" (त्या.116) कह कर नाग दमन लीला की ओर संकेत किया है । रचना सामासिक है । तुलसी ने नाम संरचना के इस प्रसंग के आधार पर "दवन कालीय खल" (वि.49) लिखा है ।

गोवर्धन लीला भी दोनों की नाम संरचना का आधार बनी है । तुलसी ने "गिरिधर" (कृ.गी.32) और "भूधरधारी" (वि.56) शब्दों का प्रयोग किया है और त्यागराजु ने "अगधरण" (त्या.45), "अगराजधर" (त्या.345), "नगराजधर" (त्या.119), "नगधर" (प्रभवि.पृ.16), "धरणीधर धर" (त्या.31), "करधृत पर्वत" (त्या.238) जैसे शब्दों का प्रयोग किया है । तुलसी की अपेक्षा कुछ अप्रचलित शब्दों का अधिक प्रयोग करके त्यागराजु ने चमत्कार वृत्ति का प्रदर्शन किया है । अन्तिम शब्द की संरचना संस्कृत शैली की है । तुलसी जटिल और अप्रचलित संरचना का प्रयोग नाम संदर्भ में नहीं करते । तुलसी ने धरती या विश्व के धारक के रूप में भी श्रीकृष्ण को देखा है - "भूधर" (वि.53) और "धरनीधरन" (वि.54) ।

असुरवध लीला के आधार पर भी नाम रचना हुई है । दोनों ही कवियों ने कृष्ण को "मुरारी" (वि.52, त्या.310) कहा है । यह नाम आरंभ में विष्णु का था और पीछे कृष्ण में संक्रमित हो गया । त्यागराजु ने सामान्य रूप से "कंसारी" (प्रभवि. पृ.41) का प्रयोग भी किया है । किंतु तुलसी की नाम रचना इस संदर्भ में आलंकारिक हो जाती है - "कंस-बंसाटवी-धूमकेतू" (वि.52) । इस प्रकार रक्षण परक लीला द्योतक नाम रचना में दोनों ही

कवियों की वृत्ति समान रूप से रमी है ।

दोनों कवियों के नाम निरूपण की संरचनाएँ बहुत कुछ समान हैं । अन्तर यह है कि त्यागराजु ने तुलसी की अपेक्षा रचना, पर्याय वैविध्य और सामासिकता का चमत्कार अधिक दिखाया है । अर्थात् नाम के संबंध में तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु कुछ विस्तृत और जटिल संरचनाओं में प्रवृत्त हुए । इससे यह सिद्ध होता है कि त्यागराजु की दार्शनिक चेतना उनकी भाव-संरचना में प्रविष्ट होकर भी अपनी चमत्कृति बनाये हुए है । इसके अतिरिक्त कृष्ण की नाम संरचना तुलसी के गीत काव्य में अधिक विस्तृत है । इसका कारण यह है कि तुलसी की अनन्य निष्ठा राम में होते हुए भी उनकी कल्पना में कृष्ण का रूप बरबस उभर आता है । इसका प्रमाण है - "श्री कृष्ण गीतावली" की स्वतंत्र रचना । त्यागराजु में यह दिशा औपचारिक रूप से भी नहीं है, क्योंकि उन्होंने "श्रीकृष्ण गीतावली" जैसी रचना नहीं की । कृष्ण नाम प्रयोग उनके गीतों में आकस्मिक ही है ।

नाम के पश्चात् ब्रह्म की संदर्भ परिणति गुण संरचना के आधार पर होती है ।

4. गुण :

गुण के प्रचलित अर्थ हैं : विशेषता, उत्तमता, स्वभाव, धर्म, प्रकृति का धर्म आदि । एक प्रकार से यह शब्द मानसिक और प्राकृतिक वैशिष्ट्यों की ओर संकेत करता है । संस्कृत में इसका मौलिक अर्थ "रस्सी की लड" अथवा "डोरी" था । परवर्ती अर्थ इसी से विकसित हुए । रस्सी दो या तीन लडों को बटकर बनायी जाती है । ये लडें रस्सी के घटक (बनानेवाले), मुख्यावयव (constituent Parts) होते हैं और इनकी संख्या भी प्राय: तीन होती है । मुख्यावयव * वाला अर्थ संरचना

---

* यह संकेत अथर्ववेद 10-8-43 में भी मिलता है ।

की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है । अर्थ विस्तार की प्रक्रिया में गुण का अर्थ हो गया - मुख्य अवयव, मुख्य विशेषताएं अथवा स्वभाव । समग्र स्थूल प्रकृति तीन गुणों - सत, रज और तम - से बनी है ।** येही प्रकृति के मुख्य अवयव हैं । स्वभाव या धर्म मानवीय संरचना के मुख्य अवयव हैं । इस संरचना में जब ब्रह्म या विष्णु का अवरोहण होता है तो उसके मुख्यावयव रूप गुणों की भी कल्पना की जाती है । ये गुण या तो मानवीय गुणों के वाचक होते हैं अथवा इन गुणों से प्रेरित समाजोन्मुख क्रियाओं से । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने साध्य के मुख्य अवयवों के रूप में, उसके आंतरिक घटकों के रूप में, उसके स्वभाव के रूप में और उन गुणों से प्रेरित क्रियाओं के रूप में गुण को माना है । गुणों के इसी स्वरूप का स्पष्टीकरण संप्रति अभीष्ट है ।

4.1. संबंधों के आधार पर गुण कथन :

राम के गुणों को व्यक्त करनेवाले जो संबंध है उनको तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं - (1) भक्त और साधु वर्ग (2) दीन और अनाथ वर्ग तथा (3) पतित और नीच वर्ग ।

4.1.1 भक्त और साधु वर्ग :

इस वर्ग के द्योतक कुछ समान शब्द तुलसी और त्यागराजु में है, जैसे "भक्त" * (तु=16 ~ त्या= 48), "सेवक"[2] (तु =12 ~ त्या.=5), "दास"[3] (तु = 8 ~ त्या=4), "शरणागत"[4] (तु = 11 ~ त्या=20), "नत"[5] (तु=27 ~ त्या=11), "सज्जन"[6] (तु=4 ~ त्या=6), "जन"[7] (तु=3 ~ त्या=7)

---

* वि.54; त्या.241 । तुलसी ने इसका हिन्दी तद्भव रूप "भगत" (गी.1/16) का भी प्रयोग किया है ।

2 वि.206; त्या.343 3 वि.123; त्या.45 4 वि.237; त्या.412; त्यागराजु के द्वारा प्रयुक्त "आश्रित" (त्या.294) शब्द भी इसके अंतर्गत है ।

5 वि.149; त्या.599; 6 वि.43; त्या.95 ;

7 वि.136; त्या.453 ।

** मूल और विकसित अर्थों के लिए द्रष्टव्य - डा. केशवराम पाल, हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ-परिवर्तन , पृ. 73-78.

और "साधु" * {तु=4 ~त्या=3} ।

उपर्युक्त गणना से एक प्रवृत्तिगत अन्तर परिलक्षित होता है : त्यागराजु की साधना भक्तिपरक थी और तुलसी में भक्त के दास्य-भाव का प्राधान्य है । इसीलिए उन्होंने "मानस" में कहा - "सेवक-सेव्य-भाव बिनु भव न तरिय उरगारि" ।[2] यद्यपि भक्ति और दास्य में भावना की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है । भक्ति के विविध भाव होते हैं, दास्य उनमें से एक है । इसलिए त्यागराजु में "भक्त" शब्द की आवृत्ति अधिक है और तुलसी का बल "सेवक" और "दास" शब्दों पर अधिक है । साथ ही सेवक का धर्म स्वामी के सामने झुकना है । संभवत: इसीलिए अज्ञात रूप से "नत-प्रनत" शब्दों की आवृत्ति भी तुलसी में अधिक है । अन्य शब्दों में आवृत्ति परक अन्तर नगण्य है ।

उपर्युक्त समान शब्दावली के अतिरिक्त तुलसी ने "संत" शब्द का दो बार प्रयोग किया है जो "साधु" से अलग नहीं । किंतु त्यागराजु ने अधिक विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग किया है : ज्ञान परक - "बुधजन" {त्या.187} तथा शाक्त साधनापरक - "सिद्ध" {त्या.239} । इनसे राम को संबोधित करके देखना त्यागराजु की विशेषता है । गीता में ज्ञानी भक्त को अधिक महत्त्व दिया गया है ।[3]

4.1.11 रचनात्मक शब्द :

ऊपर भक्त और सेवक के जितने पर्याय या समानार्थक शब्द आये हैं, उनके साथ कुछ रचनात्मक शब्दों का योग करके भगवान और भक्त का संबंध स्थापित किया जाता है । ये रचनात्मक शब्द या तो क्रिया परक होते हैं या विशेषण परक ।

---

* वि. 55; त्या.184; तुलसी ने इसके लिए "संत" शब्द का प्रयोग किया है ।

2 मानस, उत्तर. 119 {क}

3 गीता. 4/38

4.1.111 क्रिया परक रचनात्मक शब्द :

(क) अनुकूल क्रियायें :

(अ) √पाल :

विष्णु और उनके अवतारों की कल्पना के पीछे "पालन" का अभिप्राय मुख्य है । त्रिदेव में जहाँ ब्रह्म सर्जक है और शिव संहारक है तथा विष्णु पालक ही है । इस शब्द की आवृत्ति ऊपर के वर्ग के साथ सबसे अधिक हुई है । यदि ऊपर के वर्ग के नामों का प्रतीक "अ" मान लिया जाय तो रचना इस प्रकार होगी :-

"अ" + पाल - + - क ~ - न ~ ø ।

जैसे पालक = "पालन करने वाले" ; "पालन" ; "पाल" या "परिपाल" । इसका पूरा रूप होगा - /भक्त-पालक/ = भक्तों के पालन करने वाले" । त्यागराजु ने एक स्थान पर "पालित" शब्द का प्रयोग भी किया है (त्या.249)। यहाँ अर्थ होगा - भगवान के द्वारा पालित (भक्त) ।

√पाल के स्थान पर √पोष का प्रयोग भी मिलता है और रचना इस प्रकार होती है:-

"अ" + √पोष - + - आ ~ - का ~ - ण ।

जैसे - "पोषा" (त्या.116); "पोषक" (त्या.45); "पोषण" (त्या.343) ।

इस रचना में कर्म के रूप में भक्त-साधु क वर्ग का कोई व्यक्ति ही होता है ।

(आ) √रक्ष :

दूसरा प्रमुख संबंध रक्षापरक बनता है । रचना इस प्रकार होती है :-
"अ" + √रक्ष - + - क । जैसे - "रक्षक" (त्या.488) । इस रचना में

भी क्रिया का कर्म भक्त वर्गीय व्यक्ति होता है । इसी अर्थ में त्यागराजु ने तेलुगु क्रिया शब्द "आवन" का भी प्रयोग किया है । जैसे : /भकत जनावन/"=भक्त की रक्षा करने वाले" §त्या.61§ । रक्षापरक नाम का बिंब "त्यागराज कीर्तनलु" में ही विशेष है, "तुलसी के गीतकाव्य" में नहीं मिलता ।

§इ§ √द = "देनेवाला" :

इस रचना में भक्त या साधु सीदा कर्म नहीं बनता । इसका कर्म कोई और शब्द होता है जो भक्त के लिए अनुकूलता का प्रतीक होता है । इसकी रचना इस प्रकार होगी :-

"अ" + कोई संज्ञा शब्द + √द ।

जैसे - /-सुखद/ "भक्त को सुख देने वाले" §वि.237§, /-नर्मद। वि.44§, §-शुभ फलद । §त्या.408§ और §-वरद§ §त्या.465§ ।

तुलसी और त्यागराजु ने /-दायक/ /-दाता/ और /-दाई/ रूपों का भी प्रयोग किया है, जैसे : "-सुखदायक" §वि.136§, "-मंगल दायक" §प्रभवि. पृ.18§, "-सुखदाता" §गी.1/110§, " - इष्टदाता" §त्या.564§, " - गतिदाई" §वि.242§, " - आरोग्यदाई" §त्या.259§ । त्यागराजु ने §-देय/ रूप का भी प्रयोग किया है, जैसे : " - भागदेय" §त्या.528§ ।

§ई§ √रंज : "प्रसन्न करना" :

इस शब्द के साथ " - न" प्रत्यय का योग करके /रंजन/ शब्द बनाया गया है । इसका प्रयोग दोनों कवियों में मिलता है । जिस प्रकार इष्ट का रक्षक रूप रहा उसी प्रकार दूसरा रूप रंजन भी रहा । यहाँ तुलसी की ही विशिष्टता सिद्ध होती है । उन्होंने इस रचना का संबंध संत, भक्त और परिजनों तक विस्तृत किया है, जैसे : ~~भ~~ "जन रंजन" §वि.153§, "रंजन संत" §वि.85§ और "परिजन रंजन" §गी.1/22§ । किंतु त्यागराजु ने इस रचना का संबंध केवल भक्त तक ही सीमित ~~रखा~~ रखा है - "भक्तजन प्रसन्न" §प्रभवि. पृ.15§ ।

§उ§ √कर :

इस धातु के कर्म के रूप में तुलसी और त्यागराजु में सामान्य शब्द ये आये हैं : "मंगल" §गी•5/43; त्या•312§, "हित" §वि•125; त्या•430§, "शिव" §त्या•91§ और "क्षेम" §त्या•54§ = कुशल । तुलसी ने 'विश्राम' कर्म के साथ एक और नाम रचा – "विश्राम कर" §वि•55§ । त्यागराजु ने कुछ अन्य कर्म ये लिखे है : "आनंद" §त्या•482§, "आरोग्य" §त्या•की•354§, "आह्लाद" §त्या•544§ और "मोहन" §त्या•588§ । √कर का भूतकालिक कृदंत रूप /कृत/ भी एक नाम संरचना में आया है : "सत्यकृत" §वि•55§ ।

§ख§ प्रतिकूल क्रियायें :

प्रतिकूल क्रियाओं का संबंध भक्त से न होकर भक्त की किसी विरोधी शक्ति से होता है । भक्त की विरोध करनेवाली शक्तियों का नाश भी भगवान का एक गुण है । इसमें ये क्रियायें मुख्य रूप से आती है : √हर, √तार, √मोच, √वार, √भंज, √शम आदि ।

§अ§ √हर :

वैष्णव-साहित्य में इस धातु का बहुत महत्त्व है । इसी के आधार पर सम्भवत: "हरि" शब्द की व्युत्पत्ति हुई । यह सकर्मक धातु है । इसके कर्त्ता भगवान और कर्म कोई विरोधी शक्ति तथा इससे प्रभावित भक्त होता है । "हर" क्रिया से कर्त्ता का बोध हो जाता है, जैसे : /हर/ "= हरनेवाला" । इसके अन्य रूप "हरण", "हारि" आदि भी हैं । तुलसी ने इस क्रिया के ये कर्म दिये है : "आपदा" §वि•213§, "आरति" §वि•77§, "दुःख" §वि•109§, "पाप" §वि•59§, "सोक" §वि•51§, "दीनता" §वि•248§, "दारिद्र्य" §वि•248§, "संकट" §वि•134§ आदि । त्यागराजु ने इनमें से कुछ ही कर्म लिये हैं, जैसे : "अघ" §त्या•60§, "खेद" §त्या•59§, "आर्ति" §त्या•599§, "पाप" §त्या•412§ आदि । कुछ कर्म त्यागराजु में विशिष्ट हैं,

जैसे : "अरि" ॥त्या•482॥, "अशुभ" ॥त्या•544॥, "कलि" ॥त्या•323॥ आदि ।

तुलसी ने इन भौतिक कर्मों के अतिरिक्त कुछ मानसिक विकृतियों को भी कर्म के रूप में दिया है, जैसे : "संसय" ॥वि•44॥, "भय" ॥वि,54॥, "संसार" ॥वि•53॥, "मोह" ॥वि•46॥, "कुटिलता" ॥वि•242॥, "चिंता" ॥वि•56॥ आदि । त्यागराजु ने भी मानसिक विकृतियों को कर्म के रूप में लिया : "अवगुण" ॥त्या•1॥, "भवरोग" ॥त्या•45॥, "भय" ॥त्या•4॥, "मद" ॥प्रभवि• पृ•35॥ आदि । तात्पर्य यह है कि इस √हर क्रिया के द्वारा इष्टदेव भक्त की बाह्य परिस्थितियों को भी निरापन्न बनाता है और आंतरिक रूप से भी भक्त के हृदय को शुद्ध करता है ।

॥आ॥ √तार :

विष्णु के अवतार के साथ इस धातु का भी महत्त्व है । राम भक्तों का तारक या त्राता है । इस बिंब से संबंधित राम के नाम भी तुलसी और त्यागराजु ने प्रयुक्त किये हैं । इस क्रिया का मुख्य संबंध "भव-सागर" से है और अधिकांश शब्द भव-सागर के संदर्भ से ही बने हैं । "भवतारक" ॥वि•145; त्या•171॥ शब्द तुलसी और त्यागराजु में समान हैं । किंतु त्यागराजु में भवसागर तारक की आवृत्ति तुलसी से अधिक है - तु = 1~त्या=8 । तुलसी ने माया से तारनेवाले के रूप में भी राम को देखा है, जैसे : "अपार-माया तारन" ॥वि•136॥ । एक और सामासिक रूप भी तुलसी में मिलता है - "घोर संसार पर पारदाता" ॥ वि•54॥ ।

त्यागराजु की कल्पना में राम का तारक रूप उनके मुख्य चरित्र से संबंधित है । इसलिए उन्होंने राम को "तारक चरित" ॥त्या•110॥, "तारक शुभकर चरित" ॥त्या•355॥ और "तारक रूप" ॥त्या•223॥ कहा है ।

§इ§ √मोच :

तुलसी और त्यागराजु में इस बिंब से संबंधित राम के नाम कम मिलते हैं । दोनों ने इस धातु के कर्म के रूप में मानसिक विकृतियों को ही लिया है । जहाँ त्यागराजु ने "पाप" को कर्म के रूप में उल्लेख किया है वहाँ तुलसी ने "सोच", "बिपति" और "भवभय" को, जैसे : "पाप विमोचन" §त्या.249§, "नत-सोच-विमोचन" §वि.149§, "विमोचन बिपति" §गी.5/43§ और "भवभय मोचन" §कृ.गी.23§ ।

§ई§ √वार :

इस धातु का भी प्रयोग दोनों कवियों ने एक-दो बार ही किया है, जैसे : "विपति निवारन" §वि.206§, "शोक निवारण" §त्या.356§ । प्राय: दोनों कवियों का ध्यान राम की "हरण" और "तारण" क्रिया पर ही केन्द्रित है । इसलिए इस क्रिया रूप पर उनका मन अधिक नहीं गया है ।

§उ§ √भंज :

इस धातु का प्रयोग भी दोनों कवियों में मिलता है । राम भक्तों के कष्ट और भय का भंजन करनेवाले हैं । इस क्रिया के साथ तुलसीदास ये कर्म जोडे हैं : "भय-भय" §गी.1/22§, "भ्रम" §वि.242§, "विषय-विकार" §वि.85§, "भूमिभार" §वि.64§, "आरति" §वि.पृ.153§, और "संतप्त-कलि-विकलता" §वि.पृ.55§ । त्यागराजु की कल्पना में यह बिंब दो कर्मों के साथ ही जुडा हुआ है - "दनुज" §प्रभवि. पृ.29§ और "आर्ति" §त्या.506§ ।

§ऊ§ प्रतिकूल क्रियाओं का आलंकारिक रूप :

ऊपर बतलाया गया है कि राम भक्त की प्रतिकूल शक्तियों के निवारक हैं । ये प्रतिकूल शक्तियाँ मानसिक भी हो सकती हैं और बाह्य भी । दोनों ही कवियों ने इस भाव की आलंकारिक संरचना भी प्रस्तुत की ।

आलंकारिक रचना की विश्लेषणीय तालिका इस प्रकार है -

राम का उपमान	विरोध शक्ति का उपमान	विरोध शक्ति	
		तु.गो.का.	त्या.
सूर्य	तम निसि	मोह * रागादि[3]	अघ[2] अज्ञान[4] कामादि[5]
सिंह	गजराज	गर्वकाम[6] काल[8]	अरि= (शत्रु)[7] पाप[9] मद 10 भव 11 (संसार)[?]

* अमित प्रबल-मोह-तम-मारतंड (वि.64); बिमोह-तिमिर-तरनि (वि.247); मोह-निसि-दिनेस (वि.61) ।

2 अघ तिमिरादित्य (त्या.239); पापतिमिर कोटिसूर्य (त्या.10); पापतिमिर भास्कर (त्या.71); पापतिमिर विभाकर (त्या.380)

3 रागादि-तम-तरनि (वि.51) ।

4 अज्ञान तिमिरमुनु अणचु भास्कर (त्या.265) ।

5 कामादि-लोभ-मोह-मद-स्तोम-तमम्मुलकु सूर्य (त्या.32) ।

6 गर्वकाम-करिमत्त-हरि (वि.58); कंदर्पनाग-मृगपति (वि.64) ।

7 अरीभ सिंह (त्या.355) ।

8 कालगजराज-मृगराज (वि.61) ।

9 पापगज नृसिंह (त्या.1) ।

10 भक्तिहीन जनमद गजजाल पंचवदन (त्या. 203) ।

11 भववारण मृगेशा (त्या.229) ।

नौका	सागर	भव * त्रास[3]	भव[2]
कुठार	वन	संसार[4]	अघ[5] हृत्ताप[6]

इन आलंकारिक क्रिया रूपों के अतिरिक्त तुलसी ने राम के लिए और भी उपमान प्रस्तुत किये हैं। वे ये हैं : "अभिमान-सिंधु कुंभजात" (वि.64), "त्रास-पाथोधि-कुंभजात" (वि.53), "काल-कलि-व्यालभिव वैनतेय" (वि.50), "रागादि सर्पगन पन्नगारि" (वि.64), "अग्यान-गहन पावक प्रचंड" (वि.64), "खल-बन-कृसानुसम" (गी.6/1) और दनुजेस-वन-दहन पावक" (वि. 61)।

~~(ग) क्रियापरक~~

(ग) क्रियापरक अन्य प्रयोग :

कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहाँ संज्ञा का प्रयोग हुआ है और इस संज्ञा से संबंधित क्रिया लुप्त रहती है, जैसे : /भक्तमन पुण्य/ "= भक्त के मन को पवित्र करनेवाले" (वि.56) तथा /सज्जन हित/ "= सज्जनों का हित करने वाले" (त्या.433)।

---

* भवसिंधु-दुस्तर जलरथ (वि.136)।

2 भवजलधि पोत (त्या.4)।

3 सर्वदा दास तुलसी-त्रास-निधि-बहित्र (वि.50)।

4 भग्न-संसार-पादप कुठार (वि.50)।

5 अघवन-कुठार रूप (त्या.355)।

6 हृत्ताप वन-कुठार (त्या.337)।

4.1.112 विशेषण परक रचनात्मक शब्द :

आलोच्य दोनों कवियों के गीत काव्य में प्रयुक्त मुख्य विशेषण ये हैं जिनका संबंध विशेष्य भगवान से है और इनके द्वारा ही भक्त का संबंध हो जाता है : "आधीन", "बस", "वत्सल", "परायण" "अनुकूल", "हितकर "प्रिय", "सुलभ" और "आप्त" । इनके उदाहरण ये हैं : "भक्ताधीन" §त्या.412§, "भक्तवशंकर" §त्या.241§, "सेवक बस" §वि.206§, "भक्त-वत्सल" §त्या.427§, "भक्तत्राण परायण" §त्या.1§, "भक्तानुकूल" §वि.54§, "शरणागत प्रिय" §वि.54§, "नतहितकर" §त्या.171§, "भक्त सुलभ" §त्या.125§ और "शरणागताप्त" §त्या.412§ ।

इस रचना में आनेवाले भगवान की पराधीनता की भावना सबसे व्यापक और गहरी है । यह भक्ति-साहित्य की एक प्रबल उक्ति रही है कि भगवान भक्त के वश में रहता है । इससे भक्त का उत्कर्ष प्रकट होता है और भक्त-वत्सलता की अतिशयता व्यक्त होती है ।

4.1.113 संज्ञा पर आधारित रचना :

भक्त और भगवान के बीच का संबंध संज्ञा के आधार पर भी व्यक्त होता है । इसके उदाहरण ये हैं : /आश्रित + चिंतामणि/"= आश्रित के चिंतामणि" §त्या.343§, /भक्त+ आधार/"=भक्त के आधार" §त्या.478§, /साधु+ जीवन/ "=साधु के जीवन" §त्या.311§, /भगत+चिंतामनि/ §वि.206§ और /भगतनि उर + चंदन/ §गी.1/36§ ।

संज्ञा या स्थानवाची संज्ञा का प्रयोग भगवान के निवास के अर्थ में भी किया गया है, जैसे: /साधु मानस सुसदन/ "=साधु के मन में निवास करनेवाले" §त्या.432§, /सज्जन मानस निकेतन/ "=सज्जन का मानस ही जिनका घर है" §त्या.3§ । ऐसे प्रयोग त्यागराजु में ही मिलते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भगवान और भक्त के बीच जो

विशेषण परक या गुण परक संबंध स्थापित किये गये हैं, उनमें त्यागराजु की रचना और शब्दावली अधिक वैविध्यपूर्ण और संस्कृतोन्मुखी है । प्रवृत्ति की दृष्टि से दोनों कवियों में समानता ही दृष्टिगत होती है । दोनों ही कवि भगवान को भक्त के प्रति सक्रिय दिखलाते हैं । भक्त के प्रभाव को भी ज्ञापित दोनों ही कवियों ने किया है ।

4.1.2 दीन और अनाथ वर्ग :

तुलसीदास ने "रामचरित मानस" के अंत में एक दोहा लिखा है :-

मोसम दीन न दीनहित तुम समान रघुवीर ।
अस विचारि रघुबंस मनि हरहु विसम भव-भीर ।। *

इस दोहे में तुलसी ने अपने और साध्य के संबंध को "दीन और दीनहित" शब्दों से निरूपित किया है । "विनय पत्रिका" में भी उन्होंने लिखा है - "तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारि ।"[2] इस पंक्ति में भगवान की दया का संबंध जन की दीनता से जोड़ा गया है ।तात्पर्य यह कि दीनता भगवान की दया को आकर्षित करती है । इसलिए राम के नामों की रचना में दीन शब्द का त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी ने अधिक प्रयोग किया है । दोनों भक्त कवियों के राम "दीन बंधु" (वि.81; त्या.259) है । इसकी आवृत्ति तुलसी में 21 बार और त्यागराजु में 4 बार है । दीन और भगवान का संबंध स्थापित करने वाला शब्द "दीनदयालु" (वि.136) है । इसकी आवृत्ति तुलसी में 10 बार है और त्यागराजु ने केवल एक बार "दीनदया परमूर्ति" (त्या.97) लिखा है । तीसरा स्थान "दीनहित" (गी.5/44) का है जिसकी आवृत्ति तुलसी में 4 बार है और त्यागराजु में नहीं है । एक बार "दीन उद्धरन" (वि.59) नाम का प्रयोग भी तुलसी ने किया है ।

त्यागराजु ने दीन के दुःख को दूर करनेवाले राम को अंकित किया है: "दीन आर्ति निवारण" (त्या.544) तथा "दीन आर्ति भंजन" (त्या.506) ।

* मानस, उत्तर, 130(क)
2. वि. 79/1

राम दीन शरण्य भी हैं और वह दीन का रक्षक भी है : "दीन रक्षक ≬त्या.286≬ तथा "दीन जनावन" ≬त्या.281≬ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दीन संदर्भीय रामनाम रचना का वैविध्य तो त्यागराजु में ही अधिक है, किंतु आवृत्ति जन्य बल तुलसी में अधिक है । यदि तुलसी ने 36 बार इस शब्द का प्रयोग किया है तो त्यागराजु ने केवल 15 बार ।

इस वर्ग के अन्यत्र नाम "अनाथ" ≬वि.242≬, "गरीब"≬वि.148≬ "आरत" ≬वि.114≬ "असरन" ≬वि.210≬ तथा "निराधार"≬वि.179≬ हैं जो तुलसी में मिलते हैं, त्यागराजु में नहीं । अनाथ के राम "नाथ" हैं, "पति" हैं और "हित" हैं । इसी प्रकार राम आरत के "आरतिहर", "पोसु", "पाल", "हित" एवं ~~बंधु~~ "बंधु" हैं । राम "गरीब निवाज" ≬वि.148≬ और "असरन सरन" भी हैं ।

त्यागराजु ने इस वर्ग के इन नामों का और प्रयोग किया है : "आपन्न", "आपत" और "विकल" । त्यागराजु के राम "आपन्न रक्षक" ≬त्या.351≬, "आप्त बांधव" ≬त्या.412≬ और "विकलार्ति संहारक" ≬त्या.435≬ हैं ।

दीन-अनाथ वर्ग पर आधारित राम नाम की कुल आवृत्ति तुलसी में ही अधिक है :-

तु.गी.का.	त्या.	अन्तर
71	23	48

4.1.3 पतित और नीच वर्ग :

जिस प्रकार त्यागराजु की अपेक्षा "दीनबंधु" राम का बिंब तुलसी के गीतकाव्य में ही अधिक है, उसी प्रकार पतित और नीच वर्ग के नामों की आवृत्ति भी तुलसी में ही अधिक है । तुलसी और त्यागराजु का राम "पति पावन

हैं । इस प्रकृति के तीन नाम तुलसी में मिलते हैं : "पतित पुनीत" §वि.94§, "पतित-पावन" §वि.101§ और "नीच पुनीत-कृत" §वि.264§ । त्यागराजु ने केवल "पतित पावन" §त्या.34§ नाम का ही प्रयोग किया है । इस नाम की आवृत्ति का अन्तर इस प्रकार हैं :-

तु.गी.का.	त्या.	अन्तर
20	12	8

यह अन्तर विशेष महत्वपूर्ण नहीं है । अर्थात् दोनों के नाम-बिंब की प्रकृति प्राय: एक सी है । तुलसी ने राम को "पतित-उधारे" §वि.110§ और "पतित-तारन" §वि.206§ भी पुकारा है । त्यागराजु ने तेलुगु पद्धति से राम को "पतितुल ब्रोचे पट्टाधिकारी" §त्या.182§ कहा है ।

4.2 उदात्त गुण :

भक्ति-दर्शन में उदात्त गुणों से युक्त इष्ट की मान्यता है । तुलसी और त्यागराजु ने अपने इष्ट को "सगुण" §वि.53: प्रभवि.पृ.38§ अथवा इसके पर्यायवाची शब्दों से संबोधित किया है । /गुण + धाम/"=गुण के धाम" वाले शब्द की रचना तुलसी ने "गुण" के साथ "धाम" §गी.7/28§, "सिंधु" §वि.222§, "खानि" §वि.223§, "गेह" §वि.43§, "अयन" §वि.46§ जैसे शब्द जोडकर की है । त्यागराजु ने "गुण" के साथ "धाम" §त्या.96§, "निधि" §त्या.190§, "कोश" §त्या.202§, "आलय" §त्या.94§, "आकर" §त्या.1§ जैसे पर्याय प्रयुक्त इ किये हैं । इस प्रकार के शब्दों की आवृत्ति इस प्रकार है :

तु.गी.का.	त्या.	अन्तर
18	24	6

यह अंतर नगण्य ही है । इससे प्रवृत्तिगत साम्य में अन्तर नहीं आता ।

4.2.1. सत्य :

सत्य ब्रह्म का स्वरूप है । इसी से निखिल-जगत की सत्ता है । यही जीवन का आधार है । इस रूप में ब्रह्म तुलसी और त्यागराजु की कल्पना में अवतरित हुआ है । तुलसी ने यदि राम को "सत्य संकल्प" (वि.54), "सत्यसंधान" (वि.55), "सत्य रत" (वि.53) और "सत्यव्रत" (वि.53) लिखा है तो त्यागराजु ने उनके लिए "सत्यसंघुडु" (त्या.131), "सत्यस्वरूप" (त्या.400) और "सत्य रूप" (त्या.450) जैसे शब्दों का प्रयोग किया है ।

4.2.2 शिवत्व :

राम का शील, सौंदर्य और शौर्य सभी मंगलमय है । विष्णु की स्तुति में भी -

मंगलं भगवान विष्णो, मंगलं गरूड ध्वजा ।
मंगलं पुंडरीकाक्षं, मंगलं यातनो हरि ।। -

कहा गया है । तुलसी के राम "मंगलमई" (वि.135), "महामंगल मूल" (वि.156) "सकल सुमंगल खानि" (गी.1/80), "सुभसर्वदा" (वि.56), "भद्र निधि" (वि.74), "कल्यानरासी" (वि.56), "सिव" (वि.61) और "अखिल-मंगल-भवन" (वि.61) हैं । त्यागराजु ने भी राम को "मंगलाकारूडु" (त्या.99), "मंगलकर" (त्या.406), [भावुक] "=मंगल स्वरूप" (त्या.498), "परम कल्याण" (प्रभवि. पृ.13), "शिव" (त्या.607) और "शुभाकार" (त्या.353) कहा है ।

4.2.3 सुंदर :

शील और शक्ति के साथ जब सौंदर्य का संयोग हो जाता है तो नायक की कल्पना पूर्ण हो जाती है । दोनों ही कवियों ने शील और शक्ति के साथ राम के सौंदर्य का भी विशद वर्णन किया है ।

4.2.31 सौंदर्य :

सौंदर्य सामान्य रूप से आंतरिक और बाह्य दोनों ही प्रकारों को व्यक्त करता है । सौंदर्य सहज भी हो सकता है और आहार्य भी । तुलसी ने राम के लिए "सहज सुंदर" ﴾वि.56﴿ विशेषण का प्रयोग किया है । दोनों ही कवियों ने अपनी वृत्तियों को राम के अंग सौंदर्य पर केन्द्रित किया है । तुलसी ने राम को "मधुरमूरति" ﴾वि.135﴿ कहा है । इसी प्रकार त्यागराजु ने /सुंदरांगुडु/ "=सुंदर अंगवाला" ﴾त्या.191﴿, "सुंदराकार" ﴾त्या.60﴿, "सुंदरमूर्ति" ﴾त्या.168﴿ /अंदगाडु/ "= सुंदर शरीरवाला" ﴾त्या.45﴿ जैसे शब्दों को राम के लिए प्रयुक्त किया है । जिस प्रकार तुलसी ने सौंदर्य के एक प्रकार "मधुर" का प्रयोग किया है उसी प्रकार त्यागराजु ने "लावण्य" ﴾त्या.489﴿ का प्रयोग । त्यागराजु ने राम के अंग-सौंदर्य में दिव्यता को झाँकते हुए देखा है - "दिव्य सुंदर" ﴾त्या.265﴿ ।

सुंदरता के लिए "कमनीय" ﴾त्या.380﴿, "रम्य" ﴾वि.53﴿, "मंजु" ﴾वि.56﴿ ﴾त्या.19﴿ आदि शब्दों का प्रयोग भी दोनों कवियों के गीतों में मिलते हैं । सौंदर्य के प्रभाव को व्यक्त करनेवाला शब्द "मनोहर" या "मोहन" ﴾कृ.गी.23; त्या.429﴿ है जिनका प्रयोग दोनों आलोच्य कवियों ने किया है ।

राम का सौंदर्य सर्वातिशय है । तुलसी ने इस भाव को "भुवनाभिराम" ﴾वि.49﴿, "सर्वाभिराम" ﴾वि.53﴿ जैसे शब्दों से व्यक्त किया है । त्यागराजु ने भी राम को "सकल लोकाभिराम" ﴾त्या.438﴿ और "जगदभिराम" ﴾त्या.354﴿ कहा है ।

4.2.32 कोमल :

नायक का गुण है - वज्र से भी कठोर होना और फूल से भी कोमल होना । सौंदर्य के वर्ग के विशेषणों में कोमल का स्थान भी प्रमुख है । दोनों ही

कवियों ने इस रूप में भी राम को देखा है - "मृदुल" §वि.114§, "अतिकोमल §वि.166§, /सुकुमार/"=कोमल" §त्या.303§ "सललित" §त्या.269§ ।

4.2.3 पवित्र :

सौंदर्य के साथ पवित्रता का संयोग मणि कांचन संयोग ही है । दोनों ही कवियों ने सुंदर के साथ राम को "पावन" §वि.49; त्या.84§ शब्द का प्रयोग किया है । तुलसी ने पर्याय पद्धति से प्रेरित होकर "पुनीत" §वि.113§, "सुचि" §वि.157§, "सुविसुद्ध" §वि.53§ जैसे शब्दों का प्रयोग किया है । त्यागराजु के विशिष्ट पर्याय ये हैं : "शुभ्र" §त्या.1§, "पवित्र" §त्या.211§, और "पुण्य" §त्या.127§ ।

4.2.4. शीलवान :

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के इष्ट राम में शील, शक्ति और सौंदर्य के समावेश देखा है । सामान्य रूप से सभी रामभक्त इसी रूप में राम को देखते हैं । तुलसी ने शील के साथ "निधान" §वि.154§ "भवन" §वि.55§, "धाम" §गी.2/18§, "सिंधु" §गी.1/92§, "निधि" §गी.5/3§ जैसे शब्द जोड़कर नाम रचना की है । इस प्रकार के शब्दों की आवृत्ति आठ बार है । इसी प्रकार की रचना त्यागराजु में भी मिलती है : "शील निधानुडु" §त्या.181§ और "शीलसिंधु" §त्या.206§ । तुलसी और त्यागराजु ने इस रचना के अतिरिक्त केवल "शील" §वि.78; त्या.565§ और "सुशील" §वि.157; त्या.की.234§ शब्दों का भी प्रयोग किया है ।

त्यागराजु ने सच्चरित्रता और सदाचार के संदर्भ में भी राम के शील का संकेत किया है । विशेष रूप से परनारी को बहन और माँ के समान देखनेवाले राम हैं - "परनारी सोदर" §त्या.3§, "परनारुल तल्लुलवले जूचेराम" §त्या.269§ । तुलसी की नाम रचना में यह संदर्भ प्रविष्ट नहीं हुआ है ।

त्यागराजु ने समस्त दुष्कर्मों और कामादि मनोविकारों से मुक्त

रहनेवाले राम का शील देखा है - "गर्व मानस दूर" * (त्या.4),
"पर कामिनी दूर" (त्या.184), "दुर्जन दूर" (त्या.411), "मदमोह रहित"
(त्या.23), "विरहित दोष" (त्या.211) आदि शब्द इसके प्रतीक हैं ।
तुलसीदास ने भी राम को कामादि मनोविकारों से मुक्त देखा है - "क्रोधगत"
(वि.60), "गत भेद" (वि.54) और "गतमन्यु" (वि.54) ।

4.2.5 शक्ति :

विष्णु के अवतारों की शक्ति का संबंध भक्तों, देवों, पृथ्वी की प्रतिकूल शक्ति के शमन से है । इस रूप में नायक के परंपरागत गुणों का आरोप राम पर किया गया है ।

4.2.51 धीर :

काव्य-शास्त्र में महाकाव्य के नायक में धीरता के गुण को आवश्यक माना है । इसी के आधार पर धीरोदात्त, धीरोद्धत्त और धीर ललित के रूप में नायकों का विभाजन किया गया है । तुलसी और त्यागराजु दोनों ही राम को "धीर" (वि.110; त्या.174) के रूप में देखते हैं । तुलसी ने धीर के स्थान पर "धीरधुर" (वि.152) शब्द का भी प्रयोग किया है । त्यागराजु ने धीर के स्थान पर "रणधीर" (त्या.434) शब्द का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त त्यागराजु ने धीर राम को पर्वत से भी उपमित किया है, जैसे : "धरणीधर धीर" (त्या.432), "कनकाचलधीर" (त्या.408), "कनकागधीर" (त्या.412) और "महामेरुधीर" (त्या.198) । अलंकरण की यह प्रवृत्ति तुलसी में नहीं है ।

धीर का एक समानार्थक शब्द "गभीर" (वि.54; त्या. 408) भी है जिसका प्रयोग दोनों कवियों ने किया है । त्यागराजु ने "जलधिगभीर" (त्या.95), /निंडुकुंडा/"= जल से पूर्ण भरा कुंभ" (त्या.168) लिखकर इस बिंब का अलंकरण दिया है ।

---

* - "दूर" का अर्थ दूर रहनेवाला या मुक्त ।

धीरता का संदर्भ केवल युद्ध नहीं, धर्म भी है । इस संदर्भ को प्रकट करने वाले नाम तुलसी के गीत-काव्यों में ये मिलते हैं : "धरम-धुरीन-धीर" {गी.2/33}, "धरम-धुरंधर" {वि.152} और "धार्मिक-धुर-धीर" {वि.43} ।

4.2.52 शूर:वीर :

वीरता भी नायक का नैज गुण माना गया है । दोनों कवियों के इष्टदेव शूर या वीर है । तुलसी ने वीर को "महा" विशेषण से युक्त करके "वीरमहा" {वि.108} शब्द की रचना की है । त्यागराजु ने वीर शब्द को कई शब्दों से संदर्भित किया है, जैसे : "वीरवर" {प्रभवि.पृ.18}, "वर वीर वीर" {त्या.607}, "समरैक वीर" {त्या.4} । इसी प्रकार त्यागराजु ने "शूर" शब्द को भी विशिष्ट बनाया है - "रणाधि शूर" {त्या.435}, "निरूपम शूर" {त्या.110}, "असमान शूर" {त्या.14} और "समरैक शूर" {त्या.532} । यह प्रवृत्ति तुलसी में नहीं है ।

4.2.53 आयुध-धारी :

विष्णु के भीतर से शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी राम का उभरता हुआ बिंब दोनों ही कवियों ने देखा है । तुलसी ने लिखा : "चारि भुज चक्र कौमोदकी, जलज दर धारी,"* और त्यागराजु ने भी लिखा : शंख चक्र शार्ग नंदक गदा पंचायुध धरूडु"[2] । राम अन्य आयुध धारण किये हुए भी संमूर्तित किया गया है । तुलसी ने इस वीर-वेष की सामासिक नाम रचना यह की है : "सुभग सारंग सुनिखंग सायक शक्ति चारु चर्मासि-वरवर्म धारी".[3] सामान्य रूप से दोनों ही कवियों ने राम को "कोदंडधारी"[4] के रूप में देखा है । कभी-कभी "धनुष और बाण"[5] को लिये हुए राम का चित्र उपस्थित होता

---

* वि.61 2 प्रभवि. पृ.21 3 वि. 44

4 कोदंडधर - वि.56 ; प्रभवि.पृ.25

5 शर चाप धर - वि. 453; त्या.286

है । इस प्रकार राम का वीर-वेष दोनों कवियों के काव्य में मुखर है ।

4.2.54 बलिष्ट :

राम को दोनों कवियों ने अक्षय बल से युक्त माना है । जहाँ तुलसी ने राम को "सबल" §वि.180§, "बलवान" §वि.54§, "बलमप्रमेय" §वि.50§, "तेजबल सर्वरासी" §वि.60§ और "अभितबल" §वि.61§ जैसे शब्दों के द्वारा अभिहित किया है वहाँ त्यागराजु ने "बलातिबल" §त्या.540§, "अमितबल" §त्या.311§, "अमितपराक्रम" §त्या.185§, /शक्तुडु/"=शक्तिवान" §त्या.328§ और "भीम पराक्रम" §त्या.294§ जैसे शब्दों को राम के लिए प्रयुक्त किया है । तुलसी ने राम को "समरथ" §वि.154§ कहकर भी बल का भाव प्रकट किया है तो त्यागराजु ने "समरहित" §त्या.119§ कहकर ।

4.2.55 विजयी : अजेय :

तुलसी ने विजयी राम के बिंब को अपनी कल्पना में उतारा है । यह बिंब इन शब्दों के द्वारा प्रमाणित होता है : "सर्वजित" §वि.56§ "जगत-बिजई" §वि.139§, /बीर बिस्व बिजई जई/"=विश्व विजयी वीरों को जीतने वाले" §गी.5/38§ और "अजित " §वि.211§ । इस प्रकार के बिंब त्यागराजु में नहीं मिलते हैं ।

तुलसी ने इंद्रिय विजयी के रूप में भी राम को देखा है : "दम भवन" §वि.56§ और /हृषीकेस/ "=इंद्रियों का स्वामी" §वि.119§ । त्यागराजु ने /दांता/"= इंद्रियों को जीतनेवाले" §त्या.47§ शब्द को इसी अर्थ में प्रयोग किया है । इंद्रिय-विजय वीरता का चरम है ।

4.2.6 करूणामूर्ति :

राम का भक्त-संदर्भीय सबसे महत्वपूर्ण गुण करूणा है । इसी वर्ग में कृपा और दया भी सम्मिलित हो जाती है । दोनों ही कवियों ने इस गुण के "धाम" के रूप में राम को देखा है । तुलसी ने करूणा वर्ग के शब्दों के साथ

"धाम"* के इन पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है : "समुद्र"[2], "कोस"[3], "निधि"[4], "आकर"[5] "आयन"[6], "निकेत"[7], "निधान"[8] आदि । त्यागराजु ने भी इस राम की गुण-रचना में इन्हीं पर्यायों का प्रयोग किया है । केवल "आलवाला"[9] शब्द का प्रयोग तुलसी से विशिष्ट है ।

इनके अतिरिक्त तुलसी और त्यागराजु दोनों कवियों ने राम के शुद्ध गुणवाची विशेषणों का भी प्रयोग किया है, जैसे : "दयालु"[10], "सदय"[11], "कृपालु"[12], "करूणा स्वभाव"[13], "कृपामई"[14], "परम कारूणीक"[15] "करूणामूर्ति"[16] आदि ।

---

* परम करूना धाम - गी.7/5

2 कृपासमुद्र - वि.205; करूणा समुद्र - त्या.138

3 परम करूना कोस - वि.197 ; करूणा राशि - त्या.36

4 दयानिधि - गी.5/10; करूणानिधि - त्या.97

5 करूनाकर - कृ.गी.23; करूणाकर - त्या.171

6 करूनायन - वि.60; करूनापयोधि - त्या.412

7 करूनानिकेत - गी.7/7; सुकृपालय - त्या. 345

8 कृपानिधान- गी.1/38; परम दयानिधान - त्या.40

9 "दयाल वाला" - त्या.588

10. गी.2/74; त्या.34

11. वि.219 ; त्या.74

12. कृ.गी.60; प्रभवि. पृ.19

13. गी.5/9; प्रभवि. पृ. 20

14. वि. 170; प्रभवि.पृ. 25

15. वि. 46 ; त्या.339

16. गी.2/20; त्या. 97

4.2.7 ज्ञान-बंधु :

उपनिषद् में ब्रह्म को ज्ञान रूप कहा गया है । तुलसी और त्यागराजु के इष्टदेव भी ज्ञान-स्वरूप है । इस भावना को विविध शब्दों के द्वारा दोनों कवियों ने व्यक्त किया है । तुलसी की शब्दावली इस प्रकार है : "ग्यान" (वि.54), "ग्यान प्रिय" (वि.54), "ग्यान-निधान" (वि.244), "घनग्यान" (वि.52), "ग्यान-मूल" (वि.60), "बोधायतन" (वि.263), "बोधैक" (वि.52), "बोधरत" (वि.60), "ग्यानदू गिरा के स्वामी" (वि.263) और /सुधी/ "= बुद्धिमान" (वि.193) । तुलसीदास ने इन शब्दों के अतिरिक्त "प्रवीन" (वि.269), "सयाने" (वि.261), "सुजानमनि" (गी.2/8) जैसे शब्दों का भी प्रयोग किया है । त्यागराजु ने इस बिंब का संकोच किया है । इसलिए शायद तीन शब्द ही उनके गीतों में मिलते हैं : "सुज्ञान निधि" (त्या.265), "बुद्धिशाली" (त्या.342), और /जानुडु/"=चतुर" (त्या.196) ।

विश्व में जो कुछ ज्ञान है उसका प्रतीक वेद है और वेद ज्ञान का मूल स्रोत ब्रह्म है । इसीलिए तुलसी ने राम ब्रह्म को "श्रुतिमाथ" (वि.55) कहा और त्यागराजु ने "श्रुतिमूल" (त्या.506) । वेद में वही ब्रह्म ख्याल भी है । इसलिए उसको "वेद विख्यात" (वि.55) के रूप में तुलसी ने देखा है । ज्ञान वर्ग के अन्य शब्द त्यागराजु में ये मिलते हैं : "साक्षी" (त्या.155), "जगत्साक्षी" (त्या.97) और "सर्वसाक्षी" (त्या.246) ।

4.2.8 कला प्रिय :

पौराणिक और पांचरात्र साहित्य में विष्णु की संगीतप्रियता के संबंध में अनेक कथन मिलते हैं । विष्णु संगीतात्मक भक्ति-साधना से जल्दी द्रवित हो जाते है । त्यागराजु की साधना संगीतात्मक थी और नारद भी इसी कोटि के साधक थे । तुलसी के गीत-काव्य में राम का यह रूप अज्ञात है, किन्तु त्यागराजु ने संगीत और नृत्य संबंधी विविध शब्दावली के द्वारा इस बिंब का

विशदीकरण किया है । त्यागराजु के राम नादब्रह्म के प्रतीक है : "नाद ब्रह्मानंद रसाकृति" (त्या.305) और "नाद ब्रह्मानंद रूप" (त्या.209) । वे संगीत प्रिय भी है : "गानलोल" (त्या.128), "संगीतलोल" (त्या.79), "संगीतप्रिय" (त्या.22), "संगीत संप्रदायकुडु" (त्या.3), "नारद गानलोल" (त्या.412), "श्रीनारद गान प्रिय" (त्या.50), "सामगान लोल" (त्या.5), "रागरसिक" (त्या.288), "सप्तस्वर चारी" (त्या.500) और "नृत्यजन प्रिय" (त्या.343) ।

तुलसी में यदि ज्ञान का वैशिष्ट्य है तो त्यागराजु में संगीत-कला का ।

4.3. अन्य गुणवाची विशेषण :

4.3.1 समान विशेषण :

राम के गुणों को व्यक्त करने वाले अन्य विशेषणों का भी उल्लेख दोनों कवियों ने किया है । दोनों कवियों में समान रूप से प्रयुक्त विशेषण निम्न लिखित है -

विशेषण	तुलसी	त्यागराजु	विशेष
सरस	वि.207	त्या.144	रसो वैस: की कोटि
मानद *	वि. 56	त्या.128	भक्त स्वाभिमान संदर्भ
उदार	वि.113	त्या.484	स्वभाव गुण
सुकर/सुलभ	वि. 54	त्या. 355	दुराराध्य ब्रह्म का वैसा दृश्य

* "मान रक्षक" (त्या.128) और "मान घन" (त्या.91) जैसे विशेषणों का प्रयोग त्यागराजु ने इसके समान अर्थ में किया है ।

तपस्वी *	वि• 55	त्या• 67	वैखानस प्रकृति और लीला
शरण लायक	वि•206	त्या• 95	शरणागत वत्सलता
शांत	वि• 53	त्या•408	शांताकारम् भुजगशयन------

4•3•2 केवल तुलसी के विशेषण :

तुलसीदास के गीत-काव्य में कुछ ऐसे विशेषण मिल जाते हैं जो त्यागराजु की कल्पना से परे हैं, जैसे : "प्रेरक" (वि•53), "मनस्वी" (वि•55), "भजि बेलायक" (वि•207), "संतुष्ट" (वि•53), "विश्राम धाम" (गी•5/17)" "त्यागी" (वि•114), "नवीन" (वि•274), "सबलायक" (वि•223), "सब को दाहिनो" (वि•77), "कौतुकी" (गी•1/25), "गर्वघ्न" (वि•54) आदि ।

4•3•3 केवल त्यागराजु के विशेषण :

त्यागराजु ने भी राम के लिए कुछ ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया है जो तुलसी के गीत-काव्य में नहीं मिलते, जैसे : "सुप्रसन्न" (त्या•450), "पूज्य" (त्या•91), "महानुभाव" (त्या•63), "अद्भुत" (त्या•171), "उद्दंड" (त्या•450), "रसिक" (त्या•241), "रसिक शिरोमणि" (त्या•236), "श्रृंगारूडु" (त्या•196), "श्रृंगार जलधि" (त्या•216), "श्रृंगार शेखर" (त्या•601)

अन्य विशेषणों को देखने से यह प्रतीत होता है कि त्यागराजु ने राम को "श्रृंगार जलधि", "श्रृंगार शेखर" कहकर अपने को तुलसी से अलग कर

---

* जहाँ तुलसी ने "तपस्वी" (वि•55), "तपनिरत" (वि•60), "तपरूप" (वि•55) जैसे विशेषणों का प्रयोग राम के लिए किया है वहाँ त्यागराजु ने "मुनिवर वेष" (त्या•67) और "यतिवर जीवन" (त्या•607) आदि का ।

लिया है । साथ ही "रसिक शिरोमणि" एक विशिष्ट विशेषण है जो तुलसी की प्रकृति के अनुकूल नहीं । शेष विशेषणों में जो अन्तर है वह मूल प्रवृत्ति के अन्तर का परिचायक नहीं ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों आलोच्य कवियों का ध्यान पौराणिक और आगमीय परंपरा में मान्य षड्गुणों पर केन्द्रित रहा है । इनकी इस मान्यता के दो स्तंभ हैं - "रक्षा" और "उद्धार" । इन गुणों का इस प्रकार वर्णन किया गया है कि साध्य के अतिरिक या स्वाभाविक सौंदर्य की संरचना स्पष्ट हो जाती है ।

....

तीसरा अध्याय

साध्य : रूप संरचना

साध्य : रूप संरचना

०. प्रास्ताविक :

प्रत्येक आध्यात्मिक साधना में अरूप को रूपायित करना अभीष्ट होता है और यही अभीष्ट साहित्यकार का भी है । साधना पद्धति के अनुसार रूपायन की प्रविधियाँ बदलती हैं । जहाँ तक भाव-साधना के रूपायन की प्रविधि का संबंध है, वह तत्व को अपने रूप में ढालने का प्रयत्न करती है । अर्थात् तत्व को वह मानवाकार भावित करती है । जिस भाव-साधना में तत्व को नराकार कल्पित किया गया उसी से तुलसी और त्यागराजु का संबंध है । दोनों ही कवि अलौकिक तत्व को लौकिक संदर्भ में लाने के लिए प्रयत्नशील हैं । इस प्रक्रिया का प्रथम चरण रूप कल्पना कहा जा सकता है ।

"रूप" का धात्वार्थ है - जिसको बनाया गया या गढ़ा गया । तात्त्विक या औपचारिक सामग्री को नवीन वस्तु के रूप में संरचनात्मक प्रक्रिया से परिणत किया जाता है । उपकरणों की तात्त्विक प्रकृति को अक्षुण्ण रखते हुए भी नवीन रूप का निर्माण किया जा सकता है । रूप निर्माण द्रव्य (मेटर) या आधार भूत का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में रूपांतरण ही है । "रूप" के

पीछे प्राकृतिक या मानवीय संरचना-प्रक्रिया रहती है । "रूप" इन्द्रिय-संवेद्य होता है । आंतरिक रूप-रचना बौद्धिक परिज्ञान से संबंधित है । अंतिम विश्लेषण में बौद्धिक परिज्ञान भी कहीं-न-कहीं ऐच्छिक परिज्ञान से जुड़ा हुआ रहता है । किंतु "रूप" का पहला संबंध मानवीय इंद्रियों से ही होता है ।" * इस प्रकार इंद्रियातीत तत्व को इंद्रियगम्य के रूप में संरचित किया जाता है । अलौकिक का लौकिक रूपायन ही भक्ति-साहित्य का साध्य है । इस संरचना में अलौकिक और लौकिक तत्वों का ताना-बाना रहता है । इन दोनों को जोड़नेवाले तत्व मानवीय सौंदर्य और गुणों के उच्चतम प्रतिमान या आदर्श होते हैं । संरचना का झुकाव कभी लौकिकता की ओर अधिक हो जाता है और कभी अलौकिकता की ओर । इन दोनों का संतुलन ही साध्य के सौंदर्य-बोध को प्रस्तुत करता है । इस अध्याय में साध्य के रूप की संरचना को ही प्रकट किया गया है ।

1. नख-शिख :

मानवाकार साध्य का अंगदर्शन शास्त्रीय नख-शिख प्रणाली में लाया जाना भक्त कवियों को सुविधाजनक रहा है । शास्त्रीय अनुज्ञा यह रही है कि दिव्य विभूति का अंग दर्शन नख से आरंभ होना चाहिए । इससे एक ओर तो साध्य का महत्त्व ज्ञापित हो जाता है और दूसरी ओर भक्त कवि की विनय भी प्रकट हो जाती है । आलोच्य कवियों ने इसी पद्धति से साध्य का दर्शन करना श्रेयस्कर माना है । संरचना में सामान्य मानवीय अंग-प्रत्यंगों का उल्लेख भी है और वैशिष्ट्य के द्योतक तत्व भी अनुस्यूत हैं । एक ओर दिव्यता के द्योतक उपकरण हैं तो दूसरी ओर विविध विशेषताओं को प्रकट करनेवाले विशेषणों की संरचना भी है । प्रस्तुत के विशेषीकरण के लिए प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत की संरचना भी की गयी है । अप्रस्तुत की संरचना में अंग-प्रत्यंग समग्र रूप से आये हैं । अर्थात् उपकरण, आयुध, वस्त्रालंकार सभी को अलंकृत किया गया है । यही समग्र संरचना रूप की संरचना है । आगे इसी के विभागों का विश्लेषण किया गया है ।

* डा. चन्द्रभान रावत, डा. राम कुमार खण्डेलवाल, — समकालीन साहित्य समीक्षा, पृ. 160.

1.1. विशेष्य : संज्ञा संरचना :

संज्ञा की रचना में समस्त वर्णित अंग-प्रत्यंगों के नाम आते हैं। तुलसी और त्यागराजु दोनों ही कवियों ने इन अंग-प्रत्यंगों का दर्शन किया है : चरण, नख, कटि, नाभि, वक्षस्थल, बाहु, ग्रीवा, अधर, दन्त, कपोल, कर्ण, नासिका, नयन, भौंह, भाल, केश तथा आनन। तुलसी ने जंघा, रोमावली और चिबुक को भी नख-शिख में सम्मिलित कर लिया है।

1.2. विशेषण संरचना :

विशेषण संज्ञा को नवजीवन और संज्ञा के अर्थ को नयी दिशा प्रदान करते हैं। राम के अंग-प्रत्यंगों के लिए अलंकरण-प्रक्रिया में जितनी रूचि आलोच्य कवियों ने ली है उतनी विशेषण-प्रक्रिया में नहीं ली। आवृत्ति की दृष्टि से भी विशेषण का स्थान द्वैतीयिक है। तुलसी ने राम के चरणों के लिए चार रूढ़ विशेषणों का प्रयोग किया है : "मृदुल" (वि.62), "कोमल" (गी.2/16), "ललित" (गी.1/10) और "अरून" (गी.1/41)। त्यागराजु ने भी चार विशेषण प्रयुक्त किये हैं : "अरूण" (त्या.141); "शोभायमान" (त्या.528); "अंदमौ"= सुन्दर (त्या.14) और "तरूण" (त्या.432)। विशेषण युग्म का प्रयोग भी त्यागराजु ने किया है - "तरूणारूण" (त्या.432)। इतने से ही संतुष्ट नहीं होकर उन्होंने राम के चरणों को त्रिसूत्री विशेषण से रम्य बनाया - "तरूणारूणातिसुंदर" (त्या.7)।

नेत्र के लिए तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही समान विशेषणों का प्रयोग किया है। अंतर इतना है कि त्यागराजु ने संस्कृत विशेषणों की अपेक्षा तेलुगु विशेषणों का प्रयोग अधिक किया है। दोनों कवियों में मिलनेवाले संस्कृत शैली के समान विशेषण ये है - "विशाल" (गी.1/62, त्या.562); "चारू" (कृ.गी.14, त्या.604) और "करूणाद्र" (गी.1/26, त्या.393) इनके अतिरिक्त तुलसी ने "सुभग" (कृ.गी.22), "सुन्दर" (वि.63), "वक्र" (वि.51), "ललित" (गी.2/20) जैसे विशेषण और भी प्रयुक्त किये हैं।

त्यागराजु ने संस्कृत शैली का एक विशेषण "घृणारसपूर्ण"=करूणा रसपूर्ण ﴾त्या.564﴿ का प्रयोग किया है । त्यागराजु के द्वारा तेलुगु के प्रयुक्त विशेषण ये हैं : "सोग"= सुन्दर ﴾त्या.45﴿, "तेट"=प्रकाशमान ﴾त्या.24﴿, "चेरडेसि"=विशाल ﴾त्या.143﴿, "चल्लनिचूपुल"=शीतल दृष्टिवाले ﴾त्या.43﴿ और "ओर"=वक्र ﴾त्या.127﴿ । अर्थ की दृष्टि से तेलुगु विशेषणों के द्वारा किसी विशिष्ट प्रवृत्ति का संकेत नहीं मिलता ।

दोनों ही कवियों की दृष्टि राम के नेत्रों में संचरित करूणारस पर है । दोनों ही कवियों ने इस विशेषण की दीर्घ सामासिक रचना भी की है । यही इस बात का प्रमाण है । तुलसी की सामासिक रचना इस प्रकार है : "बिलोकनि चारू प्रनतजन-सुखद करूनाद्रसील" ﴾वि.61﴿ । इसी प्रकार त्यागराजु ने भी दीर्घ रचना की है : "करूणारसमु निंडिन कन्नुलु" ﴾त्या.196﴿ ।

मुख के विशेषणों की दृष्टि से त्यागराजु का वैशिष्ट्य स्पष्ट है । तुलसी ने सामान्य रूप से आठ विशेषणों का प्रयोग किया है : "सु सुंदर" ﴾वि.56﴿; "सुखमानिधि" ﴾गी.1/34﴿; "सोभासदन" ﴾गी.2/9﴿; "लोने" ﴾गी.1/53﴿; "ललित" ﴾कृ.गी.14﴿, "चारू"﴾गी.7/10﴿; "अमित छबि छाई" ﴾वि.62﴿ और "अतिललित मनोहर" ﴾कृ.गी.33﴿ । त्यागराजु ने संस्कृत शैली के इन विशेषणों का प्रयोग किया है : "सुन्दर" ﴾त्या.466﴿; "शुभकर" ﴾त्या.607﴿; "मंजुल" ﴾प्रभवि.पृ.31﴿; "कमनीय" ﴾प्रभवि. पृ.20﴿; "रमनीय" ﴾त्या.203﴿; "अकलंक" ﴾त्या.620﴿ और "वर" ﴾त्या.307﴿ । इनके अतिरिक्त उनके कीर्तनों में तेलुगु क विशेषणों का वैविध्य मिलता है : "चक्कनि"= सुन्दर ﴾त्या.2﴿; "मुद्दुगारू"=प्यारे ﴾त्या.149﴿; "कलकलमनु"= आलौकिक ﴾त्या.269﴿; "पालुगारू"=दूध टपकटने वाला अर्थात् कोमल और स्वच्छ ﴾त्या.86﴿ और "नगुमोगु"= हंसमुख ﴾त्या.265﴿ ।

तुलसी ने भुजाओं के लिए "पीन" ﴾वि.46﴿; "आजानु" ﴾वि.45﴿; "विशाल" ﴾वि.167﴿; "जानुलंबित" ﴾गी.1/97﴿; "प्रलंब" ﴾गी.2/36﴿;

"प्रलंब" §गी.2/36§; "बिपुल" §गी.1/56§; "अमितबल" §गी.7/21§; "महा" §गी.1/68§; "वर" §गी.2/2§; "कमनीय" §गी.3/4§; "मनोहर" §गी.1/108§; ललित §गी.3/2§; और "कोमल" §गी.1/109§; विशेषण प्रयुक्त किये हैं । इनमें से "आजानु" §त्या.154§ का प्रयोग त्यागराजु ने भी किया है । त्यागराजु ने "कडुदीर्घ" §प्रभवि.पृ.20§; "अभयप्रद" §त्या.623§ और "रमणीय" §त्या.312§ विशेषण भी जोडे हैं । प्रवृत्ति का कोई विशिष्ट अन्तर इससे नहीं होता । केवल अभयदान देने वाले हाथ भक्त-संदर्भीय बिंब प्रस्तुत करते हैं ।

कुछ अंग तुलसी के द्वारा ही विशेषणों के विशेष्य बनाये गये हैं । त्यागराजु ने उन अंगों को ही नहीं लिया है । इनमें "सुन्दर" §चारु, रुचिर और ललित§ विशेषण तो सामान्य है जिसका प्रयोग किसी भी अंग के साथ हो सकता है । इस प्रकार का विशेषण क "वर" भी है । इनके अतिरिक्त तुलसी ने नाभि को "गंभीर" §वि.पृ.63§, वक्ष को "विशाल" §वि.62§; "सुभग" §कृ.गी.14§, ग्रीवा को "छबिसीव" §वि.63§; "सोभासीव" §वि.62§ और "सुखसीव"§वि.61§ तथा नासा को "सुउन्नत" §गी.7/12§ कहा है । त्यागराजु ने दांत को "सुन्दर" §त्या.356§ एवं "सुरुचिर" §त्या.373§ कहा ही है, इनके लिए "सदमल" = श्वेत §त्या.534§ विशेषण भी प्रयुक्त हुआ है ।

बाल, भाल, अधर और कपोल दोनों ही कवियों के लिए विशेष्य हैं । बालों के लिए तुलसी का "कुंचित" §वि.62§ और त्यागराजु का "कुटिल" §त्या.19§ समानार्थक विशेषण ही हैं । तुलसी ने भाल के लिए "भलि" §वि.44§ और त्यागराजु ने "शुभ" §त्या.4§; "दिव्य" §त्या.247§ विशेषणों का प्रयोग किया है । ये दोनों भी प्राय: समानार्थक हैं । तुलसी और त्यागराजु दोनों ही अधर की "अरुणता" §गी.7/17; त्या.373§ में रमे । सामान्य रूप से तुलसी ने अधर के लिए "मनोहर" §गी.1/24§; "ललित" §गी.7/21§ और "वर" §वि.61§ भी कहा है । त्यागराजु की दृष्टि अधरों के माधुर्य पर भी

केन्द्रित है : "माधुर्यपूर्णाधर" ‹त्या. 405› । जहाँ तुलसी ने कपोलों को "रुचिर" ‹वि.63› कहा वहाँ त्यागराजु ने तेलुगु विशेषण का प्रयोग किया है - "तलुकु"=द्युतिमान ‹त्या.556› । इसके अतिरिक्त तुलसी ने "कल"=सुंदर ‹गी.1/34› "मंजुल" ‹गी.7/17›; "सुभ" ‹कृ.गी.21›; "छबिसीव" ‹गी.7/16› आदि विशेषणों का प्रयोग कपोलों के लिए किया है ।

1.3. अलंकरण की संरचना :

धात्वार्थ की दृष्टि से अलंकरण पर्याप्त या संपूर्ण बनाने की प्रक्रिया है । संरचना की दृष्टि से यह प्रक्रिया एक संदर्भ के उत्कर्ष के लिए दूसरे संदर्भ की योजना मानी जा सकती है । भक्त कवि की दृष्टि से जब भावुक मन केवल नामोल्लेख और विशेषण संरचना से संतुष्ट नहीं होता तब साध्य के बिंब के विशदीकरण के लिए अलंकार की प्रक्रिया में प्रवृत्त होता है । उसकी वृत्ति ~~अनिर्वचनीय~~ अनिर्वचनीयता से आरंभ होती है और अनन्वय, प्रतीप आदि की प्रक्रियाओं से होती हुई लघु-दीर्घ योजनायें करके तृप्ति की खोज करती है । मुख्य रूप से समस्त आकाश, समुद्र, धरती- अपने-अपने सौंदर्योपकरणों को प्रस्तावित करते हैं और भक्त कवि उनमें से चुनाव करता है और यह अनुभव भी करता चलता है कि प्रस्तुत के सामने अप्रस्तुत हतप्रभ या निस्तेज हो रहा है । इन्हीं सब स्तरों की खोज प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत की गयी है ।

1.3.1. चरण :

जहाँ तक उपमान-योजना का प्रश्न है दोनों ही कवियों ने रूढ़ रूप से "कमल" को ही ग्रहण किया है । अपवाद रूप से तुलसी ने एक स्थान पर चरणों को "नौका" ‹वि.92› तथा एक जगह पर "अंकुश" ‹वि.102› कहा है । "कमल" उपमान के आधार पर ही दोनों कवियों ने चरण-सौन्दर्य के वर्णन को बल प्रदान किया है । उपमान का रूप यह बनता है :-

उपमान	पर्याय			कुल आवृत्ति	
	दोनों में समान	केवल तु.गी.का.	केवल त्या	तु.गी.का.	त्या.
कमल	पाँच *	छः[2]	छः[3]	58	46

इस तालिका के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तुलसी और त्यागराजु दोनों की वृत्ति राम के चरणों पर ही अधिक केन्द्रित थी । दोनों ही कवियों की दृष्टि में राम के चरणों में कमल जैसी सरसता, मधुरता, कोमलता और सुरभि का विवास है । पर्यायों की दृष्टि से भी दोनों कवियों में आवृत्ति का अन्तर नगण्य है ।

दोनों ही कवियों ने राम के चरणों के लिए दो-दो बार "पल्लव"[4] उपमान का भी प्रयोग किया है । चरणों के संबंध में इन दोनों के बीच जितनी समानता मिलती है उतनी अन्य किसी अंग की अलंकृति में नहीं मिलती ।

दोनों कवियों ने राम-चरण के उपमान "कमल" का विशेषणों के द्वारा विशेषीकरण भी किया है । जैसे तुलसी ने कमल के लिए "अरूण" (अरून बारिज: गी.2/18) विशेषण का प्रयोग किया है । एक स्थान पर "तरूण" और "अरूण"

---

* कमल (वि.105, त्या.297); सरोज (वि.135, त्या.343); अरविंद (कृ.गी.23, प्रभवि. पृ.21); पंकज (गी.2/54, त्या.36); अंभोज (वि.63, प्रभवि. पृ.18)

2. पद्म (गी.1/57); सरोरूह (गी.2/13); बारिज (गी.2/18); पाथोज (वि.61); कंज (वि.69); जलजात (गी.7/19) ।

3 अंभोरूह (प्रभवि.पृ.30); नीरज (त्या.147); अब्ज (त्या.177); कुशेश (त्या.49); सारस (त्या.216); राजीव (त्या.431) ।

4 भवदंघ्रिपल्लव : वि.57 ; पदपल्लवमुलु : त्या.553

दो विशेषणों का प्रयोग किया गया है : "तरून अरून अंभोज" {वि.63} । त्यागराजु ने भी "अरुण" {जलजारुण: त्या.202} विशेषण का प्रयोग किया है ।

1.3.2. नख :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही चरणों के साथ नखों का सौंदर्य भी देखा है । तुलसी ने नख-द्युति पर अपनी दृष्टि को केन्द्रित किया है । उन्होंने "नख दुति इंदु प्रकास" * कहकर बिंब परक अलंकार की सृष्टि की है । इसके द्वारा हृदय का अज्ञानांधकार नष्ट होता है ।[2] यह रचना एक उपमेय और एक उपमान की है । नख की द्युति का अलंकरण करते हुए तुलसी ने दो उपमेयों और दो उपमानों की संरचना के द्वारा भी राम के नील चरणों में उनकी स्थिति बतलाई है :[3]

नील चरण	नख
↓	↓
नील कमल	नीलकमल पर मणि ।

अर्थात् नील चरणों में नख इस प्रकार क शोभित हो रहे हैं जैसे नील कमल पर मणि कण बिखरे गये हों ।

भक्त कवि तुलसी की अलंकार और चमत्कार वृत्ति नख-सौन्दर्य के इतने विशदीकरण से संतुष्ट नहीं होती । अलंकार को और भी विस्तृत यानी त्रिसूत्री रचना में तुलसी प्रवृत्त होते हैं । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :-

---

* गी. 2 7/21/13

2 "नख-दुति हृदय-तिमिर-हारी" - वि.63/2

3 पदज नख अति अभूत उपमाई ।
अरून नील पाथोज-प्रसव जनु, मनिजुत दल-समुदाई ।।
- वही. 62/3

उपमेय	उपमेय का तुलनीय रंग	उपमान	
पैरों का पृष्ठ भाग	श्याम	यमुना	
तलुए	अरूण	सरस्वती	= त्रिवेणी *
नखावली	शुक्ल	गंगा	

और एक रचना इस प्रकार है :-

उपमेय	उपमेय का तुलनीय रंग	उपमान
पैर ॥लुप्त॥	नील	नीलकमल
तलुए ॥लुप्त॥	लाल	अरून-प्रभा
नख	श्वेत	तुषार-कन ।[2]

त्यागराजु ने भी नख-प्रकाश पर ही ध्यान दिया है । नखों के प्रकाश के सामने चन्द्रमा का प्रकाश भी क्षीण पड जाता है ।[3]

1.3.3 जंघा :

नख सौंदर्य में डूबती उतराती कवि-कल्पना उर्ध्वमुखी होकर जंघा पर रूकती है । कवि कभी अकेले "जंघा" शब्द का प्रयोग करता है और कभी "उरू और जानु" तथा "जंघा जानु" शब्द युग्मों का प्रयोग करता है । इनके परंपरित उपमान ठैराते हैं : "मरकत खंभ",[4] "कदली"[5] तथा "करिकर"[6] ॥=हाथी के सूंड॥ । इनके अतिरिक्त कवि की अन्वेषण वृत्ति "काम-तून"[7] ॥=काम के तूनीर॥ को उपमान के रूप में नियोजित करती है । तुलना की दृष्टि से

---

* स्याम बरन पद-पीठ, अरूनतल, लसति बिसद नखश्रेनी ।
जनु रबि-सुता-सारदा-सुरसरि मिलि चली ललित त्रिबेनी ।। - गी. 7/15/2

2 राजत नख जनु कमल-दलनि पर अरून-प्रभा-रंजित तुषार-कन । - वही 7/16/2

3 "चरणयुग नखावलि कांतुलु चंदरू पिल्ललनु गेरा" - त्या. 247/4

4 गी. 7/21/12 5 वही 7/16/3 6 वही 7/17/5

7 वही 7/17/5

यदि देखा जाय तो नख की अलंकार-रचना जितनी विशद और बहु आयामी है उतनी जंघाओं की नहीं । जैसे नख-शिख वर्णन की एक औपचारिकता का ही निर्वाह कवि कर रहा हो ।

1.3.4. कटितट :

जंघा के पश्चात् कवि की अलंकार वृत्ति कटितट की ओर आरोहण करती है । कटि का पुराना उपमान केहरि ही तुलसी खोज पाये * और उसका न कोई विशेषीकरण ही किया गया और न कोई जटिल अलंकार योजना ही । त्यागराजु ने तुलसी की भांति उपमान तो नहीं प्रयुक्त किया, किंतु मेखला को अवश्य देखा । इसका परिचय आगे दिया गया है ।

1.3.5 नाभि :

कटितट के पश्चात् तुलसी की कल्पना-लता नाभि के पास तक फैली। केवल दो रूढ़ उपमान देकर कवि कर्म की औपचारिकता पूरी की गयी है। एक उपमान है कमल जिसके दो पर्याय तुलसी ने प्रयुक्त किये -- "वनज"[2] और " पाथोज" [3]। दूसरा उपमान "सर" या " सरोवर" है[4]।इस सरोवर के लिए "गंभीर" विशेषण जोड़कर वैशिष्ट्य उत्पन्न किया गया है -- "गंभीर नाभिसर"। साथ ही एक विशेषण उपवाक्य का प्रयोग करके उपमान की अलौकिकता की ओर संकेत दिया गया है - " जहँ उपजे बिरंचि ग्यानी "।[5]

नाभि प्रदेश में ही त्रिवली और रोमावली सुशोभित है । त्रिवली को तुलसी की कारयित्री प्रतिभा ने सीढ़ी के रूप में देखा और रोमराजी को सेवार के रूप में ।[6]

---

* "मृगपति लंक" - गी.7/5/2

2 वि.54/6 | 3 वही. 50/2

4 गी. 7/17/6 | 5 वि. 63/3

6 त्रिवली निसेनिका, रोमराजि सैवल - छवि पावति" - गी.7/17/6

1.3.6. उर या वक्षस्थल :

नाभि के ऊपर स्थित उर या वक्ष आलंकारिक संरचना में नहीं आये, किंतु कृष्ण के उर को तुलसी ने जब दधि की बूंदों से सुसज्जित देखा तब एक उपमान बरबस फूट पडा :-

" सुभग उर दधिबुंद सुंदर लखि अपनपौ वारू ।
मनहु मरकत-मृदु-सिखर पर लसत बिसद तुषारू ।।" *

1.3.7. कर :

त्यागराजु ने जंघा से लेकर उर वर्णन तक तुलसी का साथ नहीं दिया । भुज वर्णन के संदर्भ में वे दोनों फिर एक धरातल पर आ जाते है । हाथ संबंधी अलंकरण प्रक्रिया में निम्नलिखित निष्कर्ष लिये जा सकते है :

(1) तुलसी ने अपने गीतकाव्यों में तैंतीस बार हाथों का उल्लेख किया है जबकि त्यागराजु ने तीन बार ही ।

(2) तुलसी ने हाथों के लिए " कमल" [2] उपमान का तीस बार प्रयोग किया है जबकि त्यागराजु ने इस उपमान का प्रयोग ही नहीं किया ।

(3) त्यागराजु ने कमल को छोडकर तीन उपमानों का प्रयोग किया है : "गजकर" (त्या.259) ; "शेष" (त्या.303) और "गिरि" (त्या.483) । इन तीनों उपमानों से तीन प्रतीकार्थ प्रकट होते है : गजकर= शक्ति, लचीलापन और सुढ़ौलता ; शेष = शक्ति और सुढ़ौलता ; गिरि= दृढ़ता और अभेद्यता । प्रतीकार्थ का यह वैविध्य तुलसी में भी मिल जाता है । जैसे - "भजग भोग" (वि.62) और "नाग-सुण्ड" (वि.63); किन्तु तीसरे प्रतीकार्थ उपमान उनके गीत काव्यों नहीं मिलता ।

(4) आवृत्ति की दृष्टि से तुलसी ने उपमेय को बलिष्ठ बनाया है और उपमान वैविध्य की दृष्टि से त्यागराजु ने उपमान को बलिष्ठ बनाया है ।

---

* कृगी. 14/3

2 कमल (वि.58), सरोज (वि.138). कंज (वि.45), अंभोज (वि.60), तामरस (गी.5/35) - इन पर्यायों का प्रयोग तुलसी ने किया है ।

1.3.8 ग्रीवा :

ग्रीवा को जहाँ तुलसी ने "दर" (वि.61) तथा "कंबु" (वि.63) से उपमित किया है वहाँ त्यागराजु ने "दर" (त्या.4) से । ग्रीवा के वर्णन में दोनों ने ही एक उपमान को चुना, किंतु तुलसी की दृष्टि गले की तीन रेखाओं पर भी गयी । उनका मानवीकरण करते हुए तुलसी ने कहा " लेहि कंठ-रेखैं चित चोरे" (गी.3/2) ।

1.3.9. अधर और दाँत :

ग्रीवा के बाद दोनों कवियों के अलंकार्य-अंगों में अधर और दाँत हैं । इनके संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष दिये जा सकते हैं -

(1) अधरों की अलंकरण-प्रक्रिया तुलसी एक बार और त्यागराजु दो बार किये हैं । तुलसी ने अधरों के लिए "बिंबा" (वि.51) उपमा दिया है, जबकि त्यागराजु ने " बिंबा " (त्या.623) के साथ साथ अधरों को "पल्लव"* से भी उपमित किया है । इस अंग के संबंध में अंतर नगण्य है ।

(2) दोनों कवियों ने दाँत के लिए " वज्र "[2] और "कुंद"[3] उपमानों का प्रयोग किया है । दोनों ने राम के दाँतों को वज्र जैसे बलिष्ठ तथा कुंद जैसे श्वेतवर्ण माना है ।

(3) अधर और दाँत का अलग-अलग वर्णन तो दोनों कवियों ने प्राय: समान रूप से किया, किंतु तुलसी का वैशिष्ठ्य इस बात में है कि उन्होंने अधर और दाँतों का सहज सांगत्य मानकर द्विसूत्री अलंकरण किया है :[4]

---

* त्या. 17(अ)/3

2 वि.51/4 ; त्या.24(अ)/2

3 वि. 62/9 ; त्या. 116/2

4 ललित अधर द्विज जोति अरून कंज महँ जनु
जुग पाँति रूचिर गज-मोति । - गी.7/21/8.

उपमेय	उपमान
अधर	अरूनकंज
दाँत	गज मोति

तुलसी की पारदर्शी दृष्टि इस द्विसूत्री अलंकरण से संतुष्ट नहीं हुई, क्योंकि उन्होंने अरूण अधरों पर छिटकती हुई मुस्कराहट भी देखी । यही त्रिसूत्री अलंकरण की भूमिका बनी :*

उपमेय	उपमान
अधर	सोनसरसिज (अरून कमल)
दसन	कुलिसनि (हीरा)
हास्य	तड़ित

चमत्कार यह है कि स्थिर दाँतों के लिए उपमान हीरा बना और गतिशील हास्य के लिए तड़ित ।

त्यागराजु में यह योजना नहीं मिलती ।

1.3.10 नासिका :

नासिका के अलंकरण में कोई विशेषता नहीं । केवल दो रूढ़ उपमानों -- " कीर " (कृगी.22) और " शुक" (गी.7/21) का उल्लेख करके औपचारिकता पूर्ति भर की गयी है ।

---

* अधर अरूनतर, दसन-पाँति बर, मधुर मनोहर हासा ।
मनहु सोन सरसिजमहँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत बासा ।।
-- वही. 7/12/6

1.3.11 नयन :

त्यागराजु और तुलसी दोनों की दृष्टि में राम के वो नेत्र भी हैं जो भक्तों की भावना से प्रभावित होकर वाष्पाकुल होते रहते हैं और जिनमें करुणा का सतत संचार रहता है । आँख के लिए भी दोनों ही कवियों ने मुख्यत: कमल का उपमान प्रयोग किया है । त्यागराजु ने कमल के अतिरिक्त राम के नेत्रों को " चन्द्र और सूर्य " § त्या.की.399§ के उपमान भी दिये है । इसकी पृष्ठ-भूमि में राम के संबंध में विराट भावना हो सकती है । दूसरा एक विशिष्ट उपमान " मदचकोर " § त्या. 151§ भी है । "कमल" उपमान के संबंध मेंम दोनों कवियों की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है ।

उपमान	पर्याय			कुल आवृत्ति	
	दोनों में समान	केवल तु.गी.का	केवल त्या.	तु.गी.का.	त्या.
कमल	पंद्रह*	एक [2]	आठ [3]	65	147

---

* राजीव §वि.44, त्या.154§; कमल §कृ.गी.15, त्या.527§; कंज §गी.1/24, त्या.155§; वनज §कृ गी.21, त्या.138§; वारिज §गी.5/19, प्रभवि, पृ.6§; पंकज §वि.55, प्रभवि.पृ.32§; अंभोज अंभुज §वि.51, त्या.352§; नीरज §गी.2/13, त्या.551§; सरोज §गी, 1/31, त्या.463§; सारस §गी.4/2, प्रभवि.पृ.21§ नलिन §गी.1/23, त्या.204§; जलज §गी;7/5, त्या.118§; सरसीरुह सरोरुह §गी.2/36, त्या.432§, वनरुह §कृ.गी.23, त्या.306§ और अंभोरुह §गी.1/54, त्या.17§अ§ ।

2 सतपत्र §वि.61§

3 अरविंद §त्या.447§; तम्मि §त्या.437§; पयोज §त्या.273§; शरज §त्या.361§; सरसिज §त्या.269§; पद्म §त्या.557§; तामरस §त्या.96§; पुंडरीक §प्रभवि.पृ.33§ ।

इस तालिका के आधार पर ये निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :

§1§ तुलसी ने कमल को पैंसठ बार राम की आँखों की अलंकरण-प्रक्रिया में ग्रहण किया है जबकि त्यागराजु ने एक सौ सैंतालीस बार आँखों का अलंकरण किया है §एक सौ अट्ठाईस बार कमल तथा उन्नीस बार अन्य उपमान § । इस से स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी के ध्यान केन्द्र में राम का नेत्र-सौंदर्य त्यागराजु की अपेक्षा बहुत कम है ।

§2§ त्यागराजु ने कमल के, अपनी प्रवृत्ति के अनुसार, उन्तीस पर्यायों का अप्रस्तुत योजना में उपयोग किया है जबकि तुलसी ने केवल सोलह पर्यायों का ।

इस प्रकार पर्यायों को द्वारा भी त्यागराजु ने उपमेय को अधिक बलिष्ठ बनाया है ।

§3§ तुलसी ने केवल कमल उपमान का ही प्रयोग किया है जबकि त्यागराजु ने दो अन्य उपमान भी प्रयुक्त किये हैं । इससे भी बलाघात की प्रक्रिया प्रकट होती है ।

जिस प्रकार अति अभीष्ट अंगों का अलंकरण दीर्घतर संरचना के द्वारा तुलसी ने अन्यत्र की है, उसी प्रकार आँखों की अलंकृति भी लंबी संरचना में सुघटित की गयी है । इसकी दो शैलियाँ तुलसी ने अपनायी है : प्रायः सभी प्रसिद्ध उपमानों की गणना करके उपमेय आँख के उपमान बनने की उनकी अयोग्यता सिद्ध करना तथा आँख की विभिन्न रंग-भंगिमाओं के लिए चमत्कार-पूर्ण उत्प्रेक्षा की रचना करना ।

नेत्र के प्रसिद्ध उपमान हैं : खंजन, मीन, कमल । इनका प्रयोग तुलसी ने किया है और अन्त में "सकुचत" * या "मदनाये"[2] §=मान भंग हुए§

---

* गी. 1/35/1 2 वही. 1/32/4

कहा गया है । लौकिक उपमानों को अयोग्य बतलाकर अलौकिकता की ओर भी संकेत किया गया है ।

उत्प्रेक्षा की संरचना में कल्पना के पंख और भी उन्मुक्त हो जाते है :-

उपमेय	उपमान
≬क≬ श्यामतारक + अरूनकोए + सितकोए	कमल के कोष में दो भौंरे बंधुक पुष्प पर सो रहे हों । *
≬ख≬ अंजन रंजित नयन + जलकण	स्याम सारस मग मनो ससि स्रवत सुधा-सिंगारु ।[2]
≬ग≬ निमीलित, उन्मीलित श्याम आँख	मनहु इंदु पर खंजरीट दोउ कछुक अरून बिधि रचे सँवारी ।[3]

इस प्रकार की सुदीर्घ संरचना त्यागराजु में नहीं मिलती ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दोनों ही कवि उपमान को विशेषणों से विभूषित करके बलिष्ठ बनाते हैं । राम के नेत्रों के लिए दोनों ही कवियों ने कमल का उपमान दिया है । तुलसी ने इस उपमान के साथ ये विशेषण जोडे हैं : "अरून" ≬गी•7/6≬, "नव"≬वि•45≬, "सुभग" ≬कृ•गी•22≬ और "तरून" ≬वि•55≬ । कभी-कभी विशेषण युग्म भी प्रयुक्त मिलता है : "तरून रमनीय" ≬वि•60≬ । त्यागराजु ने भी कुछ विशेषण प्रयुक्त किये है : "रक्त" ≬त्या•203≬, "विकसित" ≬सा•411≬ और "वर" ≬त्या•129≬ । इस प्रक्रिया में दोनों कवि प्राय: समान है ।

---

* गी• 7/12/3 2 कृ•गी• 14/2

3 वही• 22/1

1.3.12: भौंह :

भौंह के वर्णन में रूढ़ उपमान धनुष का प्रयोग तुलसी ने नहीं किया है । चन्द्रमा की कालिमा से भौंह को उपमित किया गया है, क्यों कि भौंहे ॥कालिका॥ मुख मंडल ॥चन्द्रमा॥ पर सुशोभित हैं ।*

1.3.13. कपोल :

त्यागराजु ने कपोल को "मुकुर" ॥त्या.203॥ एवं ॥अद्दमु/"=आईना" ॥त्या.247॥ से उपमित किया है जो तुलसी के गीत-काव्यों में नहीं मिलता, किन्तु तुलसी ने अपनी प्रकृति के अनुसार एक ललित सांगत्य देखा : एक चंचल लट राम के कपोल पर विलुलित है । इससे जो छवि निष्पन्न हुई उसको अलंकृत किये बिना तुलसी न रह सके । योजना त्रिसूत्री बनी :

"बिलुलित ललित कपोलनिपर कच मेचक कुटिल सुहाए ।
मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलि बिपुल सुकौतुक आए ॥" *2

1.3.14. वदन :

बल की दृष्टि से दोनों ही कवियों की आलोच्य रचनाओं में मुख का तृतीय स्थान है ।

उपमान	पर्याय			कुल आवृत्ति	
	दोनों में समान	केवल तु.गी.का.	केवल त्या.	तु.गी.का.	त्या.
कमल	तीन[3]	एक[4]	सात[5]	7	18
शशि	छ:[6]	एक[7]	बारह[8]	28	52

* "भौंहें बंक मयंक-अंक-रुचि" - गी.7/17/15

2 गी.7/12/4

॥ शेष अगले पृष्ठ पर...॥

इस तालिका के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :

(1) तुलसी ने राम के मुख का अलंकरण पैंतीस बार किया है जब कि त्यागराजु ने चौंसठ बार । इसका तात्पर्य है कि त्यागराजु की वृत्ति राम के मुख के सौंदर्य में तुलसी की अपेक्षा अधिक रमी है ।

(2) उपमानों की दृष्टि से यद्यपि दोनों ने शशि और कमल का प्रयोग किया है, किंतु आवृत्तिगत भेद यह सिद्ध करता है कि इन दोनों की ही आवृत्ति त्यागराजु में अधिक है ।

(3) पर्यायों की दृष्टि से भी त्यागराजु बहुत आगे हैं । दोनों ही उपमानों के अधिक पर्याय प्रयोग करके त्यागराजु ने उपमान को बलिष्ठ बनाया है ।

उपमानों को विशेषणों से विभूषित करने की प्रक्रिया में तुलसीदास ने मुख के उपमान चन्द्र के लिए "सरद" (वि.71), "ललित" (गी.1/38),

---

....(पिछले पृष्ठ का शेष....)

---

* कमल (गी.1/38, त्या.572); अरविंद (गी.7/23, त्या.575) और सरसीरुह (गी.7/17, त्या.578) ।

2 कंज (वि.45) ।

3 सरोज (त्या.456); सारस (त्या.184); पंकज (त्या.406); वारिज (त्या.512); अब्ज (प्रभवि.पृ.20); शरज (त्या.171) और जलज (त्या.95) ।

4 विधु (गी.1/62, त्या.11); शशि (वि.63, त्या.71); इंदु (कृ.गी.21, त्या.506); सुधाकर (गी.2/45, त्या.356); चंद्र (गी.1/48, त्या.153) एवं राकेस राकेंदु (वि.60, त्या.132) ।

5 मयंक (गी.2/6) ।

6 सोम (त्या.423); शशांक (त्या.562); कुमुदहित (त्या.4); तारकाधिप (त्या.205); भराज (त्या.119); राज (त्या.248); चुक्कलराय (त्या.309); जाबिल्लि (त्या.43);उडुपति (प्रभवि.पृ.20) द्विजराज (त्या.484); ताराधीश (त्या.345) और भार्या (त्या.411) ।

"विमल" (गी.2/36), "पूर्ण" (गी.1/56) और "राका" (गी.5/10) विशेषण प्रयुक्त किये हैं तो त्यागराजु ने "माधुर्य" (प्रभवि.पृ.20), "पुन्नम" (त्या.61); "राका" (त्या.200) तथा "पूर्ण" (त्या.471) । कमल का विशेषण मुख के अलंकरण के संदर्भ में त्यागराजु ने प्रयुक्त नहीं किया है, किंतु तुलसीदास ने कमल का विशेषण भी प्रयुक्त किया है - "सरद-समय-सरसीरूह" । साथ ही मुख को उत्कृष्ट बतलाने के लिए सरसीरूह को उसके सामने निंद्य भी कहा गया है । * इसी प्रकार लावण्य से युक्त मुख को कोटि सुधाकर जयी भी कहा गया है ।[2]

तुलसी ने राम के मुख को सौंदर्य का घर भी कहा है ।[3] वे उपमान के रूप में काम देव को भी लाये हैं । एक स्थान में मुख के सौंदर्य को बहुत से कामदेवों के समान कहा है मानो एक कामदेव उपमान के रूप में छोटा पड जाता हो ।[4] मुख के सौंदर्य से निस्तेज होकर कामदेव भाग भी निकलता है ।[5] साथ ही अतिशयोक्ति की सी संरचना करके यह कहा गया है कि चतुर्मुख ब्रह्मा भी मुख का वर्णन नहीं कर सकता ।[6] यही नहीं, कृष्ण-मुख के सौंदर्य का वर्णन करने में वेद, आदि शेष और शारदा भी सक्षम नहीं है ।[7]

1.3.15. बाल :

नख-शिख वर्णन का दक्षिणी ध्रुव यदि नख हैं तो उत्तरी ध्रुव केश हैं । सामान्य रूप से इनको "अलिब्रात" (वि.61), "मधुप-अवली" (वि.63) और "षडंघ्रि-मंडलो" (गी.1/25) कहा गया है । कृष्ण के बालों को तुलसी ने

---

* "सरद-समय-सरसीरूह-निंदक मुख सुषमा कछु कहन न बनत बानति ।- गी.7/17/1।

2 "लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर" - वही. 2/45/2

3 "बदन सोभा सदन" - वही. 2/19/1

4 "बदन-छबि बहु मचन" - वही. 2/18/3

5 "मुख-सुखमा-सिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे" । - वही.7/2/2

6 "मुख छबि कलप कोटि लगि कहि न जाइ जाके मुख चारी)" - कृ.गी.22/5

7 नंदनंदन मुख की सुंदरता कहि न सकत श्रुति सेष उमावर । - वही 21/4

काम देव के फंदा भी कहा है । * उत्प्रेक्षा की दीर्घतर संरचना तब होती है जबकि एक से अधिक अंग परस्पर सांगत्य में आते हैं । केश मुख पर बिथुर जाते हैं, इसके लिए तुलसी ने प्रमुख रूप से दो उत्प्रेक्षाएँ की हैं - मुख पर बिखरे हुए केश ऐसे लगते हैं जैसे चन्द्रमा के पास अमृतपान करने के लिए भुजंग या ~~भुजंगिनियाँ~~ भुजंगिनियाँ आयी ।[2] दूसरी कल्पना कमल के चतुर्दिक भ्रमरों के एकत्र होने की है : मुख=कमल; केश=भ्रमर ।[3]

उत्प्रेक्षा का विस्तार और भी अधिक होता है जब कि मुख पर बिखरे हुए केश पाश को राम अपने हाथों से संवारते हैं । इस प्रकार तीन अंगों का सांगत्य हुआ - केश, मुख और हाथ । उत्प्रेक्षा की रचना यह हुई - मानो मनोहर सर्प शिशुओं का समूह चन्द्रमा से अमृत के लिए झगड़ रहा हो और उसे दो बड़े सर्प समझाते हैं ।[4]

त्यागराजु ने अन्य किसी रचना-प्रविधि से चाहे हल्का-वल्का वर्णन किया हो, किंतु इस प्रकार के अंगों की अलंकरण-रचना उनके गीतों में अप्राप्य है ।

उपर्युक्त विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं :-

§1§ तुलसी और त्यागराजु दोनों ही उपमा, रूपक जैसी छोटी अलंकार रचना में समान हैं ।

---

* "कुटिल अलक जनु मार फंद" - कृ.गी. 22/2

2 "चिक्कन कुटिल अलक-अवली-छबि, कहि न जाइ सोभा अनूपबर ।
बाल-भुअंगिनि-निकट मनहुँ मिलि रहीं घेरि रस जानि सुधाकर ।।"
- वही 2/1,2

3 "बिथुरे कुटिल कच, मानहुँ मधु लालच अलि,
नीर नलिन-जुगल उपर रहे लोभाई ।" - गी.7/1/2

4 सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल,
करनि बिवरत चतुर, सरस सुषमा जनी ।
ललित अहि-सिसु-निकट मनहु ससि सन समर
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी ।।
- गी.7/5/3

(2) उत्प्रेक्षा जैसी कल्पना मूलक दीर्घतर रचना में तुलसी ही प्रवृत्त हुए हैं, त्यागराजु नहीं ।

(3) अलंकरण दृष्टि से नख-शिख की रूढ़ि का तुलसी ने जितना ध्यान रखा है उतना त्यागराजु ने नहीं । क्योंकि त्यागराजु के गीतों में नख-शिख की कुछ कड़ियाँ लुप्त हैं ।

(4) त्यागराजु मुख्यत: संगीतज्ञ हैं और पीछे कवि । इसके विपरीत तुलसी मुख्यत: कवि हैं और पीछे संगीतज्ञ । दोनों की अलंकार रचनाओं का अंतर इसी कारण से है । तुलसी काव्यगत सूक्ष्मताओं की ओर बढ़ जाते हैं और त्यागराजु लय और ताल की सूक्ष्मताओं की ओर ।

(5) दोनों ही कवियों की सौंदर्यानुभूति चरण, मुख, नेत्र और कर के वर्णन में अधिक घनीभूत हो जाती है ।

2. शुभ चिह्न :

2.1. संज्ञा पद की रचना :

सामुद्रिक शास्त्र के आधार पर मानव के कुछ अंग लक्षण शुभ माने जाते रहे हैं । वैष्णव मूर्ति निर्माण की प्रविधियों में इन लक्षणों का समावेश भी आवश्यक कहा गया है । तुलसी और त्यागराजु की साध्य कल्पना भी इन लक्षणों से विभूषित है । नीचे संज्ञा पद के रूप में इन लक्षणों की तुलनात्मक सूची प्रस्तुत है ।

अंग	शुभ चिह्न	तु.गी. का.	त्या.
पद	अंकुश	✓	✓
	कुलिश	✓	-
	कमल	✓	✓
	ध्वजा	✓	-
	जव	✓	-
	उर्ध्व रेखा	✓	-

कर	शंख	–	✓
	चक्र	–	✓
	वज्ररेखा	–	✓
उर	श्री वत्स	✓	✓
	भृगुचरण	✓	–

उपर्युक्त तालिका से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पांचरात्र पद्धति के मूर्तिकला संबंधी सौंदर्यबोध से दोनों ही कवि प्रभावित हैं । काव्य निरीक्षण की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि पैरों के शुभ लक्षणों * की अधिक संख्या तुलसी के काव्य में मिलती है । हाथ के शुभ लक्षणों[2] का कथन केवल त्यागराजु ने किया है । वक्ष के चिह्नों में से तुलसी ने जहां श्रीवत्स[3] और भृगुपद[4] का उल्लेख किया है वहां त्यागराजु ने केवल श्रीवत्स[5] का । श्रीवत्स आगमीय मूर्ति कल्पना में प्रमुख स्थान रखता है जबकि भृगुचिह्न का मूल पौराणिक है । आवृत्ति की दृष्टि से तुलसी त्यागराजु से आगे हैं ।

---

* अंकुश – गी. 7/21/14 ; त्या.551/10
कुलिश – वि. 63/2 ;
कमल – गी. 1/25/ ; त्या. 551/10
ध्वजा – गी. 7/15/3 ;
जव – वि. 63/2
ऊर्ध्वरेखा – गी. 7/17/3

2 शंख – प्रभवि. पृ.33; चक्र– वही , वज्ररेखा– त्या.551/11

3 श्रीवत्स – वि. 51/6,

4 भृगुचिह्न – वि. 62/3, 5. श्रीवत्स – प्रभवि. पृ.21

2.2. संज्ञापद बंध की रचना :

शुभ लक्षणों के विशेषण मूलक पद बंधों की रचना तुलसी ने की है : विशे.+ सं.। जैसे/रेखवर/ " श्रेष्ठ रेखा " ॥ वि.63॥; /शुभवारि/, चार शुभ लक्षण " ॥गी.7/21॥, /चिह्न रुचिर/ "सुंदर चिह्न" ॥गी.1/25॥, " चिह्नबर" ॥गी.7/71॥, " सुभग श्रीवत्स"॥वि.57॥., " श्रीवत्स उदार" ॥वि.61॥, "श्रीवत्स मनोहर" ॥गी.1/26॥ तथा " भृगुचरन चारू" ॥ वि.62॥ । कभी-कभी सुंदरता सूचक उपसर्ग का प्रयोग करके भी पदबंध की रचना की गयी है - " सुचिह्न" ॥गी.7/17॥ । शुभ लक्षणों की यह रचना त्यागराजु में अप्राप्य है ।

तुलसी ने विशेषण की लंबी रचना भी की है : / सरन सोक हारी/ " शरणागतों के शोक को हरण करनेवाले " ॥ वि.51॥ । यह रचना भी त्यागराजु ने नहीं की ।

2.3. अधिकरण संरचना :

जिस अंग पर शुभचिह्न सुशोभित है वे ही अधिकरण की संरचना के केंद्र है । इन केंद्रों को स्फीत बनाने के लिए दोनों कवियों ने कुछ विशेषणों का प्रयोग किया है, जिससे अधिकरण की संरचना सौंदर्यमूलक हो जाती है । तुलसी का ध्यान सबसे अधिक साध्य के चरणों पर केंद्रित रहा है । चरणों के लिए उन्होंने " मृदुल" ॥ वि.62॥, "चारू" ॥गी.7/16॥ और "अरून" ॥गी.1/25॥ विशेषणों का प्रयोग किया है । एक अलंकारमय विशेषण का प्रयोग भी किया गया है : /पदुम राग रुचि/ = पद्म राग मणि के समान मनोहर" ॥ गी.7/17॥ । तुलसी का ध्यान उर पर भी गया है । " उरबिसाल " ॥ वि.62॥ विशेषण इसके लिए प्रयुक्त है ।

त्यागराजु ने साध्य के चरणों की तो विशेषणमूलक उक्ति नहीं की, किंतु भुजाओं के लिए " आजानु" ॥प्रभवि.पृ.33॥ विशेषण का प्रयोग किया है ।

2.4. शुभलक्षणों के सहवर्तीतत्व :

तुलसी ने अपने स्वभाव के अनुसार अभीष्ट बिंब के साथ अन्य कई बिंबों की सहस्थिति बतलाई है। उदाहरण के लिए श्रीवत्स के साथ " व्याघ्र नख " तथा " मणि जटित पदिक " (गी. 1/26) को भी देखा है। इसी प्रकार " बनमाल " (वि. 63) को भी इस संदर्भ में रखा गया है। इसी तरह पैरों के शुभ चिह्नों के साथ " मुखरित नूपुर" (गी. 1/25) भी बिंबित हुए हैं। त्यागराजु ने इस प्रकार की मिश्रित बिंब योजना नहीं की है।

2.5. शुभ लक्षणों की आलंकारिक संरचना

2.5.1 एक लक्षण की आलंकारिक रचना

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही चरण के शुभ चिह्न अंकुश को अंकुश ही मानकर मनोविकारों के उन्मत्त गज को वश में करनेवाला कहा है।* इसी प्रकार करस्थ वज्ररेखा को त्यागराजु ने शोकादि रूपी पर्वतों के खंडन के लिए वज्र के समान ही कहा है।[2]

तुलसी ने ऊर्ध्वरेखा के संबंध में उत्प्रेक्षा की दीर्घरचना की है : जब विश्वकर्मा ने सूर्य मंडल को बनाया तब उसको नापने के लिए जैसे सूत ही रख दिया हो।[3]

---

* तुलसी : " अंकुस मन-गज बसकारी " - वि. 63/2

त्यागराजु : " मदमत्सरमुलनु गजमुलकु नी पद कमलोकुश रेखा अंकुशमु " - त्या. 551/10

2 " शोकादुलनु पर्वतमुलकु नी करांकित वज्र रेखा वज्रमु - त्या. 551/11

3 सकल सुचिह्न सुजन-सुखदायक,
उरध रेख बिसेष बिराजति।
मनहु भानु-मंडलहि सँवारत धर्यो सूत
बिधि सुत बिचित्र मति ।। -- गी. 7/17/3

2.5.2. शुभलक्षणों की समवेत अलंकार रचना :

तुलसी ने पैरों के चार शुभ चिह्नों की एक इकाई मानकर भी अलंकार रचना की है :-

उपमेय	उपमान	विवरण
चारशुभचिह्न (अंकुश, कमल ध्वजा, वज्र)	1. = [भँवर / तरंग]	- जिनमें देवता और साधुजन अवगाहन करते है ।*
	2. = बंसी	- जो मनोविकारों की मछलियों को फँसाकर पकड़ लेते है ।[2]
	3. = अंतर्गति	- चारों प्रकार के भक्तों की ।[3]

त्यागराजु के गीतों में यह रचना नहीं मिलती ।

3. दिव्य उपकरण :

दोनों कवियों के साध्य की प्रतीकात्मक और सौंदर्य तात्त्विक संरचना के अनिवार्य भाग कुछ दिव्य उपकरण भी है । कुछ उपकरण विष्णु की रूप कल्पना से प्राप्त हुए है - शंख, चक्र, गदा और पद्म । कुछ अवतरित राम की वीर लीलाओं से संबद्ध है ।

---

* अंकुस - कुलिस-कमल-धुज भँवर तरंग - बिलासा ।
मज्जहिं सुर-सज्जन, मुनिजन मन मुदित मनोहर बासा ।।
- गी.7/15/3

2 कंज- कुलिस-धुज - अंकुस- रेख चरन सुभचारि ।
जन-मन-मीन-हरन कहँ बंसी रची सँवारि ।। - वही.7/21/14

3 पदुम राग रुचि मृदु पदतल धुज-अंकुस-कुलिस-
कमल यहि सूरति ।
रही आनि चहुँ बिधि भगतनि की जनु अनुराग भरी
अंतरगति ।। - वही.7/17/2

3.1. विष्णु से आगत उपकरण :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही "शंख" * "चक्र" 2 और "गदा" 3 इन तीन उपकरणों का उल्लेख किया है। त्यागराजु ने न जाने कैसे चतुर्थ उपकरण पद्म का उल्लेख नहीं किया। इन उपकरणों की रचना त्यागराजु के गीतों में बहुत सरल है।

उपकरणों के पर्यायों का प्रयोग त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी ने ही अधिक किया है। त्यागराजु ने चक्र का एक पर्याय "रथांग" (त्या.368) और शंख का एक पर्याय "दर" (त्या.210) का उल्लेख किया है। गदा के पर्याय त्यागराजु के गीतों में नहीं मिलते। तुलसी ने भी त्यागराजु के समान रथांग की तुलना में "सुनाभ" (वि.213) पर्याय का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त गदा के पर्याय "कौमोदकी" (वि.61) और "कुलिस" (वि.51), शंख का पर्याय "दर" (वि.49) तथा कमल के पर्याय "कंज" (वि.62) और "जलज" (वि.61) भी मिलते हैं।

3.1.1. उपकरणों की विशेषण मूलक रचना :

त्यागराजु ने उपर्युक्त उपकरणों के साथ किसी विशेषण का प्रयोग नहीं किया है। तुलसी ने कौमोदकी के लिए /अति बिसाल/ (वि.49), चक्र के लिए /चारू/ (वि.63) और /सुदरसन/ (गी.6/9) विशेषण प्रयुक्त किये हैं। इनमें से सुदर्शन विशेषण परंपरित है जिसका प्रयोग संज्ञावत भी होता है।

3.1.2. उपकरण के आधार पर बनी हुई अन्य रचनाएं :

इन उपकरणों के आधार पर साध्य के नाम/ विशेषण की रचना भी हुई है। चक्र के आधार पर तुलसी ने साध्य की नाम-रचना यह की है -

---

* वि.49; प्रभवि. पृ.21

2 वि.57; त्या.210

3 वि.62; प्रभवि. पृ.21

"सुदरसनपानि" ¥गी.5/9¥; "चक्रपानि" ¥वि.136¥; "चक्रधर" ¥वि.60¥ और "सुनाभधरन" ¥वि.213¥ । त्यागराजु ने भी राम को "धृतरथांग" ¥त्या.368¥ और "चक्रि" ¥प्रभवि. पृ.22¥ कहा है । कमल के आधार पर तुलसी ने राम के "पाथोजपानी" ¥वि.56¥; "पंकजकर" ¥गी.2/26¥ और "कर कमलनि" ¥गी.2/36¥ पर्यायों की रचना की है ।

नाम रचना सामूहिक रूप से भी उपकरणों के आधार पर हुई है । त्यागराजु ने "शंख चक्र शार्ग नंदक गदा पंचायुधधर" ¥प्रभवि.पृ.21¥ जैसी विस्तृत रचना की है । इस पंचायुध में तीन विष्णु से आगत उपकरण हैं । इसी प्रकार राम को "शंखचक्रादि धर" ¥त्या.355¥ भी कहा गया है । तुलसी ने भी चारों उपकरणों के आधार पर राम के पर्याय की विस्तृत रचना की है - "गदा, कंज, दर, चारु चक्रधर" ¥वि.63¥ ।

3.1.3. उपकरण धारक अंग :

त्यागराजु की संरचना में धारक अंगों का नामोल्लेख नहीं किया गया है । तुलसी ने उपकरण + पानि = पर्याय की रचना तो की ही है । इनकी धारक चार भुजाओं का भी संकेत किया है और उनकी अलंकृत रचना भी की है - ""नाग सुंड सम भुजचारी" ¥वि.63¥ ।

इससे प्रतीत होता है कि त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी ने उपकरणों की संरचना में अधिक रूचि ली है और समग्र कल्पना उनके संबंध में की है ।

3.2. अन्य उपकरण :

विष्णु की चतुर्भुज कल्पना और चारों भुजाओं में चार उपकरणों की स्थिति एक परंपरागत प्रतीक रचना है । विष्णु के साथ कभी-कभी धनुष का सारंग की चर्चा भी की जाती है । अन्य आयुध अवतार लेने के पश्चात् आकर जुडते हैं । इन आयुधों का संबंध दुष्ट दलन लीला के साथ नैमित्तक रूप से है । दोनों ही कवियों के सौंदर्य-बोध में विविध शास्त्रधारी साध्य

बिंबित मिलता है ।

3.2.1. धनुष, बाण और निषंग :

इन तीन की एक इकाई है । तुलसी ने इन तीनों का ही उल्लेख किया है । त्यागराजु ने निषंग का उल्लेख नहीं किया है । आवृत्ति की दृष्टि से भी आयुधोपकरणों में सबसे अधिक धनुष और बाण का ही उल्लेख हुआ है । पर्यायों की दृष्टि से भी दोनों कवियों ने "चाप" (वि.45; त्या.66); "कोदंड" (गी.1/54; त्या.623) और "शार्ग~सारंग" (वि.55; प्रभवि.पृ.21) शब्दों का समान रूप से प्रयोग किया है । केवल "धनु" (गी.7/6) और "सरासन" (गी.2/36) शब्द तुलसी में विशिष्ट है तो त्यागराजु ने तेलुगु पर्याय/विल्लु/"=धनुष" (त्या.233) का प्रयोग किया है ।

बाण के संबंध में दोनों कवियों की आवृत्ति मूलक प्रवृत्ति प्राय: समान है । दोनों कवियों ने "बाण" (वि.84; त्या.93); "शर" (गी.5/43; त्या.92) और "सायक" (वि.44; त्या.516) - इन तीन पर्यायों का समान रूप से प्रयोग किया है । केवल त्यागराजु के द्वारा प्रयुक्त पर्यायों की रचना तेलुगु की प्रकृति के कारण तुलसी से भिन्न है - बाणमु, शरमु, सायकमु । इनके अतिरिक्त तुलसी ने "बिसिख" (गी.2/45) और "तीर" (गी.1/56) पर्यायों का प्रयोग विशेष रूप से किया है और "अस्त्रमु" (त्या.516) त्यागराजु का विशिष्ट पर्याय है ।

तुलसी ने निषंग (वि.107) के लिए "तून" (वि.55)~"भाथ" (वि.84)~"तूनीर" (गी.5/35)~ "तरकस" (गी.1/43) पर्यायों का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने इस उपकरण का उल्लेख ही नहीं किया है ।

3.2.2. अन्य आयुध :

अन्य आयुधों का उल्लेख औपचारिक है, क्योंकि इनकी आवृत्ति अत्यंत सीमित है । इन आयुधों में भी पर्याप्त समानता है : तु. "परसु"

(वि.52) कुठार (वि.50)=त्या."कुठारमु" (त्या.532); "तु."असि (वि.44)~"खंग" (वि.55)= त्या. "नंदक" (प्रभवि.पृ.10)~"नंदकायुधमु (त्या.32)

तुलसी ने इनके अतिरिक्त "शक्ति" (वि.55); "अंकुश" (वि.63) और "वर्म" (वि.55) का उल्लेख और किया है ।

3.2.3. आयुधों की सविशेषण रचना :

धनुष की विशेषण रचना दोनों कवियों ने की है, चाहे आवृत्ति और प्रयुक्त शब्दों का अन्तर हो । तुलसी के सविशेषण संज्ञापदबंध ये हैं : "कोदंडवर" (वि.46); "परचंड" (प्रचंड) कोदंड" (वि.50); "सुभग सारंग" (वि.43), "सुभग सरासन" (गी.2/36) और "लोने लोने धनुष" (गी.2/35) । अन्तिम उदाहरण इस छोटे धनुष का है जिसे बालराम धारण करते हैं । त्यागराजु ने "कोदंड कांति" (त्या. 450) तथा /बॅलुविलु/"=सुदृढ़ चाप" (त्या.532) संज्ञापदबंधों का प्रयोग किया है ।

धनुष की भाँति बाण की भी सविशेषण रचना दोनों कवियों में मिलती है । जहाँ त्यागराजु ने "चंडबान" (वि.46); "ललित सायक" (गी.7/6) और "सुचिसर" (गी.2/17) का प्रयोग किया है वहाँ त्यागराजु ने /निरतगति शरमु/"=प्रचंडगतिवालाशर" (त्या.272); /विधि शरमु/"=ब्रह्मास्त" (त्या.409) और /कंजजास्त्रमु/"=ब्रह्मास्त्र" (त्या.550) की रचना की है । त्यागराजु ने बाण के संबंध में एक दीर्घतर रचना भी की है : /रामबाण त्राण शौर्य/"=उद्धार करने की शक्ति रखने वाला रामबाण" (त्या.442) ।

तुलसी ने कवच या ढाल तथा निषंग की भी सविशेषण रचना की है : "चारुवर्म" (वि.46); "चर्मवर" (वि.55); "वरवर्म" (वि.44); "सुनिषंग" (वि.44) तथा "तूनवर" (वि.50) ।

3.2.4. आयुध धारक अंग :

3.2.4.1 आयुध + अंग :

/असनि + चाप/ "=कंधों पर धनुष" (गी.2/15);
/कोदंड + बाहु/ "=बाहुओं में धनुष"(वि.51);
/करनि + चाप/ "=हाथों में धनुष" (गी.2/26);
/बामअंग + चाप/ "=वामहस्त में धनुष" (गी.2/17) ।

उपर्युक्त रचना तुलसी की है जिसमें धनुष को कंधे पर, बाहु पर और हाथ में दिखलाया गया है । बाण की स्थिति की रचना इस प्रकार है :
/दच्छिन पानि बान/ "=दक्षिण में हाथ में बाण" (वि.51);
/सरकार/ "= हाथ में बाण" (गी.2/17);
/विसिष कर/ "=हाथ में बाण" (गी.2/45) ।

त्यागराजु ने अलग से बाण की स्थिति को अंग के साथ नहीं देखा, किंतु उन्होंने धनुष और बाण को अंग सांगत्य में देखा है :

/करमुन शरकोदंड/ (त्या.256) /शरचापमु करमुन/ (त्या.196) /करमुन शरचापमु/ (त्या. 83)	"हाथ में धनुष और बाण" ।

धनुष बाण के अतिरिक्त तुलसी ने राम के हाथ में तलवार भी देखी: /खंग कर/ (वि.55) । साथ ही कटि तट पर तरकस भी दिखलाई पड रहा है : /तरकसी कटि/ (गी.1/43) । यह सब त्यागराजु ने चित्रित नहीं किया ।

3.2.4.2सविशेषण अंग + आयुध :

हाथों के लिए /दच्छिन/ (वि.51) या /बाम/ (गी.2/17) विशेषणों का प्रयोग सामान्य रूप से हुआ है । कुछ अंगों के साथ कुछ सौंदर्यमूलक विशेषण भी प्रयुक्त हुए हैं । अंगों की सविशेषण-रचना इस प्रकार है :

/बाहु बिसाल/ + धनुषबान (गी.7/16);
/आजानु भुजदंड/ + बानकोदंड (वि.51);
/प्रबल भुजदंड/ + कोदंड (वि.50) ; और
/रुचिर कटि/ + तूण (वि.55) । इन विशेषणों के अतिरिक्त अलंकार मूलक विशेषणों का प्रयोग भी हुआ है । जैसे /तामरस करनि/ + बान (गी.5/35) । दो विशेषण भी प्रयुक्त हुए हैं । जैसे /पीन आजानु भुजदंड/ + कोदंड और बाण (वि.46) ।

इस प्रकार की सविशेषण अंग रचना त्यागराजु के गीतों में नहीं मिलती ।

3.2.5. उपकरण की क्रिया :

त्यागराजु ने धनुष-बाण के साथ केवल "मेरयु" (=चमकना) क्रिया का प्रयोग किया है : /करमुन मेरसे शरचापमु/= "कर में चमकने वाले शरचाप" (त्या.83) । इसीलिए उन्होंने /कांतितो/ ="कांतिसहित" (त्या.256) शरकोदंड का उल्लेख भी किया है ।

3.2.6. साध्य के उपकरण मूलक नाम :

तुलसी ने उपकरण के आधार पर साध्य के नामों की रचना की है :

धनु (गी.2/38) शरचाप (वि.45) शरधनु (वि.107) वर्म (वि.55)	- धर → राम
तून बान धनु (गी.1/63) तूनतीर धनु (गी.1/56) सारंग (वि.55) वर्म (वि.44)	- धारी → राम

सरधनु ॥गी.1/52॥
धनुबाण ॥वि.84॥ — पानि → राम
सारंग ॥गी.1/47॥

यह रचना ~~बहुव्रि~~ बहुव्रीहि समास की पद्धति की है । त्यागराजु ने भी इस रचना का प्रयोग साध्य की नाम-रचना में किया है । जैसे /चापधर/ ॥त्या.553॥; /शरचापधर/ ॥त्या.48॥; /नंदकधर/ ॥प्रभवि.पृ.10॥; /नंदकायुधधर/ ॥त्या.482॥--राम ।

इसके अतिरिक्त भूतकालिक कृदंत के आधार पर त्यागराजु ने संस्कृत शैली के विशेषण व्युत्पन्न किये हैं जिनका आधार उपकरण हैं और जिनका विशेष्य राम है :

/कर...शर/ ॥त्या.241॥
/कर...शरजाल/॥त्या.432॥ — धृत~विधृत
/कर... शरचाप/॥त्या.380॥ " = धनुष बाण को धारण करने वाले" ।

/चाप + अलंकृत / "= धनुष से अलंकृत" ॥त्या.492॥ ।

भूतकालिक कृदंत की रचना तुलसी के गीतों में अप्राप्य है ।

4. <u>वस्त्र :</u>

साध्य का विग्रह जहाँ अलंकारों से विभूषित है, वहाँ वस्त्रावृत भी है, किंतु वस्त्रों की व्याकरणिक संरचना इतनी विस्तृत और विविध नहीं है जितनी आभूषणों की । यह बात तुलसी और त्यागराजु के संबंध में सत्य है । इस संरचना को चार भागों में बाँटा जा सकता है : एक संज्ञापद, संज्ञापदबंध, संज्ञापदबंध + क्रिया विशेषण पदबंध = वस्त्र + अंग तथा अलंकार रचना । इन पर तुलनात्मक दृष्टि से नीचे विचार किया गया है ।

4.1. एक संज्ञापद :

तुलसी ने एक संज्ञापद के रूप में इन ब शब्दों का प्रयोग किया है : उपवीत (गी.1/53) तथा परिधान (गी.2/69) । इन दोनों संज्ञा पदों का प्रयोग तो त्यागराजु ने नहीं किया, किंतु संज्ञा पद के रूप में इन शब्दों का प्रयोग किया है : वस्त्र (प्रभ्.वि. पृ.17) । चेलमु (त्या.173) तथा वल्लव (त्या.197) । इनमें से अन्तिम शब्द क्षेत्रीय भाषागत अंतर को स्पष्ट करता है ।

4.2. संज्ञापदबंध :

4.2.1. सं. + सं.

वस्त्र संबंधी संज्ञापदबंध का यह लघुतम रूप है, जिसमें दो संज्ञाओं का मेल रहता है । पहली संज्ञा ब स्वभावत: विशेषण के स्थानापन्न होती है । इसके उदाहरण ये हैं : मुनिपट,* मुनिवेष,[2] मुनि बसन,[3] बनपट,[4] सुमुनिपट,[5] बालवसन ।[6] त्यागराजु ने साध्य का मुनिवेष या वनवेष नहीं देखा । बालराम का वस्त्र दोनों ही कवियों की कल्पना में बिंबित हुआ है ।

4.2.2 विशे. + सं.

इस संरचना में तुलसी ने दिव्य + बसन (वि.44) तथा मनोहर+बसन (गी.1/8) का प्रयोग किया है । इसी प्रकार त्यागराजु ने मेरूगु + चेलमु" = प्रकाशमान वस्त्र" (त्या.247); सरिगे + चीर"=जरीदार वस्त्र" (त्या.558); रंगैन + वस्त्र "=रंगीले वस्त्र" (प्रभवि. पृ.17) तथा सरिग + वलवलु (त्या.197) पदबंध का प्रयोग किया है । यहाँ शब्दों की भिन्नता तो है, किंतु रचनागत समानता स्पष्ट है ।

---

* वि. 84 2 गी.2/20 3 वही. 2/35

4 वही.2/30 5 वही. 2/25 6 गी.1/28 ; त्या.478

परंपरा से दोनों ही कवियों को विष्णु और उनके नराकार अवतारों के पीतांबर युक्त रूप की आगमिक रूप-कल्पना प्राप्त हुई । इसलिए सबसे अधिक क्षिप्रता इसी पदबंध की है : पीत + वस्त्र । इसकी तुलनात्मक तालिका नीचे दी गयी है ।

विशेषण	तुलसीदास	त्यागराजु
पीत -	29	2
कनक -	2	16
कांचन -	1	-
स्वर्ण -	-	1
भर्म -	-	1
बंगारू -	-	4

+

संज्ञा	तुलसीदास	त्यागराजु
- अंबर	2	6
- वसन	5	1
- दुकूल	6	1
- पट	14	4

क्रमशः....

- चेल	3	12
- वस्त्र	1	-
- उपवीत	1	-
- अंगुली	1	-
- वल्व	-	1

यह रचना परंपरागत पीतांबर की है । राम के प्राय: इसी वस्त्र का वर्णन दोनों कवियों ने किया है । इस पदबंध की सामासिक रचना में आलोच्य दोनों कवि समान हैं । अंतर केवल संरचक विशेषण पर्याय और संरचक संज्ञा के पर्यायों का है । केवल "वल्व" शब्द त्यागराजु के स्थानीय वैशिष्ट्य को सिद्ध करता है ।

4.2.3. विशे. + सं. पद. (विशे. + विशे. + सं.)

इस संरचना में वस्त्रवाचक संज्ञा के साथ दो विशेषण हो जाते हैं । इस रचना का प्रयोग भी दोनों कवियों ने किया है । इस पदबंध में जिन विशेषणों का प्रयोग हुआ है । उनमें केवल एक विशेषण ही समान है : "दिव्य" (वि.44; प्रभवि.33) । तुलसी ने "निर्मल" (गी.7/21), "सुभग" (गी.1/54), "सुरग" (गी.3/5), "कलित" (गी.1/34), "विमल" (गी.7/8) तथा "पियरी" (गी.1/33) विशेषणों का प्रयोग करके विशेषण पदबंध को बलिष्ट बनाया है । त्यागराजु में इन विशेषणों का प्रयोग नहीं है । उन्होंने "नव्य" (प्रभवि. पृ.21), "मेरगु" (त्या.118) (=प्रकाशमान) तथा "करकु" (त्या.373) (=चमकीला) विशेषणों का प्रयोग किया है जो तुलसी में अप्राप्य हैं । इनमें से पिछले दो विशेषण त्यागराजु के

भाषिक वैशिष्ट्य को प्रकट करते हैं । क्षिप्रता की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि तुलसी को निर्मल-विमल विशेषण* विशिष्ट प्रिय है और त्यागराजु को मेरुगु और करकु ।[2]

पीतपट के अतिरिक्त मुनिपट एक पदबंध है जिसके साथ तुलसी ने "चारु" (गी.5/43) और "लोने" (गी.2/45) विशेषणों का प्रयोग किया है । त्यागराजु में यह पदबंध प्राप्त नहीं है ।

4.2.4. विशे.+ विशे. + सं. अथवा सं. पद.

तुलसी ने पीतवसन के साथ एक स्थान पर "कौसेय तथा बर" (वि.51) विशेषणों का प्रयोग करके विशेषण पदबंध की रचना की है और एक अन्य स्थान पर पीतवसन के साथ "सुंदर तथा बिसद" (गी.7/3) विशेषणों का प्रयोग किया है । यह संरचना त्यागराजु के गीतों में अप्राप्य है ।

4.3. सं. पद. + क्रि. विशे. पद = वस्त्र + अंग :

दोनों कवियों ने पीतवस्त्र का कटि तट से सांगत्य देखा । जहाँ तुलसी ने "कटि पट पीत सोहाये"[3] लिखा वहाँ त्यागराजु ने "करकु बंगरुवल्व कटिनेंतो मेरुपग"[4] लिखा । तुलसी ने "मुनिपट" और "बनपट" को भी कटि पर देखा है ।[5] त्यागराजु ने न मुनिपट को ही देखा और उसके सांगत्य ही कटि से जोडा । मुनिपट के साथ तूनीर और निषंग को भी तुलसी ने देखा है ।[6] ये भी त्यागराजु में अप्राप्य हैं ।

---

* इनका तुलसी ने पाँच बार प्रयोग किया है : वि.62, गी.7/6, 7/7, 7/8. 7/21

2 इसका त्यागराजु ने पाँच बार प्रयोग किया है : त्या.118, 173, 247, 248, 373

3 गी.1/62/2

4 "प्रकाशमानकनक वस्त्र कटितट पर चमक रहा है ।" - त्या.373/3

5 गी.2/25/2, गी,2/30/3

6 गी.2/35/2, गी.2/36/2

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि त्यागराजु और तुलसी की वस्त्र संबंधी रचना में बहुत कुछ साम्य है । तुलसी ने राम के वस्त्रों को बालस्थिति, सामान्य स्थिति तथा वनवासी स्थिति में देखा है । त्यागराजु ने अंतिम स्थिति को छोड दिया है । बाल स्थिति के वस्त्र वर्णन में दोनों समान हैं, किंतु तुलसी में आवृत्ति अधिक है । सामान्य स्थिति का वस्त्र पीतांबर है । उसके संबंध में दोनों की प्रवृत्ति समान है ।

जहाँ तक "पीत" विशेषणों के पर्यायों का प्रश्न है त्यागराजु में तुलसी की अपेक्षा पर्याय वैविध्य अधिक है । जहाँ तक पीतांबर विशेषणों का प्रश्न है, उसके पर्याय वैविध्य में तुलसी आगे बढ़ जाते हैं । वस्त्र के पर्याय प्राय: समान है ।

इस वस्त्र परक विश्लेषण से तुलसी और त्यागराजु के सौंदर्य-बोध के स्तर स्पष्ट हो जाते हैं । त्यागराजु के सौंदर्य-बोध में वनवासी राम का बिंब इस संदर्भ में नहीं उभरा है । आभूषणों में भी त्यागराजु राम के सिर पर मुनिसुलभ जटा नहीं देख सके हैं । सौंदर्य-बोध की दृष्टि से त्यागराजु राम के वस्त्रों से विकीर्ण होनेवाले प्रकाश पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते हैं जबकि तुलसी उनकी निर्मलता पर । त्यागराजु की दृष्टि में मौलिक देव कल्पना में व्याप्त प्रकाश अधिक उभर आता है ।

4.3. अलंकार रचना :

4.4.1. अलंकृत संज्ञापद :

संज्ञापद वस्त्र या उसका वाचक शब्द होता है । इसको दोनों ही कवियों ने अलंकृत किया है । अर्थात् दोनों ही कवियों ने अप्रस्तुत की संरचना से इसका सौंदर्य-बोध उभारा है ।

त्यागराजु और तुलसी ने सौंदर्य-बोध का एक स्तर वह रखा है जहाँ उपमेय और उपमान को समान स्तर प्रदान किया है : -

तुलसी : - किंजलक ≬रूप≬ -- बसन ।" *

त्यागराजु :- बालार्क आभा ≬जैसा≬ -- सुचेल ≬वस्त्र≬ ।[2]

इसमें अप्रस्तुत भेद है । रचनात्मक प्रक्रिया समान है । जैसा कि पहले देखा जा चुका है कि त्यागराजु के सौंदर्य बोध में वस्त्र का प्रकाश ही समाया हुआ है । तुलसी ने किंजलक के द्वारा वस्त्र के पीताभ होने और उसकी कोमलता होने की सूचना दी है ।

सौंदर्य-बोध का दूसरा स्तर वह है जहाँ एक वचन उपमान अप्रस्तुत होने के पात्र नहीं हो सकता । इसलिए उसकी संख्या को बढ़ाकर के रचना की जाती है । त्यागराजु ने लिखा - ""चपलाकोटि निभाबर ।[3] इसमें चपला की संख्या को बढ़ाकर करोड कर दिया गया है । तुलसी ने इस संदर्भ में यह रचना नहीं की है ।

सौंदर्य-बोध का इससे भी उच्चतर स्तर वह है जहाँ पर उपमान को निंदित और अपमानित देखा गया है । तुलसी ने लिखा - "बिमल दुकूल दलन दामिनि दुति ।"[4] यहाँ अनुप्रास की अतिरिक्त रचना को पुष्ट किया गया है । त्यागराजु ने रचना के इस स्तर पर इस प्रविधि का प्रयोग नहीं किया है ।

सौंदर्य-बोध का चौथा स्तर वह है जहाँ संदेह की प्रविधि के द्वारा कई उपमानों को जुटा दिया गया है :-

दुकूल=चंपकचय ≬अथवा≬ चंचलाकलाप ≬किधौं≬ कनक-निकर ।[5]
इस प्रविधि को पुष्ट करने के लिए तुलसी ने चार विशेषणों का प्रयोग किया है : दिव्यतर, भव्य, नव्य और रुचिर । त्यागराजु ने इस प्रविधि का

---

* कृ•गी• 23/2 2 त्या• 4/5 3 त्या•50/2 4 गी•7/16/5

5 दिव्यतर दुकूल भव्य, नव्य, रुचिर चंपक चय,
चंचला-कलाप, कनक-निकर अलि । किधौं हौं ।

\- गी•7/4/5

प्रयोग भी नहीं किया । इन उपमानों से पीतरंग की भी व्यंजना होती है और उसकी गतिशीलता की भी ।

4.4.2. अलंकृत संज्ञापदबंध :

संज्ञा पदबंध मुख्य रूप से पीतपट ﴾वि. + सं.﴿ है । इसके अलंकरण में भी दोनों ही कवि प्रवृत्त हुए हैं । दोनों ही कवियों ने दामिनि को अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण किया है । तुलसी की संरचना इस प्रकार है :-

समानता : पीतपट - मानो - तडित ।*

उपमान विनिंदित : पीतापट - विनिंदित - दामिनि दुति ।[2]

हततेज उपमान : ~~प्रतीप/प्रतीप~~ पीतपट - हरन - दुति-दामिनी ।[3]

इन तीनों संरचनाओं का त्यागराजु के गीतों में अभाव है, किंतु उन्होंने उपमान की संख्या को करोड तक पहुँचाने की प्रविधि का प्रयोग इस संरचना में किया है । इस प्रविधि के साथ उपमान को पराजित भी दिखाया गया है :-

"मेरुपुकोट्ल गेरू कनकपटमु धरिंचि"[4] अर्थात् करोड़ों बिजलियों को पराजित करनेवाले पीतवस्त्र को धारण किए हुए ।

4.4.3. अलंकृत अंग + वस्त्र :

पीत वस्त्र राम के श्याम शरीर पर शोभित है । इन दोनों को समवेत रूप से उपमेय मान कर तुलसी ने अलंकारों की संरचना की है :-

---

* वि. 45/2   2 गी. 7/8/4

3 वही. 7/5/1   4 त्या.3﴾अ﴿2/3

उपमेय अंग	अंग का उपमान	अंग के वस्त्र	वस्त्र का उपमान
-	नील जलद	पीतापट	तड़ित *
-	नीलगिरि शिखर	पीत दुकूल	मनियुक्त कनक रूचि[2]
-	मरकत पर्वत	पीत चैल	दामिनी [3]
श्याम शरीर	नील जलद	पीत दुकूल	दामिनी [4]
साँवरे शरीर	बाल जलद	पीली झगुली	बाल दामिनी [5]

यह संरचना त्यागराजु में नहीं मिलती ।

5. आभूषण

5.1. आभूषण : संज्ञा संरचना :

दोनों ही कवियों ने राम के अंग-प्रत्यंग को विभूषित या अलंकृत रूप में कल्पित किया है । पांचरात्र मूर्ति-विधान में अलंकारों का वर्णन विस्तार से दिया गया है । तुलसी और त्यागराजु में भी प्रच्छन्न रूप से वही परंपरा

---

* वि. 61/2
2 वही. 62/11
3 गी. 7/6/5
4 वही. 7/17/9
5 वही. 1/33/2

मिलती है । निम्नलिखित तालिका से दोनों आलोच्य कवियों की आभूषण-कल्पना स्पष्ट है :

अंग	आभूषण	तुलसी	त्यागराजु
चरण	पदत्रान पादुकलु	वि.209	त्या.560
	नूपुर	वि.63	त्या. 118
	पैंजनी	गी.1/33	-
	अंदेलु	-	त्या. 197
	पावल	-	त्या.395
	सरूलु	-	त्या.18(अ)
कटि	मंजीर	गी.7/21	त्या.560
	मेखला	वि.61	-
	किंकिनी	वि.51	-
	गज्जेलु	-	त्या.197
वक्ष	वनमाल	वि.51	त्या.243
	हार	वि.61	त्या.458
	माला	गी.5/47	त्या.95
	पदिक	गी.1/34	-
	बघनख	गी.1/33	-
	यज्ञोपवीत	गी.7/16	-
कर	कंकन	वि.63	त्या.621
	केयूर	गी.7/17	त्या.458
	मुद्रिका उंगरमु	वि.63	त्या.24 अ
	पहुँची	गी.1/34	

ग्रीवा	माला	गी॰1/52	त्या॰4
	कठुला	गी॰1/31	–
	हार	गी॰1/26	–
	केहरिनख	गी॰1/32	–
नासिका	नथुनियाँ	गी॰1/34	–
	मुक्केर	–	त्या॰79
भाल	तिलक	वि॰44	त्या॰247
	बिंदी	गी॰1/31	–
	बोदटु	–	त्या॰212
कान	कुण्डल	वि॰51	त्या॰247
	कली	गी॰1/62	–
	पनियाँ	गी॰1/34	–
	[illegible] पोगुलु	–	त्या॰191
सिर	मुकुट	वि॰44	त्या॰361
	किरीट	गी॰7/21	त्या॰4
	लटकन (शविरेक)	गी॰1/26	त्या॰197
	सुमन	गी॰1/52	त्या॰95
	चौतनी टोपी	गी॰1/62	–
	पंख	गी॰1/52	–
	पल्लव प्रसून	गी॰1/90	–
	पुव्वुलु	–	त्या॰24 (अ)
	तुलसीदल	–	त्या॰219

इस तालिका के अनुसार दोनों कवियों की आभूषण-कल्पना बहुत कुछ समान है । यह बात स्पष्ट है कि त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी ने आभूषणों के वैविध्य के अधिक प्रकट किया है, साथ ही त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी में

पर्याय वैविध्य भी अधिक है ।

5.2. आभूषणों के विशेषण :

संज्ञा और विशेषण में औपचारिक अंतर तो है, व्यावहारिक अंतर नहीं है । विशेषण संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होकर उसके समान व्याकरणिक संरचना ग्रहण कर सकता है । साथ ही विशेषण संज्ञा की केवल विशेषताएँ ही नहीं बतलाता, उसके द्वारा संज्ञा सक्रिय, गतिशील होकर एक निश्चित दिशा की ओर उन्मुख भी होती है । इसीलिए स्थिर संज्ञा को गतिशील पदबंध में परिवर्तित करने का प्रमुख कार्य विशेषण ही करता है । ऊपर इष्ट-देव के अंगों के आभूषणों पर विचार किया गया है । यहाँ उन आभूषणों के लिए तुलसी और त्यागराजु ने कुछ विशेषणों को प्रयुक्त करके उनमें और सुंदरता लायी है । प्रत्येक आभूषण के विशेषणों का विवरण नीचे दिया गया है ।

आभूषण	विशेषण	तुलसी	त्यागराजु
नूपुर	जातरूपमनि जटित मनोहर	वि.62	-
	कनक-जटित मनि	वि.63	-
	बंगारू (कनक)	-	त्या.621
	घनमैन (श्रेष्ठ)	-	त्या.2 अ
मेखला	मनि	वि.61	-
किंकिनि	चारू	वि.62	-
	बिचित्रजाल	गी.1/25	-
	हाटक जटितमनि	गी.1/33	-
	कनक-रत्न मनि जटित	गी.1/34	-

	हाटक-घटित जटित मनि	गी.7/21	-
गज्जेलु	कुन्दनपु (स्वर्ण)	-	त्या.197
वनमाल	सुमन-सुविचित्र नव-तुलसिकादलयुत मृदुल	वि.51	-
	सुविशाल नवमंजरी	वि.61	-
	रूचिर	गी.5/47	-
	नव्य	-	त्या.95
माला	मुक्तामनि	गी.7/17	त्या.118
	गजमनि	गी.7/6	-
	मंदार	वि.54	-
	तुलसी	गी.7/4	-
	जय	गी.1/97	-
	सुबिसाल	गी.7/5	-
	वकुलसुममुल	-	त्या.623
हार	गजमनि	गी.7/8	-
	मुक्ता	-	त्या.458
	मुत्याल	-	त्या.79
केहरि नख	बिसाल	गी.1/25	-
	हेममध्य मनिगन	गी.1/26	-
यज्ञोपवीत	अतिपावन	गी.7/16	-
	पुनीत	गी.7/17	-
कठुला	मंजु गज मनियाँ	गी.1/34	-
केयूर	कनक	गी.7/17	त्या.458
	कंचनमनि	गी.7/7	-
	मनोहर	वि.63	-

कंकन	कनक-रतन जटित	वि•61	-
	चारू	वि•62	-
	रव (हीरे)	-	त्या•621
	वज्रपु (हीरों के)	-	त्या•247
पहुंची	रुचिरतर	गी•1/33	-
	मंजु	गी•7/17	-
तिलक	गोरोचन	गी•1/24	-
	मसि	गी•1/34	-
	चारू	वि•45	-
	सु	वि•63	-
	कस्तूरी	-	त्या•173
	मृगमद	-	त्या•4
कुंडल	कनक कलंलबित भुजमूले	गी•7/12	-
	वर सुंदरतर	गी•7/7	-
	बिलोल	कृ•गी•23	-
	उज्ज्वल	-	त्या•1 अ
	घनमैन	-	त्या•2 अ
पहुनियाँ	नग	गी•1/34	-
कली	कनक	गी•1/62	-
लटकन	मनि-कनक-रचित	गी•1/11	-
	रत्नहाटक-जटित	वि•51	-
	कलधौत-मनि	वि•44	-
	हेम-हीरक-मानिकमय	गी•7/17	-
	मनि-रचित-चारू	गी•7/7	-

जटा	गो.2/15	-
सुंदर	गो.7/6	-
कनकमय	-	त्या.2 अ
मनिमय	-	त्या.361
राजित	-	त्या.482
रत्नमुल	-	त्या.24 अ
सुरुचिर	-	त्या.4
चौतनी टोपी चारू अति	गो.1/63	-
लाल	गो.1/43	-

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि आभूषणों के लिए तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही प्राय: समान प्रकृति के विशेषणों का प्रयोग किया है और विशेषण संरचना की प्रक्रिया में प्राय: समान रूप से रुचि भी उन्होंने ली है। किंतु तुलसी की साध्य-कल्पना त्यागराजु की अपेक्षा अधिक आभूषणों से युक्त है। फलत: तुलसी के द्वारा प्रयुक्त विशेषण भी अधिक हैं।

5.3. अलंकार संरचना में आभूषण :

जिस प्रकार तुलसी ने आराध्य के नख-शिख को अलंकार-संरचना में रखा है, उसी प्रकार उनके अंगों पर सुशोभित आभूषणों को भी। आभूषण साध्य के अंग-सांगत्य के कारण अपूर्व स्थिति ग्रहण करते हैं और इसीलिए अलंकरण की संरचना में आते हैं। इस संदर्भ में भी कवि की प्रवृत्ति सामान्य रूप से विशिष्ट अलंकार-संरचना की ओर है। सामान्य संरचना एक वाक्य की होती है और विशिष्ट संरचना एकाधिक वाक्यों की।

5.3.1. एक वाक्य की संरचना :

एक वाक्य की संरचना में प्रस्तुत और अप्रस्तुत संदर्भों को एक कडी से जोड दिया जाता है । उदाहरण के लिए तुलसी ने एक रचना यह की : नूपूर ध्वनि + /वत/ + हंस ध्वनि । * इस रचना में उपमान की संख्या को बढ़ाकर उपमेय पर बल निक्षेप भी किया गया है । मुकुट को सौ सूर्य के समान कहकर इस प्रविधि को चरितार्थ किया गया है :-

"रत्न-हाटक-जटित-मुकुट-मंडित-मौलि-
भानु-सत-सदृस-उद्योग कारी ।"[2]

त्यागराजु ने भी चाहे अलंकार रचना में विशेष रुचि न ली हो, कहीं-कहीं एक वाक्य की अलंकार संरचना की है । जैसे - कुंडल (से) + /निंदित/ + चंद्र मंडल ।[3] इस सामान्य संरचना के पश्चात् त्यागराजु की कल्पना ठिठक जाती है और तुलसी की कल्पना उर्वर होकर उत्प्रेक्षा की दीर्घतर संरचना में प्रविष्ट हो जाती है ।

5.3.2. दो वाक्यों की संरचना :

सामान्य रूप से एक वाक्य की रचना में उत्प्रेक्षा को नहीं बांधा गया है । इसके लिए कम से कम दो वाक्यों की योजना की गयी है । इस संरचना में प्राय: पहला वाक्य प्रस्तुत संदर्भ का और दूसरा वाक्य अप्रस्तुत संदर्भ का रहता है । साथ ही उपमेय आभूषण को विशेष रूप से संदर्भित भी किया जा सकता है । इन दोनों वाक्यों को जोडनेवाली कडी /मनु/~ /मानो/~ /जनु/ है ।

---

* जुगल-पद नूपुरा मुखर कल हंस वत । - वि.61/6

2 वही. 51/2

3 उभय पार्श्वोज्ज्वलित कर्ण कुंडल निंदित चंद्रमंडल" - त्या.1 (अ)

5.3.2.1 एक उपमेय और एक उपमान की रचना :

एक उपमेय और एक उपमानकी रचना उत्प्रेक्षा की बनी है और इसके लिए एक से अधिक वाक्यों का प्रयोग हुआ है । उदाहरण के लिए कुंडलों को कामदेव के मकरों के समान कहा गया है । फिर प्रश्न उठता है कि वे कानों के पास क्यों हैं? कल्पना कारण का निरूपण करती है - राम के कानों में मेल की बातें करते हैं । फिर प्रश्न उठता है कि वे मेल की बातें क्यों कर रहे हैं? काल्पनिक उत्तर है - शंकर के भय से । फिर प्रश्न - शंकर का भय क्यों? काल्पनिक समाधान - शिव ने कामदेव को पराजित कर दिया है, उसके मकर ध्वज को भी नष्ट न कर दें । इस प्रकार कारण-कार्य की विभावनामय योजना करके एकसे अधिक वाक्यों में एक उपमेय और एक उपमान की उत्प्रेक्षा की संरचना हुई है । * इस रचना में एक और उत्प्रेक्षा इस प्रकार की है जिसमें साध्य के गले की मुक्तामणिमाला को हंसों की पंक्तियाँ बताया गया है ।[2]

5.3.2.2 दो उपमेय और दो उपमान :

साध्य के आभूषणों को अलंकृत करते समय तुलसी ने दो उपमेय और दो उपमान की रचना भी की है, साथ ही उपमेय आभूषण को विशेष रूप से संदर्भित भी किया है । नूपुर की एक अलंकार योजना से इसको उदाहृत किया जा सकता है :-

नूपुर = जातरूप + मणि, अर्थात् स्वर्ण में जुड़ी हुई मणियाँ = शिव-हृदय और मणियाँ = शिव हृदय में निवसित विष्णु के विविध रूप । (जात रूप = शिवहृदय और

---

* ....

कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही ।
मनहु हर डर जुगल मारध्वज के मकर लागि
श्रवननि करत मेरु की बतकही ।।

- गी• 7/6/3

2 उर मुकुतामनि - माल मनोहर मनहु हंस-अवली उडि आवति ।

- वही• ~~7/6/3~~ 7/17/6

मणियाँ = विष्णु के विविध रूप ‡ । * इसी प्रकार मुखर किंकिनी की भी अप्रस्तुत संरचना की गयी है : किंकिनी + उसकी ध्वनि = स्वर्णकमल ‡में‡ + गुंजरित भ्रमर ।[2] तुलसी ने साध्य के उरस्थ हार और गजमणि माला को उपमेय युगल मान कर उपमान युगल की रचना की है : उरस्थल=जलद ; हार एवं गजमणिमाला = दो बक-पंक्तियाँ ।[3] इस उदाहरण में आभूषण से विभूषित अंग का संदर्भ जोड़ा गया है ।

एक संरचना में उपमान की सिद्धि के लिए एक पौराणिक सुंदर सूत्र को संलग्न किया गया है । रचना इस प्रकार है - पौराणिक संदर्भ सूत्र -- एक उपमान की प्राप्ति -- दूसरे उपमान से संलग्न । शिव की काम विजय -- दो मकर ध्वजों की प्राप्ति ‡कुंडल के उपमान‡ -- शिव के द्वारा दो मकर ~~ध्वजन~~/ ध्वजों का चन्द्रमा ‡मुख‡ को उपहार में ।[4] इसी प्रकार एक स्थान पर नीलकलेवर और कुंडलों को क्रमशः नीलजलद और मयूर युग्म से उपमित किया गया है ।[5]

---

* जात रूप मनि-जटित मनोहर, नूपुर, जन-सुखदाई ।
जनु हर-उर हरि विविध रूप धरि, रहे वर भवन बनाई ।।
- वि. 62/4

2 कटि तट रटति चारु किंकिनिरव, अनुपम बरनि न जाई ।
हेम जलज-कल कलित - मध्य जनु, मधुकर मुखर सुहाई ।।
-- वही. 62/5

3 हार उरसि गजमनि-माल मनहुँ बग-पाँति
जुगमिलि चली जल्द ही । - गी. 7/6/4

4 मंडित स्रुति कुंडल बर सुंदरतर जोरी ।
मनहुँ संबरारि मारि, ललित मकर-जुग बिचारि,
दीन्हें ससि कहँ पुरारि भ्राजत दुहुँ ओर ।। - वही. 7/7/3

5 स्रुति कुंडल -डोलनि जिय जागति ।
लखि नवनील-जलद पयोद, रवित सुनि, रुचिर मोर जोरी
जनु नाचति । - वही. 7/17/14

एक स्थान पर भाल = चन्द्रमा तथा तिलक = तड़ित की संरचना है ।* इसी प्रकार युगल भृकुटी को धनुष के रूप में और तिलक को बाणों के रूप में कल्पित करके उनको चलानेवाले के रूप में कामदेव को कल्पित किया गया है ।[2] एक और रचना में उपमान और उपमेय तो दो ही हैं, किंतु उनकी संगति बिठाने के लिए एक दीर्घ कल्पना की गयी है । प्रस्तुत-अप्रस्तुत रचना यह है : भृकुटी पर मसि बिंदु = रक्षक ; मुख छवि = अमृत । इनकी संगति को इस प्रकार बिठाया गया है : मुख चन्द्र के सौन्दर्य रूपी अमृत की रक्षा के लिए श्रृंगार रस ने एक रक्षक (मसि बिंदु) नियुक्त किया है ।[3] इस रचना में जटिलता इसलिए आ गई है कि कल्पना के साथ साथ दो रूपक भी ~~रू~~ अंतर्भूत है : विधुमुख ; छबि अमिय ।

5.3.2.3. तीन उपमेय और तीन उपमान :

तीन उपमेय की रचना में अंग + आभूषण (1) + आभूषण (2) रह सकते हैं :-[4]

---

* भाल पर तिलक कहौं समुझाई ।
अलप तड़ित जुगरेख इंदु महँ, रहि तजि चंचलताई ।।
— वि. 62/10

2 भाल बिसाल बिकट भृकुटी बिच तिलक-रेख रुचि राजे ।
मनहुँ मदन तन तकि मरकत-धनु जुगुल कनक सर साजे ।।
— गी. 7/12/2

3 ...... भ्रूपर मसि बिंदु बिराज ।
जनु बिधु-मुख-छबि अमिय को रच्छक राखे रसराज ।। वही. 1/22/6

4 सुंदर पटपीत बिसद, भ्राजत बनमाल उरसि,
तुलसिका-प्रसून-रचित, बिबिध बिधि बनाई ।
तरु-तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीर पाँति रुचिर
हेमजाल अंतर परि तातें न उड़ाई ।।
— गी. 7/3/5

प्रस्तुत : साध्य का शरीर + वस्त्र (पीतांबर) + तुलसी और पुष्पों की बनी बनमाला ।

↓ अप्रस्तुत : तमालतरू + स्वर्णजाल + तिरंगे शुक ।।

कभी एक आभूषण को दूसरे आभूषण से ही संदर्भित किया गया है । जैसे हृदय पर ज्योतिर्मय पदिक लटका हुआ है और उसके चतुर्दिक गजमुक्ताओं की माला । इस रचना को यों देखा जा सकता है :- *

प्रस्तुत : वक्षस्थल + ज्योतिर्मय पदिक + गजमुक्तामाला ।

↓ अप्रस्तुत : (श्याम) मेघ + कलायुक्तसूर्य + नक्षत्रमाला ।।

मेघ पर सूर्य-कला का दिखाई देना तथा सूर्य को नक्षत्रों का घेरना अघटित घटना का ही कौतुक है ।

एक और संरचना में दो अंग और एक आभूषण त्रयी को उत्प्रेक्षा की दीर्घतर संरचना में लाया गया है :-[2]

आभूषण (कुंडल = मयूर ↓ (सर्पों को पकड़ना चाहते हैं)

दो अंग [मुख = चन्द्रमा ↑

भुजाएं = दो सर्प] (चन्द्रमा की ओर अग्रसर)

---

* उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुबिसाल चहुं पास बनि गज मनी ।
स्याम नव जलद पर निरखि दिनकर-कला कौतुकी
मनहुं रही घेरि उडुगन - अनी ।।

- वही • 7/5/6

2 सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिबि भुज मूले ।
मनहुं केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले ।।

- गी • 7/12/5

इसमें कल्पना यह है कि सर्प (भुजाएँ) चन्द्रमा (मुख) की ओर अग्रसर हैं और मयूर (कुंडल) उनको पकड़ना चाहते हैं । द्रष्टव्य यह है कि इस संरचना में दो उपमान गतिशील हैं ।

एक स्थिति यह प्रस्तुत हुई है : अलकावली, अलकावली से भाल पर लटकता हुआ लटकन, ललाट चन्द्रमा की ओर अग्रसर । उत्प्रेक्षा की रचना इस प्रकार हुई : नक्षत्रगण (लटकन) अंधकार (अलकावली) को विदीर्ण करके चन्द्रमा (ललाट) से मिलने आ रहे हों ।* इस संरचना में रूपकातिशयोक्ति का पुट और अधिक चमत्कार उत्पन्न करता है । अर्थात् एक उपमेय लुप्त रहता है जो उपमान से व्यंजित होता है । मुख मंडल, कर्ण और कुंडल में से पहला लुप्त है और दो प्रकट । इसके लिए उपमान तीन नियोजित हैं :-[2]

उपमेय	उपमान
मुख (लुप्त)	चन्द्रमा
कर्ण	मरकतमणि की सीपियाँ
कुंडल	स्वर्ण मछलियाँ

इस रचना में एक और प्रविधि तुलसी ने अपनायी है । उपमेय तो दो ही हैं - केश और लटकन, किंतु उपमानों की एक श्रृंखला लटकन के साथ संबद्ध हो गयी है । अंधकार (केश) चन्द्रमा (मुख-लुप्त) से मिलने आ रहा है

---

* गभुआरी अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट ।
जनु उडुगन बिधु मिलन को चले तम बिदरि करि बाट ।।
- गी. 1/22/7

2 स्रवन सुंदर, सम कुंडल कल जुगम,
तुलसिदास अनूप, उपमा कही न जाई ।
मानो मरकत सीप सुंदर ससि समीप
कनक-मकरजुत बिधि बिरची बनाई ।।
- वही. 7/11/3

और उसके साथ दो गुरु ⟨बृहस्पति=पीतरंग=स्वर्ण रचित लटकन तथा शुक्र=श्वेत=हीरक⟩, मंगल ⟨लाल=लाल रत्न⟩ तथा शनि ⟨नीलरंग=नीलमणि⟩ भी है । * इस प्रकार की योजना रूपकातिशयोक्ति से भी पुष्ट है । यह रचना अधिक चमत्कारपूर्ण भी है ।

इस रचना की अन्य प्रक्रिया में एक अंग पर सुशोभित तीन आभूषणों का जटिल और संयोग अप्रस्तुत भी बिठाया जाता है । उदाहरण के लिए साध्य के वक्ष पर - यज्ञोपवीत, पदिक, गजमणिहार - ये तीन आभूषण सुशोभित हे । इनके लिए तुलसी ने यह रचना की है :-

"मनहु सरधनु नखतगत बिच तिमिर-भंज निहारु ।।"[2]

इसमें उपमेय तीनों ही आभूषण हैं, अंग सम्मिलित नहीं है ।

5.3.2.4. चार उपमेयों की रचना :

कहीं कहीं तुलसी ने चार उपमेयों के सांगत्य भी अलंकृत किया है और इस रचना में उपमान तीन ही रखे गये हैं । अर्थात् दो उपमेयों के लिए एक ही उपमान प्रयुक्त हुआ है ।[3] इसका विश्लेषण इस प्रकार हो सकता है :

	प्रस्तुत		अप्रस्तुत
1⟩	पदक	→	सूर्य
2⟩	भृगुपदचिह्न	→	कमल
3⟩	मुक्तामाल	→	कमल
4⟩	कुंकुम अनुलेपन	→	सूर्य और कमल का अनुराग ।

---

* भाल बिसाल ललित लटकन बर, बाल दसाके चिकुर सो होए ।
मनु दोउ गुर सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तमके गन आये ।। - गी. 1/26/5

2 वही. 7/8/3

3 भृगुपर चिह्न, पदिक उर सोभित, मुकुतमाल, कुंकुम अनुलेपन ।
मनहुं परसपर मिलि पंकज रबि प्रगट्यो निज अनुराग, सुजस घन ।। गी. 7/16/4

कुछ रचनाओं में चार उपमेयों के साथ चार अलग-अलग मज अप्रस्तुतों की भी कल्पना की गयी है और यह कल्पना पर्याप्त चमत्कारपूर्ण भी है । जैसे : कंबकंठ + तुलसीमाल + तुलसी की सुगंध से आकर्षित गुंजरित भ्रमर + छबि = {क्रमश:} सुनील {कलिंद} पर्वत + उससे निकली कलिंदजा {यमुना} + यमुना के तटपर गर्जित मेघ खंड + वर्षा । *

एक रचना इस प्रकार है :-

"बिथुरित सिररूह बरूथ कुंचित, बिच सुमन-जूथ,
  मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई ।
जनु सभीत हैं अंकोर राखे जुग रूचिर मोर,
  कुंडल-छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई ।।-"[2]

इसमें चार उपमेय और चार उपमान इस प्रकार है : मुख=चन्द्रमा; केश=बाल सर्प; गुंथे हुए फूल = मणियाँ और कुंडल = दो मोर । उत्प्रेक्षा की समग्र कल्पना इस प्रकार हुई । बिखरी हुई अलकावली के बीच गूंथे हुए फूलों के गुच्छे ऐसे लगते हैं मानों मणिधारी बाल सर्प चन्द्रमा के समीप आये हों और उन्हें देखकर चन्द्रमा ने उनसे बचने के लिए दो मोरों {कुंडलों} को रख छोडा हो ।

चार सूत्रोंवाली एक रचना एक और प्रकार भी ह मिलती है जिसमें कवि का ध्यान साध्य के चार अंगों और उनके चार आभूषणों पर केन्द्रित है,

---

* कंबुकंठ, उर बिसाल तुलसिका नवीन माल,
  मधुकर बर-बास-बिबस, उपमा सुनु सो री ।
जनु कलिंदजा सुनील सैलतें धसी समीप,
  कंद-बृंद बरसत छबि मधुर घोरि घोरी ।।
- गी• 7/7/5

2 वही• 7/3/3

किंतु एक उपमान के द्वारा ही सबके प्रति न्याय किया गया है : चरण-नूपुर; कटि-किंकिनि; कर-पहुँची और हृदय-बघनखा = कामदेव की मणियों का ढेर ।* इस रचना से यह प्रमाणित होता है कि तुलसी उपमानों की अपेक्षा उपमेयों के प्रति अधिक आकर्षित है ।

6. वर्ण :

6.1. राम वर्ण :

वर्ण एक सर्वांग व्याप्त तत्व है । अन्य अंगों और उपकरणों की भांति वर्ण की भी विशेषण मूलक और अलंकार मूलक रचना दोनों आलोच्य कवियों ने की है । श्याम वर्ण को दोनों ही कवियों ने विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया है । तुलसी ने "श्याम तनु" (गी.2/29), "श्याम शरीर" (गी.1/32), "श्यामल अंग" (गी.5/5), "श्यामलगात" (गी.7/2) और "श्याम बपु" (वि.प.62) पदबंधों का प्रयोग किया है । कभी साँवरो संज्ञा के रूप में भी प्रयुक्त मिलता है - "साँवरो सुभग, शोभाहू को परम सिंगारू" (गी.1/82) । साथ ही "मेचकताई" (श्यामता) को भाव वाचक संज्ञा के रूप में भी तुलसी ने लिया है - "तनु मृदु मंजुल मेचकताई" (गी.1/24) ।

इसी प्रकार त्यागराजु ने "श्याम अंग" (त्या.202), "श्याममूर्ति" (त्या.167), "श्यामल गात्र" (त्या.375), जैसे पदबंध प्रयुक्त किये है । इस रचना के प्रयोग में दोनों कवियों में पूर्ण समानता मिलती है ।

त्यागराजु ने "श्याम" के स्थान पर "नील" शब्द का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है : "नील वर्ण" (त्या.234) और "नीलाकृति" (त्या.492) ।

---

* पग नूपुर, कटि किंकिनि, कर-कंजनि पहुँची मंजु ।
हिय हरिनख अदभुत बन्यो मानो मनसिज मनि-गन-गुंज ।।
- गी.1/22/5

जिस प्रकार तुलसी ने इस विशेषण प्रयोग को संज्ञाबद्ध भी किया है, उसी प्रकार "श्यामम्" [त्या.447] प्रयोग करके त्यागराजु ने समान प्रवृत्ति का परिचय दिया है ।

6.2. राम-लक्ष्मण वर्ण :

राम और लक्ष्मण सम्मिलित रूप से ही राम कथा के नायक है । यह सहनायकत्व वाल्मीकि रामायण से प्रमाणित होता है । तुलसी ने अपने साहित्य में राम और लक्ष्मण की जोडी को एक साथ रचना प्रक्रिया में लाकर उनके सहनायकत्व को प्रमाणित किया है । वर्ण निरूपण में भी इन दोनों के लिए उन्होंने "गोरे-स्याम" [गी.2/26], "श्यामल-गोर" [गी.2/24] जैसे विशेषण युग्मों का विशेष्य बनाया है । त्यागराजु की कल्पना में राम और लक्ष्मण का सहनायकत्व नही उभरा है । इसलिए वर्ण निरूपण में तुलसी के जैसे विशेषण युग्मों का प्रयोग भी नहीं है ।

6.3. वर्ण का अलंकरण :

6.3.1. प्रयुक्त अप्रस्तुत :

नील या श्याम वर्ण दोनों ही कवियों की कल्पना को उलझा दे लेता है । वर्ण के अलंकरण में प्रयुक्त अप्रस्तुत हैं : जलद, नीलकमल, तमाल, मरकत, नीलमणि, कसौटी, केकि कंठ, मयूर पंख और दूर्वदल । इनकी तुलनात्मक स्थिति इस प्रकार है :-

उपमान	क्षिप्रता	
	तुलसीदास	त्यागराजु
जल्द	20	34
मरकतमणि =	6	8
इंद्रनीलमणि	2	3

तमाल	2	1
नीलकमल	12	-
कसौटी	1	-
केकिकंठ	1	-
मयूर पंख	1	-
दूर्वदल	-	1

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि तुलसी ने त्यागराजु की अपेक्षा कुछ अधिक उपमानों का प्रयोग वर्ण के लिए किया है । आवृत्ति की दृष्टि से दोनों ही कवियों का ध्यान "जलद" * उपमान पर है । दोनों में अंतर की दृष्टि से देखा जाए तो तुलसी की दृष्टि "नीलकमल"[2] और "तमाल"[3] पर है जबकि त्यागराजु ने बल "मरकतमणि"[4] और "इन्द्र-नीलमणि"[5] पर दिया है । अन्य उपमानों[6] में अंतर नगण्य है ।

---

* तुलसी : वि॰15,37,45,49,50,51,54,75,221,
गी, 1/25, 1/26, 1/41,1/53, 1/68,5/40,5/43,
7/17, 7/6, 7/5, 7/21

त्यागराजु : 95,96,110,118,219,237,280,314,356,405,411,416,
432, 456, 466, 471, 478, 482, 484, 491, 503,
572,593,11(अ),14(अ),15(अ), 17(अ),46(अ),60(अ),
457,513,626,418,483

2 वि॰44,46,60,63,218,गी॰1/25,1/34,1/52,1/73,1/90,5/43,कृगी28

3 तुलसी : गी॰1/64,7/7 त्याराजु॰ 203

4 तुलसी : वि॰61, गी॰1/25,1/73,2/15,2/16,2/18
त्याराजु :247,294,389,393,394,409,623,9(अ)

5 तुलसी : गी॰1/108,7/7 त्यागराजु : 1,256,414

6 स्याम रूप सुचिरुचिर कसौटी - वि॰105,केकिकंठ दुति श्याम बरन बपु-गी॰1/23
तन-दुति मोरचंद - गी॰1/31 नवदूर्वदलनील - त्या॰607

6.3.2. उपमानों के पर्याय :

तुलसी ने बादल के इन पर्यायों का प्रयोग किया है : घन, जलद, वारिद, नीरद, वनद और वारिधर ।* इस प्रकार पर्यायों की कुल संख्या छ: हो जाती है । त्यागराजु ने तुलसी की भाँति " घन, नीरद, जलद और वारिद का प्रयोग किया है ।[2] इनके अतिरिक्त त्यागराजु ने अंबुद, मेघ, धाराधर, जलधर, शरद, वारिवाह और जीमूत का प्रयोग भी किया है ।[3] इससे यह प्रतीत होता है कि पर्यायमूलक चमत्कार की ओर त्यागराजु की दृष्टि कुछ अधिक है ।

तुलसी ने दूसरे प्रमुख उपमान कमल के लिए इन पर्यायों का प्रयोग किया है : कंज, तामरस, सरोज, पायोज, नलिन, नीरज और वारिज ।[4] त्यागराजु ने कमल को अप्रस्तुत रूप में ग्रहण नहीं किया है, इसलिए उसका पर्यायों का प्रश्न ही नहीं उठता है । अन्य उपमानों के पर्याय प्राय: नहीं प्रयुक्त हुए हैं ।

6.3.3. उपमानों की विशेषणमूलक रचना :

उपमान को उपमेय से तुलनीय होने के लिए पात्रता प्रदान करने की एक प्रविधि विशेषणों का संयोग है । विशेषण रचना की प्रवृत्ति तो दोनों ही कवियों में समान मिलती है । कुछ परिमाणगत अंतर अवश्य है । वर्ण का सबसे प्रमुख उपमान बादल है । इसके लिए तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही समान रूप से "नव" (वि. 45, त्या. 471) विशेषण का प्रयोग किया है । इसके साथ तुलसी ने विशेष रूप से " वर " (गी.1/53)

---

* वि.75, गी.7/6, गी.5/43, गी.1/41, वि.54,51

2 त्या. 482, 356, 219, 411

3 त्या. 593,456,478,237,503,60(अ),46(अ)

4 वि.46,63, गी.1/34, गी.1/52, कृगी.28, गी.1/73, वि.218

विशेषण का भी प्रयोग किया है । त्यागराजु की रचना में दो विशेषण तुलसी से विशिष्ट हैं : " शरद् " = शरदबुद §त्या. 593§ तथा " घन" = घनाघन § त्या. 572§ ।

दूसरा उपमान कमल है, किंतु त्यागराजु ने इससे राम के वर्ण को उपमित ही नहीं किया, जबकि तुलसी ने इसके लिए " नील§ कृगी.28§ नव §वि.60§, " सुंदर § गी.1/34§ तथा " नवनीके" §वि.46§ विशेषणों का प्रयोग किया है ।

तीसरा उपमान मरकतमणि का है । तुलसी ने इसके लिए " अमल " § गी.2/18§ विशेषण प्रयुक्त किया है । त्यागराजु ने इसके साथ विशेषण का प्रयोग नहीं किया है ।

चौथा उपमान नीलमणि है जिसका प्रयोग दोनों कवियों ने किया है और दोनों ने विशेषण संरचना में भी इसको रखा है । दोनों के समान विशेषण यह है : "इन्द्र" = इंद्रनीलमणि §गी.1/108, त्या.1§ । इन्द्र का पर्याय " सुरपति" का प्रयोग भी त्यागराजु ने किया है । तुलसी ने विशेष रूप से " सुभग " §गी.1/108§ विशेषण का प्रयोग भी किया है।

तुलसी ने एक अप्रस्तुत के साथ दूसरा अप्रस्तुत जोड़कर उपमान के संज्ञा पदबंध का विस्तार किया है । जैसे - /सिंगार-सर-तामरस/ = " श्रृंगार के सरोवर में खिला हुआ कमल " §वि.44§ । इस प्रकार की रचना तुलसी के उपमानों के विशेषण मूलक रचना विधान का वैशिष्ट्य है ।

6.3.4 राम-लक्ष्मण वर्ण : अलंकार /

जैसे तुलसी ने राम और लक्ष्मण के लिए विशेषण युग्मों का प्रयोग किया है, उसी प्रकार उन दोनों के वर्ण के लिए उपमान युग्मों का प्रयोग किया है *: श्याम §राम§ + गौर §लक्ष्मण§ = §1§ घन-दामिनि,

---

* गी. 1/53/1, गी.2/16/1, गी. 1/52/2

2) मरकत-स्वर्ण , 3) नील-पीत कमल । इन तीनों का एक स्थान पर सम्मिलित प्रयोग भी किया गया है :

" नीलपीत नीरज कनक मरकत घन दामिनि -बरन तनु ।। "*

6.3.5 उपमान और उपमेय संबंध सूत्र :

तुलसी ने उपमान और उपमेय के बीच के संबंध सूत्र को प्रकट न करके सामासिक रचना की है । जैसे : "सुंदर स्याम सरोज बरन तनु" (गी.1/34) । कभी /-आभ/ संबंध सूत्र का प्रयोग किया है । जैसे : "नीलकंजाभ तन" (वि.46) । कभी कभी इसके स्थान पर /सरिस/ "समान" का प्रयोग भी हुआ है (गी.1/25) । लंबी रचना में /जनु/ या /मनु/ दोनों को संबद्ध करने वाले सूत्र हैं । इस पर आगे विचार किया गया है ।

त्यागराजु ने भी इसी प्रकार कभी-कभी सामासिक रचना की है : "घनतमाल नील" (त्या.203), कभी /-निभ/ का प्रयोग किया है : "नवनीरद निभ" (त्या.471) और तुलसी की भांति /-आभ/ का प्रयोग भी किया है : "नीरदाभ शरीर" (त्या.110) । इस प्रकार रचनागत संबंध सूत्र दोनों कवियों में प्रायः समान है ।

6.3.6. अलंकार की दीर्घतर रचना :

6.3.6.1 उपमानों की श्रृंखला :

एक दीर्घ रचना में उपमेय के साथ उपमानों की एक श्रृंखला जोड़कर तुलसी ने रचना को दीर्घतर बनाया है - "नील कंज, बारिद, तमाल, मनि इन्ह तनुतें दुति पाई ।"[2] त्यागराजु में भी यह दीर्घतर

---

* गी.1/73/2

2 वि.62/2

रचना मिलती है - "मेरूपनु कनक शलाकनु मरूकातिनि धिक्करिंचु मेनु ।" *

6.3.6.2. उत्प्रेक्षा की रचना :

संबंध सूत्र/मानो/ कभी कभी दो वाक्यों को जोडकर दीर्घतर रचना प्रस्तुत करता है । जैसे - "तन-दुति मोरचंद जिमि झलकै ।

मनहु उमगि अंग-अंग छबि छलकै ।।"[2]

अन्य कुछ पूर्वोक्त प्रसंगों की भांति उत्प्रेक्षा की इस रचना में भी त्यागराजु तुलसी से पिछड जाते हैं ।

6.3.6.3. दो उपकरणों की उत्प्रेक्षा रचना :

तुलसी ने अन्य स्थानों की भांति वर्ण संदर्भ में भी एक से अधिक उपकरण जोडे हैं और /मनु/ संबंध सूत्र के द्वारा दो अलग-अलग वाक्य संबद्ध किये हैं । श्याम वर्ण के ऊपर झलकते हुए "श्रमसीकर" कवि की कल्पना में आये हैं । जैसे :-

"स्रम-सीकर सोहैं सांवरे अंग ।
मनु मुकता मनि मरकत गिरिपर लसत ललित
रबि किरनि प्रसंग ।।"[3]

श्याम वर्ण पर श्रमसीकर इस प्रकार झलक रहें हैं मानो मरकत मणि शिखर पर मनोहर सूर्य किरणों का संग पाकर मोती सुशोभित हो रहे है ।

6.3.6.4. उपमान के आधार पर उपमेय के विशेषण की दीर्घतर रचना :

इस संदर्भ में त्यागराजु ने इस रचना का प्रयोग किया है - "श्याम मेघ की कांति को जीतने वाले श्रीहरि" §=श्याम राम§ ।[4]

---

* "बिजली, स्वर्ण कांति, कामदेव की कांति को धिक्कार करने वाला शरीर" - प्रभवि.पृ.39

2 गी.1/31/2 3 गी.3/4/2

4 "नील वारिवाह कांतिनि गेलिन श्रीहरि" - त्या.60§अ§/2

7.सर्वांग सौन्दर्य :

तुलसी और त्यागराजु दोनों का साध्य शील, शक्ति और सौंदर्य से युक्त है । शक्ति के द्वारा वह सुर विरोधी, मानव विरोधी, समाज विरोधी और मूल्य विरोधी शक्तियों का विनाश करता है । भक्त-वत्सलता और दीन वत्सलता उसके शील स्वभाव की संरचना में आती है । सौंदर्य अलौकिक तत्व के लौकिक संदर्भ ग्रहण करने पर प्रस्फुटित होता है । मानवीय सौंदर्य संदर्भ ही साध्य को भाव संवेद्य बनाते हैं । अंतर यह रहता है कि मानवीय सौंदर्य संदर्भ साध्य पर अध्यारोपित नहीं होते, साध्य मानवीय सौंदर्य संदर्भों का स्रोत बन जाता है । लीला के लिए साध्य अपने से ही उद्भूत सौंदर्य संदर्भ में विलसित हो जाता है । इन सौंदर्य संदर्भों की व्यंजना दो संरचनाओं के द्वारा होती है - विशेषण संरचना और आलंकारिक संरचना ।

7.1. सर्वांग विशेषण संरचना :

सर्वांग सौंदर्य संदर्भ में साध्य को अखंड या समग्र रूप में देखकर उस पर विशेषण की संरचना आरोपित की गयी है । उसमें अंग-प्रत्यंगों को अलग-अलग नहीं देखा गया है । विशेषण संरचना पर विचार करने के लिए यह सुविधाजनक होगा कि लघु संरचना से विस्तृत संरचना की ओर चला जाय । एक विशेषण प्रयोग करके भी संज्ञा पदबंध की रचना की गयी है और विशेषण श्रृंखला के भी । यह संरचना कभी साध्य के अंग-प्रत्यंगों, आभूषणों, उपकरणों आदि पर केन्द्रित रही है और कभी सर्वांग पर ।

7.1.1. एक विशेषण की संरचना :

दोनों आलोच्य कवियों ने यद्यपि सुंदरता सूचक विशेषण संरचना को अधिक महत्व दिया है, किंतु दोनों कवियों के साध्य के रूप-बिंब ग्रहण में विशेषण संरचना की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर दिखलाई पड़ता है । तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु ने अधिक विशेषण वर्गों का प्रयोग किया है ।

यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जाता है -

विशेषण वर्ग	तुलसी	त्यागराजु
दिव्यता द्योतक	x	✓
शुभता द्योतक	x	✓
शांत द्योतक	x	✓
प्रकाश द्योतक	x	✓
स्वच्छता एवं पवित्रता द्योतक	x	✓
श्रेष्ठता द्योतक	x	✓
कोमलता द्योतक	x	✓
अतुलनीय	✓	✓
सुंदरता द्योतक	✓	✓

7.1.1.1 असमान विशेषण वर्ग :

त्यागराजु ने दिव्यता द्योतक इन विशेषणों का प्रयोग किया है : "दिव्य" (त्या.357); "अजर" (त्या.332) और "नित्य" (त्या.296) । इनमें से "दिव्य" विशेषण दिव् धातु से व्युत्पन्न है जो प्रकाश या साध्य के सुरत्व का परिचायक है । "अजर" एक सोपसर्ग (अ+जर) विशेषण है, जिसके द्वारा साध्य की मानवोपरि प्रकृति प्रकट होती है । "नित्य" औपनिषदिक प्रकृति का विशेषण है, जिससे साध्य का ब्रह्मत्व व्यंजित होता है ।

"मानस" में तुलसी ने विधेयात्मक और निषेधात्मक दोनों ही संरचनाओं के द्वारा मंगलमय राम को रचनाबद्ध किया है - "मंगल भवन अमंगलहारी" । किंतु उनके प्रगीत काव्य में मंगलमय विशेषण संरचना ने राम को संदर्भित नहीं किया है । त्यागराजु के संकीर्तनों में यह रचना मिलती है : "मंगल" (त्या.406); और "शुभ" (प्रभवि. पृ.20) ।

"शांत" विशेषण निर्वेद या वैराग्यमूलक है । इसके द्वारा संभवत: साध्य का ऋषिमानस या क मुनिमानस द्योतित होता है । विष्णु के एक प्रसिद्ध स्तोत्र से प्रेरणा लेकर इसकी रचना की हो : "शांताकारूं" §प्रभवि, पृ.32§ ।

साध्य या देव की कल्पना पूर्व वैदिक काल से ही प्रकाश के रूप में होती आयी है म इस परंपरा का सूत्र त्यागराजु के कुछ विशेषणों में विलसित है : "सुप्रकाश" §त्या.312§; "तेजोमय" §त्या.179§ और "ज्योतिर्मय" §त्या.564§ । यह द्रष्टव्य है कि इन विशेषणों की रचना सोपसर्ग सप्रत्यय की है । प्रकाश के पहले /सु-/ उपसर्ग सुंदरता की व्यंजना करनेवाला है । /-मय/ प्रत्यय संज्ञा को विशेषण बनाता है ।

स्वच्छता एवं पवित्रता द्योतक विशेषण त्यागराजु की विशेषण संरचना की वह विशेषता है जो तुलसी से उनको पृथक करती है । ये विशेषण इस प्रकार है : "पावन" §त्या.97§; "पुण्य" §त्या.127§; "निरामय" §त्या.3§ और "निर्मल" §त्या.294§ ।"वर" §त्या.455§ का प्रयोग भी त्यागराजु ने किया है । यह भी लोकोत्तरता द्योतक विशेषण है । सौंदर्य का पोषक विशेषण वर्ग कोमलता से संबंधित है । जहाँ अवतरित साध्य शौर्य और वीर्य के संदर्भ में कठोर दिखलाई पडता है वहाँ रंजनात्मक संदर्भों में वह कोमल भी है । त्यागराजु ने "कोमल" §प्रभवि. पृ.14§ और "सुकुमार" §त्या.337§ विशेषणों का प्रयोग करके साध्य के इसी पक्ष को उजागर किया है ।

असमान विशेषण वर्ग तुलसी और त्यागराजु की मानसिकता के अंतर को प्रकट नहीं करते । क्योंकि तुलसी की प्रबंध रचना में ये सभी प्रकार के विशेषण सन्निविष्ट है । गीत-संरचना म के संदर्भ में ही तुलसी ने उपर्युक्त विशेषण वर्गों की रचना प्रयुक्त नहीं किया । इनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तुलसी ने गीतशिल्प की रचना की दृष्टि से विशेषणों का त्याग अमे और चयन किया है । साध्य का विराट रूप इन सभी विशेषणों से संयुक्त

होकर उनके प्रबंध शिल्प में अनुस्यूत है । किंतु त्यागराजु की प्रबंध-चेतना अलग से सक्रिय न होकर उनके प्रगीतों में ही समाविष्ट हो गयी है । इसलिए साध्य के प्रबंधोचित विराट् रूप की संरचना भी उनके संकीर्तन पदों में दिखलाई पड़ती है ।

7.1.1.2. समान विशेषण वर्ग :

समान विशेषण संरचना के दो वर्ग हैं : आकर्षण मूलक और बलवर्द्धन मूलक ।

7.1.1.2.1 आकर्षण मूलक :

आकर्षण मूलक विशेषणों का एक वर्ग √मोह् और √हर् से निष्पन्न है । √मोह् तांत्रिक पद्धति में प्रचलित है - मोहन, उच्चाटन आदि की प्रक्रियाओं में इसका स्थान है । इसी तांत्रिक क्रिया का वैष्णवीकृत रूप "मोहन" में प्रकट हुआ है । /मोहन/ "मोहित करनेवाले" (कृ.गी.28; त्या.24) का प्रयोग दोनों ही कवियों ने किया है ।

त्यागराजु ने मोहन की एक जटिल रचना √मोह् के कर्म जोड़कर की है - /जगन्मोहन कर/ "जगत को मोहित करने वाले" (त्या.462) । तुलसी ने इस संरचना का प्रयोग नहीं किया है ।

√हर् पर आधारित विशेषण /मनोहर/ (गी.2/36) है । यह "जगन्मोहनकर" पद्धति का है । इसका प्रयोग केवल तुलसी में ही मिलता है । क्योंकि हिन्दी का यह बहु प्रचलित विशेषण है । त्यागराजु ने /मोद/ संज्ञा का विशेषण रूप में प्रयोग किया है - "मोदरूप" (त्या.15(अ)) । तुलसी ने इसका प्रयोग नहीं किया । प्रबंध संरचना में "मोद मंगलकारी" विशेषण अवश्य मिलता है ।

सुंदरता मूलक विशेषणों के अधिक पर्याय तुलसी में ही मिलते हैं ।

तुलनात्मक पर्याय सूची नीचे दी जा रही है -

पर्याय	तुलसी	त्यागराजु
सुंदर	गी.2/17/1	त्या.628/1
मंजुल	गी.5/38/1	त्या.229/2
सुभग	वि.प.61/6	-
नीके	गी.2/30/1	-
ललित	गी.1/82/2	-
लोने	गी.1/53/1	-
मधुर	गी.2/19/1	-
रुचिर	कृ.गी.57/3	-
अभिराम	गी.7/6/1	-
कमनोय	-	त्या.380/7
रम्य	-	त्या.604/3
चक्कनि {सुंदर}	-	त्या.201/19

इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ त्यागराजु की विशेषण संरचना अधिक अर्थपरक बिंबों को लेकर हुई है वहाँ तुलसी की दृष्टि में सौंदर्यमूलक विशेषण ही प्रमुख हैं। इसका प्रमाण यह है कि तुलसी ने इस वर्ग के विशेषणों के पर्याय अधिक प्रयुक्त किये हैं।

7.1.1.2.2. बलवर्द्धन मूलक :

विशेषण को एक अतिरिक्त शब्द के द्वारा बलिष्ट बनाने की प्रविधि दोनों ही कवियों की रचना में मिलती है। "अति" या "अत्यंत" शब्द के द्वारा इ दोनों कवियों ने समान रूप से विशेषणों को सबल बनाया है : तुलसी = "अतिरम्य" {वि.53} ; त्यागराजु = "अति लावण्य" {त्या.95};

"अत्यंत सुंदर" (त्या.343) । इस समान शब्द के अतिरिक्त तुलसी ने "परम" शब्द का प्रयोग भी रचना के बलवर्द्धन के लिए किया है : "परम सुंदर" (गी.2/18) । त्यागराजु ने "परम" शब्द का प्रयोग नहीं किया है । इसी प्रकार त्यागराजु ने "अनुपम" शब्द के द्वारा साध्य की सौंदर्यमूलक अद्वितीयता की व्यंजना की है - "अनुपम लावण्य" (त्या.433) । यह अतिरिक्त बलवर्द्धन का प्रवृत्तिगत साम्य है ।

त्यागराजु ने सौंदर्य मूलक अद्वितीयता को प्रकट करनेवाले शब्द को विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त किया है, जैसे : "असमान गात्र" (त्या.1) ; "निरुपम शरीर" (त्या.4(अ)) । अद्वितीयता को प्रकट करनेवाली यह प्रविधि तुलसी में भी मिलती है - "सकल अंग अनूप" (गी.7/8) ।

<u>7.1.2. दो विशेषणों की संरचना :</u>

दोनों ही कवियों ने दो विशेषणों और एक विशेष्य को जोडकर भी संज्ञापदबंध की रचना की है । दो विशेषणों का तात्पर्य है - संज्ञा को दो भाव संदर्भ प्रदान करना । दो विशेषण युग्म त्यागराजु के गीतों में बहुत कम है । केवल तीन युग्म मिलते हैं - "दिव्य लावण्य" (त्या.489); "दिव्य सुंदर" (त्या.265) और "दिव्य तेजोमय" (प्रभवि.पृ.33) । इस युग्म का एक सदस्य निश्चित है - दिव्य । शेष तीन परिवर्तनीय हैं । यही त्यागराजु की विशेषण-रचना की विशेषता है ।

तुलसी के गीतों में विशेषण युग्म का वैविध्य अधिक है - "सहज सुंदर" (वि.66); "सहज सोहावनो" (गी.2/25); "सुंदर सुठि" (गी.1/99); "सद सुभग" (वि.63); "मंजुल मंगलमई" (गी.5/38); "मधुर मनोहर" (गी.3/3); "ललित ललाम" (वि.156) और "अमित अपार" (गी.2/29) । इस सूची को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विशेषण युग्म की दोनों इकाइयों की प्रथम ध्वनि समान है : (स - + स -); (म- + म-); (ल- + ल-) और

﴾अ - + अ - ﴿ । इस अनुप्रासमयी युग्म रचना के द्वारा एक लय उत्पन्न की गयी है जो विशेषणों के अर्थ को पुष्ट करती है । दूसरी बात यह द्रष्टव्य है कि जहाँ त्यागराजु ने "दिव्य" विशेषण को सभी युग्मों में रखा है वहाँ तुलसी ने अधिकांश युग्मों की रचना "सहज" विशेषण से की है । रचना की इस पद्धति के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि त्यागराजु की प्रगीत चेतना साध्य के दिव्यत्व से मुक्त नहीं हो पाती जबकि तुलसी की प्रगीत चेतना "स्वाभाविक" पर केन्द्रित है । एक ओर तो "सहज" जन्मजात मानवीय सौंदर्य को द्योतित करता है, दूसरी ओर कृत्रिम और स्वाभाविक सौंदर्यों में से "स्वाभाविक" का वर्णन करता है । तात्पर्य यह कि तुलसी की युग्म रचना अधिक सौंदर्य मूलक है । यह "सहज" शब्द मूल विशेष्य से रचनात्मक संबंध नहीं रखता । इसका संबंध विशेषण से ही है । अर्थात् विशेषण की विशेषता इसके द्वारा ज्ञातव्य है । इसलिए व्याकरणिक दृष्टि से "सहज" इस संदर्भ में विशेषण नहीं है । त्यागराजु ने विशेषण को विशिष्ट बनानेवाली रचना को ग्रहण नहीं किया है ।

﴾म - + म - ﴿ वाली युग्म रचना में या तो दोनों ही विशेषणों की प्रकृति समान है, जैसे - /मधुर मनोहर/ । ये दोनों ही सौंदर्यमूलक विशेषण हैं । शेष युग्म में विशेषणों के बीच परस्पर पूरकता का संबंध रखा गया है । पहली इकाई सौंदर्य मूलक है - "मंजुल" और दूसरी इकाई शुभता की अभिव्यक्ति करती है - "मंगलमई" । सौंदर्य और शुभ की परस्पर पूरकता साध्य के सौंदर्य बोध को पूर्णता प्रदान करती है । यदि पहली इकाई व्यक्तिगत भाव सौंदर्य को स्फूर्त बनाती है, तो दूसरी इकाई एक बृहत्तर संदर्भ में लीला प्रभु की स्थापना करती है । क्रम में सौंदर्य मूलक विशेषण को पहले रखा गया है । इसके विपरीत त्यागराजु ने पूरकता का संबंध दिव्य और सुंदर के बीच में रखा है और युग्म की पहली इकाई सौंदर्य मूलक न होकर लोकोत्तरता को प्रकट करनेवाली है । युग्म रचना की इस तुलना से दोनों कवियों के विशेषण

मूलक भाव बिंब स्पष्ट हो जाते हैं और दोनों की दृष्टियां भिन्न संकेतों से युक्त हो जाती हैं ।

7.1.3 दो से अधिक विशेषणों की संरचना :

त्यागराजु ने अपने गीतों में दो से अधिक विशेषणों की श्रृंखला की रचना नहीं की । तुलसी ने तीन विशेषणों की श्रृंखला भी प्रयुक्त की है । आनुप्रासिक लय इस रचना में भी संरचित है - ﴾ म - + म - + म - ﴿ ← / मंजु मधुर मृदु / ﴾गी.2/25﴿ । यह आनुप्रासिक लय विशेष्य के साथ भी विशेषणों का लयात्मक संबंध स्थापित करती है । लयात्मक रचना विशेषणों और विशेष्य को जोडकर चार बिंदुओंवाली हो जाती है - ﴾म- + म- + म - ﴿+म-﴿ ﴿ = /मंजु मधुर मृदु मूरति / । त्यागराजु ने विशेषणों और विशेष्य के संबंध की लयात्मक रचना नहीं की ।

इसी प्रकार ﴾स﴿ पर आधारित आनुप्रासिक रचना की गयी है :- आनुप्रासिक रचना की गयी है :-

सकल -	सौभाग्य सौंदर्य सुषमा	- रूप

इस रचना में आनुप्रासिक रचना चार बिंदुवाली है : ﴾स- + स - + स - + स - ﴿ । विशेष्य तक यह आनुप्रासिक लय रचना नहीं फैलती । समग्र रचना बहुव्रीहि की पद्धति की हो जाती है : ﴾सकल + ﴾सौभाग्य-सौंदर्य-सुषमा﴿ + रूप ﴾वाले या रखनेवाले ﴿﴾वि.44﴿ । साथ ही इस आनुप्रासिक लयात्मक रचना को पुष्ट करनेवाली सामासिकता दिखलाई पडती है । इस प्रविधि से भी रचना अधिक प्रबल हुई है ।

7.1.4. सर्वांग विशेष्य संरचना :

जहाँ दोनों आलोच्य कवियों की चाक्षुष रागात्मक वृत्ति आराध्य के विभिन्न अंगों पर केंद्रित होती है वहाँ समग्र रूप भी उनकी बिंब योजना में आता है । क्योंकि दोनों ही कवियों का आराध्य नर रूप में अवतरित विष्णु या ब्रह्म है । इसलिए उनकी कल्पना में उसका नराकार बिंबित होता है । दोनों ही कवियों ने समग्र शरीर को विविध विशेषणों का विशेष्य बनाया है । शरीरवाची शब्द भी दोनों कवियों में प्राय: समान हैं । * इनके अतिरिक्त तुलसी ने सर्वांग द्योतक काव्य शास्त्रीय शब्द "नख शिख"[2] का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने इस शब्द का प्रयोग नहीं किया । "बपुष"[3] शब्द का प्रयोग भी तुलसी के गीतों में ही मिलता है, त्यागराजु के गीतों में नहीं । इसके विपरीत त्यागराजु ने सर्वांग वाचक तेलुगु शब्द "अपघन"[4] का प्रयोग किया है । यह शब्द सर्वांगवाची तत्सम शब्दावली में स्थानीय विशेषता ला देता है । "आकार",[5] "गात्र"[6] जैसे शरीरवाची तत्सम शब्दों का प्रयोग भी किया गया है जो तुलसी के गीतों में नहीं मिलते ।

शरीरवाची शब्दों के साथ-साथ तुलसी और त्यागराजु दोनों ने "विग्रह"[7] और "मूर्ति",[8] शब्दों का प्रयोग करके संमूर्तित आराध्य की ओर संकेत किया है । समस्त अंगों में संचरित सौंदर्य को भी दोनों कवियों ने विशेष्य के रूप में देखा है । "शोभा"[9] और "कांति"[10] दोनों कवियों ~~तक~~ ~~का~~ में विशेष्य के रूप में मिलती है । यदि भिन्नता की दृष्टि से देखें तो "छबि"[11] का प्रयोग तुलसी की विशेषता है और "रूप"[12] का प्रयोग त्यागराजु की ।

---

* शरीर (गी.1/54; त्या.628), अंग (गी.2/36; प्रभवि.पृ.20) ।
2. गी.1/34 3 वही. 2/17 4.त्या.409/7 5. वही265/4
6. वही.138/2, 7. ~~वही~~ वि.50/3; त्या.179/2, 8. कृ.गी.28/1
9. गी.1/10/3; 10. त्या.216/3; 11. गी.7/2/1; 12. प्रभवि. पृ.29

128

7.2. सर्वांग अलंकरण :

ऊपर नख-शिख सौंदर्य के प्रकरण में राम के अंग-प्रत्यंग के प्रति दोनों कवियों की अलंकरण प्रक्रिया को देखा गया है । दोनों ने राम के समग्र सौंदर्य को भी अलंकृत किया है ।

7.2.1 निषेधात्मक प्रविधि :

दोनों ही कवियों ने राम के सर्वांग सौंदर्य को अनिर्वचनीय माना है । इस वक्तव्य को प्रकट करने के लिए कई प्रविधियाँ अपनायी गयी हैं । सबसे सरल प्रविधि सामान्य कथन की है : "अंग अंग प्रति अतुलित सुषमा बरनि न जाइ"। * त्यागराजु ने इस प्रकार का सामान्य कथन तो नहीं किया, पर विस्तृत निषेधात्मक कथन किये हैं । इन पर नीचे विचार किया गया है ।

§1§ प्रसिद्ध ज्ञानियों के लिए भी अकथनीय - कुछ पुराणोक्त ज्ञानी या भक्त कह गये हैं जिनके लिए प्रत्येक वस्तु का वर्णन संभव है, किंतु राम के समग्र सौंदर्य का वर्णन करने में वे अक्षम हैं । इन ज्ञानियों या देवों की सूची इस प्रकार है : "शारदा" §वि.62§; "शेष" §गी.7/16§; "वेद" §गी.7/17§; "शंभु" §गी.7/9§; "नारद" §गी.7/9§ और "शुक" §गी.7/16§ । त्यागराजु ने इस सूची को नहीं अपनाया । केवल ब्रह्मादिक देवताओं को राम के सौंदर्य वर्णन में अक्षम कहा गया है और वह भी एक बार ।[2] तुलसी ने इनकी आवृत्ति भी अनेक बार की है । साथ ही "अमित सेष" §गी.28§ और "सत सारदा" §वि.62§ की रचना के द्वारा इस कथन को और भी बलिष्ट किया गया है - "अमित सेष नहिं कहि सकत"[3] और "सतसारदा ---- सोभा कहि न सिराई" ।[4] सौंदर्य की अनिर्वचनीयता का बिंब दोनों कवियों में

---

* गी.7/21/15

2 नी सोगसु इंतनुचु वर्णिंपदरमा ब्रह्मेंद्रादुल केन ।" - त्या.43/2

3 कृ.गी. 28/2 4 वि. 62/13

है, किंतु तुलसी ने विशदीकरण करने के लिए बृहत्तर संरचना को ग्रहण किया है ।

7.2.2. प्रश्नवाचक प्रविधि :

तुलसी ने प्रश्न की संरचना उपर्युक्त अनिर्वचनीयता संबंधी कथनों की पृष्ठभूमि में की है : जब शिव, शारदा, शेष, वेद, नारद, शुक आदि ही राम के अतुलित सौंदर्य का वर्णन नहीं कर सकते तो तुलसी कैसे वर्णन कर सकता है :-

सत सारदा सेष स्रुति मिलिकै सोभा कहि न सिराई ।
तुलसिदास मतिमंद द्वंद्वरत कहै कौन बिधि गाई ।। *

त्यागराजु ने देवादि के संदर्भ से तो प्रश्नवाचक संरचना नहीं की, किंतु प्रश्नवाचक प्रविधि को अवश्य अपनाया है - सुंदरता का कौन वर्णन कर सकता है?[2]

7.2.3. अतिशयोक्ति की प्रविधि :

त्यागराजु ने लिखा है कि साध्य के दिव्य मंगलमय रूप को देखने के लिए दस हजार आँखें चाहिए : दो आँख पर्याप्त नहीं है ।[3] तुलसी ने एक स्थान पर कहा है कि राम के सौंदर्य के सामने त्रिभुवन की समग्र सौंदर्य शोभा लघु प्रतीत होती है ।[4]

---

* वि. 62/13

2 एंतमुद्दो, एंत सोगसो एवरिचल्ल वर्णिप दगुने ।
- त्या.104/1

3 भावुक मगु दिव्य रूप मुनु गन्न वेंकटेश
निनु सेविंपनु पदिवेल कनुलु कावलेनय्या । - त्या.528/2

4 सकल भुवन सोभा सरबसु लघु लागति निरखि निकाई ।।
- गी.1/55/3

7.2.4. अलौकिकता के कथन की प्रविधि :

तुलसी ने एक स्थान पर कहा है कि समस्त भुवन राम के सौंदर्य से ही सुशोभित है - "जिन्ह की शोभा तें सोहै सकल भुवन" । * इसका प्रयोग त्यागराजु ने नहीं किया ।

7.2.5. एक उपमान की संरचना :

दोनों ही कवियों ने राम के रूप को अनिर्वचनीय मानते हुए भी उसका कथन करने का सहास किया है । इसके लिए उपमानों की खोज भी की गयी ।

7.2.5.1 समान प्रमुख उपमान :

दोनों कवियों की दृष्टि में प्रमुख रूप से दो उपमान आते हैं : कामदेव और सूर्य । इस उपमान की स्थिति को निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है ।

उपमान	प्रक्रिया	तु.गी.का.	त्या.
कामदेव	समान	×	✓
	करोड	✓	✓
	अगनित	✓	×
	पराजित	✓	✓
सूर्य	समान	✓	✓
	करोड	✓	✓
	अगनित	✓	✓

ऊपर की तालिका को देखने से निम्न लिखित निष्कर्ष निकाले जा

---

* गी.1/83/1

सकते है :-

§1§ दोनों ही कवियों ने राम के समग्र रूप-सौन्दर्य के लिए कामदेव क्रम के उपमान को चुना है और उनके तेज के लिए सूर्य का उपमान ।

§2§ दोनों ही कवियों ने राम के रूप की अतिशयता बताने के लिए या तो कामदेव की संख्या में वृद्धि की है,* जैसे कि अकेला कामदेव राम से तुल्य नहीं हो सकता, अथवा दोनों कवियों ने "अगणित"[2] विशेषण से इसी प्रक्रिया को बढाया है । इस प्रक्रिया का चरम कामदेव को राम के सामने पराजित[3] करके लाया गया है । यही प्रक्रिया सूर्य के साथ भी घटित की गई है,[4] किंतु सूर्य को कामदेव की भांति पराजित नहीं दिखलाया गया है ।

---

* कोटि-कंदर्प-छबि §वि.50§; काम शतकोटि छबि §वि.61§ । काम कोटि सुंदर §त्या.461§; मदन कोटि रूप §त्या.151§

2 सोभा अगनित काम §वि.77§; बहु काम छबि §वि.49§; सोभा अमित अनंग §गी.7/21§ अंग-अंग मनोजनि बहु छबि छाई §गी.1/108§

3 मनोभव कोटि गर्वापहारी §वि.44§; मदन-मद-मथन §वि.53§; कोटि मनोज-सोभा हरनि §गी.1/27§; काम-कोटि-कांति हरन §गी.2/16§; तनु छबि कोटि मनोज लजाए §गी.2/35§ । जितमदन §त्या.534§; कमनीय तनु निंदित काम §त्या.623§; जित रति राज §त्या.496§; द्युति निर्जित शत शंबरारि §त्या.182§ ।

4 कोटि : कोटि अर्क प्रकाशम् §वि.60§; तेज सतकोटि भानुहू के भानु §गी.5/35§ रवि कोटि तेज §त्या.132§; कोटि विभाकर भास §त्या.562§ ।

अगणित : अर्क अगनित प्रकाशम् §वि.60§; बहु रवि तेज §त्या.471§ ।

(3) त्यागराजु ने राम को कामदेव के समान भी बतलाया है, * किंतु तुलसी ने इस समानता को उचित नहीं समझा । राम को सूर्य के समान दोनों कवि कहते हैं ।[2]

आवृत्ति की दृष्टि से भी यही सिद्ध होता है कि दोनों ही कवि उपमानों की अपेक्षा राम के सौंदर्य के वैशिष्ट्य और आतिशय्य को दिखाने के पक्ष में हैं ।

7.2.5.2. समान गौण उपमान :

दोनों ही कवियों ने राम के रूप को सागर से उपमित किया है । रचनात्मक तालिका इस प्रकार है -

उपमेय		उपमान
रूप सुषमा शोभा सौंदर्य श्रृंगार लावण्य	के~की	पारावार सागर निधि वारिधि

दोनों कवियों ने समान रूप से इस उपमान का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने उपमेय के रूप में केवल "श्रृंगार"[3] और "लावण्य"[4] का प्रयोग

---

* कंदर्प सुंदर (त्या.450); मदन सुंदराकार (त्या.458)

2 भानुमत (वि.56); तरणि संकाश (त्या.237) भास्करतेज (त्या.351) ।

3 त्या.46/6

4 त्या.241/2

किया है । ऊपर के शेष उपमेय तुलसी के द्वारा प्रयुक्त है । * उपमान के रूप में त्यागराजु ने केवल "निधि"[2] और "वारिधि"[3] का प्रयोग किया है, शेष उपमान तुलसी में प्रयुक्त है ।[4] इससे स्पष्ट होता है कि इस प्रविधि की विस्तृति त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी में अधिक है ।

7.2.5.3 तुलसी के विशिष्ट उपमान :

तुलसी ने राम को "लावण्य गृह" (वि.50), "सोभा-सदन" (गी.1/54), "सुषमा अचन" (वि.50), "रूप के अगार" (गी.1/71), "सुखमा कंद" (गी.7/23), "भुवनाभरन" (गी.7/5), "सौंदर्य-परिसीमा" (वि.53) और "रूप के निचारे" (गी.1/73) कहा है । इस उपमान की यह कर्मधारय मूलक रचना त्यागराजु ने नहीं की ।

7.2.5.4 त्यागराजु का विशिष्ट अलंकार : चन्द्रमा :

तुलसी ने राम के समग्र रूप के लिए चन्द्रमा को उपयुक्त नहीं समझा । इसका एक कारण यह हो सकता है कि तुलसी ने चन्द्रमा को राम के मुख मंडल के रूप में ही स्वीकार करते हैं । दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि साध्य सूर्य कुलोद्भव है । इसलिए उसके समग्र रूप को चन्द्रमा से उपमित करना उचित प्रतीत नहीं होता । किंतु त्यागराजु ने राम के समग्र रूप के लिए भी चन्द्रमा का उपमान ग्रहण किया है । चन्द्रमा के पहले /कोटि/ विशेषण जोड़कर उपमान के रूप में चन्द्रमा की अपात्रता या लघुता का परिमार्जन भी त्यागराजु ने किया है - /हिमकर कोटि निभाग/"= करोड़ों चन्द्रमाओं के समान अंग" (त्या.345) और /बिधु कोटि संकाश/"=करोडों चन्द्रमाओं के समान" (त्या.10(अ)) ।

---

* रूप (गी.2/18); सुषमा (गी.1/82); सोभा (गी.1/22); सौंदर्य (वि.60) ।

2 त्या.46/6   3 त्या.241/2

4 पारावार (गी.1/64); सागर (गी.1/22); निधि (वि.60) ।

7.2.6. बृहत्तर संरचना :

बृहत्तर संरचना वहाँ होती है जहाँ सांग रूपक घटित होता है । उदाहरण के लिए तुलसी ने एक स्थान पर कहा है कि राम का सौंदर्य साधु समाज रूप कमल कानन को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य के समान है । * एक स्थान पर तुलसी ने उत्प्रेक्षा की बृहत्तर रचना भी सर्वांग सौंदर्य के लिए की है - बाल चपलता के समय राम ऐसे लगते हैं मानो शोभा की दीवट पर रूप का दीपक रखा हो और बाल केलि रूप हवा के झोंकों से झिलमिला रहा हो ।[2] एक उत्प्रेक्षा के द्वारा तुलसी ने राम के सर्वांग सौंदर्य की रचना-विधि का वर्णन भी किया है : ब्रह्मा ने त्रैलोक्य सौंदर्य को इकट्ठा करके राम के अंग सौंदर्य की रचना की है ।[3] त्यागराजु के गीतों में इस रचना प्रविधि का अभाव है ।

8. निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि तुलसी और त्यागराजु दोनों की ही रूप संरचनाएँ साध्य के बिंब को विशद बनाती हैं । नख शिख का ग्रहण सामान्य और नगण्य अंतर के साथ दोनों ही कवियों ने समान रूप से किया है । नाम पर्याय त्यागराजु के गीतों में तत्समता की ओर अधिक झुके हुए हैं और इनका वैविध्य भी त्यागराजु के गीतों में ही अधिक मिलता है । विशेषणों की संरचना में भी दोनों का रचना-स्तर प्राय: समान है । अंतर केवल आलंकारिक संरचना में आता है । त्यागराजु उपमा और रूपक जैसी छोटी अलंकार-संरचना के रूढ़ रूप से संतुष्ट हो जाते हैं । तुलसी

---

* "अतुलित छबि संत-कंज-कानन रबि" - गी.7/3/1.

2 बालकेलि बातबस झलकि झलमलत
सोभा की दीवटि मानो रूप-दीप दियो है ।
- वही. 1/10/3

3 देखो रघुपति-छबि अतुलित अति ।
जनु तिलोक-सुषमा सकेलि बिधि राखी रुचिर अंग अंगनि प्रति ।।
-- गी.7/17/1

इस स्तर से आगे बढ़कर अपनी उर्वर कल्पना के सहारे अपह्नुति की दीर्घतर संरचनाओं में संलग्न होते हुए मिलते है । इसका एक कारण यह माना जा सकता है कि त्यागराजु के स्तोत्र प्रकृति के गीतों और उनकी सूक्ष्म संगीत संरचना में कल्पना जन्य दीर्घतर रचना का समावेश नहीं हो सका है । तुलसी के गीत एक सीमा तक ही स्तोत्र प्रकृति के रहते हैं और धीरे-धीरे वे भावगीत की संरचना में संक्रमित हो जाते हैं । भावगीत की संरचना में अपह्नुति की दीर्घतर संरचना का समावेश सम्भव हो सका है । तात्पर्य यह है कि साध्य के रूप दर्शन में दोनों कवि समान हैं, किंतु रूप के संरचनात्मक विशदीकरण में प्राय: तुलसी का वैशिष्ट्य परिमाण की दृष्टि से और आवृत्ति की दृष्टि से हो जाता है । मूल संरचना की भूमियाँ दोनों ही कवियों में समान हैं ।

--**--

चौथा अध्याय

साध्य का लीला संदर्भ : क्रिया संरचना

साध्य का लीला संदर्भ : क्रिया संरचना

0. प्रास्ताविक :

वैष्णव साहित्य का सबसे अधिक प्रतीकार्थ गर्भित शब्द "लीला" है । आगमीय दर्शन और पौराणिक मिथक - लीला के चतुर्दिक ही सक्रिय और केन्द्रित होते हैं । इस प्रतीकात्मक शब्द के विस्तृत प्रयोगात्मक क्षेत्र के संबंध में और उसके मूल तत्व के संबंध में डा. राममूर्ति त्रिपाठी ने लिखा है - "तात्रिक दृष्टि के संघटक दो प्रमुख बिंदुओं का शांकर मत के संदर्भ में स्पष्टीकरण कर लेने के अनंतर तीसरा बिंदु है - परतत्व का लीलार्थ अवरोहण । वैष्णव, शैव एवं शाक्त जैसी आगमिक धाराओं में यह स्वीकार किया गया है कि यह परतत्व की स्वातंत्र्यात्मा शक्ति ही है जो सृष्टि रूप में प्रसारित होती है और इस प्रसरण के मूल में उसकी "लीला" ही निमित्त है । लीला का प्रयोजन कुछ नहीं है । सप्रयोजन कार्य वह करता है जिसे

क्लेशकर अभाव का बोध होता है । मूल तत्व में क्लेशकर अभाव बोध की स्थिति ही नहीं है, अत: वहाँ प्रयोजन तथा निमित्त की बात ही सोचना व्यर्थ है । यह तो उस परतत्व की आनंद एवं ऐश्वर्यमयी स्वातंत्र्यात्मा शक्ति है जो लीला का विश्वात्मक प्रसार करती है ।" * इस प्रकार लीला का मूल स्रोत आगम दर्शन में लक्षित होता है । लीला एक निष्प्रयोजन क्रिया है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लीला तत्व को स्पष्ट किया है :-

"..... भगवान सत् चित् आनंद स्वरूप है ..... वह स्वयं आनंद रूप है .... फिर भी रहस्य यह है कि वे रस पाकर ही आनंदी होते हैं ..... क्योंकि यह उस अपूर्व लीलाधर की लीला की लीला है । लीला ही लीला का कारण है । लीला ही लीला का लक्ष्य है । केवल भगवत्साक्षात्कार बडी बात नहीं है । लीला बडी बात है और भगवान का प्रेम ।"[2]

इस प्रकार लीला व्यापार मुख्यत: स्वेच्छा से (अभाव से नहीं है) गृहीत रसास्वादन क्रिया है । डा. चन्द्रभान रावत ने लीला-चक्र को इस प्रकार स्पष्ट किया है :-[3]

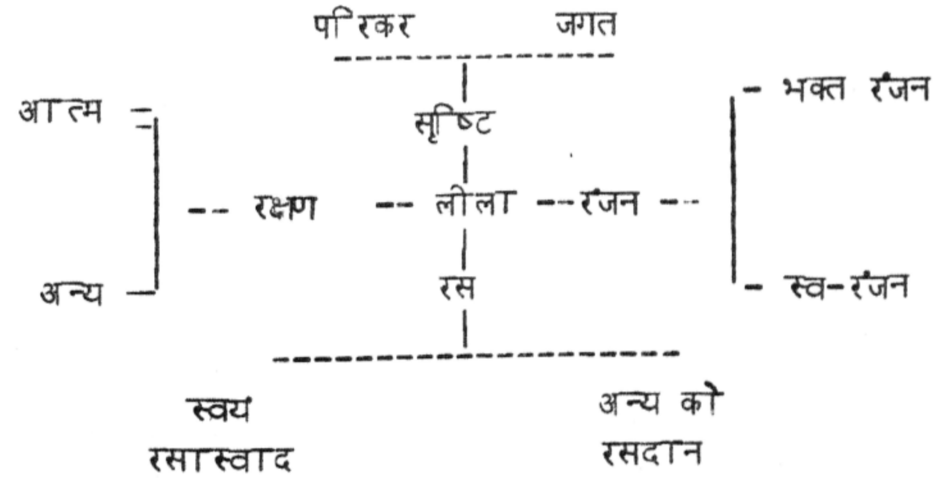

---

* तुलसी और आगम, पृ.9,10

2 मध्यकालीन धर्म साधना, पृ.132-136

3 कृष्ण भक्ति साहित्य : वस्तु, स्रोत और संरचना, पृ.244

इनमें से तुलसी और त्यागराजु ने अधिक विस्तार रक्षण और रंजन से संबंधित लीलाओं का किया है । सृष्टि लीला, तत्व की स्वरूप विस्तृति ही है । यह तत्व की बहिरंग लीला है जिसके मूल में सृजनेच्छा सक्रियय रहती है । इसका यत्किंचित आभास तुलसी और त्यागराजु के गीत-साहित्य में मिल जाता है, किंतु उनका ध्यान साधुओं के परित्राण और दुष्कृतों के विनाश से संबंधित लीलाओं में ही अधिक रहा है । इन लीलाओं की भाव संरचना में अवतरित साध्य का ऐश्वर्य और साधक का दास्य भाव अनुगुम्फित रहते हैं । दास्य मिश्रित सख्य का समावेश भी यत्र-तत्र हो जाता है ।

लीला में अवतरित पुरुष (चाहे राम हो, चाहे कृष्ण) की समस्त अभिव्यक्तियाँ और क्रियायें सन्निविष्ट रहती हैं । * इसका तात्पर्य यह है कि साध्य की आंतरिक संरचना लीला क्रिया में अभिव्यक्त भी होती है और उसी के द्वारा वह व्यावहारिक संदर्भ भी ग्रहण करती है । इसी लीला क्रिया का भावन और गायन तुलसी और त्यागराजु जैसे भक्त कवियों की काव्य-साधना का लक्ष्य बन जाता है । प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत साध्य से संबंधित इस लीला क्रिया की संरचना का ही विश्लेषण किया गया है ।

1. ऐश्वर्य द्योतक क्रियायें

1.1. जीव के प्रति क्रियायें

1.1.1 सामान्य जीव के प्रति क्रियायें

1.1.1.1 सृजन, बन्धन और मोक्ष

क्रिया की दृष्टि से जीव की तीन अवस्थाएँ होती हैं : प्रकट होना, बन्धन में बन्धना और मुक्त होना । इन तीनों क्रियाओं का कर्त्ता व्यक्त और अव्यक्त रूप से साध्य ही है । जीव की सृष्टि और उसका अवतरण प्रभु की

---

* श्रीमद्भागवत, 1/3/38

इच्छा का ही परिणाम है । व्यक्त या अव्यक्त लीला के प्राकट्य के लिए ब्रह्म राम अपने हीअंश रूप जीवों का निर्माण करता है । जीवों का सर्जन, पालन और हरण-तीनों क्रियाओं का कर्त्ता राम है । त्यागराजु ने इस तत्व का स्पष्ट कथन किया है । *

प्रभु के संकेत पर ही अविद्या माया जीव को बांधती है, और जिस प्रभु के संकेत से जीव पलता है उसी की कृपा से वह मुक्त भी होता है । तुलसी ने "बांधत", "छोरत" और "नहत" क्रियाओं का प्रयोग करके ब्रह्म की तीन क्रियाओं का कर्म जीव को माना है : साध्य जीव रूपी पशु को बांधता है; उसको मुक्त करता है ; और सांसारिक प्रपंच में जोतता §नहत§ है ।[2] और स्पष्ट करते हुए तुलसी ने कहा है कि जीव को बांधने वाली और छोड़नेवाली शक्ति एक ही है और इस रचना को स्पष्ट करने के लिए मिश्र वाक्य का § Complex Sentence § प्रयोग किया है : "जेहि बांध्यो सोइ छोरै" ।[3] तुलसी ने साध्य को जीव को बांधने की क्रिया को अलंकृत अभिव्यक्ति भी दी है । जैसा कि पहले देखा जा चुका है, जीव को पशु से उपमित करके तुलसी ने "जीव-पशु" को साध्य के द्वारा ही "बांधा जाना", "जोतना" और "छोडना" कहा है ।[4] जीव के लिए पशु का उपमान शैव और वैष्णव दोनों ही विचारधाराओं में मिलता है । इसी अर्थ में शिव पशुपति है ।

करण कारक/से/ के प्रयोग करके एक और रूपक से इस क्रिया का विस्तार किया गया है : साध्य जीव को मोह रूपी रस्सी से बांधता है ।[5] इस कारक और अलंकार की प्रक्रिया से बांधने की क्रिया बिम्बमय हो जाती है । इस प्रकार का क्रिया-व्यापार त्यागराजु ने अपने साध्य के साथ सम्बद्ध नहीं किया है ।

---

* "ओक रूपमुन ब्रोचि ओक रूपमुन एचि
ओक रूपमुन जूचु चुंटिवि" -- त्या.38/6

2 "पसु लों पसुपाल ईस बांधत, छोरत, नहत ।।" - वि.133/3

3 वही.102/5 4 वही. 133/3 5 वही. 102/5

जहाँ तक जीव की मुक्ति का प्रश्न है उस क्रिया का कर्त्ता भी तुलसी का साध्य है । यहाँ एक दार्शनिक प्रत्यय यह प्रतीत होता है कि जीव की मुक्ति उसके कर्तृत्व पर नहीं भगवत्कृपा पर निर्भर रहती है । त्यागराजु ने भी साध्य के साथ इस क्रिया का सम्बन्ध जोडा है । उन्होंने /एचि/ " * "रक्षा करना" क्रिया का प्रयोग किया है । इस क्रिया से सम्भवत: जीव के बंधन के नाश की ही व्यंजना होती है ; क्योंकि जीव नष्ट न होकर साध्य में उसी प्रकार की विलीन हो जाता है जिस प्रकार समुद्र में बून्द । त्यागराजु ने साध्य की मुक्त करने की क्रिया का और स्पष्टीकरण करने के लिए एक कारकीय संरचना की है । अर्थात् उनके अनुसार जन्म और मरण से मुक्त करनेवाला साध्य ही है ।[2]

तुलसी ने उपर्युक्त क्रियाओं की दो रचनायें प्रयुक्त की हैं : वर्तमान कालिक कृदंत से युक्त, जैसे /बाँधत/ और भूतकालिक कृदंत के रूप में, जैसे /बाँध्यौं/[3] । इस प्रकार की दूसरी रचना त्यागराजु में नहीं मिलती । जहाँ तुलसी भूतकाल की क्रिया की रचना करते हैं वहाँ जीव के विकास का काल-क्रम व्यक्त होता है और जहाँ वर्तमान कालिक कृदंत का प्रयोग किया गया है वहाँ साध्य की प्रकृति या उसकी शक्ति का द्योतन किया गया है । कुछ क्रियायें प्रार्थना की संवादी स्थिति में घटित होती हैं । अर्थात् साध्य की कुछ क्रियायें प्रार्थनीय हो जाती हैं । इन पर जीव या साधक की क्रियाओं के संदर्भ में विचार किया जाएगा ।

कभी-कभी कर्त्ता के किसी गुण के साथ उसकी क्रिया का संयोग किया गया है, जैसे भगवान की कृपा या उसके वरद हस्त की छाया के क्रिया-व्यापार

---

* "ओक रूपमुन एचि" - त्या.38/6

2 "नेमुमदि लेनि जननमरणम्मुल दोलगिंचे निनु" - वही. 260/6

3 बाँध्यौं हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़,
 सुनत दुसह हौं तौ, साँसति सहत हौं ।
 आरत-अनाथ-नाथ, कौसल पाल कृपाल,
 लीन्हौं छीन दीन देख्यो दुरित दहत हौं ।। - वि.76/2

का कथन किया गया है । उदाहरण के लिए तुलसी की निम्न लिखित पंक्तियाँ ली जा सकती हैं -

"सीतल सुखद छाँह जेहिकर की, मेटति पाप, ताप, माया ।" *

इसमें /मेटति/ क्रिया भगवान के वरदहस्त की छाया की है । अर्थात् भगवान् की कृपा इनको मिटाती है : पाप, ताप और माया । त्यागराजु में इस प्रकार की क्रिया रचना नहीं मिलती । इसी प्रकार की रचना तुलसी की निम्नलिखित पंक्ति में द्रष्टव्य है -

"जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव ।"[2]

अर्थात् राम की कृपा ही जीव को चैतन्य या जागृत करती है । यहाँ भी राम की क्रिया का आरोप उनके गुण पर किया गया है ।

1.1.12 क्रिया की निषेधात्मक रचना बनाम
कृपामूलक क्रियायें

किसी विशेष स्थिति में क्रिया की निषेधात्मक रचना भी तुलसी ने की है । स्वीकारात्मक रूप में जहाँ तुलसी यह कहते हैं कि राम या उनकी कृपा सांसारिक बन्धनों और दु:खों का अपहरण करती है[3] वहाँ निषेधात्मक रूप से वे यह भी कहते हैं कि जब तक जीव माया जन्य भेद-बुद्धि को नहीं मिटा देता तब तक सांसारिक बन्धन से साध्य उसे मुक्त नहीं करता :-

"भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जगजाल ।"[4]

इस क्रिया की निषेधात्मक रचना होते हुए भी अर्थात् जीव की कृ कर्तृत्व-शक्ति की

---

* बाँध्यों हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़,
सुनत दुसह हौं तौं, साँसति सहत हौं ।
आरत-अनाथ-नाथ, कौसल पाल कृपाल,
लीन्हों छीन दीन देख्यों दुरित दहत हौं - वि.138/5 ✓

2 वि.74/1

3 "अपहरन सम्मोह अज्ञान" - वि.53/9 4 वही. 203/15

ओर संकेत करते हुए भी तुलसी के मन में राम की कृपा के प्रति कहीं एक अगाध विश्वास छुपा हुआ है । इस कथन के लिए /निबाहना/ सकर्मक क्रिया का प्रयोग करते हुए उसके इन कर्मों की सूची दी गयी है : छोटे, बडे, खोरे, खरे, मोटे, दुबले । * विषम कर्मों की इस गणना के द्वारा तुलसी का यह विश्वास प्रकट हुआ है कि राम की कृपा किसी प्रकार का भेद नहीं करती । इसीलिए राम सभी का निर्वाह करते हैं । इस अटूट विश्वास को और भी स्पष्ट करते हुए भगवान की कृपा के द्वारा सभी प्रकार के तापों के नष्ट होने की बात कही गयी है और भक्त के कर्तृत्व को गौण बतलाया गया है :-

"ग्यान भक्ति साधन, अनेक सब सत्य, झूठ कछु नाहीं ।
तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं ।।"[2]

अर्थात् जीव की क्रिया की अपेक्षा भगवान की क्रिया को ही जीव के संदर्भ में महत्त्व दिया गया है ।

1.1.13 √पाल : √पोष : √रक्षा करना :

दोनों ही आलोच्य कवियों ने जीव के संदर्भ में इस क्रिया का प्रयोग कृतज्ञता की एक विशेष-भावना को जागृत करते हुए किया है । तुलसी ने इस क्रिया का आरंभ गर्भावस्था से ही किया है । अर्थात् माता के गर्भ में भी प्रभु ने जीव का पालन किया -

"गरभबास दसमास पालि पितु-मातु रूपहित कीन्हों ।-"[3]

फिर केवल स्थानवाचक क्रिया विशेषण के द्वारा क्रिया का विस्तार न करके सामान्य रूप से प्रकार वाचक क्रिया-विशेषण का प्रयोग करके असंख्यता की ओर संकेत किया है -

---

* "छोटे-बड़े, खोटे-खरे, मोटेऊ-दूबरे,
राम । रावरे निबाहे सब ही की निबहति ।।" - वि.246/1

2 वही. 116/5 3 वही. 171/2

"बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों ।" *

त्यागराजु ने पालन की क्रिया का आरंभ गर्भावस्था से नहीं किया है । जीव के जन्म लेने के पश्चात् इस क्रिया में विस्तृति आती है । जहाँ तुलसी ने केवल "पालन" क्रिया का प्रयोग किया है वहाँ त्यागराजु ने लगभग इसी अर्थ में /ब्रोचि/ = "रक्षा करना", /पोष/ तथा /रक्षिचि/ का प्रयोग भी किया है । क्रिया पदबंध की एक रचना इस प्रकार है : फलाफल जानकर जीवों की रक्षा करता है ।[2] रक्षा करने के साथ-साथ पोषण की क्रिया का प्रयोग भी किया गया है ।[3] पोषण क्रिया की कारकीय संरचना करके भोजन और तांबूल के द्वारा पोषण की बात भी कही गयी ।[4] रक्षा और पोषण के साथ-साथ सृजन एवं हरण की क्रियाओं का योग करके ब्रह्म की जीव विषयक तीनों क्रियाओं - सृजन, पोषण रक्षा और हरण - का एक साथ कथन भी त्यागराजु ने किया है ।[5]

1.1.1 4 √दे :

तुलसी और त्यागराजु ने ब्रह्म की इस क्रिया का कर्म परक विस्तार किया है । नीचे इस क्रिया की सकर्मक रचना की तुलनात्मक तालिका दी जा रही है । त्यागराजु ने हिन्दी की इस क्रिया का अर्थ देनेवाले तेलुगु पर्याय ओसगु का प्रयोग किया है । किंतु त्यागराजु ने इस क्रिया के भतकालिक रूप /ओसगेने/[6] = "दिया" प्रयोग ही नहीं किया है, इस क्रिया के आधार पर भूतकालिक कृदंतीय विशेषण भी की है :

---

* वि. 136/4

2 "सकल लोकुल फलाफलमु लेरिगि संरक्षिंचुचुनुंडगा" - त्या.18/3

3 "मुदटि वले भक्तुल पोषिंचुट केंदु दागिनाडो ।" - वही. 115/2

4 "अन्नमु तांबूल मोसागि देहमु भिन्न सेथलेदा ।" - वही. 26/4

5 "ओक रूपमुन ब्रोचि, ओक रूपमुन एचि
ओक रूपमुन जूचु चुटिवि" - वही. 38/6

6 "चिर जीवत्वमु निर्जर वर सौख्यमोसगेने" - त्या.124/3

/ओसगे/ *= "दायक" । साथ ही इसके पूर्वकालिक कृदंत का प्रयोग भी त्यागराजु ने किया है : /ओसंगि/[2] ="देकर" । किंतु तुलसी ने इस क्रिया के भूतकालिक रूप का ही प्रयोग किया है : /दियो/[3]~ /दीन्हो/[4], अर्थात् साध्य की इस क्रिया की अन्य रचनाओं में तुलसी प्रवृत्त नहीं हुए ।

इस सकर्मक क्रिया के ~~कारम~~ कर्मों की गणना में भी अंतर दिखलाई पड़ता है -

तुलसी द्वारा प्रयुक्त कर्म	त्यागराजु द्वारा प्रयुक्त कर्म
जनम, सुकुल, तनु, ग्यान, विवेक, सुसील, आदर ।	यश, आयु, सद्भक्ति, एकांत चित्त, सुशरीर, चिरजीवनी, दिव्य सुख ।

ऊपर की तालिका से यह स्पष्ट होता है कि त्यागराजु ने इस क्रिया के कर्म का विस्तार अधिक किया है । जहाँ तुलसी ने "ग्यान" और "विवेक" कर्म के रूप में परिगणित किये हैं वहाँ त्यागराजु ने "भक्ति" का उल्लेख किया है । तुलसी ने "तनु" और त्यागराजु ने "शरीर" के रूप में समान कर्म को ही ग्रहण किया है । किंतु त्यागराजु ने शरीर के साथ /सु-/ उपसर्ग जोड़कर मानव शरीर की श्रेष्ठता की व्यंजना की है जब कि तुलसी ने इस कर्म का विशेषण परक विस्तार त्यागराजु से अधिक किया है :-

"अगम जो अमरनिहूँ सो तनु तोंटि दियो" ।[5]
तथा "सरीर सुंदर, हेतु जो फल चार को ।"[6]

---

* "यशमायुवु सद् भक्तियु एकांत चित्तमु सुशरीर मोसंगे भासुर त्यागराजनुता ।" - ~~वही~~ त्या॰ 90/3

2 "धर्मादि मोक्षमु लोसंगि" - वही॰29(अ)/2

3 "दियो सकुल, सरीर सुंदर, हेतु फल चार को ।" - वि॰135/1

4 "परम कृपालु ग्यान तोहि दीन्हो ।" - वही॰136/4

5 वि॰135/1 6 वही॰ 135/1

पहले उद्धरण में मानव शरीर को देव दुर्लभ कहा गया है और दूसरे में इसका साधना परक महत्त्व ज्ञापित किया गया है - चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने वाली साधना का माध्यम शरीर ।

"सीखना" क्रिया का प्रयोग भी देने के अर्थ में मिलता है । त्यागराजु के अनुसार साध्य ने जीव को भक्ति का मर्म सिखलाया ।*

निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि साध्य की /देना/ क्रिया की रचना तत्वत: दोनों कवियों में समान है ;, किंतु उसके विस्तार में यत्किंचित अंतर दिखलाई पडता है ।

1.1.1 5 दंडित करना :

तुलसी ने प्रभु के द्वारा जीव को दंड देने की क्रिया का उल्लेख नहीं किया है । इसका कारण यह हो सकता है कि तुलसी की दृष्टि प्रभु की वत्सलता पर ही अधिक रही है । किंतु त्यागराजु ने जीव के अनुचित कर्मों कर्मों के ब्रह्म के द्वारा दंडित किये जाने की बात भी कही है । दंड के लिए तेलुगु में "शिक्षा" शब्द का प्रयोग होता है : शिक्षा = दंड । उन्होंने लिखा है - "जीव को दंड देना जानते हो" ।[2] त्यागराजु का विश्वास है कि यदि जीव अपने सत्कर्मों के लिए ब्रह्म के द्वारा पुरस्कृत होता है तो अपने दुष्कर्मों के लिए दंडित भी और दंड देनेवाला है ब्रह्म ।

1.1.1 6 क्रिया की आलंकारिक रचना :

इस प्रकार की रचना तुलसी ने नहीं की । त्यागराजु ने इस क्रिया को एक रूपक के रूप में रखा है । वह क्रिया है - झुलाना {=उयुट} ।

---

* "मोदमुतो सद्भक्ति मर्ममुनु
बोधन जेसि सदा ब्रोचिन" - त्या.26/2

2 "जीवुल शिक्षिंचग नेर्तुवु" - त्या. 8/3

जिस प्रकार गुरु जन बच्चे को पालने में झुलाते है, उसी प्रकार साध्य भी जीव को झुलाता है । * वात्सल्य भाव से बच्चे को जिस प्रकार माँ-बाप मृदुल रूप से गुलगुलाते हैं उसी प्रकार ब्रह्म भी सक्रिय होता है ।[2] इस क्रिया रचना में ब्रह्म और जीव की वह सम्बन्ध-भावना प्रकट हुई है जिसमें ब्रह्म को "महा" और जीव को "लघु" मानने की भावना प्रतीकायत है । तुलसी ने इस सम्बन्ध-भावना को अन्यत्र तो व्यक्त किया है, किंतु त्यागराजु के समान इस सम्बन्ध-भावना से अनुप्राणित क्रिया की रचना नहीं की । साथ ही ब्रह्म जीव को यह मूक आश्वासन भी देता है कि मैं तुम्हारा उसी प्रकार का रक्षक हूँ जिस प्रकार बच्चे के रक्षक माता-पिता होते है ।[3] इस सम्बन्ध-भावना वाली क्रिया-रचना के मूल में रक्षा का भाव ही प्रतिष्ठित है । रक्षक-रक्षित को ही आलंकारिक रूप से मा-बाप और शिशु कहा गया है ।

1.1.2 विशेष जीव के प्रति क्रियायें :

1.1.21 भक्त और शरणागतों पर कृपा

(क) राम संदर्भ :

प्रपत्ति या शरणागति एक प्रमुख वैष्णव अभिप्राय है । एक सामान्य नियम यह है कि भगवान शरण में आये हुए की रक्षा करते हैं । इस कथन को विशिष्ट और बलिष्ट बनाने के लिए यह कहा जाता है कि यदि दुष्ट भी शरण में आये तो भगवान की कृपा उसे मिल जाती है -[4]

---

* "तोट्ल नर्भकुल नूतुवु" - त्या.8/2

2 "मरि मरि तोचिनट्टु गिल्लुदुवु" - वही.8/2

3 "कन्न तल्लि दण्ड्रि मेमनुचु त्यागराजुनिकि बक्कसमीलेदा" - त्या.26/2

4 "पनिकिरानि पनुलु जेसि शरणनु वारि वेतल दीर्चि ब्रोचितिवे" - त्या.400/3

क्रिया	कर्म	पूर्वकालिक कृदंत
रक्षा की	दुष्कर्म करके शरण में आनेवालों के	दु:खों को मिटाकर

ऊपर की तालिका त्यागराजु की है । तुलसीदास ने सामान्य रूप से भगवान की क्रिया को शरणागत की ओर संकेत किया है : "सरनागत पर प्रेम देखायो" । *

उक्त विवेचन में कर्म सामान्य है, अर्थात् व्यक्ति वाचक संज्ञा नहीं है । इस सामान्य कथन को विशिष्ट बनाने के लिए कर्म को व्यक्तिवाचक संज्ञा में बदला जाता है । उदाहरण के लिए विभीषण की शरणागति दोनों ही कवियों को प्रिय रही है । इस कर्म को कुछ विशेषणों के द्वारा बलिष्ट बनाकर शरण देने की क्रिया का विशदीकरण किया गया है । तुलसीदास जी ने विभीषण के साथ इन विशेषणों का प्रयोग किया है : /रजनीचर/,[2] /रिपु/,[3] /रिपु को अनुज/,[4] /सभीत/ ।[5] त्यागराजु ने भी विभीषण को शरण देने का वैशिष्ट्य व्यक्त किया है : /रावणुनि सोदरु/[6] ="रावण का भाई" । कर्म की संरचना में इस विशेषण का प्रयोग करने में दोनों कवि समान हैं । त्यागराजु ने एक और विशेषण का प्रयोग किया है जो तुलसीदास में नहीं है : /सुरमुनि जन वैरि सहोदरुडु/[7] = "सुर मुनियों के शत्रु का भाई" । इसमें विभीषण को और भी व्यापक संदर्भ में संचरित किया गया है ।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होता है कि तुलसीदास ने जहाँ विभीषण को /रिपु/ कहा और /रजनिचर/ कह कर भी उसकी अपात्रता सिद्ध की वहाँ

---

* गी.6/4/2 2 वि. 215/5 3 वही. 215/5

4 वही. 166/8 5 वही. 138/4 6 वही. 457/3

7 वही. 455/3

त्यागराजु की रचना में ये सूत्र अनुपस्थित है । तुलसी ने /सभीत/ कह कर विभीषण की दयनीय अवस्था को भी प्रकट किया है ।

तुलसी ने एक प्रश्न की रचना में से भी कर्म को विशद बनाया है : /कौन भजन अधिकारी/ = "क्या वह भजन के द्वारा शरणागति का अधिकारी हुआ था?" ﴾वि.166﴿

जिस प्रकार कर्म की रचना को विशेषण-प्रविधि से प्रगल्भ बनाया गया है, उसी प्रकार कर्त्ता-राम की रचना को भी प्रभावशाली किया गया है । इस प्रविधि के दो रूप हैं : ﴾1﴿ भक्त कवि राम से संवाद करता है और ﴾2﴿ शरणागत विभीषण के प्रति राम की कुछ अन्य क्रियाओं का उल्लेख किया गया है । तुलसी का प्रश्न है : "हे राम । मेरे सिर पर अपने उस हाथ को कब रखेंगे, जिस हाथ ने शरणागत विभीषण का राजतिलक किया था ।" * इसी प्रकार त्यागराजु राम से प्रश्न करते हैं - "क्या आपने शरणागत रावण के भाई विभीषण की रक्षा नहीं की थी?"[2] इससे व्यंजना यह निकलती है कि हे राम । इसी प्रकार मेरी रक्षा नहीं करेंगे क्या? दूसरी प्रविधि शरणागत विभीषण के उद्धार या रक्षा के अतिरिक्त मानवीय क्रियाओं के उल्लेख की है । इस रचना प्रविधि में त्यागराजु प्रवृत्त नहीं हुए । तुलसी ने अतिरिक्त क्रिया और उसकी बलवर्द्धक क्रिया-रचना के द्वारा कर्त्ता-राम को विशद बनाया है -

---

* "कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक, धरि हौ नाथ, सीस मेरे ।
आयो सरन सभीत बिभीषण, जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों ।।"

- वि.138/4

2 "शरणनुकोन्न रावणुनि सोदरुनि ब्रोबग लेदा? "

-त्या. 457/3

क्रिया विशेषण/पूर्वकालिक कृदंत	क्रिया	
आगे ह्वै	लीन्हों *	"आगे बढ़कर स्वागत किया"
भुजा पसारि	भेंट्यो [2]	"हाथ आगे बढ़ाकर मिला"
भरत ज्यों उठि	भेंटत[3]	"उठकर विभीषण से भरत के समान भेंट की"
	{देहदसा} भुलानि[4]	"विभीषण से मिलते समय भावावेश के कारण राम को अपनी शरीर की याद भी नहीं रही ।
भरत सभा सनमानि	सराहत[5]	"सभा में सम्मान सहित उनकी प्रशंसा करते है ।"
	होत न हृदय अघाई[6]	"प्रशंसा करते हुए राम को तृप्ति नहीं होती ।"

लगभग यही रचना जयंत और सुग्रीव की शरणागति के सम्बन्ध में प्रयुक्त की गयी है, किंतु इतना विस्तार उस रचना का नहीं है । जयंत के लिए त्यागराजु ने /शरणनुकोन्न/[7]= "शरण में आये हुए" विशेषण को प्रयुक्त किया है ।

---

* वि. 166/8   2 वही. 166/8   3 वही. 215/5

4 वही. 215/5   5 वही. 100/8   6 वही. 100/8

7 त्या. 457/3

﴾ख﴿ विष्णु या रामेतर संदर्भ :

विष्णु ने जहाँ समस्त लोक कल्याण के लिए अवतार लिया वहाँ किसी एक भक्त के उद्धार के लिए भी । प्रह्लाद की रक्षा के लिए नृसिंह का अवतार इसी प्रकार का है । त्यागराजु ने शरण में आये हुए प्रह्लाद की रक्षा की बात कही है : "अपने पिता अत्याचारों से प्रह्लाद दीन होकर हे सकलेश्वर । कहकर आपकी शरण में आने पर हितकर बनकर रक्षा की थी ।" * प्रह्लाद का संदर्भ तुलसी में भी आया है, किंतु उसके साथ शरणागत होने का उल्लेख नहीं है । इसी प्रकार द्रौपदी की शरण में आने की बात भी नहीं कही गयी है । त्यागराजु नें द्रौपदी को भी शरणागत माना है : "एक मुनि ﴾दुर्वासामुनि﴿ के भय से द्रौपदी ने हे द्वारकानिलया । कहकर शरण में आने पर हितकर बनकर रक्षा की थी ।"[2] शरणागति शब्द की आवृत्ति से यह प्रमाणित होता है कि त्यागराजु के संस्कारों में वैष्णव-संप्रदाय का प्रपत्ति-सिद्धान्त गहराई से पैठा हुआ है ।

1.1. 22 विरोधियों पर कृपा :

भगवान की कृपा मूलक क्रिया कोई भेद भाव नहीं करती, अर्थात् सभी का कल्याण करती है । कुछ विरोधियों के साथ भगवान की क्रिया को घटित करके तुलसी ने इस बात का पोषण किया है । नीचे की रचना से यह बात स्पष्ट हो जाती है :-

---

* "वेसनबुलचे सकलेश्वरा प्रह्लादुडु जालिचे
शरणनग हितकरुण्डै ब्रोचिति" - त्या. 335/3

2 "वेरपुननु ओक मुनिकै द्रौपदि द्वारकनिलया
शरणनग हितकरुण्डै ब्रोचिति - वही. 335/3

क्रिया	पहला कर्म/अधिकरण	दूसरा कर्म	दूसरे कर्म का दुर्गुण
दई *	मातु की गति	पूतना	जो कुचों में विष लगाकर भगवान (कृष्ण) को मारने गई ।
कियो (लीन)[2]	आप में	सिसुपाल	देत गनि-गनि गारि ।
पठ्यो[3]	स्वलोक	व्याध	मूढ़ जिसने भगवान कृष्ण के चरण में तीर मारा ।
दियो[4]	कृपा का फल	ताड़का	अनहित ।

---

* "गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ।।" - वि.214/2

2 "नेमतें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि-गनि गारि ।
कियो लीन सु आपु में हरि राज-सभा मँझारि ।।" - वही.214/4

3 "ब्याध चित दै चरन मार्‍यो मूढ़ मति मृग जानि ।
सो सदेह स्वलोक पठ्यो प्रगट करि निज बानि ।।" - वही 214/5

4 "कौसिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तिया को ।
प्रभु अनहित हित को दियो फल कोप कृपा को ।।" - वही. 152/3

उमर विशिष्ट विरोधी जीवों के प्रति कृपा क्रिया को प्रेरित बतलाया गया है । तुलसी ने सामान्य रूप से यह भी लिखा है कि राम आदर्श स्वामी हैं जो उस सेवक के भी अनुकूल रहते हैं जो उनके प्रतिकूल होता है । * जन केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में और इन्द्रियासक्ति में लीन रहकर कपटाचरण भी करता है तो भी राम उस पर कृपा करते हैं :-

" उदरभरो किंकर कहाइ बेंच्यो बिषयनि हाथ हियो है ।
मोसे बंचक को कृपालु छल छाँडिके छोह कियो है ।। "[2]

राम ने इस प्रकार के अनेक खलों को अपनाया ।[3] खल का तात्पर्य है राम के प्रतिकूल । जन के प्रतिकूल आचरण से राम चाहे खीझ भी जायें फिर भी उसे वैकुण्ठ पहुँचा देते हैं ।[4]

त्यागराजु ने भी स्पष्ट कहा है कि शत्रु (विपरीत आचरण करनेवाले) और मित्र (अनुकूल आचरण करने वाले) दोनों को राम अनुकूल दृष्टि (समदृष्टि) से देखते हैं ।[5]

1.1. 23 पतितों पर कृपा :

जैसा कि पहले भी देखा जा चुका है, राम की कृपा परक क्रियाओं का अभिप्राय दोनों ही आलोच्य कवियों में बहुत स्फीत होता हुआ मिलता है । जहाँ उन्होंने अपने विरोधियों को अपनी कृपा क्रियाओं से उद्धृत किया वहाँ पतितों या हीनों को भी राम की कृपा का फल मिला -

---

* "मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ।
हौं तो साईं द्रोही पै सेवक-हित-साईं ।।" - वि. 72/1

2 वही. 171/4

3 "अनेक खल अपनाये जानकी-नाथ" । - वही. 84/4

4 "खीझे देत निज-धाम रे ।" - वही. 71/6

5 "शत्रुल मित्रुल सममुग जूचे ।" - त्या. 112/6

"जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ।।" *

उपर्युक्त रचना में मिश्र वाक्य की पद्धति अपनाई गयी है । इस मिश्र वाक्य में मुख्य वाक्य का आश्रित वाक्य विशेषण मूलक ही होता है ।

दोनों ही कवियों का ध्यान अहल्या प्रसंग पर समान रूप से जमा । अहल्या की हीनावस्था का कथन तुलसी ने इन विशेषणों के द्वारा किया है - "साधनहीन", "दीन" तथा "निज अध-बस" ।[2] इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग त्यागराजु ने नहीं किया है, किंतु उन्होंने "तापों से तप्त"[3] विशेषण का प्रयोग किया है । साथ ही प्रस्तरीभूत अहल्या का साश्रु बिम्ब त्यागराजु में उभरा है ।[4] शाप से संतप्त अहल्या तुलसी की कल्पना में भी आयी -="सिला-साप-संताप" ।[5] इन विशेषणों से अहल्या की हीन और पतित अवस्था सवाक् हो जाती है ।

इस अहल्या के प्रति त्यागराजु के राम की क्रियायें ये हैं - /ब्रोचितिवि/[6] =" उद्धार किया" तथा /परितापमुदीर्चि/[7] ="परिताप को मिटाकर" । तुलसी ने भी लगभग इन्हीं क्रियाओं का प्रयोग किया है - /दई सुगति/[8] ="सुगति दी" तथा /साप तें तारी/[9] ="शाप से उद्धार किया"। किंतु एक वैशिष्ट्य तुलसी में यह है कि उन्होंने पदस्पर्श के द्वारा अहल्या के उद्धार की बात कही - /परसि पद/[10] ="पैरों को छू कर" । पैरों को छूते ही कर्म वाच्य क्रिया की रचना घटित हुई :-

"सिला-साप-संताप बिगत भई, परसत पावन पाउ" ।[11]

इसका तात्पर्य यह है कि तुलसी ने राम की चरण रज का महत्व अहल्या के

---

* वि.162/2   2 वही. 166/2   3 त्या.306/3

4 "दारिनि शिलयै तापमु तालक वारमु कन्नीरूनु राल्चग"
(रास्ते में पत्थर बनी हुई (अहल्या) तापों से तप्त होकर आँसू बहाने पर)

5 वि.100/4   6 त्या.554/3   7 वही.306/3 - त्या.554/3

8 वि.100/4   9 वही.166/2   10 वही.166/2

11 वही.100/4

संदर्भ में अंकित किया है जिसका त्यागराजु में अभाव है । चरण रज के अभिप्राय का विस्तार तुलसी ने कवितावली के केवट प्रसंग में भी किया है ।

तुलसी ने व्याध, गनिका, अजामिल, जैसे पापियों के प्रति भी राम को उद्धार क्रिया को प्रेरित किया है । इनके अतिरिक्त और कितने ही "अधम" इस क्रिया से लाभान्वित हुए । यहाँ पर क्रिया - /तारे/ * प्रयुक्त हुई है । अजामिल के लिए तुलसी ने "अधम", "पापखानि", "अध-धाम" जैसे विशेषणों का का भी प्रयोग किया है ।[2]

/तारे/ क्रिया के अतिरिक्त /निवार्यो/[3]="निवारण किया तथा /लियो छुडाय/[4]="छुडा लिया" क्रियाओं का भी प्रयोग किया गया है । इस क्रिया का क्रिया विशेषण यमराज के दूतों के बिम्बों को सामने लाता है - "जमगन तमकि तये ताको भेते",[5] अर्थात् पापी अजामिल को पकडने के लिए यमगण क्रोध करके आये । यम के दूतों से जब राम ने अजामिल को छुडा लिया तो यमराज के दूतों की क्रिया और उसके क्रिया विशेषण बिम्बमय हो जाते हैं :-

"लियो छुडाय चले करमीजत, पीसत दाँत गये रिस-रेत ।"[6]

~~अजामिल~~ अजामिल के उद्धार की कथा का यह विवरण त्यागराजु में नहीं मिलता ।

राम अवतार के समय निषाद, सुग्रीव और विभीषण का उल्लेख भी दोनों में किया जाता है । निषाद के लिए इन विशेषणों का प्रयोग तुलसी ने किया है - "हिंसारत", "पसु समान", "बनचारी" ।[7] इसके प्रति उद्धार क्रिया प्रेरित नहीं हुई । केवल /भेंट्यो/ "भेंट दी" क्रिया का प्रयोग हुआ है और क्रिया विशेषण विशिष्ट है :-

---

* वि. 160/2   2 द्रष्टव्य वि. 160/2; 241/3

3 वही. 144/2   4 वही. 241/2

5 वही. 241/2   6 वही. 241/2

7 वही. 166/3

"भेंट्यो हृदय लगाय प्रेम बस" । *

और एक अतिरिक्त वाक्य के द्वारा भी इसका वैशिष्ट्य प्रकट किया गया है - "नहिं कुल जाति बिचारी" ।[2] इसी प्रकार सुग्रीव और विभीषण का सम्मान किया और उन की सराहना की ।[3]

इस प्रकार का क्रिया-विलास त्यागराजु में नहीं मिलता । तुलसी ने व्यक्तिवाचक संज्ञा का उल्लेख करने के साथ-साथ सामान्य जातिवाचक संज्ञा का कथन करते हुए उनके उद्धार की बात भी कही ।[4]

इतनी बात अवश्य है कि अहल्या का उद्धार शुद्धोद्धार है जिसको तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही लिखा है । किंतु अजामिल, गनिका, निषाद, सुग्रीव, विभीषणादि ने अपनी अधमता के रहते हुए भी किसी न किसी व्याज से राम की सेवा की अथवा उनका नाम-स्मरण किया । इसी ने राम की कृपा-क्रिया को आकर्षित किया । इसलिए इस उद्धार-क्रिया को शुद्ध या अकारण नहीं माना जा सकता । त्यागराजु ने अकारण उद्धार क्रिया पर ध्यान दिया है जबकि तुलसी ने अनजान में हुए नाम स्मरण को महत्व देकर सकारण उद्धार क्रिया का भी उल्लेख किया है ।

2. माहात्म्य द्योतक क्रियायें :

2.1. सृष्टि परक क्रियायें :

भगवान की सिसृक्षा का प्रतिपलन सृष्टि में होता है । सृष्टि व्यापार उद्भव, स्थिति और संहार के बिन्दुओं के बीच चलता है । तुलसीदास जी ने अशरीरी ब्रह्म के द्वारा सृष्टि-रचना की बात एक रूपक के माध्यम से कही है -[5]

---

* वि. 166/3   2 वही. 166/3

3 "अपनाये सुग्रीव, बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाड़ ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाड ।। - वही. 100/8

4 "कूर, कुटिल, कुलहीन, दीन अति-मलिन जवन ।
सुमिर नाम-राम पठ्ये सब अपने भवन ।।" - वि. 212/2

5 "सून्य भीतिपर चित्र रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे" । - वि. 111/2

क्रिया	कर्म		कर्त्ता	
	उपमान	विलक्षणता (अधिकरण)	उपमान	क्रिया विशेषण
लिखा	चित्र (जगत)	शून्य भीतिपर	चितेरे	तनु बिनु

यह सृष्टि रचना का रूपक है जिसकी चमत्कृति विलक्षणता के द्वारा स्फीत हुई है । तुलसी ने अपने गीतों में पोषण और संहार वाली क्रियाओं का कथन नहीं किया है ।

इसके विपरीत त्यागराजु ने सृष्टि सम्बन्धी तीनों बिन्दुओं से सम्बन्धित क्रियाओं का उल्लेख किया है । तुलसी की भांति सामान्य और अलंकृत दोनों प्रकार की रचनाएँ त्यागराजु में मिल जाती हैं । इन क्रियाओं को कर्मों के द्वारा व्यक्त किया गया है । नीचे इसकी रचना दी गयी है - *

कर्त्ता	क्रिया	कर्म	क्रिया विशेषण
श्रीहरि	करना (काविंच)	स्थिति लय उद्भव	खेल खेल में (वेड्कगा)

कुछ रचनाओं में केवल रक्षा करने का भाव ही उद्दिष्ट है । इसको अधिक क्लिष्ट बनाने के लिए प्रश्न वाचक संरचना का प्रयोग किया है ।[2] इसी प्रकार नष्ट करने की क्रिया का कथन भी सामान्य वाक्य रचना में किया

---

* "स्थतिलयोद्भवमुलु श्रीहरि वेड्कगा गाविंच चूचिति" ।

- प्रभवि. पृ.7

2 "नीवखिलाडमुल ब्रोवलेदा?" - त्या.328/2

गया है, किंतु इसको कर्म के विस्तार के द्वारा बलिष्ठ बनाया गया है और साथ ही पूर्वकालिक कृदंत की क्रिया विशेषण मूलक रचना के द्वारा अन्य क्रिया की भी सूची दी गयी है। इस जटिल रचना को इस प्रकार देखा जा सकता है - *

कर्त्ता	क्रिया	कर्म	क्रिया विशेषण
तुमने (नीवु)	नष्ट कर दिया	अखिल कोटि ब्रह्म विधि, रुद्र आदि देवता असुर, स्थूल, सूक्ष्मादि को	सृष्टि करके, पालन करके।

लय की दार्शनिक उक्ति यह रही है कि ब्रह्म अपने से उत्पन्न जगत-प्रपंच को अंतत: उदरस्थ कर लेता है। इसको भी प्रश्न विधि से बलिष्ट बनाया गया है - "क्या तुमने कोटि ब्रह्मांड को अपने उदर में नहीं रख लिया?" [2]

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि तुलसी की अपेक्षा ब्रह्म के सृष्टि सम्बन्धी क्रिया-बिम्ब त्यागराजु कीर्तनों में अधिक गहरे बने हैं। तुलसी में न इतना रचना-वैविध्य मिलता है और न विस्तृति ही। तुलसी के ध्यान में संभवत: भक्त-वत्सलता परक बिम्ब ही अधिक स्पष्ट है।

सृष्टि के संबंध में ब्रह्म की क्रिया संचालन के संबंध में भी घटित होती है। वही पंच महाभूतों को सृष्टि-मूलक सामंजस्य में घटित होने के लिए संचालित करता है।[3] इसी संचालन सम्बन्धी क्रिया को रथ के रूपक से त्यागराजु ने

---

* "नीवनेकांड कोटलनु विधीन्द्रादि देवासुर स्थूल सूक्ष्मबुलनु पुट्टिंचि कापाडि नष्टबुसेयनु"। - प्रभावि. पृ. 10

2 "श्रीवासुदेव अंडकोटल कुक्षिनि उंचुको लेदा? - त्या. 370/3

3 "भूतमुलेदुनु नीवु पोरल जेयु चुन्नावु" - वही. 213/9

स्पष्ट किया है - इस विश्वरूपी रथ को अवधेश राम अपनी शक्ति से ही चलाते हैं ।* दूसरा रूपक नाटक और सूत्रधार को रचना का है । जिस प्रकार सूत्रधार सभी नाटकीय इकाइयों का संचालक होता है, उसी प्रकार विश्व का नाटक ब्रह्मरूपी सूत्रधार के द्वारा परिचालित होता है ।[2] इस संचालन क्रिया का उल्लेख भी तुलसी ने नहीं किया है ।

वास्तव में सृष्टिमूलक सभी क्रियायें इष्ट के माहात्म्य का द्योतन करती हैं । यह माहात्म्य भावना त्यागराजु की भाषा-रचना में तुलसी की अपेक्षा कहीं अधिक है ।

2.2 त्रिमूर्ति परक क्रियायें :

जगत की सृष्टि, उसके पालन और संहार का कार्य क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश का है । त्यागराजु के अनुसार इन क्रियाओं को तुच्छ समझकर ब्रह्म ने त्रिमूर्ति को दे दिया है ।[3] तुलसी ने भी लिखा है :-

"हरिहि हरिता, बिधिहिं बिधिता, सिवहिं सिवता जो दई ।"[4]

रचना इस प्रकार देखी जा सकती है -

---

* "विनु साकेत राजु विश्वमने रथमु नेक्कि
तन सामर्थ्यमुचे दाने नडिपिंचेने ।"

- त्या.384/2

2 "जगमूर्चि नाटक सूत्रमुनु
जगमेल्ल मेच्चगा करमुन निडि
गति तप्पकाडिंचेवु सुम्मी ।" - वही. 403/3

3 "सृष्टि पुष्टि नष्टि चेपु पनुलु नि
कृष्ट मनुचुनु त्रिमूर्तुलि कोसगि तुष्टुडैबरगे ।"

- त्या.387/3

4 वि.135/3

	क्रिया	पहला कर्म	दूसरा कर्म	क्रिया विशेषण
तुलसी	दई	हरिता, बिधिता, सिवता	हरिहि, बिधिहि, सिवहि	-
त्यागराजु	देकर ॥ओसगि॥	सृष्टि पुष्टि नष्टि	त्रिमूर्ति को	निकृष्ट समझकर

इस क्रिया रचना में तुलसी और त्यागराजु दोनों समान है ।

त्यागराजु ने /देना/ क्रिया के कर्मों के रूप में गुणों के वितरण की बात भी कही है । इस प्रक्रिया में त्रिमूर्ति में से केवल शिव, ब्रह्मा को और अन्य देवताओं में इन्द्र को लेकर रचना की है : ब्रह्म ने शिव को तामस, ब्रह्मा को राजस तथा इन्द्र को गर्व का गुण प्रदान किया ।* तुलसी ने न इस प्रकार गुणों के वितरण की योजना बनायी और न इन्द्र को ही इस प्रक्रिया में सम्मिलित किया ।

त्यागराजु ने त्रिमूर्ति में कार्य वितरण तक ही बात को सीमित नहीं रखा । उन्होंने यह भी लिखा कि लीलामय ब्रह्म ने सृष्टि लीला को संपन्न करने के लिए स्वयं ही त्रिमूर्ति का रूप धारण किया ।[2] तुलसी ने इस अंतर्हित भाव का स्पष्ट कथन नहीं किया, किंतु उन्होंने राम को लौकिक दृष्टि से असंभव कार्य को संभव करने वाला बतलाया है - वह ब्रह्मा को "मसक" और "मसक" को ब्रह्मा कर सकता है ।[3]

---

* "शिवुनिकि दामसगुण मिच्चि कमल
भवुनिकि राजसगुण मोसगि शची
धवुनि गर्वहृदयुनिगा जेसिति" - त्या. 89/3

2 "सदा मूडु रूपंबुलन् तालिच लोकेशुडै, विष्णुवै, रुद्रुडै
चाल लीला विनोदंबुलन् चेय" - प्रभवि. पृ. 10

3 "[redacted] मसक बिरंचि, बिरंचि मसक सम करहु प्रभाउ तुम्हारो ।" -वि. 94/5

3. क्रियाओं की काल-रचना :

दोनों ही कवियों ने इष्टदेव के संबंध में क्रियाओं की भूतकालिक, वर्तमान कालिक एवं भविष्य कालिक रचना अपने गीतों में प्रयुक्त की है। भूतकालिक रचना का संबंध मुख्यत: इष्टदेव के अवतारी या अवतार पूर्व उस रूप से संबंधित है जो भक्तों और शरणागतों की रक्षा कर दे। एक कथाक्रम में कृपा संबंधी क्रिया की विशिष्ट घटनाएं अतीत में ही घटित होती हुई दिखलाई गयीं। वर्तमान काल की रचना विशिष्ट घटनाओं से संबंधित न होकर इष्टदेव के सामान्य स्वभाव को सामने लाती है। भविष्यकाल का रचना-संदर्भ मन का प्रबोध या भक्तजन को आश्वासन देता रहा है।

3.1. क्रियाओं की भूतकालिक रचना :
अवतार मूलक क्रियायें :

3.1.1. अवतरित होना :

मूल तत्व या "अवतारी" की पहली क्रिया अवतरित होने की है। इस क्रिया का विस्तार क्रिया विशेषण मूलक है जिसमें अवतार के कारणों का कथन किया गया है। दशावतार की रूढ़ि त्यागराजु को मान्य है। इसलिए उन्होंने मूल तत्व के दस रूपों में अवतरित होने की बात कही है - "चेपादिग पदि रूपालनु गोनु"।* किंतु तुलसी ने दशावतार का नाम नहीं लिया। दशावतार में भी मानवाकार अवतार अधिक आकर्षक रहा। इसलिए त्यागराजु ने - "मानवावतारुडै कनिपिंचिनाडे"[2] लिखा है। तुलसी ने मनुज अवतार का कर्त्ता के रूप में उल्लेख किया है - "अवतार मनुज बपु धरे"।[3] तुलसी ने "हरि" को अवतारी के रूप में संकेतित किया है।[4] अवतरित होना एक निरपेक्ष स्थिति में से सापेक्ष स्थिति में प्रगति ही है। तुलसी ने इस तथ्य का उद्घाटन

---

* त्या.492/5 2 वही. 392/3 3 गी.7/38/1

4 "हरि अवतार लयो" - वही.1/47/2

भी किया है ।* इस प्रकार अवतारी का कर्त्ता के रूप में वर्णन केवल तुलसी ने किया है, त्यागराजु में व्यंजित है ।

3.1.11 अवतरण की सामान्य क्रियायें :

अवतरण के संबंध में चार सामान्य क्रियाओं का प्रयोग हुआ है ।

(अ) √ले :

सकर्मक क्रिया के रूप में इस धातु का प्रयोग हुआ है । तेलुगु में इसकी समानार्थक कोंनु ** है । इस क्रिया के कर्म भी प्राय: समान है ।

तुलसी द्वारा प्रयुक्त कर्म	त्यागराजु द्वारा प्रयुक्त कर्म
अवतार[2]	(दस) रूप[3]

(आ) √धर् :

इस धातु का प्रयोग केवल तुलसी ने किया है । यद्यपि इसका तेलुगु धरिंचु पर्याप्त प्रचलित है, इस संदर्भ में अन्यत्र प्रयुक्त भी हुआ है, त्यागराजु ने इसका प्रयोग नहीं किया । इसके कर्म के रूप में तुलसी ने इन शब्दों का प्रयोग किया है : अवतार, मनुज बपु ।[4]

(इ) √चल् :

इस अकर्मक क्रिया का प्रयोग भी केवल तुलसी ने किया है । इससे यह ध्वनि निकलती है - श्वेत द्वीप या वैकुण्ठ धाम से विष्णु एक विशिष्ट उद्देश्य

---

* 'चले हरनि छिति भार' - गी. 2/49/3

** इसका अर्थ "लेना" भी हत है, और "खरीदना" भी ।

2 गी.1/47/2 3 त्या.492/5

4 गी.7/38/1

को लेकर संसार की ओर चले । *

(ई) √दिख :

इस धातु का प्रयोग केवल त्यागराजु ने किया है : कनिपिंचु[2]= "दिखाई देना" अर्थात् प्रत्यक्ष होना । इससे यह ध्वनित होता है कि अवतार लेना अतीन्द्रिय स्थिति से ऐंद्रिय स्थिति में मूल तत्व का प्रवेश करना है । तुलसी ने इस क्रिया का प्रयोग नहीं किया । ऐंद्रिय स्थिति में आकर ही अवतारी सक्रिय हो सकता है । इस प्रकार क्रिया आध्यात्मिक प्रतीकत्व भी ग्रहण कर लेती है ।

उपर्युक्त क्रिया का ~~विस्तार~~ विस्तार कारण रूप क्रिया विशेषण के द्वारा हुआ है । तुलसी ने अवतार की क्रिया का कारण यह लिखा :-

"बिप्र-साधु-सुर-धेनु-धरनि-हित" ।[3]

त्यागराजु ने संसार रूपी वन में संचरण करनेवाले (फँसे हुए) और निरर्थक कर्म-कांड में निरत जन को विश्राम देने के लिए अवतार लेने की बात कहकर कारण विस्तृत किया है ।[4] तुलसी ने कारण कथन के लिए मिश्र वाक्य की रचना प्रयुक्त की है :-

"जब जब जग-जाल-व्याकुल करम-काल
सब खल भूप भये भूतल-भरन ।
तब तब तनु धरि, भूमि भार दूरि करि
थापे मुनि, सुर, साधु आश्रम बरन ।। "[5]

---

* गी.2/29/3 2 त्या.392/3 3 गी.1/47/2

4 "कर्म कांड मताकृष्टुले भव गहन चारुले गासि चेंदग
गनि मानवावतारुडै कनिपिंचिनाडे"

\- त्या.392/3

5 वि.248/2

3.1.12 अवतरण की विशेष क्रियायें :

ऊपर सामान्य रूप से सकारण या सोद्देश्य अवतरण क्रिया की चर्चा की गयी है । विशेष अवतारों के संबंध में भी इस संरचना का प्रयोग हुआ है । मुख्य रूप से इस संरचना में तीन अवतारों को लाया गया है : नृसिंह, राम और कृष्ण ।

(क) नृसिंह का अवतरण :

नृसिंह ~~का~~ के अवतरण की क्रिया और उसके कारण का कथन त्यागराजु ने किया है । संरचना इस प्रकार है -

कारण	क्रिया
हिरण्यकश्यप से त्रस्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए	खंभे में छुपे रहे । *
हिरण्य कश्यप से त्रस्त प्रह्लाद शरण में आने पर	रक्षा की ।[2]

त्यागराजु ने इसी संदर्भ को प्रश्नवाचक संरचना में भी प्रस्तुत किया है । वहाँ कारण-कथन करके (प्रह्लाद के लिए) क्रिया का उल्लेख किया (नृसिंह बने) । यह क्यों किया?[3] इस प्रश्न में ध्वनि यह छिपी हुई है कि इसी

---

* "अलनाडु कनक कशिपु निंडारु चलमु जेसि सुतुनि सकल वा
धल बेट्टगा मदिनि दालक निश्चलुडैन प्रह्लादु कोरकु कंबमुलो
पल नुङग लेदा" । - त्या.115/4

2 "नीदु भक्ताग्रेसरुडु प्रह्लादुडपुडोक कनक कश्यपु
वादु लोर्वक निन्नु शरणनि यादुकोमन काचिनावु ।" - वही.263/3

3 "सुररिपु तनयुनिकै नरमृगमौ सूचन लेमय्या? " - वही. 396/3

प्रकार मेरी रक्षा के लिए भी क्यों नहीं आते? इस प्रकार भक्त ने स्वसंदर्भ को मूल अभिप्राय से संबद्ध किया ।

इसी प्रकार तुलसी ने भी नृसिंह संदर्भीय कारण और क्रिया का उल्लेख किया है :-

दिति सुत-त्रास-त्रसित निसि दिन प्रह्लाद-प्रतिग्या राखी ।
अतुलित बल मृगराज-मनुज-तनु दनुज हत्यो स्रुति साखी ।। *

(ख) राम का अवतरण :

तुलसी ने राम के संबंध में क्रिया और स्थानवाचक क्रिया विशेषण का प्रयोग किया है - नृपभवन प्रगट हु भए आई ।[2] इसके साथ कारण को जोड़कर रचना की श्रृंखला को पूर्ण किया गया है :-

"ब्रह्मादिक बिनती करी कहि दुख बसुधा को ।
रबिकुल-कैरव-चन्द भो आनन्द-सुधा को ।।"[3]

त्यागराजु ने भी इसी संरचना का प्रयोग राम के संदर्भ में किया है, किंतु स्थान वाचक क्रिया विशेषण में दशरथ के घर के स्थान पर उन्होंने वंश का प्रयोग किया है । कभी सूर्यवंश[4] में अवतरित होने की बात कही गयी है और कभी रघुवंश ।[5]

कारण का विस्तार तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु ने अधिक किया है । तुलसी की भांति अवतार के कारणों में ब्रह्मा के संताप को भी परिगणित किया गया है ।[6] राक्षसों के मदमर्दन, देवताओं की रक्षा और भक्तों की सुरक्षा के लिए

---

* वि.93/3 2 गी.1/1/1 3 वि. 152/2

4 "इन कुल मंदु इंपुगानु बुट्टि" - त्या.136/2

5 "डेगके मेनोसंगु राघवान्वयमुन बाग जन्मिंचि" - वही. 457/5

6 "पंक जासनुनि परितापमुगनि
पंकजाप्तकुलपतियै वेलसि" - वही.363/3

राम ने अवतार लिया । *

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तुलसी की दृष्टि में दशरथ का वात्सल्य और उनके घर का वातावरण मुख्य रूप से बिम्बित हुआ है जब कि त्यागराजु की दृष्टि वंश गौरव पर है । तुलसी की दृष्टि में जहाँ अवतरित होने की क्रिया अधिक प्रगीतात्मक है वहाँ त्यागराजु ने अवतार लेने के कारणों पर अधिक बल दिया है ।

(ग) कृष्ण का अवतरण :

कृष्ण के अवतार के कारण और अवतरित होने की क्रिया तुलसी के गीतों में तो मिलती है, किंतु त्यागराजु ने इस क्रिया संदर्भ छोड ही दिया है । तुलसी की तत्संबंधी रचना इस प्रकार है -

पूर्व कालिक कृदंत	क्रिया	स्थानवाचक क्रिया विशेषण	कारण संकेत
सुर समाज को त्यागकर	जन्मे [2]	गोकुल	-
"	बसे रहे[3]	गोप-गेह	प्रेमवश

इस का कारण यह हो सकता है कि त्यागराजु का संबंध जिस क्षेत्र से था उस क्षेत्र में कृष्ण मंदिर अत्यंत विरले थे । वैष्णव मंदिरों में राम मंदिरों की प्रधानता थी ।

---

* "दंडि रक्कसुल मदमणचनु आ
खंडलादि सुर कोटुलनु भू
मंडल सुजनुल बालिपनु गो
दंडपाणि रूपमुतो वेलसिन" - त्या.508/3

2 "सुरमुनि-बिप्र बिहाय बडेकुल गोकुल-जनम गोपगृह लीन्हो ।"-वि.240/3

3 "जौं जप जाग जोग ब्रत बरजित, केवल प्रेम न चहते ।
तौ कत सुर मुनिबर बिहाय ब्रज गोप-गेह बसि रहते ।।" - वही.97/2

3.1.2 पूर्व कालिक कृदंत की रचना : अवतरण की क्रियायें :

अवतरित होने की स्थिति को पूर्वकालिक कृदंत में रखकर पीछे की क्रियाओं का उल्लेख किया गया है । दोनों ही कवियों ने इस पूर्वकालिक रचना को अभिव्यक्ति दी है । तुलसी ने "धरिदेह" * कहकर इसकी सूचना दी है तो /जन्मिचि/[2] "=पैदा होकर" कहकर त्यागराजु ने । जहाँ तुलसी ने मिश्र वाक्य के पहले भाग में कारण निरूपण किया है वहाँ "तब-तब"- से आरंभ होनेवाले वाक्य के उत्तरांश में पूर्वकालिक कृदंत की स्थिति का कथन किया है - "तब तब तनु धरि"[3] । इसके पश्चात् अवतरण के बाद की क्रियायें आती हैं ।

3.1.3. अवतरित होने के पश्चात् की क्रियायें :

अवतरित होने के पश्चात् की क्रियाओं का संकेत अवतार के कारणों का कथन करके दिया गया है । इन क्रियाओं का संबंध मुख्यत: विनाश और रक्षा से है : प्रतिकूल शक्तियों का विनाश करके अनुकूल समाज व्यवस्था की स्थापना करना ही अवतार क्रियाओं का लक्ष्य है ।

3.1.3 । विनाश की क्रियायें :

अवतार लेने के पश्चात् मुख्य क्रिया विनाश की होती है । विनाश दुष्टों या दानवों का किया जाता है । नृसिंह, राम और कृष्ण ने दुष्टों और दानवों को विनष्ट किया ।

नृसिंह के साथ मारने की क्रिया का उल्लेख तुलसी ने किया है । इस संदर्भ में /हत्यो/[4] और /विदरित/[5] जैसी सकर्मक क्रियाओं का प्रयोग किया है

---

* वि.217/5 2 त्या.457/5

3 वि.248/2 (और द्रष्टव्य - वि.52/2)

4 वि. 93/3 5 वही. 52/4

और कर्म के रूप में/दनूज/ और /अरि/ प्रयुक्त हुए हैं जो हिरण्य कश्यप की ओर संकेत करते हैं । त्यागराजु ने इस क्रिया संरचना का प्रयोग नृसिंह के साथ नहीं जोडा ।

इस क्रिया रचना की विस्तृति राम के संदर्भ में दोनों ही कवियों ने की है ।

तुलसी की क्रिया-संरचना :

क्रिया	कर्म	क्रिया विशेषण
√मार *	रिपु,निशाचर,बालि,ताडका, सुबाहु, मृग (मारिच/,दशानन ।	अरिपुर जारि उजारि निदरि,बेलेताल, एकहि बान, दूरि-जाइ ।
√हत्[2]	असुर,सोड(बालि),विराध, खर,दूषण,त्रिसिरा,कबंध, ताडका ।	कर गहि सरसाप, बिनु प्रयास एक सर, बिनु श्रम, प्रथम, एक तीर तकि ।
√बध्[3]	बालि,सुबाहु,बिराध, त्रिसिर,खर-दूषण,कबंध	-
√दल्[4]	दुवन्,बालि,ताडका,सकल सानुज सदल दसकंठ	रण में ।
√संहार[5]	खर,दूषण,ताडका	-

* गी.1/60/3; 1/68/3; 1/74/3; 1/83/2; 1/102/4; 3/6/1;6/1/2; 6/1/5; 6/22/2; 7/38/6; 7/38/9

2 वही. 1/52/6; 1/68/3; 6/1/4;6/4/2; 6/21/2; 7/38/2; 7/38/6 और वि.38/4

3 वही. 6/21/2; 7/38/2; 7/38/4 और वि.43/7

4 वही. 1/83/2; 1/102/4; 6/21/2 और वि.43/8

5 वही. 1/67/2; 7/38/5

त्यागराजु की क्रिया-संरचना :

क्रिया	कर्म	क्रिया विशेषण
√मार् *	मारीच, सुबाहु,	-
√हन् 2	रावण, मारीचादि ।	-
√वध 3	हिरण (मारीच) ।	-
√संहार् 4	बालि ।	-

ऊपर की दोनों तालिकाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों कवियों ने प्राय: समान क्रियाओं का प्रयोग इस संदर्भ में किया है । किंतु जहाँ तुलसी ने 14 दुष्टों को क्रिया के कर्म की संरचना में लाया है, वहाँ त्यागराजु ने केवल रावण, मारीच, सुबाहु, वालि का कर्म के रूप में उल्लेख किया है । त्यागराजु ने /मारने/ की क्रिया के अतिरिक्त दुष्टों के मद मर्दन की बात भी कही है ।[5]

इससे यह प्रतीत होता है कि राम का वीरोचित रूप और उनका दुष्ट विनाशक अभिप्राय तुलसी की कल्पना में त्यागराजु की अपेक्षा अधिक विस्तृत है । इसका कारण यह हो सकता है कि तुलसी की संरचना में प्रबंध का

---

* त्या. 507/2; 2 वही. 369/5; 577/3;

3 वही. 363/3; 4 वही. 93/4;

5 "मु/ मकुरावणुनि मदमुल णाचि" - वही. 363/3

सूत्र भीतर-भीतर चलता रहता है और इसीलिए सभी प्रमुख दानवों के विनाश का सूत्र आ जाता है । त्यागराजु की रचना में प्रबंधत्व कम और प्रगीतत्व अधिक है ।

कृष्ण के संदर्भ में तुलसी ने /मारने/ की क्रिया और उसके कर्म के रूप में केवल कंस का उल्लेख किया है । * त्यागराजु ने कंस वध के स्थान पर कालीय मर्दन के प्रसंग का उल्लेख किया है ।[2] दोनों ही कवियों में कृष्ण का विनाशक रूप बल ग्रहण नहीं कर पाता है ।

3.1.32 रक्षण संबंधी क्रियायें :

दुष्ट विनाश अपने आप में लक्ष्य नहीं है । इन क्रियाओं का लक्ष्य है - दुष्टों के चुंगुल से दीन जन या संत या देवताओं की रक्षा । दोनों ही कवियों ने रक्षा संबंधी क्रियाओं का प्रयोग किया है । इस रचना में भी क्रिया महत्वपूर्ण नहीं, कर्म महत्वपूर्ण है । नीचे इन्हीं दोनों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है -

कर्त्ता	पूर्वकालिक कृदंत	क्रिया विशेषण	कर्म	क्रिया
मत्स्य	सोमकासुर को मारकर	-	वेद	लाया[3]
वराह	मर्दिदनुजेस	-	पृथ्वी	उद्धरन[4]
राम	1. दलि ताडका मारि निसाचर सुबाहुबधि	-	मख	राखि[5]

* "कंस मारि" - कृ.गी.46/3

2 "कालिंदि लोनि कालियुनि मर्दबुनु काल नचलेदा" - त्या.102/5

3 "वेरूवक नीरु चोच्चिन सोमकुनि गोट्टि वेदमु तेलेदा" । - त्या.102/4

4 "मर्दिदनुजेस उद्धरन उर्वी" - वि.52/2

5 "गी.1/67/2; 1/68/3; 1/102/4; 6/1/2; 7/38/2

	2. बालि बिदारि	-	सुग्रीव	कियो * (कपि कुलपति)
	3. एकहि बाण से बालिको मारकर	-	सुग्रीव को राजा	बनाया [2]
	4. बधि बिराध	-	सुर-साधु	सुखी किया [3]
	5. सकुल पुत्र दलि- सहित दसानन मारि अपनाइ बिभीषन मारि रिपु	सकुल समूल	रावण बिबुध	बहायो[4] बसाए[5]
कृष्ण	1 कंस मारि	-	जदु बंस सुखी	कियो[6]
	2. बसन पूरि	-	अरि दर्प	(दूरि) करे[7]

तुलनात्मक दृष्टि से ये निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :-

(1) उपर्युक्त संरचना दोनों ही कवियों में न्यूनाधिक रूप से मिलती है ।

(2) कर्त्ता के रूप में तुलसी ने वराह, राम और कृष्ण अवतारों को लिया है । त्यागराजु की रचना में केवल मत्स्य और राम इस संरचना में कर्त्ता के रूप में आये । मत्स्य का उल्लेख केवल त्यागराजु ने किया है

---

* वि. 138/3

2 "वालिनोक्क कोलनेसि रविबा
लुनि राजुग गाविंचि जूचि ब्रोचे वारेवरे" - त्या. 369/6

3 गी. 2/89/3 ; 4 वही : 6/21/3 ; 5 वही. 6/22/2 ;

6 कृ. गी. 46/3 ; 7 वि. 93/4 ;

(3) जहाँ दोनों के कर्त्ता समान है वहाँ कर्म भी समान है ।

(4) तुलसी ने राम की रक्षा परक क्रिया संरचना त्यागराजु की अपेक्षा बहुत अधिक की है । जहाँ त्यागराजु ने केवल बालि को मारकर सुग्रीव की रक्षा का कथन किया है वहाँ तुलसी ने पूर्वकालिक कृदंत की रचना में ताड़का, सुबाहु, निशाचर, बालि, बिराध, रावण, रिपु को लिया है ।

3.2. वर्तमान कालिक रचना : स्वभाव कथन :

3.2.1 मानवोचित क्रियायें :

देखना और बोलना मनुष्य की सामान्य क्रियायें है । त्यागराजु ने इन क्रियाओं के कर्त्ता के रूप में इष्टदेव को देखा है और कुछ कर्मों एवं क्रिया विशेषणों या पूर्वकालिक कृदंतों के द्वारा इनके सामान्य अर्थ को विशिष्ट किया गया है । नीचे की तालिका से यह रचना बिधि स्पष्ट हो जाती है -

क्रिया	कर्म	विशेषण	क्रिया विशेषण	पूर्वकालिक कृदंत
√बोल् *	वाणी	मधुर	-	-
√दिख²	-	-	1. पालन करते हुए 2. तिरछी दृष्टि से	देखकर
" 3	भक्तगणों का	-	करुणा से	श्रेष्ठ भाल से बालों को हठाकर

* माटलाडु - त्या. 191/4 2 चूचु - वही. 96/4

3 वही - वही. 269/4

तुलसी जी ने इस सामान्य मानवोचित क्रियाओं का प्रयोग नहीं किया है ।

3.2.2 प्रभुत्व द्योतक क्रियायें :

इष्टदेव के प्रसिद्ध भक्त सदभीय गुण रक्षा करना और पालन करना है तथा उनका प्रभुत्व सर्व व्यापकता से सिद्ध होता है । तुलसी ने इस रचना में इन क्रियाओं का भी प्रयोग नहीं किया है । त्यागराजु ने इस क्रिया की रचना भी की है -

क्रिया	कर्म	विशेषण	क्रिया विशेषण	पूर्वकालिक कृदंत
√रक्षा करना*	अपनी पूजा करने वालों को	-	अन्याज रूप से	-
√रक्षा करना[2]	-	-	-	राग, लोभ, मदादि शत्रु को मारकर
√रम्[3]	-	-	गगन, पवन, अग्नि, सागर, पृथ्वी, मेरू पर्वत, शिवादि देवता, सद्भक्त-गणों में	-
√संचर्[4]	-	-	-	अणु-परमाणु में पर्वतों में निहित रहकर

* √ब्रोतुवु - त्या. 273/6

2 √रक्षिंचु - वही. 314/5

3 √रमिंचु - वही. 246/3

4 √चेलंगु - प्रभवि. पृ. 19

3.2.3 दान देना :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही इष्टदेव को दान देने की प्रकृति कोसमान रूप से स्पष्ट किया है । आवृत्ति की दृष्टि से इस क्रिया की आवृत्ति भी त्यागराजु में अधिक है । साथ ही कर्म का विस्तार भी इन्होंने अधिक किया है ।

क्रिया	कर्म (तुलसी)	कर्म (त्यागराजु)	क्रिया-विशेषण (तुलसी)	क्रिया विशेषण (त्यागराजु)
√दे = /ओसगु/ /इच्चु/	अभागहिं,* भाग, सकल सुख ।	कामितापल[2], क्षेमादि शुभ, सद्भक्त-मनोभीष्ट	-	प्रेम से

3.2.4 आलंकारिक रचना :

दोनों आलोच्य कवियों ने अलंकृत रूप में भी क्रिया का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने /भक्तुलगनि करूणामृतमु चल्लग/[3] "भक्तों को देखकर करुणामृत छिड़कते हैं" लिखा है । इसमें रूपक की रचना कर्म को विशिष्ट बनाती है और क्रिया उपमान जैसी हो जाती है । तुलसी ने जब यह लिखा - /दुख दहै/[4] तो रूपक की रचना तो स्पष्ट नहीं की, किंतु /दहै/ क्रिया से अलंकरण की वृत्ति स्पष्ट हो जाती है ।

3.2.5 केवल तुलसी की रचना :

तुलसी में चार क्रियाएं ऐसी हैं जो त्यागराजु की रचना में नहीं हैं : √हर्, √कर्, √रीझ और √हो । पहली धातु के कर्म ये हैं : अघ-औगुन,[5]

---

* वि.191/7; 107/4 2 त्या.50 /3; 32/5; 387/4

3 वही. 118/3 4 वि.107/4

5 वि. 107/4

संकट ।* क्रिया विशेषण के रूप में यह अभिव्यक्ति है : "आरति, नति, दीनता कहे" । √कर् का रूप है पूर्ण करना और इसका कर्म है "सकल काम"[2] । √रीझ - "प्रसन्न होना", "आकर्षित होना" । इसके साथ पूर्व कालिक कृदत की रचना प्रयुक्त हुई है : "सुनि सेवक गुन ग्राम सो" ।[3] √हो का पूरा रूप है । /बस होत/ और इसके लिए क्रिया विशेषण है /रीझे/ "रीझने पर" ।[4]

3.3 भविष्यकाल की रचना :
प्रबोध या आश्वासन की क्रियायें :

भविष्यकालिक क्रिया की रचना तुलसी और त्यागराजु दोनों में मिल जाती है । इस रचना का संदर्भ मन का प्रबोध या भक्त जन को आश्वासन देना है । जैसे तुलसी जी कहते हैं - "अरे मन सासारिक संकट को राम हर लेंगे ।"[5] त्यागराजु भी मन को उद्बोधित करते हुए कहते हैं - "प्रभु तुम्हें सुख देकर पालन करेंगे"[6] तथा "तुझ से मधुरवाणी में बोलेंगे ।"[7] राम से अपना विश्वास प्रकट करते हुए त्यागराजु कहते हैं - "आप मेरे हाथ पकड कर रक्षा करेंगे ।"[8]

4. क्रियाओं की वाक्यगत संरचना :

वैसे तो सब कुछ मूल तत्व का लीलात्मक विकास ही है और नित्य लीला के रहस्यात्मक रूप को प्रकट करने के लिए ही अवतार कल्पना विकसित हुई है । किंतु प्रस्तुत शीर्षक के अंतर्गत राम और कृष्ण की मानवोचित क्रियाओं पर विचार किया जायेगा । अन्य अवतारों की क्रियायें प्राकृतिक धरातल पर इतनी नहीं चली थीं । दोनों आलोच्य कवियों का इष्टदेव राम है । इसलिए राम की लौकिक क्रियाओं और उनके संदर्भों का विस्तार

---

* वि.134/1 2 वही.108/1 3 वही.157/4 4 वही.71/6
5 "हरि है विषम भव-भीर" - वि.197/3
6 "सुखमोसगि ब्रोचुनट" - त्या.191/4
7 "मुद्दुमाटलाड्डुनट" - वही. 191/4
8 "श्रीत्यागराजुनि चेबट्टि रक्षिंचेदवु" - वही. 213/11

कृष्ण की क्रियाओं की अपेक्षा अधिक मिलता है । ये क्रियायें मूल तत्व के मानवीय रूप में अवतरित होने के पश्चात् आरंभ होती है ।

4.1. क्रिया की एक वाक्यीय संरचना :

इस रचना को कथा संदर्भ के क्रम में रखकर देखना उचित होगा । तुलसी की कल्पना में रोते हुए बाल राम का बिंब खिला /रोवत राम/ ।*
फिर क्रिया से उत्पन्न क्रियार्थक संज्ञाओं की एक श्रृंखला कवि को मोहित कर लेती है : किलकनि, नटनि, चलनि, चितवनि, भजि मिलनि ।[2]
इन क्रियाओं से एक छवि जन्म लेती है जिससे ~~दशरथ~~ दशरथ का आँगन ओत-प्रोत हो जाता है :

क्रि. + कर्म + क्रि. वि = /छलकि है/ + /छबि/ + /भरि अँग नैया /[3]

तुलनात्मक दृष्टि से यदि देखें तो त्यागराजु में बालराम की यह क्रिया रचना नहीं मिलती । हो सकता है कि त्यागराजु की कल्पना में राम के ऐश्वर्य और महत्व से संबंधित क्रियायें ही उभरती हों ।

दशरथ के आँगन से निकल कर राम की क्रियायें विश्वमित्र के आश्रम में जाकर रक्षापरक होने लगती है । तुलसी ने यज्ञ कर्म के साथ रक्षा क्रिया को जोड़कर वाक्य रचना की है ।

√राख "रक्षा करना" : भूतकालिक रचना - /राखे/,/राख्यो/ + इसका कर्म /मख/[4] या /जग्य/[5]। इस सामान्य कथन को विशिष्ट संदर्भ देने के लिए कर्म के साथ संज्ञा {विशेषणार्थक} का संयोग किया गया है /ऋषि मख/ [6]

---

* गी. 1/12/1 2 वही. 1/9/3 3 वही. 1/9/3

4 गी. 1/63/4; 1/67/2; 1/102/4; 6/1/2; 7/38/2

5 वही. 1/52/6 6 वही. 1/83/2

आगे इस संरचना का विकास होता है । अर्थात् रक्षा परक मूल क्रिया पूर्व कालिक कृदंत में बदल जाती है और उसके पश्चात् इस क्रिया के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न ऋषि के संतोष को अलग रचना प्रदान की जाती है : /जग्य राखि/ + √तोष [तोषि] + ऋषि [कर्म] * यह रचना भौतिक क्रिया को मानसिक संदर्भ में ले जाती है । अर्थात् यज्ञ की रक्षा मुख्योद्देश्य नहीं है - यज्ञ रक्षा का मुख्योद्देश्य है : ऋषि का संतोष ।

यह बात इससे प्रमाणित होती है कि कुछ स्थलों पर रक्षा परक क्रिया की संरचना मिलती ही नहीं, केवल ऋषि संदर्भीय रचना मिलती है :

√हर् → हर्यो, हरि + कर्म [= कौसिक संकट,[2] ऋषि सोक] ।[3]

तुलना की दृष्टि से देखा जाय तो तुलसी की कल्पना में उभरता हुआ यह बिम्ब भी त्यागराजु की कल्पना में नहीं उतरता ।

क्रिया संदर्भ के समान धरातल इसके पश्चात् ही घटित होते हैं । त्यागराजु और तुलसी दोनों का ध्यान अहल्या के उद्धार पर समान रूप से केन्द्रित हो जाता है । त्यागराजु ने केवल एक स्थान पर इसकी यह रचना दी है :-

क्रि॰ + कर्म + विशेषणपदबंध + पूर्वकालिक कृदंत + कर्त्ता + कर्त्ता का विशेषण पदबंध = √ब्रोचु - "उद्धार किया" + सुदति [अहल्या] + मन में भयभीत होनेवाली + [उसको] देखकर [कनि] + आपके चरण + कृपा से भरे ।[4]

इस रचना को देखने से यह सिद्ध होता है कि राम की कृपा और राम के स्थान पर उनके चरण का प्रयोग कर त्यागराजु ने राम के ऐश्वर्य, अपने विनय और उनके कृपालु रूप का समन्वय किया ।

---

* गी॰ 1/68/3   2 वही॰ 5/37/4   3 7/38/4

4 "मदिनि बेदरू सुदतिनि गनि नीदु
पदमुलु दयनु धरलोनु ब्रोचे गदरा" - त्या॰534/5

तुलसी ने इस संदर्भ में राम की उद्धार क्रिया का उल्लेख अधिक क्षिप्रता और अधिक आवृत्ति के साथ किया है और इस क्रिया की संरचना का क्रमशः विकास भी हुआ है :

तारी (क्रि•)	मुनितिय *
	बिप्रतिय[2]
	गौतम की तिय[3]
	मम मुनि तिय[4]
	देखि दुखी अति + सिला साप बस बिप्रनारि + रघुपति (कर्त्ता)[5]

इस संरचना में तीन बातें विशेष दिखलाई पड़ती है । एक तो कुछ वाक्यों में कर्त्ता (राम) का उल्लेख नहीं हुआ है । दूसरी बात यह कि इसमें ऋषि के शाप का अभिप्राय प्रमुख है । तीसरी बात यह कि त्यागराजु की भाँति तुलसी ने कर्त्ता के रूप में "राम चरण" न कहकर रघुपति नाम ही लिया है ।

दूसरी क्रिया √हर् - का प्रयोग करके शापवाले अभिप्राय को छोड़ा गया है और अहल्या के पाप और तज्जन्य उसके संताप को कर्म के रूप में ग्रहण किया गया है । यहाँ भी कर्त्ता का उल्लेख नहीं है । क्रिया विशेषण के रूप में /आप/="स्वयमेव" प्रयुक्त हुआ है :

"हर्यो पाप आप जाइकै संताप सिला को" ।[6]

त्यागराजु की भाँति तुलसी की दृष्टि राम के चरण की ओर अग्रसर हुई,[7] किन्तु चरण पर ही न रूक कर चरण की रज पर तुलसी की दृष्टि रूकी और

---

* गी• 1/68/4 2 वही• 1/102/4 3 वही• 1/74/3

4 वही•1/83/2 5 वही• 7/38/2 6 वि•152/4

7 "चरन-कमल-रज-परस अहल्या निज पति पठाई ।" गी•1/52/7

चरण की रज को अलंकृत करके तुलसी ने कर्त्ता का विस्तार किया :

कर्त्ता = चरण-कमल-रज । इसके पश्चात् पूर्वकालिक कृदंत = /परस/ ="स्पर्श करके", कर्म के रूप में मुनितिय के स्थान पर अहल्या का नाम आया और अंत में मुख्य क्रिया /पठाई/ हुई । इसके साथ क्रिया विशेषण वह /निज पति/="पति के पास या पति के लोक में" । इस प्रकार तुलसी की क्रिया रचना अधिक प्रगल्भ बन गई ।

फिर राम की लीलागत क्रिया का मुख्य क्षेत्र धनुष यज्ञ बनता है । वहाँ की सामान्य लीलापरक क्रिया धनुष तोडना है । तुलसी की इस सामान्य रचना में कर्त्ता, कर्म और क्रिया की रचना मिलती है । जैसे : "राम कामरिपु-चाप चढ़ायो" । * फिर इस क्रिया को पूर्व कालिक कृदंत में रखकर मुख्य क्रिया "खड़ा होना" कर दिया है : "खंडि हर-कोदंड ठाढे"।[2] इस क्रिया के साथ कोई अन्य संदर्भ किसी विशेष उद्‌देश्य से नहीं जोडा गया है । त्यागराजु के गीतों में यह सामान्य भाषा रचना नहीं मिलती ।

धनुष तोडने की क्रिया बहुत कठिन थी जिसको राम ने अपूर्व लाघव के साथ संपन्न कर दिया । इस लाघव को अप्रस्तुत विधान के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है - शिव के कठोर धनुष को मृणाल की भाँति राम ने तोड दिया ।[3] इस अलंकार के द्वारा मुख्य क्रिया का क्रिया विशेषण मूलक विस्तार किया गया है ।

धनुष तोडने की क्रिया का अन्य संदर्भीय विस्तार धनुष यज्ञ में एकत्र राजाओं के गर्व भंजन और परशुराम के दर्पदलन को लेकर किया गया है । राम ने धनुष तोडकर राजाओं को निरादर किया[4] या इस क्रिया से राजाओं का दर्प दलन हुआ ।[5] एक विशेष चमत्कारपूर्ण क्रिया रचना यह है कि तोडने की

---

* ~~"चरन-कमल-रज-परसि अहल्या निज पति पठाई।"~~ गी.1/93/1

2 गी.1/97/2 3 वही. 1/102/5 4 वही. 1/100/5

5 वही.1/43/3

क्रिया के दो कर्मों का सह अस्तित्व रखा गया - धनुष और राजाओं का गर्व । इस प्रकार एक ही क्रिया के केंद्र पर दो संदर्भों का संगम हो जाता है -

"सकल भूप बल गरब सहित तोर्‌यो कठोर सिव चापु" । *

एक चमत्कारिक रचना यति के दोनों और दोनों क्रियाओं को रखकर की गयी है । कर्म एक क्रिया के पहले और दूसरी क्रिया के बाद आता है -

§भूपन को गरब§कर्म←हर्‌यो ‖ भज्यो→कर्म §संभु-चाप§ ।[2]

इससे दोनों संदर्भों की क्रियायें समीपस्त होकर चमत्कार उत्पन्न करती हैं ।

त्यागराजु ने एक सामान्य रचना के द्वारा दोनों संदर्भों को जोडा है : कारण + कर्म । कारण = राजाओं का गर्व हरण करने के लिए + कार्य =शिव के धनुष तोडा ।[3]

जिस प्रकार उद्धत राजाओं का दलन किया गया, उसी प्रकार की क्रिया संरचना परशुराम के प्रति भी की गयी । यहाँ पर राजाओं की भाँति गर्व पर बल दिया : "भृगुपति की टारी टई"[4] और "परसुराम अति मद हारी" ।[5] इस क्रिया संरचना में वह परंपरागत प्रत्यय प्रकट हुआ है जिसमें कहा गया है कि भगवान गर्व प्रहारी है । गर्व प्रहारी रूप उद्धत राजाओं के संदर्भ में तो त्यागराजु की कल्पना में आया, किंतु परसुराम के संदर्भ से इसको उदाहृत नहीं किया गया ।

तुलसी ने इस क्रिया के अन्य मानसिक पक्ष की ओर संकेत करते हुए कहा कि इसने जनक के संकट को दूर किया ।[6] तुलसी का ध्यान सीता की करूण स्थिति और धनुष तोडने की क्रिया के द्वारा उस स्थिति से उनकी मुक्ति पर विशेष रूप से ■ गया । इस भाव स्थिति को द्विसंदर्भीय रचना में रखा

---

* गी. 6/1/3 2 वही. 7/38/3

3 "भूपालुर गर्वबुलणचुकोर
का परमेश्वरू चापमु द्रुंचिन" - त्या. 306/2

4 गी. 5/37/4 5 वही. 7/38/3

6 "जनक संकट हरि" - वही. 5/37/4

गया गया है । धनुष तोडने की क्रिया इस रचना में पूर्वकालिक कृदंत बन जाती है :-

"कौतुक ही कोदंड खंडि प्रभु, जय अरू जानकि पाई" । *

क्रिया का पुरस्कार जय और जानकी दो हो गये ।

तुलसी की भाँति त्यागराजु ने भी इस क्रिया का मधुर विस्तार सीता ग्रहण के द्वारा किया ~~गया~~ है । इस रचना में धनुष तोडना पूर्वकालिक कृदंत में आ जाता है, किंतु धनुष तोडने की क्रिया का क्रिया विशेषण मूलक विस्तार अधिक किया गया है -[2]

बचपन में ही		
लीला मात्र से ही	→ तोडकर ←	शिवधनु को
राजाओं के देखते देखते		
हाथों		

इस पूर्व कालिक कृदंत की रचना से धनुष तोडने की क्रिया पर वह बल निक्षेप होता है जो सीता की प्राप्तिवाली मुख्य क्रिया को भी सशक्त बना देता है । मुख्य क्रिया का एक क्रिया विशेषण रखा गया है - चतुरता से (कुशालुगा) । एक क्रिया रचना ऐसी भी मिलती है जहाँ धनुष तोडने का उल्लेख नहीं है, ~~क्व~~ केवल सीता को प्राप्त करने की बात कही गयी है ।[3] इससे यह सिद्ध होता है कि साधन की विस्तृति की अपेक्षा कवि ने परिणाम पर अधिक दृष्टि रखी है और साधन का कथन ही नहीं किया है ।

---

* ~~"अचक संकट हरि [illegible]~~ वही. 1/91/4

2 "बाल वयसुन शूल धरूनि विशालधनुवुन लीलगा
भूपालकुलुगन केलविरिचि कु
शालुगा श्रीनैलिन" - त्या. 94/3

3 "श्री रघुकुलमंदु बुट्टि सीतनु जेयिकोनिन रामचंद्रा" - वही. 549/1

धनुष यज्ञ के पश्चात् राम की वनगमन संबंधी क्रिया ध्यान आकर्षित करती है । त्यागराजु ने वनगमन की क्रिया का एक संरचना में उल्लेख नहीं करके केवल पिता की आज्ञा का पालन की बात कही - राम ने पिता की आज्ञा का परिपालन किया । * वनगमन की क्रिया का मर्यादा या आदर्शवादी पक्ष है । तुलसी ने आज्ञापालन वाली क्रिया की वर्तमान कालिक कृदंतीय रचना करके वनगमन क्रिया का उल्लेख किया - "मुदित मानि आयसु चले बन मातु-पिता को" ।[2] यह रचना त्यागराजु की रचना को अपेक्षा पूर्ण अभिधामूलक है ।

तुलसी ने वर्तमान कालिक कृदंतीय रचना के द्वारा संतों के संकट हरण के कारण का कथन किया - "भवत संकट अवलोकि पितु-वाक्य कृत-गमन किय गहन" ।[3] त्यागराजु ने संरचना क्रम को बदल दिया, अर्थात् वनगमन की क्रिया को वर्तमान कालिक कृदंत बना दिया और मुनिजन पालन को मुख्य क्रिया के रूप में प्रयुक्त किया : वर्त. का.कृ. = √चन् "जाना" + /-इ/ = /चनि/ "जाकर" + क्रि. √पालिंचु "पालन करना" अथवा ‌§इच्छाओं को§ पूर्ण किया + कर्म = मुनिजन ।[4] आगे वन जाने की क्रिया को मुख्य रूप से वर्तमान कालिक कृदंत के रूप में उल्लेख न कर यह भी कहा गया कि राम ने अपनी अणिमादि लीलाओं से मुनि लोगों का पालन किया ।[5]

इस प्रकार उद्देश्य की द्दृष्टि से दोनों कवि समान हैं । रचना का अंतर केवल अधिक बल देने की दृष्टि से दिखलाई पड़ता है । त्यागराजु ने राम के वन में रहते समय ऋषियों के पालन की क्रिया पर अधिक बल दिया तो तुलसी ने इसको वन गमन के कारण के रूप में कथन किया ।

वन गमन की क्रिया के पश्चात् तुलसी की दृष्टि केवट के प्रति राम की शुद्ध भावात्मक दृष्टि से की गयी क्रियाओं पर गयी । सबसे सरल संरचना कर्त्ता §लुप्त§ + कर्म + क्रिया की है : "केवट मीत कियो" ।[6] तत्पश्चात्

---

* त्या.141/3   2 वि. 152/6   3 वही. 58/7

4 वही. 472/2; 549/2   5 वही. 109/3

6 गी.5/46/2

संरचना एक ओर तो राम के महत्व को क्रिया विशेषण के रूप में ग्रहण करके चली है : जो शिव के लिए भी ध्यान में अगम्य है उस रामने केवट को भेंटा (गले से लगाया) । * दूसरी ओर भावात्मक क्रिया विशेषण को भरत से संबद्ध करके क्रिया के लिए वत्सलता का वातावरण बनाया गया - "केवट भेंट्यो भरत ~~ब~~ ज्यों" ।[2] फिर एक ~~भावात्मक~~ भावात्मक क्रिया विशेषण के साथ ही भेंट करने की विधा का कथन भी क्रिया विशेषण के माध्यम से किया गया है - "कर कमल उठाइ/बंधु ज्यों/ परम प्रीति (से) / केवट भेंट्यो" ।[3] त्यागराजु के राम केवट के प्रति भावात्मक प्रेरणा के से सक्रिय नहीं है । तुलसी ने राम की कृपा दृष्टि पर इस क्रिया रचना/द्वारा बल दिया ।

आगे उस राम पर तुलसी की दृष्टि केन्द्रित हुई जिन्होंने मुनि ~~विश~~ वेष धारण किया -

1. तात-बचन तजि राज-काज 2. सुर (के लिए)	मुनि वेष धर्यो ।[4]

त्यागराजु ने मुनि वेष धारण करने का उल्लेख नहीं किया है । आगे राम ने अपने जाने की क्रिया के द्वारा पंचवटी को पवित्र किया ।[5]

पंचवटी पर निवास करते समय इन्द्रसुत जयंत के प्रति राम की क्रिया प्रेरित हुई । सामान्य संरचना में तुलसी ने केवल घटना की ओर संकेत किया - जयंत को राम ने एकाक्षी बना दिया ।[6] आगे जयंत के साथ विशेषण पदबंध जोडकर उसके कपट रूप और शरण में आने की बात कही ।[7] त्यागराजु ने

---

* "ध्यान अगम सिवहू भेंट्यो केवट उठि" - वि.135/4

2 वही. 191/6 3 वही. 138/2

4 गी.7/38/4 5 वही. 7/38/5

6 "एक नयन कीन्हों सुरपति-सुत" - वही. ~~*****~~ 7/38/4

7 "कपट काक साँसति-प्रसाद करि" - वही. 6/1/4

भी शरणागत जयंत की रक्षा करने की क्रिया को देखा ।*

शबरी या भीलनी आगे राम की क्रिया के कर्म के विशेषण के रूप में आती है - खाया + फल (कर्म) + भीलनी का (वि.) ।[2] जिस प्रकार त्यागराजु की दृष्टि केवट पर नहीं गयी थी, उसी प्रकार भीलनी संबंधी क्रिया को भी उन्होंने छोड दिया ।

गीध के प्रति राम के क्रिया व्यापार को तुलसी ने अधिक भावात्मक रचना प्रधान की : कियो + सराध (श्राद्ध) + गिद्ध का (वि.) ।[3] इस क्रिया के आधार पर राम के लिए एक विशेषण पदबंध की रचना भी की गयी - "करैया गीध-स्राध के" ।[4] इस क्रिया को और भी आदर्शोदात्त बनाने के लिए राम के द्वारा लौकिक रूप से पिंडदान की बात कही गयी और अलौकिक दृष्टि से जटायु को मोक्ष भी दी गयी । लौकिक संदर्भ पूर्वकालिक कृदंत के रूप में आया और अलौकिक संदर्भ मुख्य क्रिया के रूप में ।[5] त्यागराजु ने गीध के प्रसंग को भी छोड दिया ।

सुग्रीव के प्रति तुलसी और त्यागराजु के राम समान रूप से सक्रिय हैं । सबसे सरल रचना है - "कपि को कियो मीत" ।[6] इस प्रकार की क्रिया रचना केवट के प्रति भी रची गयी थी । इस रचना को पूर्व कालिक कृदंत में रखकर तुलसी ने मुख्य क्रिया के द्वारा इस क्रिया का वैशिष्ट्य ज्ञापित किया । वास्तव में राम और सुग्रीव दोनों ही विरही थे, किन्तु राम की विशेषता यह रही कि उन्होंने अपनी प्रियतमा को भुला दिया और सुग्रीव के विरही रूप को अधिक महत्व दिया ।[7]

---

* "शरणनुकोन्न काकासुरुनि ब्रोवलेदा" - त्या.457/3
2 "भीलनी को खायो फल" - वि.183/2
3 "गीध को कियो सराध" - वि,183/2 4 वही.179/4
5 "कर-कमल कृपालु गीध कहँ, पिंड देइ निज धाम दियो" । - वही.138/3
6 वही.191/6 7 वही. 164/3

इसमें राम के म्र मैत्री भाव को बलिष्ठ करने का उद्देश्य है । इसी मैत्री को सामान्य रूप से भी कहा गया है कि राम ने उजडे हुए सुग्रीव को फिर से बसाया । *

त्यागराजु ने भी सामान्य रूप से कथन किया कि राम ने सुग्रीव से मित्रता की ।[2] यह तुलसी से तुलनीय है, किंतु मैत्री की क्रिया को बलिष्ठ बनाने की पद्धति तुलसी से भिन्न है । सुग्रीव सीता जी की खोज के अभिप्राय को भूल गया । फिर भी राम ने सुग्रीव का पालन किया ।[3] इसमें राम की क्षमा शीलता पर तो बल दिया गया है, किंतु संदर्भ की रचना को तुलसी के समान अधिक भावात्मकता प्रधान नहीं की गयी ।

सुग्रीव के पश्चात् विभीषण शरणागति का प्रसंग दोनों कवियों के लिए आकर्षक रहा है । इन क्रियाओं के कर्त्ता का उल्लेख सभी रचनाओं में नहीं हुआ है । केवल तुलसी ने एक बार /हरि/[4] और एक बार /प्रभु/[5] का उल्लेख किया है । त्यागराजु ने एक बार भी कर्त्ता का उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि प्रसंग से ही कर्त्ता स्पष्ट है । शेष रचना में कर्म और क्रिया बचते हैं । त्यागराजु की क्रिया रचना इस प्रकार है –

क्रिया	प्रथम कर्म	द्वितीय कर्म
√ओसगु "देना" > /ओसगे/ "दिया"[6]	–	लंकानगर
√चेयु "बनाना" > /चेसे/ "बनाया"[7]	–	लंकापति
√ब्रोचु "रक्षा करना" > /ब्रोचे/ "रक्षा की"[8]	रावण के भाई की	–

* "सुग्रीव बसायो" – गी.6/21/2

2 "रवि बालुनि चेलिमियु चेसिन देल्ल" – त्या.199/3

3 "मरचियुन्न वनचरुनि ब्रोचिन महिम देलुपवय्या" – वही.396/3

4 वि.137/3 5 गी.5/43/4 6 त्या.72/3

7 वही.455/3 8 वही.369/4

तुलसी की रचना इस प्रकार है -

क्रिया	प्रथम कर्म	द्वितीय कर्म	
√दे >/दियो/*	–	तिलक	
√सार >/सार्‌यो/ "सम्पन्न किया"[2]	–	तिलक	
√बसा >/बसे हैं/[3]	–	–	
√भेंट >/भेंट्यो/[4]	–	–	
√थप >/थप्यो/ "स्थापित किया"।[5]	विभीषण	–	

उपर्युक्त तालिकाओं की तुलना से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :-

1) दोनों ने ही विभीषण को राजा बनाने की क्रिया पर बल दिया है । तुलसी ने /तिलक दियो/, /तिलक सार्‌यो/, और /थप्यो/ के द्वारा इसी भाव को व्यक्त किया है, जबकि त्यागराजु ने सीधे राजा बनाने की बात कही है ।

2) त्यागराजु ने राज्य देने की क्रिया के साथ लंकानगर का कर्म के रूप में उल्लेख किया है । तुलसी ने तिलक के विशेषण के रूप में उल्लेख किया है : /लंका(का)/ ।

3) त्यागराजु ने रक्षा करने की बात कही है । तुलसी में यह अभिप्राय नहीं मिलता ।

4) तुलसी ने /भेंट्यो/ क्रिया का प्रयोग किया है जो त्यागराजु की रचना में नहीं है और इसको अन्य रचनाओं से विस्तृति भी आयी है । इस क्रिया के साथ भावात्मक संबंध की विज्ञप्ति हुई है ।

---

* गी.5/43/4 2 वही.7/38/7 3 वही.5/51/4
4 वि.145/2 5 वही.137/3

पूर्व कालिक कृदंत :

उपर्युक्त क्रियाओं को बलिष्ठ बनाने के लिए पूर्वकालिक कृदंत, क्रिया विशेषण और कर्म के विशेषणों का प्रयोग किया गया । राजा बनाने की क्रिया के साथ दोनों कवियों ने पूर्व कालिक कृदंत का विस्तार किया है -

तुलसी	त्यागराजु
1) परम साधु जिय जानि *	1) शत्रु का भाई है, इस पर ध्यान न देकर [5]
2) तिलक सारि[2]	2) सुरमुनि जन शत्रु रावण का भाई है ऐसा न सोच कर[6]
3) अपनाय विभीषण[3]	3) भक्ति को पहचान कर[7]
4) अभय बाँट दे[4]	4) विभीषण के शरण में आते ही [8]

ऊपर की तुलनात्मक तालिका से यह स्पष्ट होता है कि त्यागराजु की रचना विभावना की पद्धति की है । अर्थात् शत्रु का भाई होते हुए भी उसको लंका का राज्य दिया । दूसरा कारण भक्ति का है और तीसरा शरणागति का । इनका तुलसी ने पूर्वकालिक कृदंत में कोई उल्लेख नहीं किया । सामान्य रूप से साधु विभीषण को अपनाने की बात कही गयी है ।

---

* गी.7/38/7 2 वही. 5/51/4 3 वही. 5/51/4
4 वही.5/51/4 5 वही. त्या.72/3 6 वही.455/3
7 वही. 72/3 8 वही.455/3

रक्षा करनेवाली क्रिया को स्फीत बनाने के लिए त्यागराजु ने लंका के राजा बनाने की क्रिया को पूर्वकालिक कृदंत बनाया है - लंका दान में देकर रक्षा की ॥ *

तुलसी की विशेष क्रिया √भेंटना है । इसके लिए तुलसी ने "बोलि",[2] "लंकेस-कहि",[3] "अंकभरि"[4] तथा "उठि"[5] पूर्वकालिक कृदंतों का प्रयोग किया है । विभीषण को राजा बनाने का अभिप्राय इसमें है ही, साथ ही विभीषण के प्रति भगवान का स्नेह भी प्रकट है । त्यागराजु ने स्नेह भाव पर अधिक बल नहीं दिया ।

क्रिया विशेषण :

त्यागराजु ने रक्षावाली क्रिया को स्फीत बनाने के लिए "कृपासे"[6] तथा "देवेंद्रादि की प्रशंसा के लिए"[7] जैसे क्रिया विशेषणों का प्रयोग करके रक्षण व्यापार को स्फीत बनाया है । व्यंजना यह है कि देवेंद्रादि भगवान के रक्षा-व्यापार का गुणगान करते हैं ।

तुलसीदास जी ने भेंटने की क्रिया को कई क्रिया विशेषणों से स्फीत बनाया - "सजल नैन(से)",[8] "सनेह(से)"[9], सिथिल सरीर सो" [10] तथा "भरत ज्यों"[11] । "भरत ज्यों" कहकर तुलसी ने विभीषण के प्रति राम के प्रेम की पराकाष्ठा को व्यंजित किया है ।

कर्म के विशेषण :

कर्म की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए कर्म विभीषण के लिए कुछ विशेषणों का प्रयोग किया गया है । त्यागराजु ने रक्षा क्रिया के संदर्भ में विभीषण के लिए "शरण में आये हुए" विशेषण पदबंध का प्रयोग किया है ।

---

* त्या.369/4 2 गी.5/43/4 3 वही.5/43/4 4 वही.5/43/4
5 वि. 145/2 6 त्या.369/4 7 वही.369/4 8 वि. 135/4
9 वही.135/4 10 वही.145/2 11 त्या.457/3

तुलसी ने भेंटने की क्रिया के संदर्भ में विभीषण के लिए दो विशेषणों का प्रयोग किया है - "प्रनत" तथा "बन्धु-भय-विकल" । *

इनसे स्पष्ट होता है कि त्यागराजु की कल्पना में राम का बिम्ब शरणागत रक्षित के रूप में उभरा और तुलसी की कल्पना में राम का स्नेही रूप विभीषण की पीडा और वेदना के संदर्भ में उभरा ।

राम की अवतार-लीला में सेतु-बंधन की क्रिया भी प्रमुख है । त्यागराजु ने केवल एक स्थान पर समुद्र को पार करने की क्रिया का प्रयोग किया है - √दाटु >/दाटेनु/ "पार किया" ।[2] इस क्रिया में वैशिष्ट्य लाने के लिए कारण रूप में सीता जी के प्रसंग पर आधारित क्रिया विशेषण का प्रयोग किया गया है - /नीर जाक्षिकै/ "नीर जाक्षी सीता जी के लिए"[3] । नीर जाक्षी नाम सौंदर्यमूलक है । त्यागराजु की कल्पना में सुंदर सीता बिंबित हो उठी है । उसकी दयनीय अवस्था का उल्लेख इसमें नहीं हुआ है ।

तुलसी ने समुद्र को पार करने को ही मुख्य नहीं माना, सेतु-बन्धन की प्रक्रिया को अधिक प्रमुखता दी है । पहले एक सामान्य रचना घटित हुई जो स्तोत्र की प्रकृति की है : "पाथोधिकृत-सेतु कौतुक हेतु" ।[4] आगे सेतु-बाँधने की क्रिया का विस्तार किया गया । इस विस्तार में समुद्र बाँधना पूर्वकालिक कृदंत बन गया - "सिंधु बाँधि",[5] अर्थात् यह मुख्य क्रिया नहीं रही । विस्तार की दूसरी दशा क्रिया विशेषण के रूप में सहायकों की सूची देकर प्रकट की गयी : "बानर-रीछ-सहाय, अनुज संग"।[6] इस सेतु-बाँधने की क्रिया का वैचित्र्य सामने आया । तुलसी की कल्पना में मुख्य काम में मुख्य क्रिया यश विस्तार की बन गयी: /जैस बिस्तर्यो/[7] "यश का विस्तार किया" ।

---

* बि. 145/2　2 त्या. 629/3　3 वही. 629/3
4 पि. 43/8　5 गी. 7/38/6　6 वही. 7/38/6
7 वही. 7/38/6

सेतु बंधन प्रसंग की क्रिया के संबंध में त्यागराजु और तुलसी की दृष्टि की भिन्नता इससे सिद्ध हो जाती है । त्यागराजु ने गिलहरी के संबंध में प्रचलित अनुश्रुति का उपयोग भी एक वैचित्र्य लाने और राम कृपा के विस्तार के लिए किया : गिलहरी की भक्ति को देखकर राम उल्लसित हुए थे । * इस सूत्र को तुलसी ने छोड दिया ।

लंका विजय के पश्चात् :

क्रिया-रचना का समापन लंका विजय के पश्चात् राम की राज-गद्दी के साथ होता है । दिव्ययुगल सीता-राम सिंहासन पर आसीन हुए : "सीय सहित आसीन सिंहासन" ।[2] इस रचना में क्रिया लुप्त है । त्यागराजु की दृष्टि में राजाराम का बिंब उभरा : "कुछ दिन अयोध्या का शासन किया" ।[3]

रामराज्य की विशेषताओं को शासित करने के लिए तुलसी ने कुछ और क्रियाओं का प्रयोग भी किया । पहली क्रिया सीता के निंदक रजक को भी नगर में बसाने की है ।[4] साथ ही राम स्वयं ही सुर-वंद्य नहीं हुए, अपितु अपने गौरव से उन्होंने समस्त अवध-वासियों को भी सुर, मुनि-वंद्य बना दिया ।[5] त्यागराजु ने इन सूत्रों को छोड दिया, किंतु सीता जी से संबंधित एक भावात्मक सूत्र जोडा । राम ने सीता जी के संदेश बतानेवाले हनुमान जी को ब्रह्मा का पद दिया[6] और सीता जी की बात को मानकर ही सभी भक्तों की रक्षा की ।[7]

---

* "उडुत भक्ति गनि उप्पतिल्लग लेदा" । - त्या.112/5

2 गी.6/23/3

3 "कोन्नाल्लु साकेत पुर मेल लेदा" । - त्या.64/2

4 "तिय निंदक मतिमंद प्रजारज, निज नय-नगर बसाई ।" - वि.165/4

5 "देव-मुनि-वंद्य किय अवध-वासी" । - वही.44/2

6 "सीता भाम माटलु देलपु भीमांजनेयु ब्रह्म चेसिनदेल्ल" । - त्या.199/5

7 "सति माट लना लकिचि सद्भक्त कोटुल संरक्षिंचग लेदा" । - वही.64/3

तुलसी ने रामावतार में उद्धृत जनों की सूचीमूलक संरचना का प्रयोग भी किया है । क्रिया के कर्म का विस्तार इस सूची से प्रकट होता है - सिला (अहल्या), गुह (निषाद), गीध (जटायु), कपि (सुग्रीव), भील, भालु, रातिचर (विभीषण), कोल शबरी ।* त्यागराजु में कर्मों की सूची की संरचना नहीं है ।

कृष्ण को कर्त्ता मानकर उनकी कुछ क्रियाओं का उल्लेख दोनों ही कवियों ने किया है । दोनों ही कवियों ने राम की अपेक्षा कृष्ण की क्रियाओं का विस्तार कम किया है । कृष्ण की क्रियाओं का क्षेत्र बाल्य काल से लेकर महाभारत तक है । बाल्यकाल का विस्तार यशोदा के संदर्भ में संपन्न हुई क्रियाओं से लेकर माखन चोरी तक है । माखन चोरी से लेकर रास तक किशोर कृष्ण की क्रियायें हैं । कुछ क्रियायें ब्रज की रक्षा से संबंधित हैं । यशोदा के घर में कृष्ण ने जो क्रियायें की उनका दोनों ही कवियों ने उल्लेख नहीं किया, किंतु तुलसी ने कृष्ण के प्रति यशोदा के द्वारा समझाने की क्रिया का उल्लेख किया है । यशोदा कृष्ण से कहती है - "अजहुँ न तजत पयोधर पीबो" ।[2] यशोदा की किसी क्रिया का उल्लेख त्यागराजु ने नहीं किया है । माखन-चोरी से दोनों कवियों की क्रिया रचना आरंभ हो जाती है ।

माखन चोरी के प्रसंग की क्रिया रचना दोनों कवियों में भिन्न है । तुलसीदास ने कृष्ण की क्रियाओं की व्यक्त संरचना न करके गोपियों की क्रिया के द्वारा कृष्ण की क्रियाओं की ओर संकेत किया है । तुलसी की गोपियाँ उलाहना देने की क्रिया करती हैं ।[3] त्यागराजु ने उलाहने की क्रिया ~~कह~~ की रचना के द्वारा कृष्ण की चोरी की ओर संकेत नहीं किया है । उन्होंने कृष्ण की क्रियाओं का व्यक्त उल्लेख किया है । त्यागराजु ने चोरी की क्रियाओं का उल्लेख न करके मक्खन खाने का उल्लेख किया है । मक्खन खाने की

---

* वि. 248/4; 135/4; 257/2; 191/6; 144/4

2 कृ.गी.9/3

3 "देन उरहनो आवहिं" - कृ.गी.4/2

क्रिया को भी पूर्वकालिक कृदंत में रखकर मुख्य क्रिया गोपी के प्रति करायी गयी है -

मुख्य क्रिया	कर्म	क्रिया विशेषण	पूर्वकालिक कृदंत
मल देते हैं *	मक्खन	गोप कन्या के मुखपर	स्वयं खाकर
शोभित होते हैं [2]	-	नादान जैसे	मक्खन, दही आदि का बहुत चाव से ग्वाल बालकों को भरपेट खिलाकर ।

तुलसी ने इस प्रकार की क्रियाओं को "श्रृंगारोन्मुख नहीं किया । सम्भवत: उनकी मर्यादा दृष्टि इस प्रक्रिया को वर्जित करती है । तुलनात्मक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि तुलसी की अपेक्षा माखन चोरी के प्रसंग की क्रियाओं की रचना त्यागराजु ने ही अधिक की है ।

त्यागराजु में एक क्रिया की रचना तुलनात्मक होने से चमत्कारी हो गयी :-

कर्त्ता [कूर्म - क्रि.वि. समुद्र मथन के समय देवताओं के लिए; कृष्ण - गोपिकाओं के लिए] → कर्म [पर्वत को → उठाया] क्रि.[3]

---

* "वेन्नता भुजिंचि गोपकन्य मुखमुन तिन्नगा नलिदि नट्टु" - त्या.462/4

2 "वेन्नमीगडलनु वेड्क मीरगनु
कन्न पिन्न वाड्ल कडुपु निंचि
तिन्नगा वेलयु दिव्यरूपमा" - वही.357/3

3 "कलशाबुधिलो दयतो नम
रुलकै यदि कावक गोपि
कलकै कोंड लेत्त लेदा" - त्या.370/3

अर्थात् एक ही क्रिया और एक ही कर्म के दो कर्त्ताओं और दो क्रिया विशेषणों का प्रयोग किया गया है । तुलसी ने इस प्रकार की चमत्कारकारी रचना का प्रयोग नहीं किया है ।

त्यागराजु ने चीर हरण और रास संदर्भीय क्रिया व्यापार का उल्लेख किया है जबकि तुलसी ने इन दोनों संदर्भीय क्रियाओं को छोड दिया है । त्यागराजु की क्रिया रचना इस प्रकार है :-

क्रिया	कर्म	क्रिया विशेषण	पूर्वकालिक कृदंत
सताया	गोपियों को	जन स्नान करते समय	वस्त्र छिपाकर
पालन करते है [2]	16 हजार गोपियों को	वेणुगान के द्वारा	आकृष्ट करके
देखते है [3]	कुछ गोपियों के सौंदर्य	आँखों भर (एक टक)	-
छिड़कते है [4]	सुगंधित जल	कुछ गोपिकाओं के स्तनों पर	-
लगाते है [5]	कस्तूरी तिलक	कुछ गोपिकाओं के माथे पर	-
गूँथते है [6]	वेणी	-	कुछ गोपिकाओं के पीछे खड़े होकर

* "जलक माडु वेल वलुवलु दाचि मम्मलथिपग लेदा" - त्या. 100/2

2 "वेणुगानमुचे बदियारू वेल गोपिकल पालिंचिएले" - वही. 357/2

3 "कोंदरि सोगसुनु गनुलार जूड" - वही. 212/3

4 "कोंदरि पालिंड्ल बन्नीरु जिलक" - वही. 212/5

5 "कोंदरि नुदुट कस्तूरि बोट्टु बेट्ट" - वही. 212/5

6 "कोंदरि तलकु चेक्कुल मुद्दु बेट्ट" - वही. 212/4

करते हैं *	चुंबन	कुछ गोपिकाओं के चिकने कपोलोंपर	-
दबाते हैं 2	कुछ गोपिकाओं के शरीर को	हाथों से	-
करते हैं 3	शयन	कुछ गोपिकाओं के गोद में	-
बोलते हैं 4	-	-	कुछ गोपिकाओं के मन पहचान कर
नाचते हैं 5	-	-	जितनी गोपिकायें है उतने रूप धारण करके ।

इससे स्पष्ट होता है कि त्यागराजु ने कृष्ण की रासकालीन क्रियाओं की आवृत्ति और उनके विस्तार में पर्याप्त रुचि ली है ।

ब्रज कृष्ण की क्रियाओं की रचना वर्तमान-कालिक रूप में करके त्यागराजु जब महाभारत की ओर बढ़ते है तो क्रिया रचना भूतकालिक हो जाती है । अर्थात् प्रबंधात्मक अतीत प्रगीतात्मक वर्तमान के पश्चात् घटित

---

* कोंदरि बुद्दु कस्नू तलुकु चेक्कुल मुद्दु बेट्ट : त्या.212/5
2 कोंदरि तनुवुल करतलील सेय : वही 212/4
3 कोंदरि यंकमुन बव्वलिप : वही 212/4
4 कोंदरि मनसु देलिसि माटलाड : वही 212/3
5 अंदरि कन्नि रूपमुलेत्ति याडगा : वही 212/2

होता है । त्यागराजु ने द्रौपदी की लाज बचाने की क्रिया का उल्लेख किया है -

क्रिया	पहला कर्म	दूसरा कर्म	पूर्वकालिक कृदंत
प्रदान किया *	वस्त्र	नारी मणि ﴾ द्रौपदी ﴿ को	-
रक्षा की[2]	-	-	असीम वस्त्र देकर

तुलसी ने इस संदर्भ की क्रिया को छोड ही दिया है ।

4.2 प्रश्नवाचक संरचना :

प्रश्न वाचक संरचना दो प्रकार की होती है : ﴾1﴿ जिसमें प्रश्नकर्त्ता की यथार्थ जिज्ञासा प्रश्न बनी हो, अर्थात् अज्ञान जन्य प्रश्न तथा ﴾2﴿ वह प्रश्न रचना जो ज्ञान जन्य है और जिसका उद्देश्य जिज्ञासा की शान्ति नहीं, अपितु कथ्य को बलिष्ट बनाना है । ये प्रश्न कभी कर्त्ता के संबंध में होते हैं और कभी कर्म के संबंध में, यद्यपि इन दोनों को ~~हह~~ ही कवि जानता है । अन्य प्रकार के प्रश्न स्थान या समय सूचक हो सकते हैं ।

4.2.1 प्रश्न वाचक सर्वनाम पर आधारित :

4.2.11 कर्त्ता की रचना :

तुलसी ने /कौन/, /को/ "कौन", /कवन/ "कौन", /केहि/ "किसने" जैसे प्रश्नवाचक सर्वनामों का प्रयोग करके रचना की है । त्यागराजु ने /एव्वरु/ "कौन" का प्रयोग किया है । इन प्रश्नवाचक सर्वनामों का

---

* "नारीमणिकि जीर लिच्चिनदि नाडे विन्नाकु" - त्या. 629/3

2 "कोकलु लोकुवगा निच्चि गाचिनदि" - वही. 16/5

व्यंजनार्थ यह है - "आपको छोड़कर दूसरा कौन", अर्थात् जो कार्य आपने किया वह सामान्य रूप से कोई नहीं कर सकता । यह कार्य या तो कठिन बतलाया गया है अथवा व्यावहारिक रूप से असंभव । विरोधाभास का प्रयोग करके भी कर्त्ता की प्रश्नवाचक रचना को तुलसी ने विशिष्ट बनाया है । ऐसा कौन प्रभु है जिसकी रीति "पुनीत" को छोड़कर "पामरों" के साथ प्रेम करने की हो । *

"कौन" सर्वनाम के साथ देव वाची संज्ञा का प्रयोग करके राम के प्रति अनन्य भाव रखने की प्रेरणा भी दी गई है । भाव यह है कि राम जैसा देवता कोई नहीं है । शब्द रचना इस प्रकार है : "कौनसुर",[2] "कवन प्रभु",[3] "को साहिब",[4] "कौन देव" ।[5]

कर्त्ता को विशेषणों से युक्त करके प्राय: रचना को विशिष्ट नहीं बनाया गया है । क्योंकि उसको आवश्यक बल प्रश्न वाचक रचना से प्राप्त हो जाता है । फिर भी कुछ विशेषणों का प्रयोग तुलसी ने कर दिया है । जैसे - "कृपालु",[6] "दयालु",[7] "कृपानिधि"[8] ।

4.2.12 कर्म की रचना :

कर्म रूप में प्राय: अधम, नीच, पतित आदि पात्रों का उल्लेख है । सामान्य लौकिक नियम यह है कि अधम पात्रों के साथ अधम जैसा ही व्यवहार किया जाता है । किंतु प्रस्तुत रचना में व्यंग्यार्थ कर्म के उल्लेख में सन्निहित है : ऐसे नीच, पतित, अधम पात्रों के साथ ऐसा सद्व्यवहार सामान्य रूप से संभव नहीं होता । इनके प्रति राम का जो व्यवहार है वह

---

* ऐसी कवन प्रभु की रीति ।
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ।। - वि.214/1

2 गी.5/46/2 3 वि.214/1 4 वही.154/2

5 गी.5/46/3; 101/2 6 वि.230/2

7 गी.5/38/5; वि.215/3 8 वि.219/4

असामान्य या अलौकिक है । तुलसी के कर्म की सूची इस प्रकार है : "पत्थर",* "कृषि",[2] "भालु",[3] "कुटिल",[4] "पामर",[5] "गीध",[6] "शबरी"[7] "निसिचर"[8], "भील",[9] "अजामिल",[10] "सुरपति",[11] "बधिक" [12] "गज",[13] "खल",[14] "विटप" [15] । इन सब पर कृपा करनेवाला कौन है?

कर्म की दूसरी श्रेणी में "दीन"[16] और "दरिद्र"[17] आते हैं । इसमें ध्वनि यह है कि आज के युग में दीन-गरीब की पुकार कोईनहीं सुनता, केवल राम ही दीनबंधु हैं ।

तीसरी श्रेणी में ऐसे कर्म आते हैं जो प्रकृतित: अधम नहीं है, किंतु जिन्होंने भ्रमवश राम का विरोध किया : जैसे भृगुनाथ"परशुराम" ।[18]

सामान्य रूप से भी बलवर्द्धक प्रश्न रचना मिलती है जिसमें सुर आदि हैं ।[19] इसके द्वारा क्रिया बलिष्ट नहीं होती- बल्कि कर्त्ता की अनन्यता ही सिद्ध होती है । अर्थ होता है "राम के अतिरिक्त किसी ने देवों का उद्धार किया या राम ने ही देवों का उद्धार किया ।"

---

* वि०. 181/2
2 गी०5/46/3
3 वि०230/2
4 वही०230/2
5 वही० 214/1
6 गी०5/46/2
7 वही० 5/46/3
8 वि०154/2
9 वही० 154/2
10 वही०239/5
11 वही० 239/5
12 वही० 101/2
13 वही० 236/3
14 वही० 236/3
15 वही० 101/2
16 गी०5/38/5
17 वि० 219/4
18 वही० 180/4
19 "कवन सुर तारे?" - वि० 101/2

त्यागराजु ने कर्म की सूची का इस रचना में विस्तार नहीं किया है। केवल एक स्थान पर सुग्रीव को कर्म के रूप में रखकर यह रचना की गयी : "बालि को एक ही बाण से मारकर, सुग्रीव को राजा बनाकर रक्षा करनेवाला कौन है?" *

दूसरी श्रेणी का कर्म त्यागराजु में अत्यंत शक्तिशाली असुर है। इतने शक्तिशाली असुर को मारनेवाला राम के अतिरिक्त कौन हो सकता है? यहाँ खल मारीचादि का नाम आया है।[2]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि तुलसी और त्यागराजु के कर्म की रचना में प्रवृत्तिगत समानता है। कर्म का विस्तार तुलसी में अधिक है।

गीतिकाव्य की रचना आत्मोन्मुख होती है। दोनों कवि गीतकार के रूप में अन्य कर्मों की गणना करने के पश्चात् कर्म के स्थान पर अपने को रख देते हैं और त्यागराजु यह प्रश्न कर उठते हैं कि हे राम। तुम्हारे बिना मेरी रक्षा कौन करेगा?[3] त्यागराजु ने यह भी स्पष्ट किया है कि काम क्रोधादि छः मनोविकार रूपी शत्रुओं से मेरी रक्षा कौन कर सकता है?[4] तुलसी ने भी संरचना यही रखी है, किंतु अपने को कर्म के रूप में रखकर "कुसेवक"[5] और "स्वामीद्रोही"[6] जैसे विशेषणों का प्रयोग भी किया है जिससे प्रश्न और भी अधिक बल के साथ व्यंग्यार्थ को ध्वनित कर देता है।

---

* "वालिनोक्क कोल नेसि रवि बालुनि
राजुग गाविंचि जूचि ब्रोचे वारेवरे?" - त्या.369/6

2 "मुनि सवबु जूड वेंट जनि खल
मारीचादुल हतबु जेसि ब्रोचे वारेवरे?" - वही. 369/5

3 "रामा नीवेगानि नन्नु रक्षिंचे वारेवरे?" - त्या.466/1

4 "आरु रिपुल पोरु तीर्चुवारु येवरुन्नारु?" - वही. 566/6

5 वि. 230/3

6 वही.230/3

तुलसी ने कर्म को भी प्रश्न की रचना में लाकर बलिष्ठ बनाया है । जैसे : रामने किस को गति (मुक्ति) नहीं दी?* राम ने किस को अयाची नहीं किया?[2] राम ने किसको अभय नहीं किया?[3] राम ने किसके लिए परवाने नहीं लिखे?[34]

प्रश्नवाचक रचना के द्वारा तुलसी ने पात्र की पात्रता या अपात्रता की ओर भी संकेत किया है । गिद्ध कौन ऐसा दयालु था और विधाता ने उसको हिंसक प्रकृति का भी बनाया था?[5] विभीषण ने कौन-सा ऐसा भजन किया था कि उसे आपने लंका का साम्राज्य दिया था?[6] प्रश्न की आश्चर्यमूलक रचना भी तुलसी ने की है - कौन-सी सेवा से रीझकर भ्राता-द्रोही सुग्रीव और विभीषण को आपने भरत के समान माना?[7] कर्म की क्रिया के द्वारा भी उसकी अपात्रता को सिद्ध किया गया है - अजामिल और जयंत से क्या नहीं बिगाडा गया?[8]

इस प्रकार अनेक रचना प्रविधियों से तुलसीदास जी ने कर्म की रचना को विशेष सार्थक और शक्तिशाली बनाया है ।

---

* "तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी खन?" - वही. 212/3

2 "को नहिं कियो अजाची?" - वि.163/4

3 "को न अभय कियो नृग-उद्धरन?" - वही. 213/4

4 "नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चोठे?" - वही. 169/3

5 "गीध कौन दयालु, जो बिधि रच्यो हिंसा सानि?" - वही. 215/3

6 "भजन बिभीषण को कहा, फल कहा दियो रघुराज? " - वही. 193/6

7 ""बंधु-बैर कपि-बिभीषन गुरु गलानि म गरत ।
सेवा केहि रीझि राम, किये सरिस भरत ।।" - वही. 134/5

8 बिप्र अजामिल अरु सुरपति तें कहा जो नहिं बिगर्यो" - वही. 239/5

तुलसी ने अधमता मूलक विशेषणों का प्रयोग करके भी कर्म की रचना को विशिष्ट बनाया है । जैसे :-

विशेषण	विशेष्य
कुटिल	कोल *
अधम	गीध [2]
जड़	विटप [3]
पाप मूल	अजामिल [4]

किंतु तुलसी की दृष्टि कर्त्ता के विशदीकरण पर अधिक है, और कर्म का विशदीकरण भी कर्त्ता की प्रगलभता को प्रकट करने के लिए किया गया है ।

4.2.13 क्रिया की रचना :

वह क्रिया उदात्त या उदार है जो प्राय: उचित पात्रों के साथ की जाती है, किंतु राम ने यही क्रिया अधमों के प्रति भी की । इस प्रकार कर्त्ता, कर्म और क्रिया तीनों की रचना से एक विशेषणार्थ व्यंजित होता है ।

दूसरा अर्थ क्रिया से यह भी व्यक्त होता है कि क्रिया इतना कठिन है कि सामान्य जन उसको नहीं कर सकता, राम ही उसको कर सके । किंतु इस प्रकार की क्रिया की आवृत्ति बहुत कम है । केवल त्यागराजु ने बालि, मारीचादि असुरों को मारने का उल्लेख इस अर्थ में किया है ।[5]

तुलसी के द्वारा प्रयुक्त क्रिया-सूची इस प्रकार है : तारना;[6] (गति) देना ;[7] पालना ;[8] (प्रीति) करना ;[9] (श्राद्ध) करना (गीध संदर्भ);[10]

---

* वि. 230/2   2 गी.5/46/2   3 वि. 101/2   4 वही. 217/2

5 त्या.369/5,6   6 गी.5/46/2   7 वि. 181/2   8 वही. 238/2

9 वही. 214/1   10 वही. 180/6

§मित्रता§ करना ;* §सहायता§ करना तथा §संताप§ हरना ;[2] §समाधान और सम्मान§ करना §अहल्या संदर्भ§;[3] §पिंड§ देना §गीध संदर्भ§;[4] §भोजन§ करना §शबरी संदर्भ§;[5] §पेट में§ समाना = "शरण में लेना" ;[6] §उद्धार§ करना ;[7] §बाँह§ लेना = "बचा लेना" ;[8] §अपना धाम§ देना ;[9] §दारिद्र§ दलना ;[10] §जलन§ हई = "नष्ट करना" ।[11]

इस सूची को देखने से यह ज्ञात होता है कि या तो सामान्य रूप से उदात्त क्रिया का प्रयोग किया गया है, जैसे : तारना, उद्धारना आदि अथवा क्रिया के साथ कर्म का संयोग करके क्रिया को विशिष्ट बनाया गया है ।[12]

सामान्य रूप से क्रिया की रचना को क्रिया विशेषण की रचना से विशिष्ट नहीं बनाया गया है । फिर भी एकाध स्थल पर क्रिया-विशेषण की मार्मिक रचना की गयी है, जैसे : दीन के दुःख को सुनकर आप वैकुंठ धाम छोडकर दौड पडते हैं ।[13]

त्यागराजु ने केवल √ब्रोचु-, √रक्षिंचु-, √काचु- §जिनका अर्थ रक्षा करना है§ क्रियाओं का प्रयोग किया है । इस रचना में तुलसी के द्वारा प्रयुक्त क्रियायें त्यागराजु से अधिक वैविध्य रखती हैं ।

---

* वि. 154/2 | 2 वही. 239/5

3 वि. 180/4 | 4 गी.5/45/2

5 वही. 5/46/3 | 6 वि.236/3

7 वही. 101/2 | 8 ~~वि.~~ गी.5/46/3

9 वि. 217/2 | 10 वि. 219/4

11 गी.5/38/5

12 ऊपर की सूची में ऐसे कर्म को कोष्ठक में लिख दिया गया है ।

13 "जेहि करुना सुनि स्रवन दीन-दुःख, धावत हो तजि धाम ।"
— वि.93/1

4.2.2 अन्य प्रश्नवाचक रचना :

तुलसीदास जी ने केवल प्रश्नवाचक सर्वनाम के आधार पर रचना प्रस्तुत की है, किंतु त्यागराजु ने अन्य प्रकार की प्रश्न रचना के आधार पर भी अपनी भक्ति-भावना निवेदित की है, जो तुलसी में नहीं मिलती । नीचे कर्त्ता की विशिष्ट प्रश्न वाचक रचना पर विचार किया जा रहा है ।

4.2.21 निषेधात्मक रचना :

इस रचना का मूल आधार है - /लेदा/ "नहीं" क्या"? इसका उत्तर व्यंजित होता रहता है - "आप ने ऐसा ही किया है" ।

/...................... नहीं .... क्या? ।

गजराज का	-		रक्षा की *	-
ध्रुवके लिए	-		गये[2]	-
ब्रह्मा के भय का	-		{निवारण} किया[3]	-
सोमकासुर को मारकर वेद	-		लाये [4]	-
मंदर को	-		धारण किया[5]	-
प्रह्लाद के लिए खंभे में	-		रहे [6]	-
सुग्रीव के संताप को मिटाने के लिए	-	1	{अवतार} लिया [7]	-
"	-	2	{बल प्रदर्शन} किया[8]	-
"	-	3	{चरण भक्ति} दी[9]	-

---

* "ब्रोवग लेदा" - त्या.48/5   2 "चन लेदा" - प्रभवि. पृ. 17

3 "तीर्पग लेदा" - त्या.48/6   4 "तेलेदा" - वही. 102/4

5 "तालचगलेदा" - वही. 102/2   6 "उडग लेदा" - वही. 115/4

7 "वेलसि निलवग लेदा" - वही. 37/3

8 "बलमु जूप लेदा" - वही. 37/3

9 "पदमुल भक्तीपग लेदा - वही. 37/3

सुग्रीव को प्रेम से पालन
करने के लिए - 4 (ताड पेड के आड में)
खड़े हुए * -

पुत्रों का	-	(पालन) किया[2] -
भक्त कोटि का	-	रक्षा की [3] -
माता के गोद में	-	रहा[4] -
कालिय सर्प के मद को	-	(कुचल) डाला[5] -
गोपिकाओं के लिए	-	(पहाड) उठाया[6] -
गुरु पुत्र को	-	ला दिया[7] -
वेणु गान	-	किया [8] -
अर्जुन का	-	(पालन) किया[9] -

इस निषेधात्मक प्रश्न वाचक रचना क्रिया के साथ पूर्वकालिक कृदंत या क्रिया विशेषण की रचना विशेष रूप से प्रयुक्त की गयी । प्रमुख पूर्वकालिक कृदंत ये हैं -

शीघ्र ही आकर (गज संदर्भ);[10] सोमकासुर को मार कर;[11] कूर्म बनकर ;[12] दोषों को सहकर (सुग्रीव संदर्भ) ;[13] वालि के द्वारा सुग्रीव को पिटते हुए देखकर;[14] पुत्रों का जन्म देकर (लव कुश संदर्भ);[15]

---

* "ताल तरुवु मरुगुन निल्वगलेदा" - वही. 115/5

2 "पेंच लेदा" - त्या.225/4 3 "संरक्षिंपण लेदा" - वही. 64/3

4 "उंड लेदा" - वही. 100/6 5 "कालनणच लेदा" - वही. 102/5

6 "येत्तलेदा" - वही. 370/3 7 "ओराग लेदा" - वही. 102/6

8 "ओनर्प लेदा" - वही. 100/6 9 "पालन चेय लेदा" - वही. 365/3

10 "वेगमेवच्चि" - वही. 48/5 11 "सोमकुनि गोट्टि"- वही. 102/2

12 "कूर्मै" - वही. 102/2 13 "नेरमुलनु दालुकोनि" - वही. 37/3

14 "रविजुनि चालगोट्टुट जूचि" - त्या.115/5

15 "तनपुलनु गनि" - वही. 255/4

सति की बातों को सुनकर (सीता संदर्भ);* नर को देखकर (अर्जुन संदर्भ);[2] "पाप फल तुझे नहीं लगेगा" ऐसा कहकर (अर्जुन संदर्भ) ।[3] प्रमुख क्रिया विशेषण ये हैं :-

बली मगर से (लड़कर) थकने पर (गजराज संदर्भ);[3] निगमागम के राक्षस के द्वारा चुराये गये जाने पर (मत्स्यावतार संदर्भ);[4] मंदर गिरि डूबने पर (कूर्मावतार संदर्भ);[5] ब्रह्मा के द्वारा "तारकनाम" कहकर स्तुति किये जाने पर (मत्स्यावतार संदर्भ);[6] "आदिमूल" कहकर पुकारने पर (गजराज संदर्भ);[7] कनक कश्यप अपने पुत्र को समस्त बाधायें पहुँचाने पर;[8] सुग्रीव के दुःख को मिटाने के लिए ;[9] (सुग्रीव की व्यथा को) मन में न सह सकने के कारण ;[10] प्रेम से उसका (सुग्रीव का) उद्धार करने के हेतु;[11] उलाहना दिये जाने पर (गोपी संदर्भ);[12] गोपिकाओं के लिए;[13] मगर के ले जाने पर (गुरु पुत्र आनयन संदर्भ);[14] यज्ञ पत्नियाँ प्रार्थना करने पर (कृष्ण संदर्भ) ।[15]

ऊपर की संरचना को देखकर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह क्रिया संरचना अधिक चमत्कार मूलक, अधिक जटिल है जिसका तुलसी में अभाव है ।

---

* "सतिमाटलना लकिंचि" - वही. 64/3

2 "नरुनि जूचि" - वही. 365/3

3 "पाप फलमु नीकु तलकु लेदनि" - वही. 365/3

4 "बलुडैन मकरिचेत गासि जेंदगा" - वही. 48/5

5 "आगम वेदमुलनु दानवुडु गोंपोवगा" - वही. 48/6

6 "~~?~~ मंदर गिरि मुनुग" - वही. 102/2

7 "चतुराननुडु तारकनाम यनि बागुगा नुतिप" - वही. 48/6

8 "आदिमूलमनग" - वही. 48/5

9 "कनक कशिपु सुतुनि सकल बाधल बेट्टगा" - वही. 115/4

10 "तरणि सुतार्ति निदोर्पुनु" - त्या. 37/3   11 "मन सुन ताल जाल लेक" - वही. 115/5

12 "प्रेममुन पालन सेय" - वही. 37/3   13 "चाडि चेप्प बोते" - वही. 100/6

14 "गोपिकलकै" - वही. 370/3   15 "यज्ञपलुलु वेडगा" वही. 100/5

4.2.22 वक्र क्रिया रचना :

त्यागराजु ने वक्रोक्तिमूलक या वक्र अर्थ देनेवाली क्रिया रचना भी की है । यह भी चमत्कारमूलक है । एक रचना प्रहेलिका मूलक हो सकती है । कवि ने एक पहेली पूछी : "गजराज की आर्त पुकार सुनकर तुरंत जाने का क्या कारण है? * जिसका उत्तर होगा - "कृपा" । दूसरी वक्रता भगवान के किसी कार्य के संबंध में निजी कल्पना करने से उत्पन्न होती है । यह संरचना विभावना मूलक कही जा सकती है । नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

कार्य	कल्पित कारण
1 बलि से याचना करने गये	भक्त लोग वर माँगने आयेंगे, उनको यह दिखलाने के लिए कि मैं स्वयं याचना करता हूँ ।[2]
2 राम वानरों के पास गये	1 इस भय से कि बहुत से भक्त तुम्हारी शरण में आयेंगे । 2 उनको यह दिखलाने के लिए कि मैं स्वयं वानरों से सहायता ले रहा हूँ । (मैं तुम्हारी क्या रक्षा कर पाऊँगा ।)[3]
3 पहाड पर चले गये	इसलिए कि भक्त लोग आकर घेर लेंगे ।[4]

* "करि मोर विनि सरगुन चन नीकु गारण मेमि?" - त्या.396/2

2 "काचिन भक्तुल जूचि या बलिने याचिंचि वेडलिनिवो?" - वही.597/4

3 "आसमिंचि निन्नाशु जेरेरनि कोशुल जेरितिवो?" - वही. 597/5

4 "निरूपेद भक्तुल करिकोत बङलेक गिरिपै नेक्कुकोटिवो?" - वही. 597/2

4. गोपियों के वस्त्र चुराये	क्योंकि सुदामा को देना चाहते थे ।*

इस प्रकार की वक्र रचना में हास्य और व्यंग्य का सरस समायोजन हो जाता है । इसमें भगवान के दो कार्य संदर्भों का उल्लेख भी हो जाता है । तुलसी में इस रचना का अभाव है ।

4.2.23 आत्मोन्मुख रचना :

गीति-काव्य की प्रकृति अंतर्मुख होती है । इसलिए तुलसी और त्यागराजु की अधिकांश रचनाएँ अंतत: आत्मोन्मुख हो जाती हैं । प्रश्न वाचक रचना भी भक्त कवि के अंतर्मन से जुड़ जाती है । बड़ी करूणा के साथ भक्त कहता है कि आपने भक्तों के संताप को देखकर आश्वासन के वचन कहे थे, क्या आप उसे भूल गये?[2] हे राम । कृपा तो आप का प्रमुख गुण है, उसको मेरे सामने छुपा क्यों रहे हैं?[3] आप भक्तों की पुकार सुनकर पैदल भागे आये थे, क्या आप मेरे पालन करने पैदल आये?[4] अब मैं आप से साफ-साफ पूछता हूँ कि आप मेरी रक्षा करेंगे या नहीं?[5]

तुलसी ने भी ऐसा ही प्रश्न राम से किया : आप अपनी वह कृपा और करूणा कहाँ भूल गये जिसके कारण दीनों की टेर सुनकर दौडे आते थे?[6]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अंतत: दोनों ही कवियों की प्रश्न वाचक संरचना आत्मोन्मुख हो जाती है । सामान्यत: एक भाव भूमि पर स्थित होकर दोनों कवि प्रश्न वाचक रचना में प्रवृत्त होते हैं ।

---

* "जालि तो वच्चु कुचेलुनि गनि गोपी चेलमु लेत्तितिवो" - त्या.597/6

2 "परितापमुगनि याडिन माटल मरचितिवो" - त्या. की 338/1

3 "दाचुको वलेना दाशरथी नी दया" - वही. 235/1

4 "ननु बालिप नडचि वच्चितिवो" - वही.256/1

5 "राम नी वादुकोंदुवो कोनवो" - वही. 471/1

6 "पाहन, कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ।
जेहि करूना सुनि स्रवन दीन-दुख, धावत हौ तजिधाम ।।" - वि.93/1

अंतर केवल इतना है कि त्यागराजु के एकाध कीर्तन में वक्र रचना भी मिलती है जिसका तुलसी में अभाव है । एक ओर वक्रता उक्ति चमत्कार से जुडी हुई है और दूसरी ओर साधक और साध्य की भावात्मक सनीपता से ।

4.3. एक से अधिक वाक्यों की रचना : मिश्र वाक्य की रचना

4.3.1 क्रिया विशेषण मूलक रचना :

4.3.11 # जब —। तब —— ॥ #
∅ — । ∅ —— ॥

इस वाक्य रचना में दो काल खंडों का पौर्वापर्य ध्वनित होता है । पहले काल खंड में उद्धार के पूर्व की स्थिति और दूसरे काल खंड में उद्धार व्यापार का समावेश होता है । पहला काल खंड /जब/ से द्योतित होता है, दूसरा /तब/ से । कभी-कभी ये दोनों क्रिया विशेषक शब्द प्रकट रहते है और कभी लुप्त भी रहते हैं । कभी दोनों में से एक लुप्त, एक उपस्थित रहता है । किंतु वाक्य की संरचना में कोई अन्तर नहीं पडता । उदाहरण के लिए तुलसी का गजेन्द्र मोक्ष रचना क्रम लिया जा सकता है -

—————— । गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह ।।
—————— । प्रभु हर्‌यो दुसह उरदाह ।। *

ये दोनों वाक्य अपने आप में पूर्ण हैं । इन दोनों वाक्यों के आरंभ में कुछ ऐसे पदबंध है जो उद्धार की क्रिया को विशिष्ट बनाते हैं । पहले वाक्य का आरंभ गज के लिए प्रयुक्त विशेषण पदबंध से होता है : /पसु पामर अभिमान सिंधु/[2] इस पदबंध से उद्धृत गज की अपात्रता घोषित

---

* वि. 144/3   2 वि. 144/3

की गई है । दूसरे वाक्य का आरंभ क्रिया विशेषक पदबंध से होता है जो भगवान के आने की क्रिया को विशिष्ट बनाता है : /सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु/ * "स्मरण करते ही भगवान पेदल आये" । अर्थात् अपात्र के स्मरण करने पर भी भगवान अपने को नहीं रोक पाये । इस पदबंध के द्वारा जहाँ उद्धार के लिए आने की क्रिया की उतावली प्रकट होती है वहाँ दूसरी ओर स्मरण के महत्त्व की व्यंजना भी होती है : /सुमिरत/ । जिस दु:ख को भगवान ने दूर किया, उसके लिए /दुसह/ विशेषण का प्रयोग भी वैशिष्ट्य के लिए है । इस प्रकार इन तीन वाक्यों की रचना में त्रिसूत्री प्रसंग आया है :

(1) वास्तविक घटना

(2) आर्त की आकस्मिक भक्ति और

(3) उद्धार व्यापार । इस प्रकार उपर्युक्त मिश्र वाक्य की रचना एक पूरे वक्तव्य की रचना बन जाती है ।

सूत्रीय संदर्भ में कई रचना प्रविधियों के द्वारा वैशिष्ट्य उत्पन्न किया जाता है । एक और उदाहरण में भक्ति का अभिप्राय यह आया है : /चरण चित दीन्हों/[2] "चरणों में मन लगाया" । किंतु इस अभिप्राय से पूर्व यह बतलाया गया कि यह भक्ति का अभिप्राय विवशता में घटित हुआ । पहले आर्त ने अपना सारा बल लगाकर अपनी रक्षा करनी चाही, किंतु हार गया : /नागराज निजबल बिचारि लिय, हारि/[3] यानी हारकर भगवान का स्मरण किया । इस विवशता भक्ति को देखकर भी । आरत गिरा सुनत/,[4] भगवान गरुड को छोड कर अविलंब उद्धार के लिए चल दिये: /खगपति तजि चलत विलंब न कीन्हों/। [5]

इस दूसरी रचना में वास्तविक घटना व्यंग्य है और विवशता जन्य भक्ति तथा उद्धार की क्रिया को विशद बनाया गया है ।

---

* वि.144/3 2 वि. 93/2 3 वही. 4 वही.
5 वि. 93/2

उपर्युक्त संरचना में और भी आवृत्तियाँ हैं ।* इसमें सभी अभिप्राय हैं, किंतु वास्तविक घटना को व्यंग्य ही रखा गया है । विशेषता यह है कि भगवान की पूजा के लिए कमल लेकर गज "शरण" में गया : /कमल गहि गयो सरन/ । त्यागराजु ने उपर्युक्त रचना में गज संदर्भ को नहीं बाँधा ।

इसी त्रिसूत्रीय अभिप्राय योजना को उपर्युक्त रचना में रखकर द्रौपदी संदर्भ को भी स्पष्ट किया गया है :[2]

घटना ÷ /द्रुपद सुता को लग्यो दुसासन नगन करन/

भक्ति सूत्र = /हा हरि पाहि 2 कहत /

उद्धार व्यापार = /पूरे पट विविध बरन/

इन दोनों प्रसंगों में पूर्व कालिक कृदंत /सुमिरत/ और /कहत/ हैं । इस रचना तंतु का विशेषार्थ त्वरा की व्यंजना है - "स्मरण करते ही" तथा "कहते ही" ।

त्यागराजु ने भी इस संरचना में द्रौपदी संदर्भ को रखा है । अभिप्रायों की रचना इस प्रकार है :-[3]

घटना = /गति लेनि वेल/ "असहाय स्थिति में"

भक्ति सूत्र = /वेगमे कृष्णायन/ "तुरंत हे कृष्णा कह कर पुकारने पर"

उद्धार व्यापार = /अति प्रेम तो वेंचेसितिवि/ "अति प्रेम से आये थे" ।

---

* गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो सरन ।
दीन बचन सुनि चले गरुड तजि सुनभि-धरन ।। - वही•213/2

2 वही• 213/3 3 त्या• 457/4

इसी रचना में द्रौपदी के संकट को त्यागराजु ने बांधा है :- *

घटना := /तपोधनुडु विनयमुनन्नु द्रौपदिनि शोधनमु धनमुग निजमुन सेय/

भक्ति सूत्र = /दृढ़ मन मुनन्नु तनमदिनि शरणान गाने/

उद्धार व्यापार = /कनिकर मुन ब वेगन नीवेंतो चनुवुन लघुवुन ब्रोचिन/

पोषक रचना= /मुनुलु सुजनुलु सुरासुर गणमु लवनि पाल नरूलु बोगडनु

/मुनि,सज्जन,सुरासुरगण, ब्राह्मणों के द्वारा यह उद्धार व्यापारस्तुत्य हुआ" ।

इस प्रकार उपर्युक्त मिश्र वाक्य की संरचना तुलसी और त्यागराजु में समान हुई है ।

4.3.12 # तब —। अब —— ॥ #

यह रचना विशेष है जो तुलसी में मिलती है, त्यागराजु में नहीं । इस रचना के द्वारा भगवान को एक वक्र उक्ति की उलझन में डाला जाता है । /अब/ से आरंभ होनेवाला वाक्य प्राय: लुप्त रहता है । /तब/ से आरंभ होनेवाला वाक्य भगवान के पूर्व स्वभाव - अकारण भक्त वत्सलता - का कथन करता है और कवि यह कहना चाहता है कि पहले आपने भक्तों का उद्धार किया था, अब मेरी बारी आने पर आप निष्क्रिय कैसे हो गये । :-

" तब तुम मोहूँ से सठनि को दृठि गति देते ।
कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर, सुनि सादर आगे ह्वै लेते ।। "[2]

इसमें /अब/ वाले वाक्य की रचना लुप्त या व्यंग्य है । इस रचना की ध्वनि यह है कि हे भगवान । अपने पूर्व स्वभाव के अनुसार अब मेरी भी रक्षा कीजिए ।

---

* त्या. 534/4 2 वि. 241/1

4.3.13 # जब जहँ —। तब तहँ —— ॥#

इस रचना में काल वाचक और स्थान वाचक क्रिया विशेषण एक साथ घटित होते हैं। इस रचना प्रविधि के द्वारा कथन को और भी बलिष्ठ (Emphatic) बनाया जाता है। इस रचना में /तब जहँ/ वाला वाक्य प्रधान होता है और /जब जहँ/ वाला वाक्य इस वाक्यार्थ का वैशिष्ट्य प्रकट करता है। उदाहरण के लिए यह रचना ली जा सकती है :

————। भई जबब जहँ पहुनाई ।।

तब तहँ कहि सबरी के पत्नि की, रूचि माधुरी न पाई।।*#

इस रचना क्रम से निम्नलिखित अर्थ व्यक्त होते हैं :-

§1§ तुलनात्मक दृष्टि और वैशिष्ट्य का कथन : शबरी के पत्नों की और अन्यत्र प्राप्त सुस्वाद्य भोजन की तुलना की गयी एवं शबरी को पत्नों के स्वाद को उच्चतर ठहराया गया।

§2§ शबरी के पत्नों की तुलना जिन भोजनों से की गयी उसका रचनात्मक विस्तार किया गया - अपने घर, गुरू गृह, प्रियगृह और ससुराल में मिलनेवाला भोजन भी उसकी तुलना नहीं कर सकता : /घर, गुरू गृह, प्रिय-सदन सासुरे/। इन स्थानों पर मिलनेवाले भोजनों की तुलना नहीं कर सकता। केवल शबरी के पत्न इनसे आगे बढ़ जाते हैं।

§3§ भगवान अपने मुँह से इस वैशिष्ट्य का स्वयं बखान करते हैं : /तब तहँ कहि/। त्यागराजु में यह रचना अप्राप्य है।

---

* वि. 164/4

4.3.14 # जो (यदि) ———। तो ——— ॥#

यह क्रिया विशेषण रचना है । /यदि/ वाले वाक्य में साध्य के स्वभाव का कथन है और दूसरे में उसकी विवृत्ति है । यदि भगवान अपने गुणों और अपने प्रण को याद करेंगे तो अजामिल के समान तुलसी का भी उद्धार कर देंगे ।* इस रचना के द्वारा साध्य के उदार स्वभाव को भी बलिष्ठ बनाया गया है ।

4.3.15 # यद्यपि ——। तथापि ——— ।। #

यह भी क्रिया विशेषण रचना है । इसके द्वारा जो विभिन्न संदर्भों को प्रस्तुत किया जाता है । पहला संदर्भ जन से संबंधित होता है और दूसरा साध्य से । जन के द्रोह करने पर भी भगवान उसका उद्धार करते हैं ।[2] यद्यपि सुदामा से बाल्य कालीन मित्रता थी तथापि चिउढा लेकर उसको संपत्ति दी ।[3] एक स्थान पर दो संदर्भों की मार्मिक तुलना की गयी । एक ओर भातृ प्रेम है और दूसरी ओर शरणागत वत्सलता । राम ने दूसरी को अधिक महत्व दिया :-

(यद्यपि) इन पर्यो बंधु,
(तथापि) बिभीषन ही को, सोच हृदय अधिकाई ।[4]

4.3.2 विशेषण मूलक रचना :

जो ——— सो ——— ॥#
जो वह
जा ता

---

* जौ चित चढ़ै नाम-महिमा निज गुन गन पावन पनके ।
तौ तुलसिहिं तारि हौ बिप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के ।।
— वि. 96/3
और भी द्रष्टव्य वि.97/1

2 जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत, कहि न जाय अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि सोकहत, सरन गये भय टारी ।। — वि.166/4

3 लै चिउरा निधि दई सुधामहिं, जद्यपि बाल-मिताई । — वही. 163/3

4 वही. 164/3

जे	ते
जेहि	तेहि
जिन	तिन
कौन	जे

इस संबंध वाची और नित्य संबंध वाची पदों के आधार पर रचित मिश्र वाक्य की रचना में विशेषण वाक्य की रचना आ जाती है। एक ही व्यक्ति के दो रूप संदर्भों को यह रचना जोड़ती है। इस रचना का संबंध साध्य से भी है और साधक से भी। कुछ अन्य संबंध भी इससे व्यक्त होते हैं।

4.3.21 साध्यगत रचना :

वैष्णव भक्ति-संप्रदायों में साध्य की दो स्थितियां मिलती हैं : अपने निजधाम में नित्य लीलाधर की स्थिति तथा अवतरित रूप में लोक लीलाधर की स्थिति। /जो/ से आरंभ होनेवाला वाक्य इनमें पहली स्थिति का ज्ञापक है और दूसरी स्थिति की व्यंजना /सो/ वाले वाक्य से होती है। इस प्रकार यह रचना अलौकिक और लौकिक संबंधों को पौर्वापर्य के साथ संबद्ध करती है : पौर्वापर्य = निर्गुण से सगुण, अवतार पूर्व स्थिति से अवतारी स्थिति।

जो ---------	सो --------
जाकी नाम लिये छूटत भव- जन्म-मरन-दुख-भार।	अंबरीष-हित-लागि कृपानिधि, सोइ जनमे दस बार ।।*
थके देव साधन करि सब, सपनेहु नहिं देत दिखाई।	केवट कुटिल भालु कपि कौनप, कियो सकल-संग भाई ।।2

* वि. 98/5   2 वही. 165/2

जाको माया बस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो ।	करतल ताल बजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो ।।*
जिन बांधे सुर-असुर, नाग नर, प्रबल करम की डोरी ।	सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि, बांध्यो सकत न छोरी ।।[2]
लोकपाल, जम, काल, पवन रबि, ससि, अब आग्याकारी	तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंद-करधारी ।।[3]
डरहूं को डर	कान्ह डरै तेरे डर तें ।।[4]

संबंधवाचक और नित्य संबंधवाचक सर्वनाम लुप्त भी रह सकते हैं । यह भी ध्यातव्य है कि उपर्युक्त रचना में आवृत्ति कृष्णावतार की अधिक है । इसका कारण यह प्रतीत होता है कि कृष्ण की अलौकिक स्थिति और उनकी सामान्य लौकिक स्थिति के बीच वैषम्य चमत्कारमय है । अर्थात् राम लौकिक स्थिति में जिन स्तरों तक नहीं उतरते उन स्तरों तक कृष्ण का लौकिक चरित्र उतर आता है ।

त्यागराजु ने भी इस संरचना के द्वारा अलौकिक स्थिति के लौकिक स्थिति में संक्रमण को प्रकट किया है । त्यागराजु ने संयोजक के रूप में /वाडु/ "वाला" शब्द का प्रयोग किया है । /जो/ और /सो/ के अर्थ देनेवाले संबंधी और नित्य संबंधी सर्वनामों का प्रयोग त्यागराजु ने

---

* वि. 98/3

2 वही. 98/2

3 वही. 98/7

4 कृ.गी. 17/2

नहीं किया है । नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

शेष शय्यापर सोने + वाला ⟶ त्यागराजु (जैसे साधारण जन)
की स्तुतियों को स्वीकार
करनेवाला हो गया है ।
(से स्तुत्य बन गया है ।)*

अविचल रहने + वाला ⟶ बहुत-सी कथाओं में गतिशील
रहने + वाला हो गया है ।[2]

तुलसी में और त्यागराजु में इस संरचना की प्रवृत्ति तो समान है, किंतु त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी के काव्य में वैविध्य और विस्तार अधिक है ।

4.3.22 जन से संबंधित :

इसमें प्रथम वाक्य जनकी कुत्सित या अधम स्थिति को प्रकट करता है । दूसरे वाक्य में साध्य की इनके प्रति कृपा मूलक प्रतिक्रिया दिखलाई जाती है । तुलसी के प्रगीतों में मिलने वाले अधम पात्रों की सूची इस प्रकार है : गज, गनिका, कामदेव, गीध, अहल्या, कपि, शबरी, भालु, पशु, बक, स्वान, सुग्रीव, निषाद । इनके प्रति राम की क्रिया विभावना की पद्धति से कारण के अनुकूल नहीं है । इनके अधमों के चरित्र को पवित्र जानकर इन्होंने उनको अपने लोक में भेजा ।[3] उनके लिए या

---

* शेष तल्प शयनुडे वाडे श्री त्यागराज नुतुडैनाडे ।
- त्या. 135/3

2 कदले वाडु गाडे-रामुडु क्थलेन्नो गलवाडे । - वही. 135/1

3 गनिका अरु कंदरप तें जग महँ अघ न करत उबर्यो ।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि निजहृदि भवन धर्यो ।। - वि.239/6

उनके उद्धार के लिए भगवान साधु-सभा को छोड़कर आये । * उन सबको पवित्र बना दिया ।[2]

भगवान के कृपा-कार्य को अधिक बलिष्ठ बनाने के लिए तुलसी ने अधमों के लिए कुछ विशेषण या विशेषण पदबंध प्रयुक्त किये हैं । सुग्रीव के लिए "का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति रीति निरबाहु"[3] लिखा तो वानरों के लिए यह कहा "असुभ होइ जिनके सुमिरे तें, बानर रीछ बिकारी"[4] तथा "कौन सुभग सुसील बानर, जिनहिं सुमिरत हानि" ।[5] इसी प्रकार निषाद के लिए कहा "परम अधम निषाद पाँवर, कौन ताकी कानि?"[6] शबरी के लिए तुलसी ने कहा "अधम जाति सबरी जोषित जड़ लोक-वेदतें न्यारी"[7] तथा "प्रकृति मलिन कुजाति सबरी सकल-अवगुन-खानि" ।[8] गीध के लिए तुलसी ने कहा "बिहँग-जोनि आमिष अहार पर, गीध कौन ब्रतधारी" ।[9]

इस संरचना को और बलिष्ठ बनाने के लिए साध्य के विशेषण भी सार्थक रूप से प्रयुक्त किये गये हैं । जैसे - "कृपासिंधु", "कृपानिधि", "गरीब निवाज", "नाथ" आदि । तुलसी ने साध्य की क्रिया में केवल उद्धार की ही बात नहीं कही, अन्य क्रियाओं का प्रयोग भी किया है । जैसे शबरी के संबंध में लिखा - "खात ताके दिये फल अतिरुचि बखानि-बखानि" ।[10]

दूसरे वर्ग में ऐसे जन आते हैं जिन्होंने राम के साथ दुर्व्यवहार किया । राम ने इनके प्रति भी सद्व्यवहार किया । उदाहरण के लिए कैकेई और परशुराम को लिया जा सकता है । जिस परशुराम ने राम के

---

* गोतम-तिय, गज, गीध, बिटप, कपि, हैं नाथहिं नीके मालुम जे तो
तिन्ह-तिन्ह काजनि साधु-सभा, तजि कृपासिंधु तब तब उठि गते ।। - वही. 241/3

2 वही. 166/9 3 वही. 193/5

4 वही. 166/9 5 वही. 215/6 6 वि. 215/2

7 वही. 166/6 8 वही. 215/4 9 वही. 166/5

10 वही. 215/4

प्रति अभिमान प्रकट किया, उस परशुराम के प्रति राम का व्यवहार यह है - "चितवन भाजन करि लियो उपसम समता को" ।* जिस कैकई ने उनको बनवास दिलवाया, उसके प्रति इन्होंने यह व्यवहार किया - "ताकु मातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मरम कुधाउ" ।[2]

राम की दान वीरता को भी प्रकट किया गया है । देने की क्रिया को बलिष्ठ बनाने के लिए दान में दी जानेवाली वस्तु को महान बतलाकर भी कहा गया है कि उस वस्तु को भी देने में राम को संकोच हो रहा है कि मैं कुछ नहीं दे रहा हूँ । जिस लंका को रावण ने अपने सिरों को बलिदान करके शंकर से प्रार्थना किया, उस लंका को जब राम ने विभीषण को दिया तो संकोच लगा - "सो संपदा विभीषण कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हो" ।[3]

अंत में यह रचना आत्मोन्मुख हो जाती है । अन्य जनों के स्थान पर तुलसी अपने को स्थापित कर देते हैं । अपनी अधमता को तुलसी ने और अधिक प्रकट किया है । अपने लिये ये विशेषण प्रयुक्त किये हैं : "कुसेवक", "मंदमति", "कुटिल", "खल तिलक", "ग्रसित काल-व्याल", "खोटो" आदि । अन्य प्रकार से भी अपनी अधमता को प्रकट किया है : "कपट करौं अंतरजामि सों", "अध व्यापकहि दुरावौं", "बैंच खोटो", "दामन मिले" आदि । ऐसे तुलसी को भी राम ने /निवाज्यो/, /न कियो मन बावों/, /राख्यो सरन/[4] ।

कभी तुलसी राम से प्रश्न करता है कि अपना अभय हस्त मेरे ऊपर कब रखोगे? उस हाथ के लिए विशेषण उपवाक्य प्रयुक्त किया गया है ÷

§1§ "आयो सरन सभीत विभीषन, जेहि कर-कमल तिलक कीन्हो" ।[5]
§2§ "जेहि कर-कमल कठोर संभु-धनु भंजि जनक-संसय मेट्यो" ।[6]

---

* वि. 152/5 2 वही. 100/6 3 वही. 162/3
4 आत्मोन्मुख रचना के लिए द्रष्टव्य - वि.71/7, 171/3, 106/6
5 वही. 138/4 6 वही. 138/2

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि विशेषण वाक्यवाली मिश्र वाक्य रचना तुलसी के गीतों में सबसे प्रमुख है । इसमें साध्य की कृपा और उनका उदार कार्य व्यापार ही उद्दिष्ट रहता है । इसी को विविध व्याकरणिक रचनाओं के द्वारा बलिष्ठ बनाया गया है । वाक्य की रचना में यह प्रवृत्ति अवश्य मिलती है, जिस पर पहले विचार किया जा चुका है ।

4.3.3 संज्ञा मूलक रचना :

[यह / ऐसी] ———— । कि ———— ।।

यह रचना संज्ञा मूलक है । /कि/ के पश्चात् का वाक्य संज्ञा वाक्य ही होता है । भगवान की प्रीति, बानि और बडाई इस प्रकार की है कि
(अ) "निज प्रभुता बिसारि जनके बस होत", *
(आ) "निदरि गनी आदरू गरीब पर, करत कृपा अधिकाई"[2]
(इ) "नीचहूँ सों करत नेह सुप्रीति" ।[3] इस रचना में पहले वाक्य में साध्य की किसी विशेषता का उल्लेख है और दूसरे वाक्य में उसका स्पष्टीकरण ।

त्यागराजु ने भी इस रचना का प्रयोग किया है, किंतु विशेषता के स्पष्टीकरणके लिए नहीं । /कि/ के पश्चात् प्रायः प्रश्नवाचक वाक्य रखा है और यह वाक्य पहले वाक्य की क्रिया के कर्म के रूप में ही आया है । जैसे :-

(1) (अ) अब तो बताओ कि → मुख्य वाक्य
(आ) इतने दिन कृपा न करने का कारण क्या है? → संज्ञा वाक्य ; वाक्य (अ) के अधीन ; "बताओ" क्रिया का कर्म ।[4]

---

* वि.98/1   2 वही. 165/1   3 वही. 215/1   4 त्या.37/1

(2) (अ) अब तो बताओ कि ⟶ मुख्य वाक्य

(आ) किन के लिए अवतार लिया? ⟶ संज्ञा वाक्य : वाक्य (अ) के अधीन ; "बताओ" क्रिया का कर्म । *

इस रचना में त्यागराजु भगवान के कृपालु स्वभाव की ओर संकेत करते हैं । उस स्वभाव के व्यवहृत न होने पर जो आश्चर्य होता है, उसको प्रश्न की रचना से बलिष्ठ बनाते हैं ।

4.4 संयुक्त वाक्य की रचना :

संयुक्त वाक्य में समान स्थिति वाले वाक्य /और/ के द्वारा संरचित रहते हैं । किसी रचना में दो वाक्य रहते हैं और कुछ में दो से अधिक भी । कुछ वाक्यों में सामान्य लीला संदर्भों को जोडा गया है ।[2] कभी लीला संदर्भ पहले वाक्य में बतलाकर दूसरे वाक्य में उस मार्मिक घटना का कथन होता है जिससे राम की उदारता प्रकट होती है । जैसे -

"राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
(और) नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहु अरघ जल दीन्हों ।।"[3]

कभी भगवान के स्वभाव के द्वन्द्व को ~~प्रकट~~ प्रकट किया गया । जन के थोडे से गुणों को भी राम सुमेरु के समान मानते हैं और उसके करोड़ों अवगुणों को भूल जाते हैं ।[4]

त्यागराजु ने भी दो वाक्य वाली रचना की है । त्यागराजु ने

---

* त्या. 67/1

2 वि. 240/3; गी.1/19/2; गी,5/44/5; गी.6/1/3; कृ.गी.18/5

3 गी.3/13/1

4 जनगुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन ।
 - वि.206/2

ब्रह्म और जीव का संबंध पिता और पुत्र जैसा माना । पिता के समान ब्रह्म भी जीवों को झुलाता है और घुलघुलाता है ।* नारद ने प्रह्लाद से कहा कि भगवान तुम्हें देखने आयेंगे और तुम्हारी भक्ति-भावना की प्रशंसा भी करेंगे ? इसी प्रकार भगवान् के स्वभाव को विभीषण के माध्यम से उन्होंने इसी रचना में प्रकट किया है - भरत के समान उन्होंने सहचर {विभीषण} से प्रेमयुक्त बातें की और उसकी रक्षा की ।[3]

दो से अधिक वाक्यों की रचना भी तुलसी ने की । एक रचना के द्वारा त्रिकाल शृंखला को प्रस्तुत करके रक्षक भगवान के प्रति विश्वास प्रकट किया गया है । जैसे राम ने दोनों को /पाल्यो है + पालत + पालहुगे /।[4] इस प्रकार त्यागराजु ने जीवों के प्रति भगवान की तीन क्रियाओं की शृंखला तीन वाक्यों की रचना में प्रकट की है । जैसे - /जीवुल शिक्षिंचग नेर्तुवु + चिरंजीवुलुगा जेय नेर्तुवुरा + भाव मेरिंगि ब्रोतुवु /[5] {आप} जीवों को दण्डित करना जानते हो + {उनको} चिरंजीवी बनाना भी जानते हो + {उनकी} भक्ति पहचानकर पालन भी करते हो ।"

तुलसी ने विभीषण संदर्भ को तीन वाक्यों की शृंखला में रखा है । इससे संदर्भ की कड़ियाँ शृंखलाबद्ध होती हैं : /दई लंक + थिरथपे बिभीषन + बचन - पियूष पिआए / ।[6] त्यागराजु की भाँति तुलसी ने भी राम के स्वभाव को वाक्यों की शृंखला में रखा है :- /सकृत प्रनाम प्रनत + जस बरनत + सुनत + कहत + फिरि गाउ / ।[7] इसमें पाँच वाक्यों की शृंखला है ।

---

* "तोट्ल नर्भकुल नूतुवु मरि मरि
तोचिनट्टु गिल्लुदुवु श्रीराम ।" - त्या. 8/2

2 "निन्नु जूड वच्चुनु हरि निन्नु जूचि मेच्चुनु" । - प्रभवि. पृ. 19

3 "भरतु चर्य सहचरुनितो निडार
गरगुचु बलिकितिवे गाचितिवे" । - त्या. 131/5

4 वि. 223/2 5 त्या. 8/3

6 गी. 6/22/3 7 वि. 100/9

त्यागराजु ने तीन से अधिक वाक्यों की शृंखला रचना नहीं की ।

तुलसी ने #---------- और --------# के अतिरिक्त यह रचना भी प्रयुक्त की है :- #------------ किंतु ------- # । द्रौपदी प्रसंग का एक उदाहरण इस प्रकार है - /सकल समरथ रहे, {किंतु} काहु न बसन दीन्हों ताहि /* "सभी समर्थ थे, किंतु किसी ने उसको वस्त्र नहीं दिया" ।

त्यागराजु ने संयुक्त वाक्यों की रचना का यह रूप भी प्रयुक्त किया है । पहले एक प्रश्न होता है - "तुम ने" क्यों अवतार लिया है?", फिर वाक्यों की एक शृंखला संयुक्त संरचना में घटित होती है - "युद्ध करने के लिए या अयोध्या का शासन करने के लिए या योगियों को देखने के लिए या भव रोग से पीड़ित जन को रक्षा करने के लिए शतराग रत्न मालिकायें लिखनेवाले त्यागराजु को वर देने के लिए" ।[2] यह रचना तुलसी में नहीं मिलती । इसी प्रकार त्यागराजु ने राम से एक संयुक्त प्रश्न किया - "मुझपर यह गुस्सा क्यों है? मैं किससे बताऊँ? मोटी वेणी वाली सीता ने कहा है या शबरी ने कहा है?"[3]

---

* वि. 217/4

2 "एलावतार मेत्तुकोटिवि एमि कारणमु रामुडे ।
आलमु सेयुट का अयोध्या
पालन जेयुट का ओ राघव
योगुलनु जूचुटका भव
रोगुलनु ब्रोचुटका शत
राग रत्न मालिकलु रचिंचिन
त्यागराजुनकु वरमोसगुटका" । - त्या.103/-

3 "एंदुकी चलमु नेनेवारितो देल्पुदु
कबरी भारिणि सीताकात जेप्पेनो लेक
शबरि जेप्पेनो" - त्या.121/4

अलंकृत रचना :

तुलसी ने उत्प्रेक्षा की रचना दो से अधिक वाक्यों में की है। उत्प्रेक्षा वाचक पद /मानो/ का प्राय: लोप ही इस संदर्भ में तुलसी की वाक्य संरचना की विशेषता है। उदाहरण के लिए तुलसी की यह रचना दी जा सकती है - /सोचत हानि मानि मन, गुनि गुनि, गये निघटि फल सकल सुकृत के/ * "सीता जी के गुणों को मन ही मन सोचकर, उनके वियोग से बडी हानि मान वे शोक करते हैं, मानो उनके समस्त पुण्य फल समाप्त हो गये"।

तुलनात्मक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि दोनों ही कवियों ने साध्य की लीला क्रियाओं का विशद निरूपण किया है। अंतर मुख्यत: परिमाणिक है, गुणात्मक नहीं। दोनों ही कवियों का लीला-गायन दास्य भावानुप्रेरित है। दोनों की दृष्टि "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां" गीता की इस उक्ति पर रहा है। इसीलिए दोनों ने लीलानायक राम में "शक्ति" का अपूर्व विस्फोट देखा है। पिछले अध्यायों में विवेचित आयुध धारी राम का प्रतीक इसी लीला क्रिया में प्रतिफलित हुआ है। जब विष्णु या तत्व अवतरित होता है तो "अवतरण के कारण रूप में और उसकी जागतिक क्रियाओं में वीर भाव भी मुख्य रूप से अनुस्यूत रहता है। तुलसी ने "गीतावली" में वीर राम को सीता के साथ मधुर लीलाओं का संकेत किया है, किंतु त्यागराजु ने नहीं। साथ ही तुलसी ने "श्रीकृष्णगीतावली" में कृष्ण की मधुर लीलाओं का गायन किया है और अपने गीत काव्यों की सीमाओं में इन प्रसंगों को उठाया है। किंतु मधुर लीलायें इनके अभीष्ट लीलावृत्त से बाहर पडती हैं।

...

---

* गी. 4/1/2

पांचवा अध्याय

जीव संरचना

जीव संरचना

0. प्रास्ताविक :

ब्रह्म या साध्य की भाषिक रचना मुख्यत: कर्त्ता परक होती है । कर्त्ता के रूप में या तो वह नित्य स्थिति में रहता है अथवा लीला स्थिति में । ब्रह्म की कर्म परक भाषिक संरचना जीव के संदर्भ में घटित होती है - जीव की साधन क्रिया का कर्म ब्रह्म बन जाता है । जीव की भाषिक संरचना ब्रह्म की भाषिक संरचना की अपेक्षा कहीं अधिक जटिल होती है । वह कई संदर्भों में उपस्थित रहता है : ब्रह्म संदर्भ, माया संदर्भ, जगत संदर्भ और साधना संदर्भ । इन सभी संदर्भों में जीव की भाषिक संरचनाएं घटित होती हैं । इन्हीं पर विचार करना संप्रति अभीष्ट है ।

1. तत्व का संरचनात्मक संक्रमण :

यह अन्यत्र देखा जा चुका है कि तुलसी और त्यागराजु का प्रगीत काव्य मूल तत्व के एक विशिष्ट संरचना में संक्रमित होने की कथा कहता है । अखंड या नित्य तत्व की संरचनात्मक संक्रमिति अखंड के स्वेच्छा से खंडित होने, खंडित भागों के फिर से समन्वित होने और अंतत: तत्व में परिणत हो जाने की प्रक्रिया ही है । यह संरचना माया, जीव और जगत के त्रिकोण में घटित होती है । अखंड तत्व को संरचना में लानेवाली प्रेरिका और संपादिका शक्ति "माया" है जो तत्व की अंतर्भूत गति को बहिर्मुख करती है । माया ही तत्व के सुसुप्त चिदंश को जैविक संरचना में और उसके सदंश को त्रिगुणात्मक या पंचतात्विक संरचना में ढालने का कार्य करती है । वैज्ञानिक दृष्टि से चिदंश की गतिशीलता और सदंश की स्थूलता मिलकर संरचना की एक व्यापक इकाई को जन्म देती है । व्याकरणिक दृष्टि से यही उद्देश्य और विधेय की संरचना है । दार्शनिक दृष्टि से यह अखंड तत्व की लीला परक इच्छा का ही विस्तार है और "तत्व" इस लीला परक संरचना में व्याप्त होकर लीला रस की प्रक्रिया को प्रतिफलित करता है ।

यही लीला तुलसी और त्यागराजु या अन्य भक्त कवियों के द्वारा गेय एवं प्रतिपाद्य है ।

2. ब्रह्म→जीव :

2.1 स्थित्यंतरण = नामांतरण :

दार्शनिक दृष्टि से दैवी या आध्यात्मिक स्रोत से विच्छुरित प्रवाह सदंश की संरचना में होता हुआ आनंदार्णव में निमज्जित होता है । * इस दिव्य स्रोत की चर्चा तुलसी ने जीव को परिभाषित करने में की है - "ईश्वर अंश जीव अविनासी" ।"विनय पत्रिका"में उन्होंने इसी कथन को व्यक्तिनिष्ठ बनाया - बडे ठिकाने ठौर को हौं" ।

---

* इस यात्रा के विवरण के लिए द्रष्टव्य - वि. 136

ब्रह्म और जीव की तात्त्विक एकता को प्रकट करने के लिए त्यागराजु ने प्रश्न किया है - "क्या मैं और तुम अलग हैं ?" *

जीव की दो स्थितियाँ हैं : जगत में आने से पूर्व की स्थिति और जागतिक स्थिति । ब्रह्म में स्थित जीव "सहज सुख" (वि.88) में विलसित था । जागतिक स्थिति में वह इससे वियुक्त हुआ - "सहज सुख त्यागे" ।[2] उस मूल स्थिति में जीव का नाम रूप दोनों ही ब्रह्म से अभिन्न थे । त्यागराजु ने इसके वाचक ये शब्द लिखे हैं : पूर्णुडु (प्रभवि. पृ.20), नित्यानंदुडु (त्या.305) तथा शाश्वतुलु (त्या.5) । उसके पश्चात् उसका जीव नाम अलग हुआ - "जबतें जिव नाम धर्यो" ।[3] यहीं से उसकी जागतिक स्थिति का आरंभ होता है । इसकी सूचना - "तब ही तें" की रचना से मिलती है । यह मिश्र वाक्य की संरचना है - जब तें ---------- तब ही तें --------- । जागतिक स्थिति में उसकी स्थिरता समाप्त हो जाती है --- "तबही तें न भयो हौं र । थिर" ।[4] अर्थात् जीव भ्रमित होता रहता है । इन दोनों स्थितियों का व्यतिरेकी विवरण तुलसी ने विस्तार से दिया है ।[5]

त्यागराजु ने ब्रह्म से वियुक्त जीव की स्थिति देह में बतलाई है । देह में निवसित और सीमित जीव व्याकुल हो उठता है । अपनी दैहिक स्थिति से मुक्ति पाने के लिए वह पुकार उठता है - "मंदरधर ना जीवुडु जीवन मिंदु सेयनाये" ।[6] जीव को यह भी विश्वास है कि उसकी रक्षा प्रभु के द्वारा ही हो सकती है ।

2.2. तत्व वाचक नाम :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही "जीव"[7] शब्द का प्रयोग किया है । इस शब्द के अतिरिक्त जीव का वाचन "आत्मा"[8] शब्द से भी दोनों ने किया है ।

---

* इस प्रकार के विवरण के लिए द्रष्टव्य - वि.136/।।/2 * त्या.42/1

2 वि.82/2   3 वही.91/1   4 वही.91/1   5 वही.91   6 त्या.595/3

7 वि.82; त्या.42   8 वि.202 ; त्या.130

त्यागराजु ने इन दोनों शब्दों को जोड़कर "जीवात्मा" * शब्द का भी प्रयोग किया है । तुलसी के प्रगीत काव्य में यह प्रयोग नहीं मिलता । त्यागराजु ने तेलुगु प्रत्यय /-डु/ से संयुक्त रूप भी लिया है - "जीवुडु" ।[2]

इस वाचक शब्द की स्थिति और इसके संबंधों का द्योतन कुछ विशेषण मूलक या क्रिया मूलक कथनों के द्वारा दोनों कवियों ने किया है ।

इस प्रकार तुलसी और त्यागराजु दोनों ने तत्ववाचक शब्द - जीव, आत्मा तथा जीवात्मा का प्रयोग किया है । दोनों ने ही इस शब्द की संरचना से जीव की विविध स्थितियों और उसके विविध संबंधों की व्यंजना भी की है । इस तत्व वाचक संरचना का विकास जाति वाचक तथा व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में होता है ।

2.3 जीव : ब्रह्म की क्रियाओं का कर्म :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही ब्रह्म के द्वारा जीव को उत्पन्न होने या रचित होने की क्रिया का उल्लेख नहीं किया है । किन्तु दोनों ने ही ब्रह्म की कुछ क्रियाओं के कर्म की संरचना में जीव को रखा है । तुलसी के अनुसार साध्य की कृपा जीव को जगाती है ।[3] अर्थात् उसको अज्ञान से मुक्त करती है । ब्रह्म की जीव संबंधी एक और क्रिया का उल्लेख है । वह जीव को बांधनेवाला है और उसको मुक्त करनेवाला भी है - "जोइबांध्यो सोइ छोरे" ।[4] एक शब्द में जीव की समस्त गतियां और स्थितियां ब्रह्म के द्वारा ही संचालित हैं ।[5]

ब्रह्म जीव को उत्पन्न करता है, इस बात का बिंब विधान त्यागराजु ने अधिक किया है । जिस प्रकार एक मां अपनी ही सृष्टि - संतति - का लालन-पालन करती है, उसी प्रकार ब्रह्म की क्रियाएँ भी होती हैं । वह उसे पालने में

---

* त्या.155 | 2 प्रभवि. पृ.12

3 वि.74/1 | 4 वही.102/5

5 वही.112/3

झुलाता है ।* उसको वह प्रेमवश नोंचता भी है ।[2]

जहाँ तुलसी ने जीव की क्रियाओं के नियंत्रक के रूप में ब्रह्म को देखा है, वहाँ त्यागराजु ने जीव को ब्रह्म को दंडित करने की क्रिया का कर्म भी बनाया है ।[3] अंततः वही उसको अमरत्व भी प्रदान करता है ।[4]

3. जैविक संरचना : 3.1. माया संबंध : प्रभाव और उपाय

3.1.1 संज्ञा रचना :

माया शब्द का प्रयोग तो दोनों कवियों ने किया ही है, त्यागराजु ने इसके लिए "अविद्या (त्या.58) तथा "प्रकृति" (त्या.139) /गारडमु/ (त्या.365) शब्द का भी प्रयोग किया है । तुलसी ने "मृषा" (वि.120) शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है । सम्भवतः "मोह-माया" (वि.258) साथ-साथ लिखकर तुलसी ने इनको समानार्थक माना है । इसी प्रकार "भेद-माया" (वि.10) का प्रयोग भी मिलता है ।

3.1.2 संबंध कारकीय सामासिक रचना :

इस रचना के द्वारा माया के फैलाव की अभिव्यक्ति की गयी है । तुलसी ने यदि "माया-प्रपंच" (वि.154) लिखा तो त्यागराजु ने "माया-विलासमु" (प्रभवि.पृ.26) कहा ।

3.1.3. माया + अप्रस्तुत :

इस संरचना से माया के बिंब को और अधिक मूर्तिमान किया गया है । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं : /मोह रजु/ (वि.102); /मोह-फाँस/ (वि.115); /मोह-सृंखला/ (वि.114) ; /मायावल/ "मायाजाल" (त्या.384); /मायाजालमु/ (त्या.234); /मायासागरमु/ (प्रभवि.पृ.24) ; /मत्सरमनु तेर/ "मत्सर रूपी परदा" (त्या.221) ; /माया-सिवार/ (वि.244) ।

---

* त्या.8/2 2 वही. 8/2

3 वही.8/3 4 वही. 8/3

3.1.3 माया के रूप :

माया के दो रूपों की रचना तुलसी और त्यागराजु ने की है : मनोविकार और अज्ञान ।

3.1.3.1. मनोविकार : *

इन विकारों की सूची रचना त्यागराजु ने की है : /मदमत्सर काम लोभ मोह --/ (त्या.2) तथा /अभ्यासा/ "दुराशा" (त्या.354) । इसी प्रकार तुलसी ने भी सूची रचना की है - /मोह मार मद/ (वि.225) । इस सूची को तुलसी ने एक विस्तृत आलंकारिक रचना में भी बांधा है :-

" कुणप-अभिमान सागर भयंकर घोर, विपुल अवगाह, दुस्तर अपार ।
नक्र-रागादि-संकुल मनोरथ सकल, संग-संकल्प वीची-विकार ।। "[2]

सारे विकारों को राग और द्वेष में विभाजित किया जा सकता है ।[3] तुलसी ने सबसे अधिक रचनात्मक विस्तार मोह का किया है । कुछ रचनाएँ इस प्रकार है :-

(1) स्पष्टीकरण - मोह = देह गेह नेह (वि.73/1) ।
(2) करणकारकीय रचना - /मोह जनित मल/ "मोह से उत्पन्न मल" (वि.82/1) ।
(3) सविशेषण रचना - /महामोह/ (वि.181)
(4) आलंकारिक रचना - मोह + रूपी + अप्रस्तुत: /मोहतम/ (वि.12) ; /मोहनिसि/ (वि.52); /मोह सरिता/ (वि.92); /मोह-मृग-जल सरिता/ (वि.188) ; /मोह फाँस/ (वि.115) ; /मोहमूषक/ (वि.11) तथा /मोह रावन/ (वि.181) ।

त्यागराजु ने अभिमान के लिए /अहमनुजडत्वमु/ "अहं रूपी जडत्व" (त्या.551) लिखा है । अभिमान का संदर्भ उन्होंने विद्या भी बतलाया है -

---

* तुलसी ने विकार (वि.74) तथा विकारा (वि.124) का प्रयोग करके माया जनित मानसिक मलों का वर्णन किया है ।

2 वि.58/3 3 वि.74/2 ; त्या.314/5

/विद्यागर्वमु/ (त्या.58) । विद्या के गर्व से अविद्या पैदा होती है । *
मोह का संदर्भ त्यागराजु ने यह दिया है - ब्रह्मा का अपनी पुत्री पर आसक्त हो जाना,[2] शिव जी का दारुक वन की स्त्रियों के वश में हो जाना ।[3] तुलसी ने पर-दारा और पर-द्रोह को मोह के संदर्भ के रूप में दिये हैं ।[4] मोह के उदाहरण के रूप में गाड़ी के कुत्ते की चर्चा की गयी है ।[5]

दोनों ही कवि यह मानकर चलते हैं कि मनोविकारों के कारण ही जीव को कष्ट मिलता है - "मोह जनित भव-दारुन बिपति सतावै"[6] और /अड्यासलचे दगिलि ने नार्ति बडिना/ "दुराशाओं से ग्रस्त होकर मैं (मनुष्य) दु:खी हुआ हूँ" ।[7]

3.1.3.2. अज्ञान : [8]

वाचक शब्द

अज्ञान के लिए तुलसी ने कई शब्दों का प्रयोग किया है : "भ्रम" (वि. 119) ; "संसय" और "संदेह" (वि. 121) ; "भेद-बुद्धि" (वि. 10) (निज-परबुद्धि (वि.201) ; स्व पर मति (वि. 57) भेद मति (वि.7), द्वैत मति (वि. 203), द्वैत (वि.124), द्वन्द्व (वि.204)); "अभिमान" (वि.209) और "असमंजस" (वि. 147) ।

---

* "विद्यागर्वमुलेले नीवविद्यावशमुगानेले" - त्या. 58/3

2 "नलुव तनयपै मोहमु जेंदि नाडु तगिलिपोये" - त्या. 77/3

3 "चिलुव भूषणुडु दारुकावनपु चेलुल पालाये" - वही. 77/3

4 वि. 201/3

5 वही. 258/2

6 वही. 116/2

7 त्या. 514/2

8 वि.197/2 त्या. 265/3 (इसके लिए मूढ़ता (वि.74) और तम (वि.144) का प्रयोग भी तुलसी ने किया है ।

इन शब्दों से यह प्रतीत होता है कि तुलसी अज्ञान के अंतर्गत भ्रमित और संदिग्ध ज्ञान को भी लेते है ।

त्यागराजु ने भी अज्ञान वाचक कुछ शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे " संदेहमु " (त्या.570), "द्वैतमु" (त्या.246), "भ्रम"(त्या. 331), / भेदमु / " शिवमाधव भेदमु " (त्या. 378) और " संशय" (प्रभवि.की.19) । त्यागराजु ने भ्रम का स्पष्टीकरण स्त्री (त्या. 401), पुत्र तथा बांधव (त्या. 331), धन (त्या. 121) के परिप्रेक्ष्य में किया है । एक रचना के द्वारा उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि भ्रम मायाजन्य होता है । *

तुलसी ने अज्ञान के लिए स्वप्न,[2] मृगमरीचिका[3] और जेवरी को सांप[4] - न्यायों का प्रयोग किया है । अविवेक के लिए आलंकारिक रचना भी तुलसी ने की है, जैसे /संसय - सिंधु / (वि. 202), /द्वैत रूप तम-कूप/ (वि. 113), / भीम तमकूप / (वि. 144), अभिमान ग्रंथि/ (वि. 209), / अभिमान-महिषेस/ " अभिमान रूपी महिषासुर " (वि.48) ।

उदाहरण रचना के द्वारा भी अज्ञान की रचना का विशदीकरण किया गया है : विष को अमृत समझना , अमृत को आग समझना[5] और सत्य को झूठ और झूठ को सत्य समझना ।[6] इस रचना चक्र को त्यागराजु ने छोड दिया है ।

त्यागराजु की दृष्टि में आत्मज्ञान ही शुद्धज्ञान है ।[7] तुलसी इसको अन्य रचना प्रदान करते हैं । हृदयस्थ राम को छोडकर बाहर भटकना ही ज्ञान के खो जाने का कारण है ।[8]

---

* त्या. 401   2 द्रष्टव्य वि. 74, 116, 121, 123

3 इसके विस्तृत रूप के लिए द्रष्टव्य वि. 111/3

4 स्रग महं सर्प ......   वि. 122/3   5 वि. 224/2

6 वि. 119/1   7 " तन्चुदा तेलिसिन तत्वमेला " - प्रभवि.पृ.27

8 वि. 244/1

3.1.4 ब्रह्म-माया संबंध :

तुलसी ने ब्रह्म को " मायापति " ॥ वि. 177॥ कहा है और दूसरे स्थान पर उसे " प्रभुदासी " ॥ वि. 41॥ भी कहा है । त्यागराजु के अनुसार ब्रह्म "मायाधारी" ॥ त्या. 437॥ है । इस रूप में तुलसी ने रूपक में सीता को माया कहा है - " मुनि वेष लिये किधौं ब्रह्म-जीव-माय हैं " ॥ गी. 2/28/3 ॥ तो त्यागराजु ने रावण के द्वारा अपहृता सीता को माया कहा है ॥ त्या. 404 ॥ ।

दोनों ही कवियों ने भगवान वाचक सार्वनामिक विशेषणों के विशेष्य के रूप में माया को देखा है । तुलसी ने " तुम्हारी माया" ॥वि.166॥ की रचना की है । एक स्थान पर " निज माया" ॥ वि.9॥ भी आया है । इसी प्रकार ॥ नीमायलु ॥ " तुम्हारी मायायें " ॥ त्या.365॥ रचकर त्यागराजु ने भी इस रचना का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने ब्रह्म के विकास के रूप में माया को देखा है - / माया-विलासमु / ॥ प्रभवि. पृ.26 ॥ । तुलसी ने इस संबंध को मिश्र वाक्य की रचना के द्वारा भी प्रकट किया है : तेहि -------- जाकी --------- ॥ जैसे " तेहि ईस की हौं सरन जाकी विषम माया गुनमई । " *

इस प्रकार दोनों की दृष्टि में ब्रह्म-माया संबंध धारणा समान है । दोनों ही यह भी मानते हैं कि ब्रह्म ही माया का नियंत्रण करता है - " नाथ हाथ माया-प्रपंच सब " ।[2] नियंत्रण कर्ता से त्यागराजु प्रार्थना करते हैं -- " अपनी माया को अपने प्रति मत पसारो " ;[3] " अपनी मायाओं में मुझ को मत फँसाओ " [4] तुलसी भी कहते हैं -- " हरहु निज माया "[5] ।

---

* वि. 136/4

2 वही. 154/3

3 त्या. 481/9

4 वही. 47/4

5 वि. 9/1

माया भौचक्क-सी होकर देव की भृकुटि की ओर देखती रहती है । *
वास्तव में माया-जाल शतरंज का खेल है जो ब्रह्म ने ही फैलाया है ।
यह पहले नहीं था :-

" सतरंज कोसो राज, काठ कौ सबै समाज,
महाराज बाजी रची प्रथम न हति । " [2]

3.1.5. माया की शक्ति :

तुलसी ने माया की शक्ति का कथन वाक्य रचना द्वारा किया है : ईश, दिक्‌पाल, योगाश्वर और मुनीश्वर सभी माया में बंध जाते हैं ।[3] दूसरी ओर तुलसी ने कहा उपाय करके हार गये पर माया नहीं छूटती ।[4] त्यागराजु ने ब्रह्मा और शिव को भी माया से भ्रमित दिखलाया है ।[5] ब्रह्म की माया ब्रह्मा के द्वारा भी अनिर्वचनीय है । [6]

यदि माया ब्रह्म से प्रेरित होकर जीव को बांधती है तो उसी की कृपा से उसे मुक्ति भी मिलतो है ।[7] तात्पर्य यह है - " देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, सब माया- बिबस बिचारे " । [8]

3.1.6 माया और जीव :

माया और जीव के संबंध को दोनों कवियों ने विस्तार से संरचित किया है । इस संरचना के रूप कुछ क्रियाओं के आधार पर संरचित है ।

---

* वि. 246/3 2 वही. 246/4

3 वि. 246/3 और " जाकी माया बस विरंचि सिव नाचत पार न पायो" ।
- वि. 98/3

4 वही. 116/1 5 त्या. 77/3

6 वही. 365/1 7 वि. 116 ; त्या. 33

8 वि. 101/3

3.1.61 √फँस - ~ √चिक्कु कोनु या अन्य क्रियायें :

इस क्रिया से पूर्व माया की प्राय: अधिकरण मूलक रचना रहती है और जीव कर्ता के रूप में रहता है : कर्ता (जीव) + माया (अधिकरण) + √फँस् = जीव और माया, जैसे त्यागराज का उदाहरण लिया जा सकता है :-

जीवुडु/ मेनुकाशिचि / चिक्कुकोनेनु / *
जीव / शरीर के मोह में / फँस गया ।

विषम माया / मुझको / पटक दिया / [2]

3.1.62 नाश √कर्

इस रचना में मनोविकार या संसार कर्त्ता होता है और मन की शुद्ध अवस्था संबंध कारक के द्वारा नाश से जोड़कर कर्म बन जाती है । तुलसी का एक उदाहरण यह है :-

मोह (नेह) / मति (का) ∅ नाश कर दिया ।[3]

3.1.63 मायामूलक विशेषण :

माया पर आधारित विशेषणों की रचना करके दोनों कवियों ने जीव की स्थिति को स्पष्ट किया है : /मायाधीन/ (वि.249) ; /माया बस/[4] ; /माया बिबस/ (वि.101) ; /मोह बस/ (वि.245) ; /परबस पर्यो / (वि.120) ; /मायलोपलदगिलिन/ "मायाबद्ध" (त्या.314) ; /मितिमेरलेनि प्रकृति लोन दगिलिन/ "असीम प्रकृति में फँसा हुआ" (त्या.129) ;

---

* प्रभवि. पृ.12 2 वि.59/7 3 मति मोह नाशी - वि.60/9

4 इस शब्द का प्रयोग दशरथ के लिए किया गया है (गी.2/4) तथा कैकेई (गी.1/4) के लिए भी ।

/अविद्यावशमु/ {त्या.58} ; चपलचित्तुडु/ {त्या.378}; /मदमत्सर काम {त्या.लोभ मोहुलकु दासुडु/ {त्या.2} ।

3.1.4. जीव और साध्य का पृथक्करण :

जीव और ब्रह्म के बीच में आकर माया दोनों को अलग कर देती है और "ज्यों ज्यों निकट भयो चहों कृपालु त्यों त्यों दूरि पर्यो हों" ।* इसी प्रकार त्यागराजु ने भी कहा कि /निनु तेलिय लेनि नन्नु/[2] "{माया के कारण} मैंने तुम को नहीं पहचान पाया" और /मतिहीनुडै सन्नुति सेय नेरक/[3] "{माया में फँसकर} मतिहीन होकर आपकी स्तुति करना छोड दिया" ।

3.1.7 मन प्रबोध :

3.1.7.1 वैराग्य :

मन को माया और जगत की अनित्यता और बीभत्सता का कथन त्यागराजु ने किया है, जैसे संसार की संपत्ति को ओस जैसा बतलाया गया है ।[4] ऊपर से सुंदर लगने वाले मल मूत्र से भरे हुए शरीर को देखकर धोखा न खाने की प्रेरणा भी दी गयी है ।[5] माता-पिता और स्त्री जैसे सांसारिक संबंध भी मिथ्या है - इन में से कोई अपना नहीं है ।[6] तुलसी ने संसार में रत मन की मूढता का एक सजीव चित्र खींचा है -

" ऐसी मूढता या मन की ।
परिहरि राम-भगति-सुर सरिता आस करत ओस कन को ।।"[7]

---

* वि.266/1 2 त्या.56/4 3 वही.129/4

4 त्या.114/5 5 वही.415/2 6 वि.190/2

7 वही.90/1

2.1.8 उपाय :

दोनों कवियों ने भव-माया से मुक्त होने के लिए उपायों की रचना की । इनमें से पहला वर्ग उन उपायों का है जो जीव को करने हैं, दूसरे वर्ग में राम की कृपा जैसे उपाय आते हैं । और तीसरे वर्ग में साधु तथा गुरु सेवा की आवश्यकता होती है ।

3.1.8.1 जीवगत उपाय :

माया से मुक्त होने के लिए जीव को अपने मानसिक विकारों को समाप्त करना चाहिए । उसके बिना द्वन्द्व मूलक दुःख दूर नहीं हो सकते । * जब तक अपने उपायों से जीव भेद मुक्त नहीं होता तब तक भगवान भी जग जाल को समाप्त नहीं करते ।[2] ज्ञान प्राप्त करने पर ही राम के प्रति भी अहेतुक प्रीति उत्पन्न होती है ।[3] जो जीव भगवान की भक्ति में लगे रहते हैं, उनकी अविद्या नष्ट होती है ।[4]

त्यागराजु ने कहा कि आपके (भगवान) सेवा-ध्यान से ही मैंने माया के मर्म को समझा ।[5]

3.1.8.2 साध्यमूलक उपाय :

(क) संबंध तथा नित्य संबंधी वाक्य रचना :

जेहि ------ ।। ---------- सोइ --------- ।। : "जेहि बांध्यो सोइ छोरै" ।[6] कुछ अन्य वाक्यगत रचनाएँ भी इसी आशय के हैं : "प्रभु तव प्रकास बिन, संसय टरत न टारी" ।[7]

---

* वि.124/1 2 वही.203/15 3 वही.73/4 4 वही.57/1

5 "निन्नु कोलिचि - ध्यानिंचि तेलिसि कोंटि नी मायनु" - प्रभावि.पृ.33

6 वि.102/5 7 वही.113/5

§ख§ राम कृपा = कर्त्ता :

राम की कृपा माया ग्रस्त जीव को माया से मुक्ति दिलाती है । इस अभिप्राय को तुलसी ने रचना बद्ध किया है । राम की कृपा की क्रिया के कर्म रूप में जीव रहता है :-

राम की कृपा /जगावती/ सुजान जीव / * एक वाक्य रचना यह है : /हरिकृपा मिटै भ्रम/[2] "भगवान की कृपा से ही भ्रम मिटेगा" ; जबतक तुम्हारी कृपा नहीं होती तबतक मिथ्या सत्य ही प्रतीत होता : /जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी/[3] ।

यह भी विश्वास है जहाँ भगवान है वहाँ माया नहीं रहती ।[4]

§ग§ विनय :

दोनों कवियों ने इस अभिप्राय को ~~सकर्मक~~/ सकर्मक क्रिया और कर्म की रचना के द्वारा प्रस्तुत किया है :

सकर्मक क्रिया	क्रिया का कर्म
हरहु	भेदमति §वि•7/5§
"	भ्रम § वि•120/1§
/तोर्पवय्या/ "मिटाओ"	संदेह §त्या•570/1§
/ओसगरा/ "प्रदान करो"	ज्ञान §त्या•204/1§
/तेलुपुमु/ " बताओ"	द्वैत अद्वैत का भेद §त्या•246/1§
/तीयगरादा/" हटा दो"	मत्सर रूपी परदा §त्या•221/6/1§

---

* वि•74/1 2 वही• 116/5

3 वही•120/1 4 वही• 47/5

3.1.8.3 साधु तथा गुरु सेवा :

तुलसी के अनुसार गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता । केवल गुरु की कृपा से ही ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है । ज्ञान तक पहुँचाने वाले गुरु ही हैं । * तुलसी अपने मन को चेतावनी देते हुए कहते हैं - हे मन । तू भगवत्स्वरूप श्री गुरु के चरणारविंदों का भजन कर । इनकी सेवा करने से आनंद धन श्री हरि का साक्षात्कार हो जाएगा ।[2] हरि के साथ गुरु को भी जोडा गया है - "हरि-गुरु करुना बिनु, बिमल बिबेक न होई" ।[3] उनके अनुसार साधु-सेवा से - /द्वैतभय भागे/[4] ।

त्यागराजु ने गुरु सेवा तथा कृपा की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि कठिन हृदय रोग (कामादि) रूपी वन को काटने के लिए सद्गुरु रूपी आयुध की आवश्यकता ~~हर~~ है । शरीर, धन, पत्नी, पुत्र आदि में फँसना ही मोह है । इस मोह रूपी रोग से मुक्ति पाना ज्ञान रूपी दवा के बिना सम्भव नहीं है । यह ज्ञान सद्गुरु कृपा से ही मिलता है ।[5]

3.1.8.4 सूक्ति : प्रोक्ति रचना :

कुछ सूक्तियों की रचना भी तुलसी ने की है । इन सूक्तियों में जीव की स्थिति और उससे छुटकारे की बात कही गयी है । कुछ सूक्तियाँ नीचे प्रस्तुत की गयी हैं :-

(1) दोष-दुख सपने के जागे ही पै जाहिं रे ।[6]

(2) मोह-मोहित बिकल मति थिति न लहति ।[7]

(3) मोह-बस बथहिं मंदमति बारि बिलायो ।[8]

(4) बिन बाँधे निज हठ सठ परबस परयो कीर की नाईं ।[9]

---

* वि.173/3 2 वही.203/3 3 वही.115/5 4 वही.136/11

5 त्या.178 6 वि.73/3 7 वही.246/1 8 वही.245/2

9 वही.120/2

3.1.8.5 विश्वास :

दोनों कवियों ने भव और माया से छुटकारे के लिए साध्य में अटूट और अनन्य विश्वास प्रकट किया है । तुलसी की कुछ वाक्य रचनाएँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत हैं :-

﴾1﴿ बिनु तव कृपा दयाल, दास-हित, मोह न छूटै माया । *

﴾2﴿ तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं ।[2]

त्यागराजु ने भी कहीं कहीं इसी प्रकार की रचना की है - /नीवे गतियनि नम्मिति/[3] "मेरा विश्वास है कि तू ही मेरी गति है" । त्यागराजु को वेदादिशास्त्रों के कथनों की अपेक्षा भगवान में ही अनन्य विश्वास है ।[4]

3.2. अविद्या संबंध : प्रभाव और उपाय :

जब जीव और ब्रह्म का संबंध विच्छिन्न हो जाता है तब से उसका अविद्या संबंध आरंभ होता है । वह मिथ्या में सत्य की प्रतीति करने लगता है - "जिय जब तें हरितें बिलगान्यो । तब तें देह गेह निज जान्यो" ।[5] जीव की जागतिक स्थिति अविद्या संबंध का परिणाम है । अविद्या द्वैत बुद्धि को उत्पन्न करती है । इसी से "मैं और मोर तोर तें माया" की संरचना उत्पन्न होती है जिसमें जीव उलझ जाता है । इस द्वैत बुद्धि से मुक्त हुए बिना जीव का त्राण नहीं है - "मैं-मोर गये बिनु जिउ सुख कबहुँ न पावै" ।[6] इस उलझन में पड़कर वह राम की प्रीति से वंचित हो जाता है और मिथ्या सुख को सुख मान लेता है ।[7] इसी संदर्भ में साधना विहीन आत्मा का

---

* वि.123/1 2 वही.116/5 3 त्या.129/4

4 "वेदशास्त्र पुराण विद्यलचे भदे वादमुलु दीरक
भ्रमसे वारल जूचि निन्ने नेर नम्मिनानु" - त्या.293/3

5 वि.136/1 6 वही.120/5

7 राम से प्रीतम की प्रीति-रहित जीव जाय जियत ।
जेहि सुख सुख मानि लेत, सुख सो समुझ कियत ।। - वि.132/1

उल्लेख भी है । *

त्यागराजु ने भी कहा है कि अविद्या के प्रभाव से जीव की ब्रह्मासक्ति समाप्त हो जाती है ।[2]

3.3. कलि काल : प्रभाव और उपाय :

कालातीत स्थिति से जीव कालायाम में आता है ।[3] दोनों ही कवियों ने पौराणिक कलिकाल में पीड़ित जीव की संवेदनाओं को प्रगीतबद्ध किया है : " कलि" ﴾ वि.22. त्या.145﴿, " कलियुग" ﴾वि. 130, त्या.449﴿ "कलिकाल" ﴾ वि. 28﴿ जैसे शब्दों की रचना से इस काल खंड की सूचना दी गयी है । त्यागराजु ने " कलिकाल के प्रथमपाद" ﴾ त्या.584﴿ का भी उल्लेख किया है ।

3.3.1. विशेषण मूलक पदबंध :

कलिकाल के साथ तुलसी ने इन विशेषणों को संबद्ध करके विशेषण पदबंध की रचना की है । " कायर" ﴾ वि.220﴿, "कुटिल" ﴾ वि.192﴿, "कराल" ﴾ वि. 217﴿, " विकराल" ﴾ वि.59﴿, "किलबिषी" ﴾वि. 191﴿, "कालबली" ﴾ वि.198﴿ और " कठिन" ﴾ वि.228﴿ कहकर उन्होंने काल शक्ति का परिचय दिया है । त्यागराजु ने इस प्रकार की रचना नहीं की है । ये विशेषण जीव और कलियुग के संबंध के ज्ञापक हैं । तुलसी ने "बली" विशेषण के लिए उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए एक वाक्य की रचना की है : " सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते" ।[4]

---

* संसय-सिंधु नाम बोहित भजि निज आतमा न तार्‌यो । - वि. 202/3

2 " कलयनि मदमुन देलिय कुटिनि गानि
- - - - - - - - - - 5 - - - - 5
चिन्न प्रायमुनाडे श्री हरिपै नास
गोन्न जीवुङ्गानु -- " -- त्या.74/4,5

3 "काल-कर्म-इन्द्रिय - विषम - गाहकगन " - वि.146/2

4 वि. 198/2

3.3.2 संबंध कारकीय रचना :

इस का रूप यह है : कलि + का ~ के~की~ α + संज्ञा । इस रचना में तुलसी के ये संज्ञा शब्द प्रयुक्त मिलते है : " कुधरम "(वि.249), " कहर " (वि.250),"कुचाल" (वि.266), "कलुषजाल" (वि. 229) "करम" (वि.256), " छल, मल, छीनता" (वि. 262), पाप-संताप (वि.28)तथा राग (वि.66) । त्यागराजु ने इस संरचना में "मर्म" (त्या. 145), "भय" (त्या. 162) और "बाधा" (त्या. 201) जैसे शब्दों का प्रयोग किया है । तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु की संज्ञा सूची छोटी है।

इन संज्ञा शब्दों के द्वारा जीव की दुरवस्था करनेवाले तत्वों का कथन किया गया है । " मर्म" कहकर त्यागराजु ने यह ज्ञापित किया है कि कलियुग के यथार्थ ज्ञान से रहित जीव दीन अवस्था को प्राप्त होता है । * तुलसी ने इस रचना में आये हुए कुछ संज्ञा शब्दों की वाक्य गत व्याख्या भी की है, जैसे कुचाल की व्याख्या इस प्रकार की है :-

" जल चाहत पावक लहौं, विष होत अमी को " ।[2]

त्यागराजु ने / ~~कलि~~ कलियुग + के + नर / रचना के द्वारा उसकी जड़ता को प्रकट किया है -[2] " कलि मानव को शिक्षा देना व्यर्थ है " [3] त्यागराजु की भांति तुलसी ने इसका दृष्टांत भी प्रस्तुत किया है कि कलि से प्रभावित मनुष्य पर सुशिक्षा का प्रभाव नहीं होता । उदाहरण रावण का है : " तुलसिदास लंकेस कालबस गनत न कोटि जतन समझायो " ।[4] नर की अधमता यह है कि वह नास्तिक हो गया है ।[5]

---

* वि. 265/2

2 इसीलिए " कलिनराधमुलु " (त्या.14) जैसे शब्द का प्रयोग त्यागराजु ने किया है।

3 " कलिनरुलकु महिमलु देलिपेमि फलमन लेदा " - त्या.146/1

4 गी. 6/3/5

5 " कलियुग मनुजुलु नीकु महात्म्यमु गलदुलेदने काल मायेगा " - त्या.449/2

3.3.3 संबंध कारकीय रचना + करणकारकीय रचना :

(कलियुग + संज्ञा) के प्रभाव से जो होता है उसकी व्यंजना इस रचना के द्वारा की गयी है । कुछ उदाहरण इस प्रकार है : / -मतिमंद मलिन मन / (वि.109) ; / - साने / (वि. 235) ; / - ग्रसित / (वि.166) ; / - मति विकल / (वि. 128) ; / - विकल / (वि. 249) और / - घेरो / (वि. 272) । यह रचना जीव की दुरवस्था को ज्ञापित करती है । त्यागराजु ने इस प्रकार की रचना नही की ।

3.3.4. अधिकरण कारकीय रचना :

यह वाक्य संरचना है : कलियुग में + वाक्य का शेषांश - जिसके द्वारा जो घटित हो रहा है उसका कथन किया जाता है । त्यागराजु ने कहा है कि कलिकाल के प्रथम पाद में माता-पिता, गुरु की भक्ति का ह्रास हो गया और असीम पापकृत्य हो रहे हैं तथा भगवान की सत्ता में विश्वास समाप्त हो गया है । *

3.3.5 आलंकारिक रचना :

/काल+रूपी + अप्रस्तुत/ यह रचना दोनों कवियों में मिलती है । तुलसी ने इन अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है : "उरग" (वि.199); "ब्याल" (वि.106); /गोमर/ "कसाई" (वि.139); "रोग" (वि.66); /कानन/ "कठिन कलिकाल कानन" (वि.12) । इनमें सबसे प्रमुख उपमान सर्प है । त्यागराजु ने इस प्रकार की लघु संरचना तो नहीं की, किन्तु एक सांग रूपक में कलियुग को एक नाटककार कहा है : "कलि पुरुष रूपी नाटककार खल संप्रदाय रूपी यज्ञों में मानवों को बलिपशु बनाना चाहता है ।[2] इसमें कलियुगीन दुष्ट संप्रदायों की सूचना दी गयी है । तुलसी ने भी इस प्रकार की सांग रचना की है : "कामधेनु रूपी पृथ्वी कलियुग रूपी कसाई के हाथ में ऐसी व्याकुल हो गई है कि

---

* त्या.584/3 2 त्या.35/3

उसमें जो बोया जाता है, जमता नहीं है । अर्थात् जहाँ-तहाँ दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं । *

3.3.6 वाक्य संरचना :

3.3.6.1 प्रोक्ति :

इस प्रकार के वाक्यों की रचना से कवि अपनी कलियुगीन दुर्दशा का परिचय देता है, जैसे तुलसी ने कहा : मैंने तो अपनी छाती पर वज्र रख लिया है, कलियुग ने मुझे दबोच दिया है और अब पराधीन होकर असह्य कष्ट सह रहा हूँ ।[2] इस प्रकार की और भी रचनाएँ उपलब्ध हैं ।[3] इसी प्रकार त्यागराजु ने कई वाक्यों में घटित एक प्रोक्ति की है जिसमें ब्राह्मणत्व के कलियुगीन पतन पर प्रकाश डाला गया है ।[4] इसी प्रकार कलियुग के प्रभाव से बचने को असम्भव बतलाते हुए कवि ने निराशावाद प्रकट किया है ।[5] वास्तव में यह निराशावाद केवल कलि की करालता एवं कठिनता को व्यक्त करता है ।

---

* "कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल जामति न बई है ।" - वि.139/6
इस पद में कलियुग का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

2 " मैं तो दियो छाती पबि, लयो कलिकाल दबि"
सासति सहत, परबस को न सहैगो ?" - वि.259/2

3 द्रष्टव्य वि.139/7; 195/2; 265/3

4 "ब्राह्मणीकमु बाय नीचुल
ब्रतुकाय नदिगाक ई कल्लो
ब्राह्मैन माटल नेर्चुकोनि
बरगेरय्या त्यागराजनुत" - त्या.578/3

5 "मुप्पुन विषय तटाकमुन मुनुगक दृढमनसै
तप्पि ब्रतिकि दरमा राम कल्लो ।" - त्या.208/2

3.3.6.2 संबोधन वाक्य :

कलियुग के दलदल में पड़ा हुआ भक्त कवि भगवान को संबोधित करके कुछ कहता है । त्यागराजु ने कहा कि हे भगवान मैंने कलि के मर्म से अनभिज्ञ होकर तुम्हारे ऊपर दोषारोपण किया है, तुम रूष्ट मत हो ।* कुछ और आक्रोश के साथ कवि एक प्रश्नवाचक संबोधन करता है :"कलिभय से रक्षा करने के लिए तुम नहीं आते हो । क्या तुम्हारी महिमा समाप्त हो गयी है ।[2] इसी प्रकार तुलसी ने कहा - "ज्यों-ज्यों तुम शील के कारण इस कलियुग को ढील दे रहे हो, त्यों-त्यों ये नीच सिर पर चढता जाता है । जरा क्रोध करके इस को डाँट दीजिए । तरजनी दिखाते ही यह कुम्हडे की भाँति मुरझा जाएगा ।[3]

3.3.6.3. प्रबोधन वाक्य :

यह वाक्य रचना मन की ओर अग्रसर होती है । तुलसी मन से कहते हैं कि कलि-काल ने सहायकों सहित रामनाम के डर से भाग जाएगा ।[4] उन्होंने अपने मन से यह भी कहते हैं कि तू अपने जीवन को व्यर्थ गँवा रहा है । काल रूपी साँप संसार को ग्रस रहा है, सावधान हो जा ।[5] राम नाम स्मरण से कलियुग के ~~विकार~~ विकार क्षीण हो जाते हैं ।[6] तुलसी ने यह भी कहा कि कलियुग में राम नाम जप ही सबसे बडी साधना है ।[7]

त्यागराजु ने भी प्रबोधन करते हुए कहा कि राम-कथा का सुधारस कलियुग के पाप को हरण करनेवाला है ।[8] इस कलि काल में जीने के लिए राम नाम ही आधार है ।[9]

---

*	त्या.145/2	2	वही. 162/5	3	वि.139/8
4	वि.70/2	5	वही. 199/6	6	वही.262/5
7	वही.67/1	8	त्या.454/3	7	वही.27/5

3.4. जगत : प्रभाव और उपाय :

यदि काल की दृष्टि से जीव कलियुग में स्थित है तो देश की दृष्टि से जगत में । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने समान रूप से "भव" (वि.237; त्या.58), "जगत" (वि.121; त्या.482), "भुवन" (गी.1/4; त्या.378) और "प्रपंच" (वि.121; प्रभवि.पृ.19) का प्रयोग किया है । तुलसी ने "संसृति" (वि.136) का अधिक प्रयोग किया है तो त्यागराजु ने "अंड" (त्या.320); ब्रह्मांड (त्या.488); "लोक" (प्रभवि पृ.24); "क्षिति" (त्या.481); "महि" (त्या.477) और /इला/ "जगत" (त्या.493) का विशिष्ट प्रयोग किया है ।

3.4.1. जगत की सविशेषण रचना :

जगत के साथ विशेषणों का प्रयोग करके तुलसी ने विशेषण पदबंध रचे है । यह विशेषण इस प्रकार है : "भयंकर" (वि.121); "दारुन" (वि.45); "विषम" (वि.197); "अगम" (वि.151); "खल" (वि.188); "सठ" (वि.188); "कपटागार" (वि.188); "अन विचार" (वि.121) आदि । "अनंत" (वि.151) का प्रयोग करके जगत की विशालता की व्यंजना की गयी है । जिस प्रकार अन्य स्थलों पर रचना के द्वारा द्वन्द्वशीलता प्रकट की गयी है, उसी प्रकार जहाँ जगत के साथ दुष्ट का प्रयोग हुआ है वहाँ तुलसी ने "रमनीय" (वि.121) का विशेषण भी प्रयोग किया है ।

त्यागराजु ने जगत के लिए ये विशेषण प्रयुक्त किये हैं : /माया/ "कपटी" (त्या.44); /मटुमाया/ "असीम कपटी" (त्या.56); /मायपु/ "कपटयुक्त" (त्या.316); /रागादुलतोंडि पूरित/ "रागादि से भरा हुआ" (त्या.36) आदि । रचना को द्वन्द्वात्मक बनाने के लिए त्यागराजु ने भी ~~2//मदुगु//~~ /मुद्दुगु/ "रमणीय" (त्या.360) विशेषण का प्रयोग किया है ।

इस संरचना में दोनों की प्रवृत्तिगत समानता स्पष्ट है । अंतर एक

प्रतीत होता है कि त्यागराजु की दृष्टि में जगत जन्य मनोविकार अधिक प्रमुख है और तुलसी की दृष्टि में जगत का दुष्ट प्रभाव ।

3.4.2 संबंधवाचक रचना :

इस रचना का रूप यह है : जगतवाची संज्ञा + का — ~ Q। इस रचना के द्वारा तुलसी ने जगत के इन तत्वों को उजागर किया है : ‖क‖ मनोविकार वर्ग - "वासना" ‖वि.47‖; "भीति" ‖वि.234‖; "आसा" ‖वि.136‖; "भय" ‖ वि.91‖ । ‖ख‖ पीडा वर्ग - " पीर" ‖वि.93‖, "सोक" ‖ वि. 186‖ ; "शूल" ‖वि.136‖, "भीर" ‖वि.144‖ ; "त्रास" ‖ वि.63‖ । ‖ग‖ अन्य-"बंधन" ‖वि.199‖, /बेगार/ " बलात काम लेना" ‖वि.189‖ ।

तुलसी की भांति त्यागराजु ने भी ‖ /व्याजमुलु / " बंधन " ‖ त्या. 381‖ का प्रयोग किया है । " सुख " ‖ त्या. 347‖ का प्रयोग करके रचना की द्वन्द्वात्मकता प्रकट की गयी है । इनके अतिरिक्त भव की बाधाएं‖त्या.535‖ भी त्यागराजु की कल्पना में आयीं ।

तुलना की दृष्टि से तुलसी ने इस रचना को बहुत विस्तृत बनाया । प्रवृत्तिगत भेद भी लक्षित होता है ।

3.4.3 आलंकारिक रचना :

आलंकारिक रचना के द्वारा दोनों कवियों ने संसार के मिथ्यात्त्व तथा जीव के संसार के संबंधी भ्रम को बलिष्ठ बनाया है ।

3.4.3.1 जगत के अप्रस्तुत :

तुलसी ने प्रस्तुत के रूप में संसारवाची शब्दों को रखकर इन अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है : निसि ‖ वि.119‖ ~ शर्वरी ‖वि.55‖ ~

जामिनी §वि.73§, गयंद §वि.129§, जाल §वि.74§, चक्र §वि.136§, भाजन §वि. 190§, रोग §वि.81§ तथा ब्याल §वि.92§ । सबसे अधिक म्र आवृत्ति समुद्र के पर्यायों की हुई है : सागर §वि. 261§ ~ सिंधु §वि.19§ ~ जलधि §वि.64§ ~ नीर निधि §वि.66§ ~ निधि §वि.115§ ~ पाथोधि §वि.46§ । कूप §वि.203§ और सरिता §वि.143§ भी अप्रस्तुत के रूप में आये है । कांतार §वि.59§ भी अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

तुलसी की भाँति त्यागराजु ने भी समुद्र के पर्यायों का अधिक प्रयोग किया है - सागर §त्या.316§~अब्धि §त्या.446§~नीरधि §त्या.110§ । कुएँ के स्थान पर उन्होंने /गुंटा/ "तालाब" §त्या त्या.551§ को चुना है । जगत को /गहनमु/ "वन" §त्या.392§~/कानन/ §त्या.484§ का अप्रस्तुत भी दिया है । यह भी तुलसी के समान ही है । त्यागराजु के विशिष्ट उपमान ये हैं : /बोम्मरिंडलु/ "घरौंदा" §त्या.360§, नाटक §त्या.565§ तथा रथ §384§

3.4.3.2 अप्रस्तुतों की विशेषणमूलक रचना :

/विशेषण + संसार + अप्रस्तुत + संज्ञा / इस पदबंध के पूर्व तुलसी ने इन विशेषणोंका प्रयोग किया है - "/घोर-/ §वि.94§, /अपार-/ §वि.19§, /दुस्तर-/ §वि.136§, /तम-/ §वि.209§, /परम कठिन-/ §वि.92§, /अति घोर-गंभीर-/ §वि.59§ और /सघन तम घोर-/ §वि.55§ ।

3.4.3.3. जगत और जीव का संबंध :

दोनों ही कवियों ने इस संबंध को प्रकट करने के लिए सामासिक रचना का प्रयोग किया है । तुलसी ने जीव को भव-व्याल ग्रसित §वि.117§ कहा है । त्यागराजु ने संसार में भ्रमण करनेवाले जीव की रचना इस प्रकार

की है : -- बिहारी ﴾त्या॰484﴿; -- बद्ध ﴾त्या॰330﴿ तथा --- चारूलु ﴾त्या॰392﴿ । इन शब्दों के साथ संसार-कानन -- ; भव-पाश -- ; /भव-गहन ---/"संसार रूपी वन --" की रचना आयी है । जीव की बद्धता को प्रकट करने के लिए त्यागराजु ने यह रचना की है : /भव-पाश बद्ध/ । भव-सागर में जीव की स्थिति डूबने उतराने की है : "मुद्दुग दोचे भवसागरमुन मुनिगि तेलुचु कोन्नाल्लु" ﴾त्या॰360/3﴿ ।

3.4.4 संसार संबंधी न्याय :

दोनों ही कवियों ने संसार को भ्रममूल कहने के लिए रज्जु अहि * तथा रज्जुपे उरग बुद्धि[2] पदबंध का प्रयोग किया है । दूसरा न्याय इसके लिए मृग-मरीचिका का है जिसका अर्थ है जगत सत्यवत प्रतीत होता है, वास्तव में सत्य नहीं । इस न्याय को तुलसी ने मृग, हरिण जैसे पर्यायों के साथ जल के पर्यायों को जोड़कर प्रकट किया है ।[3] इस न्याय के साथ मोह[4] तथा भ्रम[5] जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया है । इस रचना के साथ सरिता[6] और जलधि[7] जैसे अप्रस्तुत भी प्रयुक्त हुए हैं ।

इस रचना का दूसरा आधार सूर्य है । मृगजल को तुलसी ने रविकर नीर ﴾वि॰197﴿, रविकर जल ﴾वि॰199﴿, रविकर संभव सागर ﴾वि॰122﴿ भी कहा है ।

---

* तासों करहु चातुरी जो नहि जानै मरम तुम्हार ।
सो परि डरै मरै रजु-अहि तें बूझै नहि व्यवहार ।। - वि॰188/5

2 त्या॰150/4

3 मृगबारि ﴾वि॰73﴿; हरिन बारि ﴾वि॰133﴿ ।

4 महामोह मृग जल ﴾वि॰188﴿

5 मृग-भ्रम बारि ﴾वि॰136﴿

6 महामोह मृग जल सरिता ﴾वि॰188﴿

7 मृगजल जलधि ﴾वि॰194﴿

त्यागराजु ने भी मृगमरीचिका का न्याय संसार के साथ जोडा है - /मरूमरीचिकल जूचि नीरनि भ्रमसि/ "मृगमरीचिकाओं को देखकर पानी का भ्रम होकर" (त्या.150) । इसकी रचना तुलसी की अपेक्षा सीमित है ।

त्यागराजु ने संसार को /कल/ "स्वप्न" (त्या.33) का न्याय भी दिया है । इसके द्वारा यह ज्ञापित किया गया है कि जागृत होने या ज्ञान के उदय होने पर संसार की सत्ता समाप्त हो जाती है ।एक और न्याय संसार के लिए त्यागराजु ने प्रयुक्त किया है : /तामराकुनीरु/ "कमल के पत्ते का पानी" (त्या.563) । इस न्याय के द्वारा त्यागराजु ने जगत की अस्थिरता और क्षण-भंगुरता प्रकट की है ।

तुलसी ने इन अर्थों मे को अन्य दो न्यायों से प्रकट किया है : /नभ वाटिका/ (वि.66) जिसका अस्तित्व ही नहीं केवल प्रातिभासिक सत्ता है तथा /धुवाँ कैसे धौर हर/ "अस्थिर और परिवर्तन शील" (वि.66) ।

3.4.5. <u>जगत और ब्रह्म :</u>

साध्य या ब्रह्म के जगत संबंध को दोनों ही कवियों ने स्पष्ट किया है । ब्रह्म के जगत परक नामों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत-प्रबंध के "साध्य: तत्व संरचना" वाले अध्याय में किया गया है । यहाँ केवल कुछ संकेत देना आवश्यक है ।

संसार की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करने वाला ब्रह्म ही है ।* ब्रह्म क ही जगत का भरण-पोषण करनेवाला है ।[2] वह सृष्टि का स्वामी भी है ।[3] वह सृष्टि में व्याप्त है ।

त्यागराजु ने सृष्टि कार्य के संबंध में यह भी लिखा है कि ब्रह्म अपने

---

* वि.55, 56; प्रभवि. पृ.7, त्या.1

2 वि.55; त्या.78

3 वि.56; त्या.627

लीलानंद के लिए लोकों का निर्माण करता है ।* त्यागराजु ने एक और विशेष बात कही है कि भगवान का जप करने से यह जगत ब्रह्म-रूप ही हो जाता है ।[2]

3.4.6 भव और जीव :

जीव संसार में उलझा हुआ है - /मटुमाया संसारमुन दगिलिन/ "[3] कपटी संसार में उलझा हुआ" तथा वह विकल है - /भव-भय-विकल/[4] । उलझन इसलिए है कि जीव सांसारिक सुख को ही सत्य समझता है ।[5]

3.4.7. संसार : मिथ्या और सत्य :

तुलसी के मस्तिष्क में एक द्वन्द्वात्मक स्थिति मुखरित है - "कोउ कह सत्य झूठ कह कोउ" और तीसरी स्थिति यह है कि "जुगल प्रबल करि माने" ।[6] तुलसी जी इन तीनों को ही भ्रम कहते हैं । फिर भी जगत का रहस्य बना रहता है । एक वाक्य रचना के द्वारा उसके बाह्य रूप और आंतरिक तत्व को साथ-साथ रखा गया है - "देखत ही कमनीय कछू नाहिंन पुनि किये बिचार" ।[7] उदाहरण के रूप में केले की इस संरचना को प्रस्तुत किया गया है - छिलके ही छिलके, अंत तक कोई सार नहीं । दूसरी ओर तुलसी ने मानसिक समता और संतोष द्वारा भोगने संसार को सुखकारी भी कहा गया है - "सम-संतोष-दया-विवेक तें, व्यवहारी सुखकारी ।"[8]

त्यागराजु ने तुलसी की भांति रचना करके जगत के तात्त्विक पक्ष पर तो अधिक प्रकाश नहीं डाला, किन्तु प्रश्न उनके मन में भी झूलता रहा । एक जगह सामान्य वाक्य रचना में उन्होंने - /जगम्मुलु कल्ललनि/[9] "जगत मिथ्या है" -

---

*	त्या.44/5	2	वही.41/5	3	त्या.56/2
4	वि.91/4	5	त्या.2/7	6	वि.111/4
7	वही.188/2	8	वही.121/4	9	त्या.384/3

कहा है । एक और स्थान पर सामान्य वाक्य की रचना में यह भी कहा है - /नालुगुलोकमु लेल्ल सत्यमे/* "चारों लोक सत्य ही है" । सत्य होने के संबंध में प्रश्नवाचक रचना के द्वारा एक भंगिमापूर्ण तर्क भी प्रस्तुत किया गया है - राममय विश्व की निंदा कैसे करूँ ?[2]

3.4.8. <u>संसार से मुक्त होने के उपाय :</u>

भक्त कवि निराशावादी नहीं है । इसलिए भयंकर और दुस्तर संसार की रचना के पश्चात् वह "उपाय" की संरचना में लगता है ।

3.4.8.1. <u>सामान्य कथन :</u>

तुलसी ने भक्तिमूलक उपायों का कथन किया है : राम चरित गायन (वि.203/18); स्वरूप ध्यान (वि.63/9); शरणागति (वि.91/4); आत्मबोध (वि.122/4); अहंभाव का नाश (वि.122/5); योग वैराग्य (वि.167/4); द्विज गुरु हरि सेवा (वि.136/12); सत्संग (वि.121/5) आदि । त्यागराजु ने इन उपायों का कथन किया है : राम भजन (त्या.484/1); शरणागति (त्या.435/5); सत्संग (त्या.490/1); प्रभु कृपा (त्या.579/1) आदि ।

मुक्ति के लिए भेद-बुद्धि समाप्त होनी चाहिए और वह भगवान की करुणा से सम्भव है ।[3] हरि और गुरु की कृपा से विमल विवेक प्राप्त होता है और उसी से संसार का पार हो सकता है ।[4]

---

* प्रभवि. पृ.23 2 "नी मयमैगा निलनु एमनि ने दूरुदुनु" - त्या.139/2

3 बंधौ रघुपति करुना-निधान । जाते छूटै भव-भेद-ग्यान । - वि.64/1

4 तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु, बिमल बिबेक न होई ।
बिन बिबेक संसार-घोर-निधि, पार न पावै कोई ।। - वि.115/5

3.4.8.2 निषेधात्मक कथन :

दोनों ही कवियों ने भक्तिपरक उपायों का कथन किया है । तुलसी ने भक्त्येतर उपायों की निस्सारता के लिए कुछ वाक्य रचनाएं की हैं : केवल वाक्य ज्ञान से संसार को पार करना असम्भव है ।* योग, यज्ञ, जप, तप, वैराग्य और तीर्थ यात्रा के भव-सागर को पार जाना उसी प्रकार असम्भव है जैसे रेत की रस्सी से हाथी को बांधना ।[2]

3.4.8.3. आलंकारिक रचना : रूपक :

दोनों कवियों ने संसार और मुक्ति के उपाय को आलंकारिक रचना में बांधा है । नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

भव=सागर	⟷ नाव	⟵	चरण	(वि.64)
	⟷ बोहित	⟵	नाम	(वि.173; त्या.55।)
	⟷ नाउ	⟵	संत	(वि.185)
भव=व्याल	⟷ रक्षक	⟵	उरगारियान	(वि.61।)
भव=रोग	⟷ दवा	⟵	रामचरण प्रेम	(वि.81।)
		⟵	भक्ति	(त्या.58)
भव=संनिपात	⟷ दवा	⟵	कृपा	(वि.81।)
भव=सागर	⟷ सेतु	⟵	रामनाम	(वि.247)

3.4.8.4. आलंकारिक दीर्घतर रचना :

ऊपर के अभिप्राय को तुलसी ने दीर्घतर रचना भी प्रदान की है :

।। मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउं गाउं कर भूला रे ।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ।।[3]

---

* वि.123/2 2 वि. 129/3 3 वि.189/5

2) द्वैतमूल, भयसूल, सोक-फल, भवतरु टरै न टार्यो ।
राम-भजन-तीछन कुठार लै सो नाहिं कोटि निवार्यो ।।*

3) संसार-कांतार अतिघोर, गंभीर, घन, गहन तरु कर्म संकुल, मुरारी ।

वासना वल्लि खर-कंटकाकुल विपुल, निबिड़ विटपाटवी कठिन भारी ।।[2]

त्यागराजु ने इतनी दीर्घतर रचनाएँ तो नहीं की, किंतु कुछ मिल अवश्य जाती है, जैसे वे कहते हैं - हे राम । काँटों में उलझे हुए कपडे को आसानी से उठाया नहीं जा सकता । इसी प्रकार उस मन को आप की ओर लगाना बहुत कठिन है जो संसार में बुरी तरह उलझा हुआ है ।[3]

3.4.8.5 मन प्रबोध :

राम के संबंध में इतना कथन करने के पश्चात् कवि मन प्रबोध संबंधी वाक्यगत रचनाएँ करता है जो आज्ञावाचक या प्रेरणात्मक हैं । तुलसी मन को विश्वास दिलाते हैं कि राम ही इस भव-ताप से उद्धार कर सकते हैं ।[4] त्यागराजु भी मन से भगवान का ध्यान करने के लिए,[5] भजन करने के लिए[6] और उस पर विश्वास करने के लिए[7] कहते हैं ।

3.4.8.6 आत्म-बोध :

इस संबंध में तुलसी ने प्रश्नवाचक वाक्य रचना की है । यह मिश्र वाक्य की रचना भी है ।

जिसे -------- ।।
वह ----------?

---

* वि.202/2 2 वही.59/2 3 त्या.563/8,9
4 वि.197/3 5 त्या.58/5 6 वही.373/5
7 वही.565/8

इसमें चयन की स्थिति आती है । जिसे ब्रह्मानंद प्राप्त हो गया वह संसार में क्यों फंसेगा ? * इस प्रकार की प्रश्नवाचक रचना त्यागराजु ने नहीं की है । फिर भी चयन - सांसारिक सुख बनाम भक्ति - की स्थिति को अवश्य प्रकट किया है ।[2]

वर्तमान कालिक रचना के द्वारा तुलसी प्रबुद्ध योगी का उदाहरण देते हैं - द्वैत - बियोगी साधक भव की ओर से निश्चिंत हो जाता है ।[3] इसी स्वर में त्यागराजु एक वाक्य रचना करते हैं - सांसारिक सुख और भक्ति - दोनों का साथ रहना असंभव है ।[4]

त्यागराजु ने भविष्य वाचक निषेधात्मक वाक्य रचना करके संकल्प व्यक्त किया है - अब मैं धोखा नहीं खाऊँगा ।[5] तुलसी ने भी यह रचना की है । -/अब न नसैहौं / [6] " अब नष्ट नहीं करूँगा" । इसके पहले भूतकालिक रचना करके तुलसी ने पूर्व स्थिति का परिचय दिया है - / अब लौं नसानी / " अब तक नष्ट की " । त्यागराजु में भी इस रचना की झलक मिल जाती है ।

तुलसी ने भूतकालिक रचना के द्वारा प्रबुद्ध मन की उन्नति का परिचय दिया है । इस रचना में इस प्रकार के कथन हैं - मैंने तत्त्व को जान लिया [7], सांसारिकता का त्याग कर दिया[8], भजन में बाधक भव-बंधन को त्याग दिया [9] और प्रभु सेवा से भव-पाश हट गया[10]। भविष्य वाचक रचना के द्वारा यह भी प्रकट किया गया है कि अब भव सागर में तैरने का मन नहीं है ।[11] और इसमें डुबकी लगाने की इच्छा भी नहीं है ।[12]

---

* वि. 197 और भी द्रष्टव्य वि.116   2 त्या. 24
3 वि. 167   4 त्या. 55
5 त्या. 260/1   6 वि. 105/1
7 त्या.468/4   8 वही. 446/4   9 वही. 381/6
10 वही 55/2:   11 वही. 595/4   12 वही. 512/2

3.4.8.7 विनय :

भव विकल जीव जहाँ आत्म-बोध की रचना में प्रवृत्त होता है वहाँ प्रभु से विनय भी करता है। तुलसी ने विनय में तीन प्रकार की रचना की : भूतकालिक, भविष्य कालिक तथा मनुहार मूलक। पहली रचना के द्वारा तुलसी ने कहा - मोह-सरिता में तुमने ही डुबोया। * भविष्य रचना के द्वारा कहा - तुम्हारी कृपा से ही संसार पार हो सकेगा।[2] तीसरी रचना में तुलसी ने कहा - मेरे भव-भय को दूर कीजिए।[3]

त्यागराजु के मंतव्य तो इसी प्रकार के हैं, किंतु रचना शैली कुछ भिन्न हो गयी है। इसके तीन स्तर हैं - सामान्य कथन, प्रेरणार्थक या आज्ञावाचक तथा प्रश्नवाचक रचना। सामान्य कथन के द्वारा अनन्य विश्वास प्रेषित किया गया है, जैसे रक्षक आप ही हैं।[4]

संयुक्त वाक्य की रचना इस प्रकार की गयी है :

------------ इसलिए -------- ।।

मैं भवसागर को पार जाने में असमर्थ हूँ, इसलिए आपकी शरण में आया हूँ।[5]

दूसरी रचना में त्यागराजु ने कहा - मेरे दोषों को न देखकर मेरी रक्षा करो।[6]

प्रश्नवाचक रचना के द्वारा विनय को बहुत तीव्र और अपनत्व पूर्ण बनाया गया है। दूसरी रचना का प्रश्नवाचक रूप यह रूप बना - कपटी की रक्षा कैसे करेंगे ?[7] निषेधात्मक प्रश्न रचना करके यह कहा गया - आपमें मेरा अनन्य विश्वास है, रक्षा को आयेंगे की नहीं ?[8] फिर एक शिशु सुलभ प्रश्न करते हैं कि आपके मन में कृपा क्यों नहीं जगती ?[9] अंत में भूतकालिक

---

* वि. 188/3 | 2 वही. 141/6 | 3 वही. 189/5
4 त्या. 483/7 | 5 त्या. 431/3 | 6 वही 484/3
7 वही 56/2 | 8 वही. 471/3 | 9 वही. 110/4

और प्रश्न वाचक वाक्यों की रचना करके त्यागराजु कहते है -- अब तक तो उपेक्षित किया है, क्या अब भी ऐसा होगा ? *

तुलसी ने एक भंगिमा अवश्य प्रकट की है। विनय के स्वर को संसार के प्रति संबोधन की रचना में बदल दिया है :-

" मैं तोहि अब जान्यो संसार ।
बाँधि न सकहि मोहिं हरि के बल, प्रकट
कपट- आगार ।। [2]

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि विनय की संरचना में त्यागराजु ने शैली रचनागत भंगिमा का वैशिष्ट्य तुलसी की अपेक्षा अधिक दिखलाया है । शेष रचना में प्रवृत्तिगत साम्य स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है ।

3.5 कर्म (= भाग्य) : प्रभाव और उपाय :

3.5.1 संज्ञा रचना :

दोनों आलोच्य कवियों के गीत-काव्य में कर्म के वाचक कुछ शब्दों का प्रयोग हुआ है : / करम-कलाप/ (वि.184) , /सत्कार्य/ (त्या.316) और /दुष्कर्म/ (त्या.115) ।

3.5.2 प्रस्तुत - अप्रस्तुत रचना :

तुलसी ने कर्म + अप्रस्तुत की रचना में इन उपमानों का प्रयोग किया है : "जाल" (वि.173) ; "कपीस" (वि.181) ; "कीच" (वि.245) "तरु " / तरु कर्म संकुल/ (वि.59); " कोल्हू" (वि.143) ; "डोरी" (वि.98), "चोर" (गी.~~2/12~~ 2/12) तथा (/निगड/ "बेडी" (वि.76)

---

* त्या. 49/3

2. 188/1

त्यागराजु ने इन उपमानों का प्रयोग किया है : / ग्रहमु/ " ग्रह" ≬ त्या• 231≬ और /ज्वलनाब्धि/ " अग्नि समुद्र" ≬ त्या•454≬ । इस प्रकार त्यागराजु ने रचना को अलंकृत तो किया है, किंतु तुलसी की अपेक्षा कम उपमानों का प्रयोग किया है ।

दोनों की रचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि जीव कर्म के जाल में फँसा हुआ है । उसकी साधना इससे मुक्त होने की है ।

तुलसी ने कुछ उपमानों के आधार पर सांग रूपकों की भी रचना की है, जैसे चोर के आधार पर यह रचना की गयी है - " करम-चोर नृप -पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो " । * कर्म रूपी डोरी का भी विस्तार किया गया है । इस की गाँठ स्वयं जीव अपने आप लगाता है -- " अपने करनि गाँठि गहि दीन्ही " ।[2] कर्म को डोरी की गाँठ को ब्रह्म भी लगाता है और उसमें सभी फँस जाते हैं ।[3] " कर्म-कीच चित सान्यो " [4] लिखकर कीच उपमान का विस्तार किया गया है । यह कीच " होइ न बिमल बिबेक नीर बिनु" ।[5]

3•5•3 संबंध कारकीय रचना :

कर्म के पश्चात् संबंध कारक चिह्न आता है या उसको द्योतक शून्य रहता है । तत्पश्चात् अन्य संज्ञा रहता है : कर्म + का + मार्ग ≬ वि•9≬ ~ फल ≬ वि• 173; त्या• 224≬ ~ मल ≬ वि•261≬ ~ परिताप ≬वि•184≬ ~ कांड ≬ त्या•392≬ ~ मर्म ≬ त्या•565≬ ~ बंधन ≬ त्या•454≬ ।

3•5•4 विशेषणमूलक पदबंध :

विशेष + कर्म रचनावाले पदबंध भी तुलसी के गीत-काव्य में रचे गये हैं : /कुटिल करम / ≬वि•103≬, "/निज करम जाल / ≬वि•136≬ ;

---

* गी• 2/12/3 　　 2 वि• 136/3

3 जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करम की डोरी । - वि•98/2

4 वही• 88/3 　　 5 वही• 88/3

/करम जड़/ §वि.76§, /करतब कलिमलपील/ §वि.261§, /नानाबिधि/ §वि.81§ और /प्रबल करम की डोरी / §वि.98§ ।

त्यागराजु ने भी सविशेषण पदबंध रचना की है : / कर्म मे बलवंतमु/ " कर्म ही बलवान " § त्या. 152§, /तोलिकर्ममु/ "पूर्व कर्म " §त्या.62§, /संचित कर्ममु/ § त्या.291§ तथा / पलुविधि कर्मबुलु " / " नाना प्रकार के कर्म " § त्या.565§ ।

3.5.5 द्वन्द्व रचना :

कर्म तथा अन्य शब्द को द्वन्द्व सामासिक रचना में भी लाया गया है : / करम धरम/ § वि.236§, /काल-सुभाव-करम/ § वि.222§ और /करतब कलि मल / § वि.261§ । यह रचना केवल तुलसी में मिलती है ।

3.5.6 कर्म की निस्सारता :

जहाँ तुलसी के अनुसार सारे कर्म, धर्म और श्रम भगवान के बिना "राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो "है* वहाँ त्यागराजु ने बताया है कि राम की कृपा के बिना कर्मकांड का प्रयोजन नहीं है ।[2]

3.5.7 भाग्य :

कर्म और भाग्य दोनों कवियों की रचनाओं में साथ-साथ प्रयुक्त हुए है । कहीं-कहीं दोनों एकार्थक ही प्रतीत होते है । इसके लिए दोनों ने प्राय: समान रचनाएँ प्रयोग की है ।

3.5.7.1 संज्ञा रचना :

दोनों के गीतों मे भाग्यवाची शब्द ये आये है : /विधि/ §गी.2/67; प्रभवि. पृ.24§; / बिधाता/ §गी.2/51§ ; /व्रात/ "भाग्य" §त्या.91§ ;

/ललाट लिखित / (त्या.352). /भाग्य/ (प्रभवि. पृ.10); /प्रारब्धम्/ (त्या.358) ; / नुदुटिव्रात/ " ललाट लिखित " (त्या.60) और / तलव्रात / " ललाट लिखित " (त्या.90) ।

3.5.72 भाग्य के उदाहरण :

तुलसी ने राम के वनवास का उल्लेख किया है । * कौसल्या कैकेई को नहीं, राम वनवास के लिए विधाता की कुटिलता का संकेत करती है ।[2] इस उदाहरण के आधार पर एक सामान्य कथन भी किया गया है - " बिधि को न बसाइ उजारो " ।[3] यह कुटिल विधाता का ही कार्य है कि " सिरिस-सुमन- सुकुमार मनोहर बालक बिंध्य चढाए " ।[4]

3.5.7.3 निवबच उपाय :

(क) विनय : रामकृपा बनाम कर्म फल:

कर्म के दुस्सह त्रास में जलते हुए तुलसी ने राम को पुकारा और उन्होंने देखा कि राम ने उसे मुक्त कर दिया - " लीन्हों छीन दीन देख्यो दुरित दहत हो " । [5] एक स्थान पर वे भाग्य के चक्र को दोष देते हुए कहते है कि राम लक्ष्मण और सीता में मेरी दृष्टि लगी रहती है - " तदपि न मिटत दाह या उर को, बिधि जो भयो बिपरीत " म [6]

त्यागराजु ने कर्मों के संबंध में कुछ विशेष संरचनाएँ की हैं । उनका विश्वास है कि पहले किये हुए कर्मों के फल से बचना सम्भव नहीं है ।[7] पहले कर्मों के अनुसार ही अब फल मिल रहा है । पूर्व कर्म के बंधन से ब्रह्मा भी

---

* गी. 2/67/1,2

2 वही 2/63/1

3 वही 2/66/2

4 वही 2/88/3

5 वि. 76/2

6 गी. 2/53/2

7 त्या. 479/7

मुक्त नहीं हो सके । * लक्ष्मी भी अपने को इससे मुक्त नहीं पाती ।[2]

त्यागराजु का विश्वास है कि कर्मों के फल से मुक्त होने के लिए राम के दर्शन करने के लिए चलना होगा ।[3] दूसरी ओर मन को संबोधित करके वे कहते हैं कि सब कर्मों को भगवान हरि को समर्पित करके उनका भजन करो - " कर्ममु हरि कि नोसगि सत्कार्यमुलदुप्पोगि भजरे रघुवीर " ।[4] वे तुच्छ मानवों की स्तुति से विरत होकर इसके लिए राम की ओर उन्मुख हुए हैं । [5] कभी-कभी कवि को ऐसा अनुभव होता है कि भगवान की शरण में जाने पर भी कर्म का बल क्षीण नहीं होता ।[6] कभी उसे संदेह भी होता है कि यह कर्म का बल है या भगवान की ओर से ही देर हो रही है ? [7] कवि को विश्वास है कि जीवन कर्म के अनुसार चलता है, भगवान को दोष नहीं देना चाहिए ।[8]

फिर भी अत्यंत सामीप्य का अनुभव करते हुए त्यागराजु भगवान से कहते हैं कि मेरे दुष्कर्मों को समाप्त करने की बारी आयी है तो आप कहाँ छिप गये ? [9] क्यों मेरी पीडा की पुकार को आप अनसुना कर रहे हैं?[10] कर्म और भगवान की कृपा में एक द्वन्द्व कवि ने किया है । कवि ने कहा - हे भगवान । यह कहो कि मेरा कर्म का फल ही ऐसा है तो तुम्हारे दासों के भी दास होने का परिणाम क्या हुआ ? [11] अंततः कवि को यह विश्वास है कि

---

* प्रभवि : पृ. 24
2 वही : पृ. 6
2 त्या. 166/1,2
4 वही. 376/8
5 वही. 291/4
6 वही. 152/3
7 वही. 459/10
8 त्या. 287/3
9 वही. 115/6
10 वही. 90/1,2
11 वही. 630

कर्मबंधनों की अग्नि रूपी समुद्र से पार जाने के लिए राम-कथा ही एक नाव है :-

"रामकथा सुधारसपानमोक राज्यमुजेसुने
कर्मबंध ज्वलनाब्धि नावमे " । *

3.6 जैविक संरचना और तन :

तन भौतिक अणु-परमाणुओं का वह संघटन है जो जीव को अभिव्यक्त करता है और देश कालगत परिवर्तनों की प्रक्रिया में आता है । शैशव, यौवन, जरा और मरण इस स्थूल संरचना के कालगत धर्म है । यह पंच तात्विक संरचना पंचमहाभूतों से संबंधित पांच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाह्य जगत को मानसिक संरचना में भी ढालता है । यही तटस्थ भौतिक संरचना राग-द्वेषमय होती है । यही अन्नमय कोश का सौंदर्य है । अन्नमय कोश केन्द्र सौंदर्य की इन भौतिक छवियों के साथ जो संबंध-सूत्र घटित होते हैं उनमें चेतना विराम ले सकती है, किंतु जीव की गति का यह अंतिम सोपान नहीं है । राम के प्रति देह का समर्पण ही शरीर की अंतिम गति है ।

3.6.1 संज्ञा संरचना :

दोनों कवियों ने तन (वि.102. त्या.141), देह (वि.176, त्या.28), शरीर (वि.135), गात (गी.1/51), /मेनु/ " शरीर" (त्या.201), /ओल्लु/ "शरीर" (त्या.114) जैसे संज्ञा शब्दों का प्रयोग किया है । तुलसी और त्यागराजु दोनों की ही दृष्टि से ही तन भगवान का दिया हुआ है । तुलसी ने " तनु तोहि दियो " (वि.135) लिखा तो त्यागराजु ने भी कहा कि यह शरीर तुम्हारा ही है - " ई तनुवु नीदेश " (प्रभवि.की.32) ।

* त्या. 454/3

3.6.2 संज्ञा पदबंध :

तुलसी ने शरीर के लिए कुछ विशेषणों का प्रयोग करके विशेषण-मूलक संज्ञा पदबंधों की रचना की है, जैसे " नरतनु" ﴾वि.202﴿ । अन्य विशेषण ये हैं : " दुरलभ " ﴾वि. 83﴿; "सुर दुरलभ " ﴾वि.201﴿, " अमर-अगम" ﴾वि.84﴿ , " साधन धाम" ﴾वि.102﴿, "ग्यान भवन" ﴾वि. 114﴿, " सुंदर " ﴾वि. 135﴿; " कोमल " ﴾वि.136﴿ आदि । इन विशेषणों के द्वारा शरीर का महत्वांकन किया गया है । इसके अतिरिक्त कुछ लंबी रचनाएं भी की गयी हैं - " हेतु जो फल चारिको " ﴾वि.135﴿ । किंतु इस प्रकार के विशेषण मूलक महत्वांकन त्यागराजु के गीतों में नहीं मिलता। तुलसी ने यहाँ तक कहा कि इस शरीर से ही परम पद की प्राप्ति होती है। * इस प्रकार का शरीर राम ने ही दिया है । इसके लिए कवि उनके प्रति कृतज्ञ है :-

" हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन - धाम बिबुध - दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि
दीन्हों ।। [2]

त्यागराजु ने इस कृतज्ञता को चाहे मुखर न किया हो, किंतु इसकी स्वीकृति व्यंजित अवश्य की है ।

विशेषणों का दूसरा वर्ग शरीर की नश्वरता या अनित्यता को प्रकट करता है - " काल ग्रसित यह देही " [3]। त्यागराजु ने भी शरीर की अनित्यता पर बल दिया है : " अस्थिरमु " ﴾ त्या.114﴿ ; /सततमु गादु/ " नित्य नहीं है " ﴾ त्या. 150﴿ आदि । इसको उन्होंने बुलबुले से उपमित किया है - " नीर्बुग्ग " ﴾ त्या.58﴿

---

* वि. 135/1   2 वही 102/1

3 वि. 126/4

इसके अतिरिक्त तुलसी ने शरीर की विकृति के सूचक विशेषण पदबंधों की रचना भी की है : " रोग बस तनु " ॥ वि•252॥ ; " कृशगात " ॥गी•5/40॥, "दीन मलीन छीन तनु " ॥ कृ•गी•35॥, " व्याधि विकल तन " ॥ वि•195॥, " तनुपातकी" ॥वि•170॥ आदि । त्यागराजु ने भी शरीर के रोगों का कथन किया है -- / ओल्ल रोगमुल कोल्लदगल " शरीर में रोग अत्यंत लगने पर " ॥ त्या•114॥ । त्यागराजु ने इस प्रकार के पदबंधों की बहुत सीमित रचना की है ।

तुलसी ने शरीर को " सप्त धातु निर्मित " ॥ वि•203॥ कहकर स्थूल रचना को स्पष्ट किया है । त्यागराजु ने धातुमय शरीर की कल्पना नहीं की ।

तात्पर्य यह है कि तुलसी ने शरीर संबंधी विशेषण मूलक रचना के द्वारा उसकी द्वन्द्वात्मक संरचना को प्रकट किया है । त्यागराजु ने इस द्वन्द्वात्मक संरचना का संकेत तो किया है, किंतु इस का विस्तार तुलसी के समान नहीं किया ।

द्वन्द्वात्मक स्थिति को तुलसी ने संबंधी और नित्य संबंधी वाक्य रचना के द्वारा भी स्पष्ट किया है : जो -------- । सो -------- ।। इसके द्वारा यह बतलाया गया है कि इसी शरीर को धारण करके राम के प्रति भक्ति-भावना भी रखी जा सकती है और पाप भी किये जा सकते हैं :-

" जो तनुधरि, परिहरि सब सुख, भये सुमति राम-अनुरागी ।
सो तनु पाइ, अघाइ किये अघ, अवगुन-उदधि अभागी ।। " *

तुलसी ने दिव्य देह की रचना भी की है -

राम का चरण स्पर्श करके अहल्या ने दिव्य देह धारण की जिसका सौन्दर्य त्रिभुवन में छा गया ।[2]

---

* वि• 194/2

2 गी• 1/58/1

त्यागराजु ने यह कल्पना तो नहीं की, किंतु ब्रह्मानंद से रहित शरीर को भूमि के लिए भार अवश्य कहा है - " ब्रह्मानंदसागर मीदनि देहमु भू भारमे राम । " *

3.6.3 आलंकारिक रचना :

शरीर तथा उसके धर्म की आलंकारिक रचना भी तुलसी ने की है । " कृष्ण गीतावली " में तुलसी ने शरीर को सरोवर मानकर एक रूपक की रचना की है : शरीर = तडाग ; बल = जल ﴾ जो विरह के कारण सूखने लगा﴿ ; कुरूपता = काई ﴾ विरह के कारण﴿ ; प्राण = मीन ﴾ विरह के कारण दुर्बल﴿ ।[2] विरह के संदर्भ में ही शरीर को रूई जैसा बतलाया है जो विरह की अग्नि में इसलिए नहीं जलता कि आँखों से आँसू बरसते रहते हैं । [3] यह आलंकारिक संरचना भी लीला संदर्भीय है जो त्यागराजु में नहीं मिलती । किंतु सामान्य रूप से आलंकारिक रचना की अवश्य गयी है । त्यागराजु ने एक स्थान पर कहा है कि यह शरीर तुम्हारा ﴾ भगवान का ﴿ मंदिर है - तनुवे नी कनुवैन सदनमौरा रघुनाथ " ।[4]

जहाँ तक विरह संदर्भ का संबंध है त्यागराजु ने इस संदर्भ में शरीर को रखा अवश्य है, चाहे रचना आलंकारिक न हो । उन्होंने लिखा है - तुम से ﴾ भगवान से ﴿ विमुक्त होकर मेरा शरीर आधा हो गया है ।[5] इसमें अत्युक्ति या अतिशयोक्ति की झलक है ।

3.6.4 शारीरिक क्रिया :

3.6.4.1 विधि परक :

जीव ने अनेक शरीर संबंध स्थापित किये जो शरीर के दाहक हैं ।[6] अनेक विषयों का अनुभव किया, उनको सुना और देखा ।[7] भूषण, पट, सुंदरी

---

4 त्या. 336/2 उपनिषद् में भी कहा गया है - " देहो देवालय प्रोक्तः "

5 प्रभवि. की. 23/14 6 वि. 176/2 ; त्या. 114/-

7 वि. 169 * त्या. 28/1 2 कृगी. 29/4 3 वही. 56/3

आदि का संस्पर्श शरीर करता रहा ।* ईश्वर को भूल गया ।[2]

जीव की क्रिया के कर्म के रूप में भी शरीर आया है । जीव शरीर को राम का भजन न करके व्यर्थ गँवा रहा है - " दुरलभ तनु " वृथा गँवायो ।[3] दूसरी ओर वह शरीर भी है जो भगवान की लीला के आनंद में भागी होकर पुलकित हो जाता है । पुलकित होने की क्रिया मानसिक उल्लास का परिणाम है । त्यागराजु का शरीर भगवान की याद आते ही पुलकित हो जाता है ।[4] पुलक शास्त्रीय सात्त्विक भाव का तुलसी ने बहुत प्रयोग किया है । मानसिक प्रेम के कारण भी पुलक हो जाता है - " तनु प्रेम पुलक " (गी. 1/11) और राम के प्रति अर्पित क्रियाओं के भाग के रूप में भी पुलक हो सकता है । किसी के द्वारा अनुकूल बात सुनकर जो हर्ष होता है उसके परिणाम स्वरूप भी यह क्रिया व्यक्त होती है - गुरू के वचन सुनकर दंपत्ति (दशरथ - कौसल्या) का शरीर पुलकित हो गया ।[5] यह स्थिति जनक की हुई ।[6] कौशिक का शरीर भी पुलकित हो गया ।[7] किरात रमणियों का शरीर भी पुलकित हुआ ।[8] इसी प्रकार रामकथा के अन्य पात्रों की स्थिति भी वर्णित की गयी है । राम की आरती करते हुए कौसल्या के पुलकित शरीर की ओर तुलसी ने संकेत किया है :-

> " मुदित - मन आरती करै माता ।
> कनक - बसन - मनि वारि वारि करि पुलक प्रफुल्लित गाता ।। "[9]

भावावेश में शरीर पुलकित ही नहीं शिथिल भी हो जाता है ।[10] भावावेश के कारण शरीर की याद भी खो जाती है ।[11]

---

* वि. 170/4 2 वही. 200/1

3 वही. 199/6 *

4 प्रभवि.की. 28 इसके लिए तेलुगु शब्द भी प्रयुक्त हुआ है - /झल्लुमनेनु/ - त्या. 209/1

5 गी. 1/16/5 तथा 1/51/1 6 वही. 1/65/4

7 वही 1/66/1 8 वही. 2/42/3 9 गी. 1/110/1

10 वि. 135/4 केवट संदर्भ 11 गी. 5/47/2 तथा 2/40/2 सीता संदर्भ ।

त्यागराजु ने पुलकित होने की क्रिया को लीला संदर्भ के द्वारा स्फीत तथा मूर्त नहीं बनाया ।

शरीर अनेक दु:ख सहता है । तुलसी ने माता के गर्भ में पडे हुए शरीर के दु:ख सहने की क्रिया का विस्तृत वर्णन किया है । *

त्यागराजु ने भी कुछ क्रियाओं की ओर संकेत किया है । राम कृपा के अभाव में शरीर में संघर्ष होने लगता है ।[2] अनेक भौतिक विषयों की इच्छा करने से शरीर थक जाता है ।[3]

3.6.4.2 निषेधात्मक :

राम के चरण स्पर्श के लिए यह पापी शरीर कभी तरसा नहीं ।[4] भगवान तो ज्ञान भवन शरीर दिया, किंतु जीव इसके द्वारा भी प्रभु को नहीं जान पाया ।[5]

3.6.4.3 औचित्य संकेत :

तुलसी और त्यागराजु में यह रचना प्राय: समान ही है । तुलसीदास जी कहते हैं कि देह जन्य विकारों को त्यागना चाहिए ।[6] देहधारण करने का एक ही फल है -- परोपकार ।[7] इस शरीर के लिए किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए ।[8] भगवान के भजन के बिना शरीर व्यर्थ है और वह गधे, कुत्ते एवं गीदड के समान है ।[9] पंचेन्द्रियों के विषयों में लिप्त नहीं रहना चाहिए ।[10] तुलसी की इच्छा है कि सारे शारीरिक संबंध राम में केन्द्रित हो जायें ।[11]

---

* वि. 136/3 | 2 त्या. 215/1 | 7 वही.203/8
3 वही. 423/4 | 4 वि. 170/4 | 8 वही 126/4
5 वही. 114/3 | 6 वि.136/6 | 9 गी.2/74/4
10 वि. 203/6 | 11 वही. 103/4

त्यागराजु भी कहते हैं कि यह शरीर पाकर सीताराम नाम का ही स्मरण करना चाहिए । * साथ ही वे अपने शरीर को राम के लिए समर्पित कर देते हैं -- " देहमुलेल्ल नोसगेदमु " ॥ त्या.24/7॥ । वे अपने शरीर का विक्रय राम के लिए कर देते हैं ।[2] इससे यह व्यंजित होता है कि अपनी समस्त क्रियाओं के साथ शरीर को राम के प्रति समर्पित हो जाना चाहिए । शरीर राम की वंदनादि अर्चा सेवा के लिए ही है -- तनुवुचे वंदनमोनरिंचु चुन्नारा " ।[3] राम विमुख शरीर वास्तव में शरीर ही नहीं है ।[4] शरीर का पोषण त्यागराजु ने इसलिए किया है कि साध्य का भावन कर सके ।[5]

3.7 जैविक संरचना और इंद्रियां :

पंचतात्विक शरीर के साथ पंचेन्द्रियां संरचित है । पंचेन्द्रियां संरचित हैं । पंचेन्द्रियां ऐन्द्रिय विषयों के साथ मन का संबंध जोड़ती हैं । इन इन्द्रियों की प्रवृत्तिगत रचना भी द्वन्द्वात्मक है । एक ओर नश्वर-निस्सार सांसारिक विषय समूह है और दूसरी ओर ब्रह्मानन्द । इन्द्रियां दोनों ओर ही जा सकती हैं । उनकी सांसारिकता की ओर स्वाभाविक गति को निरुद्ध करके उनको आनंदोन्मुख करना ही साधना की चरम सिद्धि है । तुलसी और त्यागराजु दोनों की रचना का सार यही है । वैसे तो दोनों ने पंचेन्द्रियों का उल्लेख किया है, किन्तु मुख्य रूप से नेत्र, श्रवण तथा रसना की रचना की गयी है । इन तीनों की रचना पर आगे विचार किया गया है ।

3.7.1 नेत्रेन्द्रिय :

3.7.1.1. संज्ञा रचना :

तुलसी ने नैन ॥वि.142॥ नयन ॥गी.5/10॥, लोचन ॥गी.1/7॥ तथा चख ॥गी.1/18॥ शब्दों का ही अधिक प्रयोग किया है । त्यागराजु ने

---

* त्या.48 अ 2 "देवा नीकु नादु मेनम्मिनानु" - त्या.200/7

3 त्या.326/3 4 प्रभवि.की.14/2 5 त्या.46/5

/कन्नु/ "आँख" §त्या.526§, लोचन §त्या.516§ तथा /चूपुलु/ "दृष्टि" §त्या.281§ शब्द प्रयुक्त किये हैं । अर्थात् पर्याय प्रयोग की दृष्टि से दोनों कवियों में पूर्ण समानता है ।

3.7.1.2 आँख की क्रियाएँ :

तुलसी के गीत-काव्य में थे क्रिया धातुएँ आँख के साथ संबद्ध हैं : निरख- §वि.62§, बिलोक-§वि.104§, देख-§गी.2/4§, लख-§गी.1/70§, अवलोक - §गी.1/68§ तथा पेख-§गी.1/10§ ।

त्यागराजु ने इन क्रिया धातुओं का प्रयोग किया है : चूचुट-§त्या.516§ तथा कनुगोनुट-§त्या.137§ ।

तुलसी ने देखने की क्रिया के लिए मानवीकृत क्रिया का प्रयोग भी किया है, जैसे लोचन बहु प्रकार धावहिंगे, अर्थात् आँखें दौड़ेंगी §गी.5/10§ ।

3.7.1.3 आँख की क्रियाओं से संबद्ध कर्त्ता :

तुलसी ने इन क्रियाओं से संबद्ध कर्त्ताओं का उल्लेख इस प्रकार किया है : आँखें §गी.5/10§, महतारी §गी.2/4§, अयोध्या की स्त्रियाँ §गी.1/107§, जनकपुरी के लोग §गी.1/70§, खग-मृग-सुरभी §गी.1/54§, सुर §गी.1/46§, पुरजन, सचिव, राजा, राणी, सेवक, सखा, सहेली §गी.1/8§, सीता §गी.5/48§, विभीषण §गी.5/41§, भक्त §गी.1/40§, ब्रजवधू §गी.1/54§, अहीर §गी.1/54§ तथा तुलसीदास §गी.5/6§ । ये सभी राम के सौंदर्य अथवा लीला के दर्शक हैं । इन सभी को एक शब्द में भक्त कहा जा सकता है । कर्त्ता का विस्तार तुलसी ने पशु-पक्षियों तक भी किया है ।

तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु ने कम कर्त्ताओं का उल्लेख किया है : /कन्नुलु/ "आँखें" §त्या.469§, /ना चूपुलु/ "मेरी दृष्टियाँ" §त्या.281§,

कुमुदमु (त्या.42), ब्रह्मा (त्या.147) तथा /नेनु/ "मैं=त्यागराजु" (त्या.290) ।

3.7.1.4. आँख की क्रियाओं से संबद्ध कर्म :

आँखों संबंधी क्रियाओं के ये कर्म तुलसी के गीत-काव्य में मिलते हैं : छवि (वि.62), विकल महतारी (गी.2/4), खेलगृह की ओर जाते हुए राम (गी.1/107), राम-लक्ष्मण (गी.1/70), प्रान प्यारे (गी.1/68), कर-पद-मुख-चख (गी.1/18), आरज सुवन (राम) तथा सानुज सुभगतनु (गी.5/48), मधुर मूरति (गी.5/47), बिधु-बदन (गी.1/7) एवं पद पंकज (गी.5/31) । ये सभी कर्म राम संबंधी ही हैं जिनका प्रयोग विविध पात्रों के व्याज से हुआ है ।

एक स्थान पर तुलसी ने एक विरोध दिखलाया है । मेरी आँखें चराचर में व्याप्त भगवान को न देखकर युवतियों के सुंदर शरीर को देखती हैं :-

"जानत हौं हरि रूप चराचर, मैं हठि नैन न लावौं ।
अंजन-केस-सिखा जुवती तहँ, लोचन-सलभ पठावौं ।।"*

तुलसी कहते हैं कि मैं अपनी आँखों को राम के अतिरिक्त किसी को देखने से रोकूँगा ।[2]

त्यागराजु ने साध्य से संबंधित इन कर्मों का प्रयोग किया है : चरण, कर, बाहु, लोचन, बाण (त्या.516), हरि(प्रभावि.पृ.37) रूप (त्या.469), /सोगसु/ "सौंदर्य(त्या.290), /मेनु/ "शरीर" (प्रभावि.पृ.28), चक्कनि नी रूपमु /"तुम्हारा सुंदर रूप" (त्या.201) और /नाजूकुतनमु/[3] "कोमलता" (त्या.281) ।

तुलसी की ही भाँति त्यागराजु ने भी एक विरोध दिखलाया है - मेरी आँखें आप की ओर आकृष्ट नहीं होकर परस्त्रियों को देखने में लगी हैं ।[4]

---

* वि.142/2   2 वि.104/3   3 यह फारसी का शब्द है ।
4 त्या.46/3

3.7.1.5. क्रिया विशेषण :

तुलसी ने आँखों के साथ ये विशेषण जोडे है : /अघाइ/ "तृप्त होकर देखती है" §वि.62§, /बहु प्रकार/ "बहुत प्रकार से" §गी.5/10§, /प्रेमबस/ "प्रेम के वश होकर" §गी.2/4§, /तजि पलक/ §गी.7/7§ । त्यागराजु ने भी कुछ विशेषणों को इसके साथ जोडे है : /ओर/ "तिरछी" §त्या.46§, /उल्लमलर/ "हृदय प्रसन्न होते हुए" §त्या.281§, /चल्लगानु/ "शीतल होकर" /त्या.467/ ।

3.7.1.6 अश्रु सात्त्विक :

तुलसी ने काव्य शास्त्रोक्त अश्रु सात्त्विक का उल्लेख भी किया है - नयन जल §गी.2/4§, लोचन मोचत बारि §गी.2/35§ । त्यागराजु ने भी आँखों का अश्रु सात्त्विक होने का उल्लेख किया है : /बाष्पपूरित लोचनमुलु/ "जल युक्त लोचन" §प्रभवि.पृ.15§, /कनुगोन्नानंदमै कन्नीरु निंडेडिनि/ "दर्शन के आनद से आँसू भर गये" §त्या.228§ ।

3.7.1.7 आलंकारिक रचना :

आँखों की क्रियाओं के संबंध में तुलसी ने आलंकारिक रचनाएँ की है । विपर्यय पद्धति से उन्होंने "दरसनि की भूख" §गी.5/6§ की चर्चा की है । साथ ही रूपक रचना की पद्धति में उन्होंने कुछ समीकरण घटित किये है, जैसे - राम को देखना = "परमफल, परम बडाई" §वि.62§, /लाहु/ "लाभ" §गी.1/97§, "पुन्य पुन्य" §गी.1/10§, "जनमफल" §गी.1/9§ । साथ ही कुछ प्रसिद्ध उपमानों के आधार पर रूपक की दीर्घ रचना भी तुलसी ने की है । तुलसी के द्वारा प्रयुक्त उपमान ये है : चातक §गी.1/40§, चकोर §गी.2/6§ तथा भ्रमर §गी.1/18§ । सबसे अधिक आवृत्ति चकोर की है । चकोर का अप्रस्तुत रूप को शशि रूप में कल्पित करके ही चरितार्थ होता है ।

इसके आधार पर सांग रूपक की रचना हो जाती है । *

इसी प्रकार चातक का अप्रस्तुत रूप राम को बादल के रूप में कल्पित करके ही चरितार्थ किया गया है । भक्त रूपी चातक राम के शरीर रूपी बादल से बरसते हुए सौंदर्य जल का पान कर के आँखों की प्यास बुझाते हैं ।[2]

आँखों का भ्रमर अप्रस्तुत तभी सिद्ध होता है जब उपमेय कमल के समान हो । तुलसी ने रूपक की रचना इस प्रकार की है :-

"कर-पद-मुख-चख कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं ।"[3]

त्यागराजु ने आलंकारिक समीकरण के रूप में राम को देखना = /मुदमु/ "आनंद" {त्या.42} का उल्लेख किया है और आँख के लिए एक ही उपमान प्रयुक्त किया है : कुमुदमु । उन्होंने यह उपमान को सिद्ध करने के लिए उपमेय को चंद्रमा के समान बताया है - "रजनीशु जूचु कुमुदमु रीति राजिल्लु निनु जूड मुदमु" ।[4]

3.7.2 श्रवणेन्द्रिय :

तुलसी के गीतों में "श्रवण" {वि.82} तथा त्यागराजु के गीतों में "वीनुलु" {त्या.290} "चेवुलु" {त्या.289} शब्द आये हैं । आँख की अपेक्षा इसकी आवृत्ति भी कम है और इसकी रचना भी आँख की अपेक्षा बहुत सीमित है । कानों की क्रिया सुनना है । इस सकर्मक क्रिया के कर्म द्वन्द्वात्मक है - उचित और अनुचित । अनुचित कर्म तुलसी ने ये गिनाये हैं - "परनिंदा" {वि.82}, "परुष बचन" {वि.172}, "पर दोष" {वि.142} । त्यागराजु ने इस प्रकार की कर्म-रचना सुनने की क्रिया के साथ नहीं की है ।

उचित कर्मों की सूची इस प्रकार है : "राम कथा" {वि.205}, "कल वचन"

---

* इसके लिए द्रष्टव्य - गी.1/7/1, 1/16/2, 1/48/2, 2/6/2

2 गी.1/40/2 3 वही.1/18/1 4 त्या.42/4

§गी•2/4§, "सुजस" §गी•5/43§ । त्यागराजु ने भी इस प्रकार की रचना की है : "रामकथा" §त्या•290§, "राम नाम" §त्या•296§, /मधुर मैन पल्कुलु/" मधुर वाणी" §त्या•518§ ।

त्यागराजु ने कानों के द्वारा राम नाम या राम कथा सुनने की इच्छा प्रकट की है । * तुलसी कहते हैं कि मैं यही समझूँगा और दूसरों को भी समझाउँगा कि कानों का फलरामकथा है ।[2] वे संकल्प करते हैं कि मैं कानों से किसी और की चर्चा नहीं सुनूँगा ।[3]

त्यागराजु ऐसी रचना भी करते हैं कि जिससे यह प्रकट होता है कि कानों में राम की कथा भरी हुई है ।[4]

तुलसी ने निषेधात्मक रचना में यह कहा है कि परनिंदा सुनकर कान मलिन हो गये हैं,[5] किंतु अब दुस्सह वचन सुनकर नहीं जलूँगा ।[6]

तुलसी ने आँख की भाँति कान की क्रिया का भी लीलापरक संदर्भीकरण किया है । इस क्रिया के कर्ता कौसल्या, गिद्ध और विभीषण हैं । कौसल्या की स्थिति को द्वन्द्वात्मक बनाया गया है । जिन कानों ने राम के सुंदर वचन सुने थे, वे कान उनके वनगमन की बात सुन रहे हैं ।[7] जटायु राम से कहता है कि मैं आपके वचन सुन रहा हूँ ।[8] विभीषण राम का सुयश सुनकर शरणागत हुआ ।[9] वन-पथ की नारियों के सुन्दर वचन स्वयं राम सुनते हैं ।[10] यह लीला संदर्भीय रचना त्यागराजु ने नहीं की । क्योंकि उन्होंने राम की सभी लीलाओं को विधिवत गीतबद्ध नहीं किया है ।

---

* त्या• 518/2

2 वहीवि• 142/3

3 वही 104/3

4 त्या•290/3

5 वि• 83/3

6 वही 172/3

7 गी• 2/4/3

8 वही• 3/14/3

9 वही 5/43/1

10 वही 2/18/4

3.7.3 रसनेन्द्रिय :

" रसना " ⁅ वि. 237⁆ के अतिरिक्त तुलसी ने "जीह" ⁅ वि. 247⁆, "मुख " ⁅ वि. 217⁆ शब्दों का भी प्रयोग इस इंद्रिय के लिए किया है । इस इंद्रिय के साथ प्रायः बोलने की क्रिया का संयोग किया गया है । इस क्रिया के लिए कहना ⁅ वि. 274⁆, जपना ⁅ वि.247⁆, रटना ⁅ वि.129⁆ तथा गाना ⁅ वि. 237⁆ क्रियाये आयी है । इसके अतिरिक्त आस्वादन ⁅ वि. 170⁆ क्रिया का भी उल्लेख हुआ है ।

त्यागराजु ने भी / नालुका / " रसना " ⁅प्रभवि. पृ.18⁆ जिह्वा ⁅ त्या.55⁆ तथा /नोरु/ " मुख" ⁅ त्या.281⁆ का प्रयोग किया है । इसके लिए इन क्रियाओं का प्रयोग उन्होंने किया है – / पल्कुट / " " बोलना" ⁅ त्या. 281⁆, / वदरूट/ "बकना" ⁅त्या.46⁆, /पोगडुट/ "प्रशंसा करना " ⁅ प्रभवि. पृ.18⁆, / आडुट / " निंदा करना " ⁅त्या.325⁆ । यह रचना स्वयं द्वन्द्वात्मक है ।

दोनों ही कवियों ने कर्म की रचना द्वन्द्वात्मक की है । दोनों ने प्रतिकूल कर्म ये लिखा हैं – "काम कथा, वाद-विवाद, पर अपवाद" ⁅वि.237⁆; "निज दोष" ⁅वि.142⁆; एवं /उरि माटलु/ "गँवारू बातें" ⁅त्या.46⁆ । इसके विपरीत अनुकूल कर्म भी दोनों कवियों में मिलते हैं – "राम नाम" ⁅वि.247; त्या.58⁆; "हरि चरित" ⁅वि.237⁆ आदि । तुलसी ने कर्म की रचना को कुछ आलंकारिकता प्रदान करते हुए कहा कि राम की गुण गाथा मैं एक मुख से कैसे कह सकता हूँ ।* भगवान के उपकारों का कथन करोड़ों मुखों से भी नहीं किया जा सकता ।[2] इसी शैली में निज दोष की रचना भी की गयी है । यदि निगम, शेष और शारदा के द्वारा भी अपने दोषों का कथन कराऊँ तो भी वह पूर्ण नहीं हो सकता । तब एक मुख से अपने दोषों का कथन कैसे कर सकता हूँ ।[3] त्यागराजु ने भी कर्म की रचना इस शैली में की है ।

---

* वि.217/5   2 वही.102/2   3 वही.142/9

वे कहते हैं कि राम की महिमा का वर्णन करना वाणी को भी अगम है *
और ब्रह्मेन्द्रादि देवता भी राम के सौंदर्य को वर्णन करमें असमर्थ हैं ।[2]
इस प्रकार दोनों कवियों में पूर्ण साम्य दिखलाई पडता है ।

3.7.3.1 जिह्वा प्रबोधन :

दोनों ही कवि जिह्वा व्यापार को राम की ओर प्रेरित करने के लिए प्रबोधन के स्वर में भी गाते हैं । तुलसी संबोधन करते हुए कहते है - "राम जपु जीव" ।[3] तुलसी ने इस प्रबोधन को प्रश्नवाचक रचना में भी रखा है - "रुचिर रसना तू राम क्यों न रटत ?" ।[4] इसी प्रश्न शैली में त्यागराजु भी प्रबोधन करते हैं - /रामनाममु सेय सिग्गा ? / "राम नाम जपने में क्या शरम आती है ?"[5]

द्वन्द्वात्मक शैली में भी प्रबोधन किया गया है । तुलसी ने कहा - "वाद विवाद स्वाद तजि भजि हरि" ।[6] त्यागराजु ने भी कहा - /सारेकु नामस्मरण सेयक उरि माटलेल्ल नूरक वदरेटदुका ?" / "तू राम नाम न लेकर गँवारू बातें करने के लिए ही है क्या ?"[7]

तुलसी ने प्रबोधन करते समय राम जप के फल की ओर भी संकेत किया : "सुमिरत सुख सुकृत बढत, अध अमंगल घटत",[8] "राम नाम जपे जैहे जिय की जरनि"[9] और "भव-तरहि तिहूँ पुर तू जस पावहि" ।[10] त्यागराजु ने फल कथन करके प्रबोधन की रचना को पुष्ट नहीं किया है ।

अंत में तुलसी ने कहा कि यदि मैं यह कहूँ कि मैं किसी और का हूँ तो जीभ गल जाएगी ।[11] त्यागराजु ने राम नाम न कहने वाली जीभ को जीभ ही

---

* 3 वि.247/1   4 2 वही.129/1   5 त्या.58/4

6 ~~वही.129/1~~ वि.237/5   7 त्या.46/4

8 वि.129/1   9 वही.247/1

10 वही.237/5   11 वही.229/1

नहीं माना - "मालिमितो त्यागराजु ने लिन राममूर्ति नि लालिचि पोगडनि नालिकेले" ।* अन्त में तुलसी प्रतिज्ञा करते हैं कि "रसना और न गैहों" ।[2] त्यागराजु ने भी इसी में स्वर मिलाया है - "

"नोरेप्पुडु नी पेरे बलकनी" ।[3]

आलंकारिक शैली में भी तुलसी ने जिह्वा का प्रबोधन किया है । उसमें वाणी से कहा गया है कि तू सुंदर उक्तियों का हार बनाकर राम को पहना दो ।[4] एक और उक्ति इस प्रकार की गयी है : हे जीव नर मुख रूपी सुंदर मन्दिर में निवास करके उसको लज्जित मत करें ।[5] त्यागराजु ने इस प्रकार की रचना नहीं की ।

तुलसी ने गंगा जी से यह प्रार्थना की है कि अपने निर्मल जल के समान मेरी वाणी को पवित्र कर दें ।[6]

तुलसी ने षट्रस के संबंध में भी रसना का उल्लेख किया है ।[7]

3.8 जैविक संरचना और मन :

जीव की संरचना अन्नमय कोश से लेकर आनंदमय कोश तक फैलती है - अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनंदमय कोश । ये ही जैविक संरचना के पढ़ाव हैं । सभी पढ़ावों पर विविध संबंध बनते और बिगडते हैं । इस संरचना के केन्द्र में तुलसी और त्यागराजु ने तथा अन्य भक्त कवियों ने भी मन को माना है । इसीलिये मन की रूचियों के परिष्कार और मन की गति के संयम की चर्चा ही सबसे अधिक की गयी है ।

---

* प्रभवि. पृ.18
2 वि.104/3
3 त्या.281/10
4 वि.237/4
5 वही.237/2
6 वही.20/3
7 वही.179/3

मन ही अधोगति तथा उर्ध्व गति का कारण है । * मन को नाम और आख्यातपरक रचना का ही सबसे अधिक विस्तार किया गया है । सामान्य संज्ञापद संज्ञापदबंधों में ढलकर जीव को परिभाषित करते हैं ।

3.8.1. संज्ञा-संरचना :

दोनों आलोच्य कवियों के गीत-काव्यों में निम्नलिखित मन वाचक शब्द प्रयुक्त हुए हैं : मन (वि.24; त्या.401)~मानस (वि.1; त्या.375)~मदि (त्या.563)~मनमु (त्या.376); चित्त (वि.104; त्या.336); जिय (वि.136); हृदय (कृ.गी.28; त्या.75)~ हिय (कृ.गी.40)~हियो (गी.1/10); उर (कृ.गी.33; प्रभवि. को.44)~उल्लमु (त्या.309) ।

3.8.2. विशेषण मूलक पदबंध :

(क) कुत्सार्थक विशेषण :

तुलसी ने मन के साथ इन कुत्सार्थक विशेषणों का प्रयोग करके संज्ञा पद बंध की रचना की है : मलिन (वि.252), कुटिल (वि.211), अध-अवगुननि को कोसु (वि.159), मल ग्रसित (वि.185), गह्वर (वि.193), आधि-मगन (वि.195), काम-किंकर (वि.232), लालची (वि.232), काल-करम-बस (वि.161), काम लोलुप (वि.158), अनीतिरत (वि.143), मूढ़ (वि.87), विचारहीन (वि.115), सारहीन (वि.117), पापी (वि.117), मतिहीन (कृ.गी.55), अबुध (गी.1/73), असैले (गी.1/73), असुचि (वि.140), अभागी (वि.110), चपल (वि.220), कठोर (गी.6/19), घोर (गी.7/31), निठुर (गी.6/18), सठ (वि.81), भोग-निरत (वि.81) तथा असुचि (वि.140) ।

---

* कबहुँ मोहबस द्रोहरत बहु, कबहु दया अति सोई ।
कबहुँ दीन मतिहीन, रंकतर; कबहुँ भूप अभिमानी ।।
- वि.81/2,3

त्यागराजु के द्वारा प्रयुक्त कुत्सार्थक विशेषण ये हैं : चपल (त्या.358), /दुरात्मुडु/ "दुरात्मा" (त्या.334), /कपटात्मुडु/ "कपटीमन" (त्या.323), /शिलात्मुडु/ "कठोर मन" (त्या.320), गुण विहीन (त्या.385) और पामर (त्या.565) ।

(ख) महत्तार्थक विशेषण :

कुत्सार्थक विशेषणों की अपेक्षा महत्तार्थक विशेषणों का प्रयोग दोनों कवियों में कम ही मिलता है । तुलसी के विशेषण ये हैं : अति विमल (वि.142), रघुपति-भक्ति-बारि-छालित (वि.124), प्रेममगन (गी.1/4), मोद-मगन (गी.1/22), चतुर (गी.7/12), पावन (कृ.गी.28), बिशुद्ध (गी.1/30), निरमल (गी.7/3), मुदित (वि.83), आनंद मगन (गी.1/105), एक रस रूप (गी.1/64) आदि ।

त्यागराजु ने भी कुछ महत्तार्थक विशेषणों का प्रयोग किया है : निर्मल (प्रभवि.पृ.28), शुद्ध (त्या.580), स्थिर (त्या.336), दृढ़ (त्या.208) और विमल (प्रभवि.पृ.41) ।

3.8.3. अप्रस्तुत संरचना :

दोनों ही कवियों ने मन को स्पष्ट करने के लिए अप्रस्तुत संरचना की है । कुछ अप्रस्तुतों के द्वारा भगवदोन्मुख मन की व्यंजना की गयी है - चातक, चकोर, मोर । कुछ अप्रस्तुतों के द्वारा मन में राम के निवास की बात कही गयी है : कमल, कुमुद आदि । अधिकांश अप्रस्तुत मन की प्रकृति को प्रकट करते हैं - बंदर, लहरें आदि । नीचे दोनों कवियों के द्वारा प्रयुक्त उपमान प्रस्तुत हैं ।

(क) मन= मोर (कृ.गी.29), गयंद (गी.7/4), कुरंग (वि.168), पपीहा (वि.65), मीन (वि.102), मधुकर (वि.105), कपि (वि.158), कमल कुटीर (गी.1/54), कानन (गी.5/49), बिहंग (गी.7/33),

स्वान §वि.146§, कूकट §वि.168§, सेन §वि.70§ और पसु §वि.275§ ।
त्यागराजु ने भी कुछ अप्रस्तुत नियोजित किये हैं : /वनचर/ "बंदर" §त्या.5§, /चेलि/ "सखी" §त्या.445§, /कल्पभूज/ "कल्पवृक्ष" §त्या.464§, /दोंग/ "चोर" §त्या.453§, /एद्दु/ "बैल" §त्या.360§, /तामराकु नीरु/ "कमल पत्र पर का पानी" §त्या.140§, /वर चामीकर पीठमु/ "श्रेष्ठ कनक पीठ" §त्या.336§ तथा कनक पीठ § त्या.275§ ।

§ख§ हृदय = कमल § वि.244§, राजीव §~त्या.395§ अरविंद§त्या.5§~ अंबुज § त्या.3§, कुमुद § प्रभवि. पृ.42§ एवं कानन § त्या.178§ ।

§ग§ चित्त = कंचन § वि.105§, चकोर §गी.1/22§, चातक §वि.161§, पीपल का पत्ता § गी.1/69§ और / अललु/ "लहरें" § त्या.551§

§घ§ उर = पुर § गी. 1/97§ तथा नभ § गृगी.29§ ।

इस प्रकार मन की संरचना दोनों कवियों ने समान रूप से की है । तुलसी ने संरचना का कुछ अधिक विस्तार किया है । प्रवृत्तिगत समानता असंदिग्ध है ।

4. जीव की कोटियाँ : मानव वर्ग, मानवेतर वर्ग :

जीव के रूप अनंत है । इन सब रूपों को दो स्तरों पर देखा जा सकता है । पहला स्तर उस जीव का है जो मात्र मूल प्रवृत्तियों § से परिचालित न होकर मूल प्रवृत्तियों का बौद्धिक या विवेकपूर्ण परिष्कार करके क्रिया के उदात्त स्तरों का अन्वेषण करता है । इस कोटि में मानव की स्थिति है । दूसरा स्तर उन जीवों का है जो मूल प्रवृत्तियों से पूर्णतः बद्ध होकर और उन्हीं से प्रेरित होकर क्रिया व्यापार में संलग्न होते हैं । इस स्तर पर कीट, पतंग, पक्षी, पशु आदि की स्थिति है ।

ये दोनों कोटियाँ तुलसी और त्यागराजु के गीत काव्य में मिलती हैं । किंतु मानवेतर जीव-जंतु त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी के गीत काव्य में

अधिक विस्तृत परिप्रेक्ष्य रखते है । अप्रस्तुत रूप में इस जीव कोटि का उल्लेख तुलसी और त्यागराजु दोनों नेह ही किया है । इस रूप में इस जीव कोटि की क्रिया परक संरचना प्राय: घटित नही होती । इस पर अन्यत्र विचार किया जा चुका है । इस जीव कोटि का दूसरा विभाग वह है जिसमें राम से भक्त रूप में संबद्ध पशु-पक्षी आते हैं, जैसे जटायु, भालु, कपि, काकरूप जयंत आदि । इन दोनोंका उल्लेख भी दोनों ही कवियों ने क्रिया संरचना के साथ किया है । इनकी क्रियाओं की गति राम की ओर उन्मुख होती है । तीसरा विभाग उन पशु पक्षियों का है जो सामान्य रूप से प्रकृति में स्थित हैं और राम के लीला व्यापार के दर्शक भी है । उनकी क्रियायें इसी दर्शन से प्रेरित होकर आनंदाभिव्यक्ति से संबंधित रहती है । " गीतावली" में शुक, पिक, मयूर, मृग आदि की स्थिति इसी प्रकार की है ।

मानवेतर जीवों का यह विभाग त्यागराजु के गीतों में सक्रिय नही है । इनके द्वारा दर्शन-जन्य आनंदानुभूति का वातावरण विस्तृत नहीं है ।

4.1. संज्ञा संरचना :

4.1.1 जातिवाचक व्यक्तिवाचक : प्रगीत की ओर :

तुलसी और त्यागराजु की बहुमुखी कल्पना और अभिव्यक्ति की प्रविधियाँ मुख्यत: जीव पर केन्द्रित हुई हैं । जीव की संज्ञा संरचना में तत्ववाचक, जातिवाचक और व्यक्तिवाचक संज्ञाओं की संरचना एक विशेष पद्धति से हुई है । जीव की जातिवाचक संज्ञायें एक निश्चित वर्ग की सूचना देती हैं । यह जीव का सामान्य धरातल है । प्रगीतात्मक अभिव्यक्ति इस जाति वाचक या सामान्य धरातल से नहीं जुड सकती । इसलिए जीव के विविध स्तरों, वर्गों या कोटियों के कुछ प्रतिनिधि चुन लिये गये है । ये ही व्यक्तिवाचक संज्ञायें हैं जो प्रगीतात्मक संरचना को संभव और प्राणवान बना सकी है । साहित्य " सर्व सामान्य " के हृत्स्पंदनों का इतिहास नहीं है, वह "विशिष्ट " की रागात्मक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है । इस प्रकार जातिवाचक संज्ञा (सामान्य स्तर) —> व्यक्तिवाचक संज्ञा (= सामान्य

वर्गों के विशिष्ट प्रतिनिधि ‖ की रचना ही आलोच्य कवियों की जीव संबंधी संधारणाओं को उजागर करती है । स्रोत और समुद्र के बीच की प्रवाह दशा में जीव अनेक विकृतियों के द्वारा क्षुब्ध होता है और नये नये संबंध सूत्रों में बदलता चलता है । इस उलझन में वह मूल संबंध को विस्मृत कर देता है । इसी प्रवाह में जीव की कोटियाँ घटित होती है । इन्हीं कोटियों का रागात्मक विस्तार भक्ति गीतों में मिलता है ।

4.1.2 वर्गवाची शब्द :

4.1.2.1 मानव वर्ग :

4.1.2.11 मूल तथा व्युत्पन्न शब्द :

‖क‖ मूल शब्द :

मनुष्य के लिए तुलसी ने इन शब्दों का प्रयोग किया है : "नर" ‖ वि.20‖, "नारी" ‖ वि. 150‖, "तिय" ‖गी.1/5‖, "मनुज" ‖गी.5/10‖, " लोग " ‖ गी.1/63‖ और " जन " ‖ गी.2/14‖ । इस सूची के शब्दों में से त्यागराजु ने "नर" ‖ त्या.204‖,"नारी"‖ त्या.234‖ " मनुज " ‖ त्या.417‖ और " जन" ‖त्या.528‖ शब्दों का प्रयोग किया है । "लोग" तथा "तिय" जैसे शब्द हिन्दी क्षेत्र के स्थानीय शब्द हैं । इसलिए त्यागराजु ने इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया है । अन्य शब्द जो त्यागराजु में मिलते हैं, वे इस प्रकार है : "मर्त्य" ‖त्या.281‖ तथा "मानव" ‖ त्या. 394‖ । " मर्त्य" शब्द संस्कृत का प्राय: अप्रचलित तत्सम रूप है ।

‖ख‖ औपसर्गिक शब्द :

ऊपर की सूची के कुछ शब्द उपसर्ग की संरचना के साथ उपस्थित है । ये उपसर्ग प्राय: संस्कृत की पद्धति के और विशेषणमूलक है । इस संरचना में दोनों

ही कवियों ने सु- तथा दुः उपसर्गों का प्रयोग किया है : सु + जन = सुजन (वि. 139, त्या.508) और दुः + जन = दुर्जन (वि.40, त्या. 286) । इसके साथ ही त्यागराजु ने सोपसर्ग शब्द का लक्षणार्थक प्रयोग भी किया है : दुः + मार्ग = / दुमार्ग/ " =कुपथगामी " (त्या. 240) । त्यागराजु ने एक और रचना की है : सत् + जन = सज्जन (त्या. 170) । ये परस्पर विरोधी उपसर्ग दोनों कवियों की मूल संधारणा को प्रकट करनेवाले हैं : मानव अपने कर्मों के द्वारा सुजन भी बन सकता है और दुर्जन भी ।

(ग) संज्ञा पदबंध : विशेषण + जातिवाचक संज्ञा :

शुद्ध विशेषण + संज्ञा

मानव वाचक शब्द इस प्रकार के विशेषणों के विशेष्य बनते हैं । ये विशेषण प्रायः कुत्सार्थक है, जैसे तुलसी ने /नीच + नारि-नर/ (गी.2/45) का प्रयोग किया है । /नत-जन/ (गी.3/17) कह कर तुलसी भक्ति भाव से युक्त जन की ओर संकेत करते है । त्यागराजु ने भी इस विशेषण पदबंध का ज्यों का त्यों प्रयोग किया है ।*

तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु ने इस संरचना का अधिक प्रयोग किया है । कुछ उदाहरण ये है - /कोंचेपु नरुलु / " = लघु या हीन मानव " (त्या.291) । यह तो तेलुगु की प्रकृति की रचना हुई । अधिकतर त्यागराजु ने संस्कृत विशेषणों का ही प्रयोग किया है, जैसे -

आपन्न
दरिद्र
पतित
पामर
राजस
सकल

] + जन[2] ~ नर[3] ~ मनुज[4] ~ मानव[5]

---

* त्या413/4, 2 त्या. 475/3, 360/3, 12/14 3 त्या. 128/7
4 त्या. 277/1, 417/2 5 त्या.240/3

विपथन के रूप में इस संज्ञा पदबंध का रूप संज्ञा + विशेषण भी हो गया है, जिसका स्रोत संस्कृत ही है : / नर + अधम / = नराधम (त्या.525) ; /नर + वरूलु / = नरवरूलु (त्या.65) ; /नर + उत्तम / = नरोत्तम (त्या.483) । एक स्थान पर दो विशेषणों का प्रयोग भी हुआ है, जैसे / चंड + दरिद्र + मनुजुलु / = चंडदरिद्र मनुजुलु (त्या. 417) । तुलसी में यह संरचना नहीं मिलती ।

(घ) व्युत्पन्न विशेषण + संज्ञा :

संज्ञा + प्रत्यय = विशेषण + संज्ञा (विशेष्य), जैसे दोष दुष्ट + मानवुलु = दुष्ट मानवुलु (प्रभवि. 30) । इसी प्रकार लोभ + इ = लोभि + जनुलु (त्या. 314), माया + पु = मायपु + मानवुलु = कपटी मनुष्य " (त्या.278) । एक रचना यह भी है : संज्ञा + निषेधात्मक पदांश, जैसे / कोरमालिन / " = निकम्मा " + नरूलु (त्या.263) । यह रचना इस संदर्भ में तुलसी ने नहीं की ।

(ङ.) विशेषणार्थक संज्ञा + संज्ञा (विशेष्य) :

दो संज्ञा युग्म में से पहली संज्ञा विशेषण का काम करती है, जैसे /संत जनुलु / (त्या.41) । एक रचना में विशेषण + विशेषणार्थक संज्ञा + विशेष्य संज्ञा का सूत्र भी मिलता है : / निज + भक्त जनुलु / (त्या.115) ।

तुलसी ने भी इस प्रकार की रचना की है, जैसे परिजन(गी.2/17), पुर जन (गी.1/8), पुर नारि (गी.1/4), कौतुक जन (वि.147); जोगि जन (कृ.गी. 53), सुजन समाजी (कृगी.61) । प्राय: यह रचना संबंध कारकीय है । इसी प्रकार एक दीर्घतर रचना भी है : /कृपा + पात्र " = कृपा के पात्र " + जन / (वि. 119) ।

इसी प्रकार की कारकीय संरचना त्यागराजु में भी मिलती है, जैसे / कलि + नर § त्या· 146§ ~ मानव § त्या·114§~मनुजुलु § त्या·449§ / " = कलि युग के मनुष्य " । त्यागराजु ने विशेष्य की भी संयुक्त रचना की है, जैसे {कलि + §नर + अधमुलु = नराधुमुलु§} " = कलियुग के अधमनर " § त्या·14§ ।

§च§ संज्ञा + वाला §लुप्त§ + संज्ञा §विशेष्य § :

/ अविवेक + वाला + मानवुलु / " = अज्ञान वाले मनुष्य " § त्या· 382§

§छ§ विशेषण + संज्ञा + वाला §लुप्त§ + संज्ञा §विशेष्य§ :

इसके उदाहरण ये हैं : निर्मालि + आत्मा + वाला + जनुलु §त्या·289§ हीन + जाति + वाला + मर्त्युलु § त्या·339§ ।

§ज§ संज्ञा + क्रिया + वाला + संज्ञा § विशेष्य § :

/अवनि + पाल + वाला + नरुलु / " = भूमि का पालन करनेवाला मनुष्य " § त्या· 534§ ।

§झ§ विशेषणार्थक संज्ञा + संज्ञा + वाला + संज्ञा §विशेष्य§ :

/ पाप + मति + वाला + नरुलु / "= पाप बुद्धि वाला मनुष्य" § त्या· 414§ ।

§ § विशेषणार्थक संज्ञा + §के§ + संज्ञा + /से/ + निषेध + संज्ञा§विशेषण§ :

/परलोक §के§ + भय + §से§ + रहित + नरुलु/ " = परलोक के भय से रहित नर " § त्या·49§ ।

(ट) संज्ञा (से) + विशेषण + संज्ञा (विशेष्य) :

/ मद (से) + अंध + नर / " = अभिमान से अंधा मनुष्य " (त्या.2) , / क्रोव्वुगल नरु लु/ " = मद से युक्त मनुष्य " (त्या.449)। यह करण कारकीय रचना है ।

(ठ) संज्ञा (में) + भूतकालिक कृदंत + संज्ञा (विशेष्य)

/ शरणागत जन / " = शरण में आया हुआ मनुष्य " (त्या.343) । यह अधिकरण कारकीय रचना है ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मानव की रचना प्रक्रिया त्यागराजु के गीतों में तुलसी की अपेक्षा विविध और विस्तृत है । मानव का रचनात्मक संदर्भ जहाँ तुलसी में विविध है वहाँ तुलसी की भाँति त्यागराजु ने अधम नर का बिंब भी प्रस्तुत किया है और उन्नत नर का भी । यह प्रवृत्ति दोनों कवियों के गीत साहित्य में मिलती है । फिर भी अधमनर का बिंब गणना की दृष्टि से दोनों कवियों में अधिक आया है ।

4.1.2.12 जातिवाचक संज्ञाएँ = व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ :

(क) संबंध सूचक :

यह अवतरित साध्य के संबंधों की द्योतक संज्ञाओं की रचना है । संबंध सूचक जातिवाची संज्ञाओं में सबसे पहले माता और पिता आते हैं ।

तुलसी ने " मातु" (कृगी.5) ; माँ (गी.1/8) ; "माता" (कृ.गी.1). "मैया " (कृ.गी.4), "माई" (कृ.गी.25), "महतारी" (वि.174), "जननी" (कृगी.13) जैसे जातिवाचक संज्ञा शब्दों का प्रयोग किया है । इसी प्रकार त्यागराजु ने /तल्लि/ " = माता" (त्या.36) का प्रयोग किया है । किंतु ये जातिवाचक संज्ञा शब्द संरचनात्मक संदर्भ में

व्यक्तिवाचक ही है । अर्थात् माता = कौसल्या अथवा कैकेई या सुमित्रा अन्यथा यशोदा । त्यागराजु ने एक और जातिवाचक संज्ञा /कलिकि/ " = नारी " ≬ त्या•17≬ शब्द का प्रयोग भी किया है । इसी प्रकार तुलसी ने यशोदा के लिए एक अन्य जातिवाचक संज्ञा" महरि" ≬कृ•गी•7≬ शब्द का प्रयोग किया है । यह जातिवाचक संज्ञा शब्द भी प्रयोग की दृष्टि से व्यक्तिवाचक ही है ।

इसी प्रकार दशरथ के लिए तुलसी ने "पिता" ≬वि•152≬, " पितु" ≬ गी•1/11≬ जैसे जातिवाचक संज्ञा शब्दों का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने तेलुगु शब्द / तंड्रि / " = पिता " ≬ त्या• ≬ और संस्कृत के " जनक " ≬ त्या• ≬ एवं "पितृ" ≬त्या• ≬ शब्दों का प्रयोग व्यक्तिवाचक अर्थ में किया है । जिस प्रकार त्यागराजु ने पिता के लिए स्थानीय शब्द का प्रयोग किया है, उसी प्रकार तुलसी ने नंद के लिए " महर " ≬ कृ•गी•48≬ शब्द का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त त्यागराजु ने दशरथ के लिए ≬ नृवर / " = राजाओं में श्रेष्ठ " ≬ त्या•1 ≬ का प्रयोग किया है । तुलसी ने इसी प्रकार " नरपति " ≬गी•1/6≬; "भूप" ≬गी•1/15≬ "नृपति" ≬गी•1/51≬, "राज" ≬ वि•100≬ ; " राउ" ≬गी•2/57≬≬ जैसे जातिवाचक शब्द भी दशरथ के लिए प्रयुक्त किये है ।

तुलसी ने जातिवाचक संज्ञा की संबंध कारकीय रचना भी प्रयुक्त की है, जैसे /नृप- घरनि/ " = राजा की पत्नी " ≬ गी•1/27≬ । इस रचना में पहला शब्द व्यक्तिवाचक भी हो सकता है : / दसरथ - घरनि / " " = दशरथ की पत्नी " ≬ गी•1/27≬ एवं / कोसल सुता / " = कोसल की बेटी " ≬ वि•43≬ । दोनों जातिवाचक संज्ञाओं की द्वन्द्व सामासिक रचना भी तुलसी ने की है, जैसे : / राउ - रानी / " राजा-रानी = दशरथ-कौसल्या" ≬गी•1/8≬ । ये रचनाएं त्यागराजु में नहीं मिलती ।

कैकेई के लिए जातिवाचक संज्ञा की औपसर्गिक रचना का प्रयोग तुलसी ने किया है, जैसे " कुमातु" ≬ वि•100≬ तथा " कुभामिनि" ≬गी•2/37≬ ।

त्यागराजु ने इस रचना का प्रयोग नहीं किया है ।

भाई : जातिवाचक संज्ञा व्यक्तिवाचक संज्ञा :

जातिवाचक संज्ञा		
पर्याय	तु.	त्या.
भाई	गी. 2/46	x
भैया	गी. 1/89	
तात	गी. 2/72	x
बंधु	गी. 1/46	x
अनुज	गी. 1/43	त्या. 87
सोदर	x	त्या. 322
तम्मुडु	x	त्या. 25

→

व्यक्तिवाचक संज्ञा		
पर्याय	तु.	त्या.
विशेषण के द्वारा (संख्या वाचक)	✓	x
संख्यावाचक बहुवचन प्रत्यय के द्वारा	x	✓
नाम कथन के द्वारा	✓	✓

यह जातिवाचक संज्ञा के व्यक्ति वाचक संज्ञा में संक्रमित होने का क्रम है । तुलसी /चार्यो/ (गी. 1/8), /दोउ/ (गी. 2/46/ जैसे विशेषणों के द्वारा व्यक्ति वाचक नामों की ओर संकेत करते हैं । त्यागराजु तेलुगु प्रत्यय/ -लु/ का संयोग करके बहु वचनीय संरचना को व्यक्तिवाचक संकेत से युक्त करते हैं : /तम्मुलु/ (त्या. 51), /सोदरूलु/ (त्या. 596) । राम के सभी भाइयों का नामोल्लेख दोनों ही कवियों ने समान रूप से किया है ।

4.1.2.3. व्यक्ति वाचक संज्ञाएँ :

§क§ संबंध सूचक :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही "कौसल्या" §गी.1/32; त्या.138§ व्यक्तिवाचक संज्ञा का उपयोग किया है । इसके अतिरिक्त अन्य रूपान्तरण भी तुलसी के गीत काव्य में मिलते हैं, जैसे : "कौसिला" §गी.1/11§; "कौसिल्या" §गी.1/7§ आदि । तुलसी ने व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ जातिवाचक संज्ञा जोड़कर रचना का विस्तार किया है, जैसे "कौसिला रानी" §गी.1/4§; "रानी कौसिला" §गी.2/39§; "कौसल्या माता" §गी.1/33§; "कौसल्यादि मातु" §गी.1/8§ आदि । त्यागराजु के गीतों में इस तरह के युग्म नहीं मिलते ।

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने "सुमित्रा" §वि.37; त्या.96§ की ओर भी संकेत किया है । तुलसी ने "सुमित्रा मैया" §गी.1/9§ तथा "सुमित्रा माता" §गी.2/51§ जैसी युग्म रचना भी की है । त्यागराजु ने /कैक/"=कैकेई" §त्या.384§ केवल एक ही शब्द लिया है, जबकि तुलसी ने इसके कई रूपान्तर प्रयुक्त किये हैं, जैसे "कैकेई" §गी.1/2§ ~ "कैकयी" §गी.1/4§ ~ "कैकेयी" §गी.2/37§ ~ "कैकयि" §गी.2/63§ ~ "कैकई" §गी.2/34§ । त्यागराजु में ये रूपान्तर प्राप्त नहीं होते ।

कृष्ण से संबंध सूचक शब्दों में भी पर्याप्त पर्याय विधान का अंतर मिलता है, जैसे त्यागराजु ने केवल "यशोदा" §त्या.10§ शब्द का प्रयोग किया है ; जबकि तुलसी ने जहाँ य > ज तथा श > स की प्रवृत्ति के अनुसार इस शब्द का विकास "जसोदा" §कृ.गी.2§ के रूप में किया है वहाँ इसके "जसुमति" §कृ.गी.8§; "जसोमति" §कृ.गी.9§ जैसे पर्यायों का भी प्रयोग किया है ।

त्यागराजु ने अपने गीतों की भावात्मक संरचना में "देवकी" §त्या.10§ को भी स्थान दिया है, किंतु तुलसी ने उसका उल्लेख तक नहीं किया है । त्यागराजु ने /देवकी वसुदेवुलु/"=देवकी तथा वसुदेव" §त्या.3§ का युग्म भी इस

संदर्भ में देखा है । तुलसी की संरचना में वसु का भी स्थान नहीं है ।

दोनों कवियों ने "दशरथ" §गी.1/25§; त्या.36§ का नामोल्लेख किया है । किंतु तुलसी ने शा स की प्रवृत्ति के अनुसार इस शब्द का विकास भी किया है : दशरथ दसरथ §गी.1/10§ । साथ ही अपभ्रंश शैली का "दसरत्थ" §वि.44§ शब्द भी तुलसी के गीतों में मिलता है । त्यागराजु ने शब्द विकास की यह सरणि छोड दी है ।

तुलसी ने कुछ व्युत्पन्न शब्द दशरथ के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किये हैं, जैसे "कोसलराय" §गी.1/62§; "कोसलाधीस" §वि.43§; "कोसलपति" §गी.2/71§; "अवधेस" §वि.58§ । यह पर्याय विधान त्यागराजु के गीतों में नहीं है । तुलसी ने "राजा दसरथ" §गी.2/39§ जैसी युग्म रचना भी की है ।

तुलसी और त्यागराजु दोनों "नंद" §कृ.गी.16; त्या.506§ के संबंध में तुलनीय हैं । तुलसी ने स्थानीय शब्द /महर/"=नंद" §कृ.गी.48§ शब्द का भी प्रयोग किया है ।

राम पंचायतन में राम के तीन भाइयों का प्रमुख स्थान है । तुलसी और त्यागराजु दोनों की प्रगीतानुभूति में राम का बिंब भाइयों के साथ ही उभरता है । किंतु दोनों के गणनात्मक अध्ययन से कुछ अंतर लक्षित होता है ।

त्यागराजु ने भरत के लिए केवल दो शब्दों का प्रयोग किया है : /भरतुडु/"=भरत" §त्या.136§ तथा /भरत स्वामी/ §त्या.96§ । तुलसी ने /भरत/ §गी.1/9§ और /भरतलाल/ §वि.278§ – इन दो शब्दों का प्रयोग किया है । किंतु तुलसी की कल्पना में भरत का रूप अपनी समस्त भास्वरता के साथ उपस्थित है । तुलसी के साहित्य की प्रगीतात्मक अंतर्धाराएँ बहुत कुछ भरत केंद्रित हैं । इसीलिए भरत के संबंध में तुलसी ने संरचना का बहुत विशद, सामासिक और भावात्मक रूप ग्रहण किया है । इस रचना को विशेषण व्यक्ति वाचक संज्ञा के रूप में देखा जा सकता है ।

सबसे पहले भरत को /भूरि भागी/ §वि.39§ । फिर उनकी वीरता की अनुभूति की गयी : /बरबीर भारी/ §वि.39§; /बाहुबल-बिपुल/ §वि.39§; /परमिति पराक्रम अतुल/ §वि.39§ और /अभयदाता/ §वि.39§ । फिर भरत का धर्म वीर रूप तैर आता है : /परम धरम-धुर-धीर/ §वि.39§ ।

माण्डवी पति भरत भी संरचित है : /माण्डवी-चित्त चातक नवाबुद-बरन/ §वि.39§ । चित्रकूट गामी भरत क तो तुलसी को प्रगीतात्मक को झकझकोर ही देते हैं : /निरूपाधि-भक्ति भाव जत्रित-हृदय, बंधु-हित चित्र कूटाद्रि-चारी/ §वि.39§ । राम की पादुका के मंत्री बनकर शासन करनेवाले भरत भ्रातृ भाव और त्याग वीरता के प्रतिमान बन जाते हैं 3 /पादुका-नृप-सचिव पुहुमि-पालक/ §वि.39§ । त्याग वीरता को प्रकट करनेवाली एक और रचना इस प्रकार है : /बिबुधेस-धनदादि दुर्लभ-महाराज-सम्राज सुख-प्रद-बिरामी/ §वि.39§ । गंधर्व विजयी युद्धवीर भरत भी तुलसी के गीत काव्य में बिंबित हैं : /रन-अजिर गंधर्व-गन-गर्वहर/ §वि.39§ । भरत के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता राम के प्रेम की है । इसकी संरचना बरबस अलंकृत और सघन सामासिक हो उठती है : /खड्ग-धाराव्रती-प्रथम रेखा प्रगट सुद्ध मति -जुवति-म्र पति-प्रेम पागी/ §वि.39§; /भुवन-भूषन, भानुबंस-भूषन, भूमिपाल मनि, रामचंद्रानुरागी/ §वि.39§ और /भूमिजा-रमन-पदकंज-मकरंद-रस-रसिक-मधुकर / वि.39§ ।

इस प्रकार तुलसी और त्यागराजु की भरत संबंधी विशेषणामूलक संज्ञा संरचना में बहुत अन्तर है ।

लक्ष्मण के संबंध में भी यही अंतर दृष्टिगत होता है । त्यागराजु ने मुख्यत: /लक्ष्मणुडु/ "=लक्ष्मण" §त्या.19§ का ही प्रयोग किया है । तुलसी ने इस नाम के कुछ विकसित रूपों का प्रयोग किया है : "लखन" §गी.1/84§ ~"लछन" §2/73§ ~ "छ लछमन" §वि.38§ ~ "लछिमन" §गी.7/31§ । इन नामों के साथ /-लाल/ का संयोग भी तुलसी ने किया है : "लषन लाल" §गी.7/29§; "लछिमन लालु" §गी.5/3§ ।

सुमित्रा के संबंध में से भी लक्ष्मण के व्यक्तिवाचक नाम की व्युत्पत्ति दोनों कवियों ने की है : "सौमित्रि" §वि.25; त्या.61§ । इस रचना का दूसरा रूप जहाँ तुलसी ने "सुमित्रा सुत" §गी.6/6§ और "सुमित्रा सुवन" §वि.40§ दिया है वहाँ त्यागराजु ने भी /सुमित्रा कुमारूडु/ "=सुमित्रा के पुत्र" §त्या.96§ पर ध्यान केन्द्रित किया है । तुलसी ने अन्य संबंधों के आधार पर भी लक्ष्मण के व्यक्तिवाचक नामों की व्युत्पत्ति की है : /दासरथि/ "=दशरथ के पुत्र" §लक्ष्मण : वि.38§; /भरत-राम-बंधो/ §वि.38§ तथा /उर्मिला-रवन/ §वि.38§ । तुलसी ने सीता के संबंध से लक्ष्मण के लिए "देवर" §गी.7/28§ शब्द का प्रयोग भी किया है । त्यागराजु ने इस रचना का प्रयोग नहीं किया है ।

दोनों ही कवियों ने /शेष/ के संदर्भ में लक्ष्मण के नाम की संरचना की । तुलसी ने ये शब्द दिये हैं : "धरनी धरनहार" §वि.37§; "भुजग राज" §वि.38§ ; /अवतार ---- सहसफन के/ "=शेष नाग के अवतार" §लक्ष्मण : वि.37§ । किंतु त्यागराजु ने शेषावतार के रूप में नहीं देखा । उन्होंने एक स्थान पर लक्ष्मण को शेषनाग का वेष या रूप कहा है : "लक्ष्मणवेषि" §त्या.107§ अर्थात् उनके लक्ष्मण /आदि शेषुडगु तम्मुडु/ "छोटा भाई शेषनाग" §त्या.199§ है ।

लक्ष्मण का विशेषणमूलक विस्तार तुलसी ने बहुत अधिक किया है । उनके रूप सौंदर्य पर भी तुलसी की दृष्टि है : "रूपके निधान" §वि.37§; "लावण्य-सिंधो" §वि.38§, चारु चंपक-बरन §वि.38§ तथा "बसन-भूषन-धरन, दिव्य, भव्य, §वि.38§ जैसे विशेषण इसी प्रकार के हैं ।

दूसरी कोटि के विशेषण संबंध वाची हैं - "वल्लभ उर्मिला के" §वि.37§ "सुमित्रा-सीताके दुलारे" §वि.37§, "भावते भरत के" §वि.37§, "सीतेस-सेवा सरस" §वि.38§ । राम के संबंध में विशेषण मूलक आलंकारिक रचना भी की गयी है : "चातक चतुर राम स्यामधन के" §वि.37§ । और भी विशेषण इस वर्ग के हैं * जिनका उल्लेख केवल विस्तार वृद्धि ही करेगा ।

---

* वि.37,38

युद्ध वीर के रूप में लक्ष्मण की विशेषण मूलक रचना और अधिक है । वे "सबल" {वि•37} हैं, "महाबीर" {वि•38} हैं और रण विजयी है - "जितैया बडे रन के" {वि•37} । वीरता सूचक विशेषणों की लंबी संरचना भी की गयी है ।* मेघनाद के संदर्भ में भी विशेषणों की रचना हुई : "अंभोदनाद दहन" {वि•56}; "जलदनाद मर्दन" {वि•38} ।

तुलसी ने लक्ष्मण को धर्म वीर के रूप में भी परिभाषित किया है - "धुरधर्म धारी" {वि•38}; "परम धरम रत" {वि•37}; "सत्य संध" {वि•37} । समस्त विषयों का त्याग करके वे त्यागी बने हैं - "विषय रस-निरस" {वि•38} ।

तुलसी ने लक्ष्मण को "लीलावतारी" {वि•38} भी कहा है और अवतरित रूप में वे "भूभार हारी" {वि•38} हैं । अपने भक्त और सेवकों को वे सुख भी देते हैं - "सेवक-सुख-दायक" {वि•37} । तात्पर्य यह कि लक्ष्मण "सब लायक" {वि•37} हैं ।

त्यागराजु ने विशेषणों की इतनी विस्तृत संरचना में रखकर लक्ष्मण का दर्शन नहीं किया है । केवल एकाध विशेषण मिलता है । उदाहरण के लिए /निद्दुर जितुडु/ "निद्राजित" {लक्ष्मण: त्या•427} ।

शत्रुघ्न = संज्ञा + प्रत्यय - इस रचना का प्रयोग दोनों ही आलोच्य कवियों ने किया है । शत्रु का पर्याय "रिपु" भी इस रचना में दोनों ने ही किया है । त्यागराजु ने जहाँ संस्कृत का शुद्ध तत्सम नाम दिया है - "शत्रुघ्न" {त्या•136} वहाँ तुलसी ने विकसित शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे "सतुघ्न" {वि•44}, "सत्रुघ्न" {वि•40} । शत्रु शत्रु के साथ /-घ्न/ का स्थानापन्न /-समन/ "सत्रुसमन" {गी•1/11} तथा /-सूदन/ "सत्रु सूदन" {गी•7/34} भी तुलसी के गीतों में मिलते हैं । /रिपु/ के आधार पर बने हुए शब्द ये हैं - "रिपुदवन" {गी•1/9}; "रिपुसूदन" {गी•6/13} । त्यागराजु ने "रिपुघ्न" {त्या•61} तथा "रिपुमर्दन" {त्या•455} शब्दों का प्रयोग किया है ।

---

* ऐसे विशेषणों की श्रृंखला के लिए द्रष्टव्य - वि•37, 38

तुलसी ने भरत और लक्ष्मण की भाँति शत्रुघ्न के व्यक्तित्व के आस-पास भी संबंध, वीरता, सौंदर्य, अवतार रूप आदि के आधार पर विशेषण बुने हैं ।* फिर भी शत्रुघ्न के पर्याय प्रमुख है । इस पर्याय को तुलसी ने आलंकारिक रचना भी प्रदान की है - /सत्रु-करि-केसरी/ (वि.40) तथा /सत्रुतम-तुहिन हर-किरन केतू/ (वि.40) ।

राम के परिवार का विस्तार उनके पुत्रों - लवकुश तक है । तुलसी ने इनके नामों का मात्र उल्लेख किया है ।[2] त्यागराजु ने इनका उल्लेख भी नहीं किया है ।

जिस प्रकार राम के भाइयों का व्यक्तिवाचक बिंब दोनों कवियों ने बनाया है, उसी प्रकार कृष्ण के भाई बलराम का भी उल्लेख दोनों ने किया है । "हलधर" (कृ.गी.5; त्या.238) शब्द दोनों कवियों में समान है । किंतु तुलसी ने अन्य शब्दों का प्रयोग भी किया है - "बलराम" (कृ.गी.5), "बलभैया" (कृ.गी.19) ; बलदाऊ" (कृ.गी.12) तथा "राम" (कृ.गी.18) ।

राम के संबंधियों में राम के ससुर जनक प्रमुख हैं । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने सब से अधिक "जनक" (गी.1/61; त्या.16) का ही प्रयोग किया है । जहाँ तुलसीदास जी ने "जनकनृप" (वि.50) के रूप में इस नाम का विस्तार किया है वहाँ त्यागराजु ने "जनकराजु" (त्या.516) के रूप में । जनक का दूसरा प्रसिद्ध नाम विदेह है । तुलसी ने जहाँ मात्र "विदेह" (गी.1/80) शब्द का प्रयोग किया है वहाँ त्यागराजु ने "विदेह मानस" (त्या.4) लिखा है । जनक का देश वाचक नाम त्यागराजु के गीतों में नहीं मिलता, जबकि तुलसी ने "मिथिलेस" (गी.1/88); "साहब मिथिला को" (वि.152) और "तिरहतिनाथ" (गी.1/102) जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है ।

जातिवाचक संज्ञा भी व्यक्ति वाचक के रूप में आयी है : "नरदेव" (गी.1/66) तथा "नरेस" (गी.1/74) = जनक ।

---

* द्रष्टव्य वि.40   2 गी.7/36

4.1.2.1.4 अनुकूल या शुभ क्रियावाले जीव :

धन्य जीवों के पश्चात् संरचना की दृष्टि से उन जीवों की कोटि आती है जिनके साथ आध्यात्मिक साधना, समाज के अनुकूल या शुभ क्रियाओं का प्रयोग किया गया है । इस कोटि में ऋषि-मुनि, भक्त, साधु और संत आते हैं । यहाँ भी जातिवाचक संज्ञाओं का प्रतिनिधित्व व्यक्तिवाचक संज्ञायें करती हैं ।

§क§ ऋषि-मुनि :

जातिवाचक संज्ञा :

संख्या की दृष्टि से दोनों ही कवियों ने "मुनि" शब्द का अधिक प्रयोग किया है । स्थिति की दृष्टि से ऋषि यदि द्रष्टा है तो मुनि मननशील है । वस्तुत: मुनिमानस ऋषिमानस और लोकमानस के बीच की कडी है । यदि ऋषि ने आध्यात्मिक तत्व का दर्शन किया तो मुनि ने उस तत्व का मनन और व्याख्यान किया । किंतु यह अंतर दोनों कवियों के गीत-काव्य में स्पष्ट नहीं है ।

ऋषि :

ऋषि* की संरचना दोनों ही कवियों ने शब्द के पूर्व विशेषणमूलक तत्व जोडकर की है । त्यागराजु ने सप्त + ऋषि = सप्त ऋषि §त्या.50§ सप्त ऋषीष §त्या.244§ का प्रयोग किया है जो व्यक्तिवाचक संज्ञा की ओर संकेत करता है । तुलसी ने इस विशेषण युक्त रचना नहीं की । तुलसी ने देव + ऋषि = देव ऋषि §वि.47§ की रचना की है तो त्यागराजु ने /राण्मुनि/"राजर्षि" §त्या.23§ रचना का प्रयोग किया है । इस रचना से ऋषियों की तीन पौराणिक कोटियों का संकेत मिलता है - देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षि । इस शब्द का अल्प संख्यक प्रयोग यह सिद्ध करता है कि आलोच्य कवियों की कल्पना में ऋषि की अपेक्षा मुनि की संरचना प्रमुख रूप से आयी है ।

---

* वि.47 ; त्या.50

संरचना का दूसरा रूप ऋषि + राज = /ऋषिराज/* है जो दोनों कवियों में प्राप्त होता है । इस रचना में राज शब्द ऋषि के तारतम्य या कवियों की विशेष श्रद्धा का द्योतक है ।

मुनि :

ऋषि की अपेक्षा "मुनि" §वि.9; त्या.86§ की संरचना अधिक वैविध्यपूर्ण है । इसके लिए दोनों कवियों में पर्याय का प्रयोग भी हुआ है : / तापस / § गी.2/46§, / तापसी / " तपस्वी" §त्या. 48 अ § और / तपोधन / § त्या. 534 §.।

वि. + मुनि :

इस संरचना का प्रयोग केवल त्यागराजु ने किया है : / वर मौनुलु / § त्या. 570 § तथा / चंड मौनुलु / § त्या. 78§ ।

मुनि + वि.

तुलसी ने इस संरचना के इन पदबंधों का प्रयोग किया है : / मुनि ग्यानी / § वि. 98§, § मुनिवर/ § वि.57§ । त्यागराजु ने / परम भागवत मुनिवर / § त्या. 5§ रचना का प्रयोग करके वैष्णव मुनियों की ओर संकेत किया है ।

संबंध कारकीय संरचना :

इस रचना में प्राय: संबंध कारक चिह्न का लोप रहता है । इस प्रकार रचना सामासिक हो जाती है । तुलसी के गीतों में ये उदाहरण मिलते हैं : / मुनि वृंद / § वि.57§, / मुनिगन / § वि. 75§, / मुनि मंडली / § कृगी. 53§ । समूह सूचक रचना त्यागराजु ने भी की है : / मुनिचयमुलु /,

" मुनियों के समूह " § त्या. 269§, / मुनिगण जनमु / " मुनिजनों का समूह " § त्या. 472§,/मुनिजनुलु/ § त्या. 516§ और / मुनिबृंदमुलु / " " मुनियों के समूह " § त्या. 529§ । इस रचना की यह समानता यह सिद्ध करती है कि दोनों कवियों की कल्पना में मुनि समूह आये है ।

/ मुनि बनिता / § गी. 1/4§ तथा / मुनिसिसु / §गी0 1/56§ की रचना भी इसी प्रकार की है जो त्यागराजु में नहीं मिलती । इस रचना से यह लक्षित होता है कि मुनि लोग गृहस्थ जीवन या वानप्रस्थ जीवन भी व्यतीत करते थे । यह तत्व त्यागराजु की कल्पना से परे है ।

मुनि + ईश = / मुनीस / § वि. 236§ " मुनियों के स्वामी" भी इसी रचना का उदाहरण है । " ईश " के स्थान पर " इंद्र " § गी. 1/25 ; त्या. 53§, " राउ " § गी. 1/84§ जैसे शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । यह रचना श्रेष्ठता या वैशिष्ट्य की सूचना देती है ।

आलंकारिक रचना :

तुलसी ने / मुनि मधुकर / § वि. 207 § या / मुनि मधुप / § वि. 209 § की रूपकीय रचना भी की है । इस रचना से राम के चरणारविंद के रस में रत मुनि का बिंब उभरता है । त्यागराजु ने इस रूपकीय रचना के द्वारा यह बिंब प्रकट नहीं किया ।

मुनि रचना के तुलनात्मक निष्कर्ष निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट हो जाते है :-

रचना	सूचना	तुलसी	त्यागराजु
पर्याय	तपस्या	✓	✓
वि.+ मुनि	श्रेष्ठता	x	✓
	भक्त	x	✓
मुनि + वि.	श्रेष्ठता	✓	✓
	ज्ञानी	✓	x
कारकीय	समूह	✓	✓
	गृहस्थ	✓	x
	वाणप्रस्थ	✓	x
आलंकारिक	रसिक	✓	x

तात्पर्य यह है कि त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी की कल्पना में मुनि का बृहत्तर बिंब अवतरित हुआ है ।

व्यक्ति-वाचक संज्ञा :

जातिवाचक संज्ञा = व्यक्तिवाचक संज्ञा

दोनों ही कवियों ने जातिवाचक संज्ञा का प्रयोग करके विशेष व्यक्ति की सूचना दी है ।

व्यक्ति	जाति	तुलसी	त्यागराजु
दुर्वासा	महामुनि	वि.137	-
वाल्मीकि	किरात	वि.151	त्या.48 अ
	बधिक/ब्याध	वि.218/208	-
	कवि/आदि कवि	वि.135/99	-
	मुनीस	वि.156	-
	ऋषिराज	गी.7/35/2	-
वशिष्ठ	ऋषिराज	गी.1/5/2	-
	मुनिवर	गी.1/5/4	-
	कुलगुरू	गी.1/12/3	-
विश्वामित्र	राजर्षि	-	त्या. 23
	ऋषिराज/ऋषि	गी.1/85-1/52	-
	मुनिराउ	गी.1/84/4	-

	मुनि	-	त्या. 335
	विप्र	वि.63	-
नारद	स्वामी	-	त्या.45 अ
	सद्गुरू	-	त्या. 559
	योगी	-	प्रभवि. पृ. 14
	ऋषिवर्य	-	प्रभवि. पृ.15

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि

(1) दोनों ही कवि जातिवाचक संज्ञा के द्वारा व्यक्ति विशेष की ओर संकेत करते हैं ।

(2) तुलसी की कल्पना में वाल्मीकि की रचना वैविध्यपूर्ण है और त्यागराजु की कल्पना में नारद की रचना ।

(3) शेष रचना में प्राय: दोनों कवि समान हैं ।

(4) तुलसी की वाल्मीकि कल्पना यह सूचित करती है कि अधम जीव भी ऋषि और मुनि कोटि को प्राप्त कर सकता है ।

व्यक्तिवाचक संज्ञा :

दोनों कवियों में समान रूप से प्राप्त ऋषि-मुनि ये हैं : भृगु, अगस्त, वशिष्ठ, विश्वामित्र, नारद, सनक, दुर्वासा, मार्कण्डेय, शुक

परशुराम, गौतम, कश्यप और वाल्मीकि । * तुलसी ने इनके अतिरिक्त भरद्वाज, पुलस्त्य पुलस्त्य और सुतीक्ष्ण का भी नामोल्लेख किया है ।[2] इनका नामोल्लेख त्यागराजु ने नहीं किया । त्यागराजु ने विशेष रूप से इन ऋषि-मुनियों का नामोल्लेख किया है : पराशर, मतंग, तुंबुर, भृंगि, चंडीश, भरत, सनंदन और जड़भरत । [3]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि

§1§ दोनों ही कवियों की कल्पना में पौराणिक मुनि-मंडली के प्रतिनिधि व्यक्तित्व आये हैं ।

§2§ दोनों ने राम संदर्भीय मुनियों को विशेषता प्रदान की है तथा

§3§ तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु की वृत्ति अधिक पुराणोन्मुख है । इसलिए उन्होंने तुलसी की अपेक्षा अधिक मुनियों का नामोल्लेख किया है ।

---

*	वि. 62	त्या. 325,	वि. 64,	त्या. 515,
	गी. 1/6,	त्या. 596,	गी. 1/65,	त्या. 516
	वि. 36	त्या. 50	वि. 118	त्या. 322
	वि. 137	त्या. 10	वि. 60	त्या. 620
	गी. 2/67	त्या. 123	वि. 38	त्या. 515
	वि. 38	त्या. 405	वि. 26	त्या. 515
	और	गी. 7/32,	त्या. 85	
2	गी. 2/68	गी. 1/1	और	गी. 2/89
3	त्या. 145,	568	213 568	515
	575,	605 और 15		

पर्याय रचना :

व्यक्ति वाचक संज्ञा के विविध पर्यायों का प्रयोग तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही किया है । दोनों की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है -

ऋषि-मुनि नाम	पर्याय	तुलसी	त्यागराजु
परशुराम	भृगुपति	गी. 1/109	-
	भृगुनाथ	वि. 43	-
	भार्गव	वि. 50	-
	परसुधर	वि. 52	-
	भृगुसुतु	-	त्या. 432
	जमदग्निज	-	त्या. 10अ
अगस्त्य	कुम्भज	वि. 64	त्या. 515
	घटज	वि. 247	त्या. 620
	कुम्भतनय	-	त्या. 349
	वाहिनीशरिपु	-	त्या. 98
	कुम्भजात	वि. 53	-
विश्वामित्र	कौसिक	गी. 1/68	त्या. 516
	गाधेय	वि. 38	-
	गाधिसुवन	गी. 1/86	-
	गाधिनंदन	गी. 1/87	-
वाल्मीकि	बिलज	-	त्या. 1
शुक	कीर	वि. 196	-

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जहाँ रचना के अन्य स्तरों पर त्यागराजु की पर्याय प्रियता तुलसी की अपेक्षा अधिक सिद्ध होती है वहाँ प्रस्तुत संदर्भ में तुलसी ने ही अधिक और वैविध्यपूर्ण पर्यायों का प्रयोग किया है । किंतु प्रवृत्तिगत साम्य अवश्य है । संख्या की दृष्टि से दोनों की ही कल्पना में परशुराम का ही स्थान प्रथम है और दूसरा स्थान अगस्त्य का है ।

विशेषण मूलक रचना :

ऋषि-मुनि के साथ विशेषण संरचना भी संलग्न की गयी है । पीछे जातिवाचक संज्ञाओं के व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के प्रयोग में यह देखा जा चुका है कि त्यागराजु के रचना दृष्टि केन्द्र में प्रमुख रूप से नारद है और तुलसी की रचना दृष्टि वाल्मीकि पर अधिक केन्द्रित है । विशेषण संरचना की दृष्टि से भी इसकी पुष्टि होती है । त्यागराजु ने सबसे अधिक विशेषण नारद के लिए ही प्रयुक्त किये हैं । विशेषण वर्ग इस प्रकार हैं :

(1) रूप वर्ण वाले विशेषण : / हंस रूपुडु / " सूर्य के समान तेज वाला " (त्या. 48 अ), / भेश संकाश / " चंद्र के समान श्वेतकांतिवाला " (त्या. 543), / द्युतिजित शरदाभ / " शरद काल के मेघ की कांति को जीतनेवाला " (त्या. 279) । (2) गुण स्वभाववाले विशेषण : / सदा मोद हृदय / " सदा प्रसन्न रहनेवाला " (त्या. 543); / शुभांग / " शुभ अंगोंवाले " (त्या. 543), / परमपावन / (त्या.279) ; / खेद कर त्रिताप रहित / (त्या. 543); / निर्मलात्मा / (प्रभवि.पृ.14), / नगराज धैर्य / " धैर्य में नगराज के समान " (प्रभवि. पृ.15) ।
(3) ज्ञान साधना मूलक : / ब्रह्मनिष्ठ / (प्रभवि. पृ.14); / सुज्ञान / (त्या. 559); / अज्ञान शिखी / " अज्ञान को जलानेवाला " (त्या.559); / भेदाभेद रहितमगु वेदांदरस भरितुडु / " वेदांतरस के ज्ञाता " (त्या.282),

/ योगनैगम पारंगतुडु / " योग शास्त्र और निगम में पारंगत " §त्या.279§ और / अष्टांग योगीश / § प्रभवि पृ. 14§ ।

§4§ अलौकिकतामूलक विशेषण : / जगदीश / § त्या. 543§ ;

/ यादवकुलाप्त / " कृष्ण के द्वारा मान्य " § त्या. 543 § ;
/ खेचरविनुत / " देवों के द्वारा स्तुत्य " § त्या. 543 § ;
/ अमरेश विनुत / " इंद्र के द्वारा स्तुत्य " § प्रभवि.की.16§ ;
/ अमरेश सन्नुत / " इंद्र के द्वारा स्तुत्य " § प्रभवि. पृ. 14 § ।

§5§ दीन वत्सलता : / दीनमानव रक्षक / § त्या. 543 § ;
/ श्रीकर / " समृद्धि देनेवाले " § त्या. 543 §;
/ श्रीद / " सौभाग्य देनेवाले " § त्या. 543 § ।

§6§ <u>संगीत मूलक</u> / नादसरसीरुह भृंग / " नाद कमल के लिए भ्रमर " § त्या. 543 §, / वरवीणावादनतत्वज्ञ / § त्या. 543 § ;
/ संगीत ------ पारंगतुडु / § त्या. 279 § ।

तुलसी ने / वेदगर्भार्भक / § वि. 54 § कहकर नारद की ज्ञान गरिमा की सूचना दी है ।

नारद संबंधी विशेषण संरचना त्यागराजु और नारद के आध्यात्मिक संबंध की पुष्टि करती है । संगीत ज्ञान की दृष्टि से त्यागराजु ने नारद को अपना गुरू स्वीकार किया है । * इसी रागात्मक संबंध के कारण यह संरचना अधिक स्फीत हुई ।

यदि वैषम्य की दृष्टि से देखा जाय तो तुलसी ने विश्वामित्र की विशेषणमूलक संरचना को स्फीत किया है, त्यागराजु ने नहीं । विश्वामित्र

---

* द्रष्टव्य प्रस्तुत शोध प्रबंध अध्याय - ।

के लिए तुलसी के गीतकाव्य में ये विशेषण मिलते हैं : " परम कृपालु " {गी. 1/101} ,. " परमहित " {गी.1/101 }; " समरथ " {गी. 1/101} ; " सुखद " {गी. 1/101} और " सुचाली " {गी. ‡ө 1/101} । । सम्भवत: राम संदर्भ में विश्वामित्र के प्रमुख होने के कारण उनकी रचना स्फीति मिलती है ।

अन्य ऋषि-मुनियों में तुलसी ने वाल्मीकि के लिए / अगाध - अपराध-निधि / {वि. 247}, परशुराम के लिए / रोष-रासि / {वि.152} तथा / दुसह-दोष मूरति / {गी. 1/109} विशेषणों का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने इनको छोड दिया है । त्यागराजु ने दुर्वासा के लिए / तपोधन / {त्या. 534} विशेषण प्रयुक्त किया है । इसमें कोई विशेष प्रवृत्ति मूलक सूत्र लक्षित नहीं है ।

{ख} <u>भक्त वर्ग</u> :

1 <u>जातिवाचक संज्ञा</u> :

<u>मूल शब्द</u> : इस वर्ग के समान रूप से प्रयुक्त भक्ति क्षेत्रीय शब्द ये हैं : भक्त {वि. 57, त्या. 378} ~ भगत {वि. 120 } , सेवक {गी. 6/14} ~ अनुग {गी. 1/89} ~ भृत्य {गी. 1/38. त्या.602} ~ दास {गी. 7/24, त्या 276} ~ चार {वि.71} ~ चेरो {वि.87} ~ किंकर {वि. 149} ~ गुलाम {वि.72} ~ परिचारक {त्या.170} ; शरणागत {वि. 274, त्या.633}, सखा {वि.273, त्या. 196}, जन {वि. 208, त्या. 129} । अर्थ में समान तेलुगु का शब्द / बंटुडु / " सेवक " {त्या. 156 } केवल त्यागराजु के गीतों में मिलता है । " भक्त " शब्द भक्ति साधना का सूचक है । " सेवक" शब्द पारिभाषिक रूप से अर्थ गर्भित है । इस शब्द के प्रयोग में अर्थ संकोच हुआ है ।* सेवा की अवधारणा भक्ति के क्षेत्र में बहुत व्यापक है । इस

---

* सेवक = किसी का भी सेवक > भगवान का सेवक ।

की तीन सरणियाँ है : विग्रह सेवा, गुरू सेवा तथा भागवत सेवा । कालायाम की दृष्टि से इस तत्व का अष्टायाम का विस्तार हुआ । अर्थात् एक क्षण भी भक्त मानस सेवा भाव से विरत नहीं रहता । सेवा के रूपों में मानसिक सेवा ही सर्वोत्तम कही गयी है । सेवा के सम्मुख मुक्ति भी फीकी है । सेवा किसी भी भाव से प्रेरित हो सकती है । किंतु आलोच्य कवियों के द्वारा प्रयुक्त सेवा शब्द दास्य भाव से प्रेरित है । इस प्रकार सेवक शब्द अर्थ विज्ञान की दृष्टि से भक्ति क्षेत्रीय पारिभाषिक शब्द है । *

" शरणागत " शब्द भी पारिभाषिक शब्द ही है । " गीता " में कृष्ण ने -- " मामेकं शरणम् व्रजा " कहा और रामानुज संप्रदाय में प्रपत्ति या शरणागति एक पारिभाषिक अर्थ रखता है । दोनों ही कवियों का इस दार्शनिक पारिभाषिकता से घनिष्ट संबंध है ।

" सखा " शब्द भी अर्थ संकोच करता हुआ भक्ति क्षेत्रीय बना है।[2] यद्यपि आलोच्य कवि सख्य भाव से प्रेरित साधना को लेकर नहीं चले है, फिर भी उनकी दृष्टि में सुग्रीव और विभीषण जैसे भक्त है जो सख्य और दास्य की भावना से प्रेरित होकर राम के साथ अपने को संबद्ध करते है । कृष्णभक्ति में इस भावना का प्रमुख स्थान है ।[3]

ऊपर के शब्दों के समान " जन " शब्द का भी अर्थ संकोच हुआ है : जन = सामान्य जन भक्त । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने इस अर्थ में अर्थ में भी " जन " का प्रयोग किया है ।

---

* तुलसी ने " सेवक-सेव्य-भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि " - {मानस.7/ } तथा त्यागराजु ने भी " बटु रीति कोलुवीय वय्या " { त्या.362} लिखा है।

2 सखा = किसी का भी सखा भगवत्सखा ।

3 विस्तार के लिए द्रष्टव्य डा, चन्द्रभान रावत, कृष्ण भक्ति साहित्य : वस्तु, स्रोत और संरचना, पृ. 127,128

त्यागराजु ने जिस " भागवत " ॥ त्या. 36 ॥ शब्द का विशिष्ट प्रयोग किया है उसका भी अर्थ विकास हुआ है । * इस शब्द की तुलसी के गीतों में अनुपस्थिति मात्र आकस्मिक है । वैसे इस अर्थ का समावेश भक्त में हो जाता है ।

त्यागराजु ने / रसिक / ॥ त्या. 179 ॥ शब्द का प्रयोग किया है । इस शब्द के अर्थ को भी सांप्रदायिक पारिभाषिकता प्रभावित करती हुई दिखलाई देती है । " रसिक संप्रदाय " भी भक्ति क्षेत्र में थे । आरंभ में श्री संप्रदाय में इस शब्द का प्रयोग हुआ । श्री वेदांत देशिकाचार्य ने " भगवद्ध्यान सोपान ", श्लोक 12 में श्रीरंगनाथ को " रसिकों " से सेवित बतलाया है । सम्भवतः रसिक शब्द आल्वारों के लिए प्रयुक्त हुआ है। [2] सांख्य के कारणवाद के अनुसार जिसमें रस हो वही रसिक है । भोज ने " सुसंस्कृत जन " को ही रसाश्रय कहा है ।[3]

उपनिषद में भी एक क्रम मिलता है : असत् > सत् > सुकृत । सत्

---

* डा. बल्देव उपाध्याय ने " भागवत संप्रदाय " पुस्तक में इस पर विस्तार से विचार किया है ।

2 ' ~~विस्तार~~ "Evidently the Alwars are referred to hear all of whom were greatly attracted by the Archa form of Lord Ranganath. Emotion of love (devotion) made them sing His praise and so they are referred to hear as Rasikas"

—Dr. Subbu Reddiar, Typed copy P. 954.

अव्यक्त रूप ही सुकृत है और सुकृत ही रस है । * तुलसी ने रस शब्द का प्रयोग नहीं किया, किंतु / सुकृती / ﴾ वि. 240﴿ शब्द का प्रयोग अवश्य किया है जिसका अर्थ भी रसिक ही है । निर्गुणिया संतों को भी रसिक संज्ञा दी गयी थी ।[2] तुलसी ने / अनुरागी / ﴾ वि. 194 ﴿ शब्द का प्रयोग भी सम्भवत: इसी अर्थ में किया है जिसका त्यागराजु ने प्रयोग नहीं किया है ।

बहुवचन के रूप में भी इन शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे / भक्तुलु / ﴾ त्या. 118﴿, / दासुलु / ﴾ त्या. 583﴿, / भागवतुलु / ﴾त्या.398﴿ और / रसिकुलु / ﴾ त्या. 307 ﴿ ।

पदबंध :

ऊपर के जातिवाचक संज्ञाओं के लिए " भ "[3] का प्रयोग करके संज्ञा पदबंधों पर विचार किया गया है ।

1. उपसर्ग + भ = भ :

" सद्भक्त " ﴾ प्रभवि. पृ.3﴿ , " परिचारक " ﴾ त्या.174﴿, "सुसेवक" ﴾ वि.150﴿ और " परिजन" ﴾ गी.2/76﴿,﴾त्या.87﴿ । इस रचना से कोई विशेष अवधारणा व्यक्त नहीं होती ।

---

* तैत्तिरीय उपनिषद् , ब्रह्मानंदवल्ली : 2.7

2 डा. चन्द्रभान रावत, कृष्ण भक्ति साहित्य : वस्तु,स्रोत, और संरचना, पृ. 126

3 भ = भक्त

2 भ + विशे॰ = भ :

/ भक्त सिरोमनि / ﴾ वि॰95﴿, / भृत्य प्रेममत्त / ﴾ गी॰1/38﴿, / जन-मनि / ﴾ वि॰ 208﴿, / भक्त वर / ﴾ त्या॰269﴿, / दासवरूलु / ﴾ त्या॰ 93 ﴿ । इस रचना से भक्त के प्रति कवियों की श्रद्धा व्यक्त होती है।

3 विशे॰ + भ = भ :

इस रचना के द्वारा या तो कवि भक्त की स्वभावगत विशेषताओं को ज्ञापित करता है अथवा राम के साथ उसके संबंध को । पहले प्रयोग के उदाहरण ये है : / वर भक्त / ﴾ प्रभवि॰ पृ॰ 17 ﴿
/ विहितमौ भक्तुडु / " ज्ञानी भक्त " ﴾ ﴾ प्रभवि॰ पृ॰ 13 ﴿ ;
/ निरपेद भक्तुलु / " दीन भक्त " ﴾ त्या॰ 597 ﴿
/ गतव्यलीक भगत / " कपट रहित भक्त " ﴾ गी॰ 1/36 ﴿;
/ सुहृद सेवक / ﴾ गी॰ 5/6 ﴿ और संबंध वाचक विशेषणों के उदाहरण ये है : / निज भक्त / ﴾ त्या॰ 317 ﴿; / नीदु भक्तुडु / " तुम्हारे भक्त" ﴾ त्या॰ 290 ﴿, / राम भक्त / ﴾ त्या॰ 207, वि॰ 27﴿; /प्रभु अनुग/ ﴾ गी॰ 1/89﴿ ; / राम सेवक / ﴾ वि॰ 84﴿, / राम गुलाम / ﴾ वि॰ 155﴿ ; / खासदास / ﴾ वि॰ 276﴿ । वास्तव में जब आलोच्य कवि भक्त शब्द का सामान्य प्रयोग भी करते हैं तो उनकी दृष्टि में " राम भक्त " का अर्थ ही रहता है ।

4 विशे॰ + विशे॰ + भ = भ :

/ शीलुलैन वर भक्तुलु / " शीलवान वर भक्तगण " ﴾ त्या॰80﴿ । इस रचना के द्वारा भक्त की प्रकृति को स्पष्ट किया गया है ।

5 विशे॰ + भ + विशे॰ = भ :

इस रचना के द्वारा भक्त का संबंध राम के साथ भी जोडा गया है और भक्त की उत्कृष्टता भी जोडी गयी है, जैसे / निज भक्त वर / ﴾त्या॰269﴿;

/हरिभक्तवर/ §प्रभवि•पृ•7§; /निजदास वर/ §त्या•93§ आदि ।

6 सामासिक रचना :

इस रचना के द्वारा भक्त के गुणों या उसकी उत्कृष्टता का परिचय दिया गया है : /सात्त्विक भक्ताग्रेसर/ "सात्त्विक भक्तों में अग्रणी" §प्रभवि•पृ•39§ । दूसरे प्रकार की वह रचना है जिसमें भक्त और राम का संबंध जोडा गया है : /राम सिय सेवक/ §गी•7/1§; /भवदंघ्रिसेवक/ §वि•58§; /रूप अनुरागी/ §कृ•गी•35§; /प्रभुपद अनुरागी/ §वि•224§; /जानकीनाथ चरनानुरागी/ §वि•118§; /रामचरण भक्तुडु/ §त्या•523§; /सीतापति सेवक/ §त्या•83§; /रामनाम रसिक/ §त्या•4§; /भजनगान रसिकुलु/ §त्या•307§; /वर वेदंड पालु दासुडु/ "गजेन्द्र रक्षक भगवान के भक्त" §त्या•372§ । तीसरे प्रकार की रचना के द्वारा भागवत भक्त की सूचना दी गयी है : /रामदास दास/ §त्या•368§; /दासानुदास/ §त्या•631§ ।

अन्य क्षेत्रीय शब्दों का भक्त्यार्थ प्रयोग :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही साधनों के अन्य वर्गों का नामोल्लेख भी किया है । इस से यह ज्ञापित होता है कि ज्ञान या योग की साधना करनेवाले भी भक्ति की ओर आकर्षित हुए या इस भाग में वे दीक्षित हो गये । * इन साधकों के वाचक शब्दों का प्रयोग दोनों कवियों ने किया है : "संत" §वि•55; त्या•41§; "साधु" §गी•2/66§ त्या•157§ ; "सिद्ध" §गी•1/56; प्रभवि• पृ•15§; "योग-सिद्ध" §त्या•128§; "जोगीन्द्र" §वि•26§; "जोगविद" §वि•236§; "जती" §वि•165§; "जंगम" §त्या•364§ तथा /दांता/ "इंद्रियजित" §त्या•105§ ।

---

* कृष्ण संदर्भ में विभिन्न साधक इस प्रकार की अन्य साधक भक्ति-साधना में दीक्षित हो गये । इस विवरण के लिए द्रष्टव्य - पद्मपुराण, पाताल खंड•73/105-9; और भी द्रष्टव्य - डा• चन्द्रभान रावत, कृष्ण भक्ति साहित्य : वस्तु, स्रोत और संरचना, पृ•131 से 135 ।

इन वाचक शब्दों का बहुवचन प्रयोग भी दोनों कवियों ने किया है : "संतन" {गी.1/20}; "साधु समाज" {गी.1/49}; "साधु सभा" {वि.183}; "साधु-समीति" {वि.234}; "सिद्धुलु" {त्या.283}; "योगुलु" {त्या.103}; "जोगीसनि" {वि.246}; "जोगीजन" {वि.258}; "योगीगणमुलु" {त्या.313} आदि ।

2. व्यक्तिवाचक संज्ञा :

ऊपर भक्त, रसिक, संत, साधु और योगी जैसे जातिवाचक शब्दों पर विचार किया जा चुका है । इन सबका प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तिवाचक नाम दोनों कवियों ने प्रयुक्त किये हैं ।

पौराणिक नाम :

दोनों कवियों ने ध्रुव, प्रह्लाद, अंबरीण का विशेष रूप से नामोल्लेख किया है । इनमें से दोनों कवियों ने "ध्रुव" {वि.99; त्या.356}, "अंबरीष" {वि.98; त्या.247} का मात्र नामोल्लेख किया है, कोई विशेष रचना नहीं की । तुलसी ने प्रह्लाद {वि.52} का नामोल्लेख भी किया है और उसके वंशपरक व्युत्पन्न नाम का भी : /दितिसुत/ "दैत्य" {वि.43} । इस रचना के द्वारा यह व्यक्त किया गया है कि दैत्य कुलोद्भव प्रह्लाद भी भक्त हो सका । त्यागराजु ने इस अवधारणा को अधिक बल प्रदान करने के लिए विविध रचनाएँ की: /दानव बाल/ "दानवपुत्र" {त्या.11}; /निर्जरवैरि बालुडु/ "सुरशत्रु का पुत्र" /त्या.230}; /असुरार्भक/ "असुर बालक" {प्रभवि.पृ.39}; /असुर पुत्र/ {प्रभवि पृ.21}; /असुरेशतनय/ {प्रभवि पृ.31}; /दानव पुत्र/ {प्रभवि.पृ.22; /दनुजार्भकुडु/ {प्रभवि.पृ.26}; /रात्रिचर वर तनय/ "श्रेष्ठ रजनीचर पुत्र" {प्रभवि पृ.28}; /सुरवैरितनय/ {प्रभवि.पृ.33} और /असुर सुत्रुडु/ {प्रभवि.पृ.35} । इस रचना में दानव के विविध पर्यायों का प्रयोग हुआ है । इसके द्वारा दो बातें प्रकट होती हैं : रचना चमत्कार तथा राक्षस के भक्त होने की संभावना पर बल ।

प्रह्लाद के लिए त्यागराजु ने केवल बालक (पृ.14) शब्द का प्रयोग भी किया है । इससे यह अवधारणा व्यक्त होती है कि बालक भी भक्त हो सकता है । प्रह्लाद की शुद्ध चित्त वृत्ति के वाचक शब्द भी त्यागराजु ने किया है : "निर्मल चित्ता" (पृ.28); "निर्मलात्मा" (पृ.29); "विमलांतरंगा" (पृ.33) । एक ओर त्यागराजु प्रह्लाद को "वरयोगी" (त्या.502) नाम से पुकारते हैं तो दूसरी ओर ब्रह्म ज्ञान परक नामों की संरचना भी करते हैं : "ब्रह्म ज्ञान निष्ठुडु" (पृ.24); "ब्रह्मानंद परवशुडु" (पृ.33); "आत्म ज्ञानानंद मयुडु" (पृ.24) । कुछ नाम इस प्रकार के भी हैं जिनसे प्रह्लाद की भक्त कोटि प्रकट होती है : "परम भक्ताग्रेसरूडु" (पृ.32); "सात्त्विक भक्ताग्रेसरूडु" (पृ.39) तथा "भक्ति वारिधि चंद्रुडु" (पृ.32) । त्यागराजु अपने लिए भी प्रह्लाद को अनुकरणीय मानते हैं । यह बात इस रचना से व्यक्त होती है : "प्रह्लाद स्वामी" (पृ.4) । इस रचना का अनेक बार प्रयोग हुआ है ।

प्रह्लाद की श्रेष्ठता संबंधी धारणा तेलुगु साहित्य में प्रतिष्ठित है । भक्त पोतना के "श्रीमदांध्र महाभागवत" के प्रमुख प्रसंगों में से एक प्रसंग प्रह्लाद चरित्र है । इस परंपरा की विज्ञप्ति भी त्यागराजु की प्रह्लाद संबंधी विविध संरचना से होती है । अंबरीष की रचना दोनों कवियों में सामान्य है । अंबरीष और दुर्वासा का विवाद पुराण प्रसिद्ध है जिसके द्वारा भक्ति को तपस्या से श्रेष्ठतर सिद्ध किया गया है ।

<u>समकालीन भक्तों के नाम :</u>

त्यागराजु ने अपने समकालीन या अपने से पूर्ववर्ती कुछ भक्तों का नामोल्लेख किया है : "आल्वार" (त्या.143); "पुरंदरदास" (पृ.1); "नारायणतीर्थ" (प्रभवि.पृ.1) ; "तुकाराम" (पृ.1); "नामदेव" (पृ.1); "ज्ञानदेव" (पृ.1); "सहदेव" (पृ.1); "जयदेव" (पृ.1); ~~"शार्ग~~ शारंगदेव" (पृ.1); "रामदास" (पृ.1) और "तुलसीदास" (पृ.1) । इनके नामों के साथ कोई विशेष संरचना संलग्न नहीं की गयी । इन नामों से यह प्रतीत होता है कि त्यागराजु के समय में ही कुछ भक्तों की अंतर्प्रादेशिक स्थिति हो गयी थी । इस नामावली में तमिलनाडु, ~~कनाट~~ कर्नाटक, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश के भक्तों का

समावेश है । तुलसी ने इन नामों का उल्लेख नहीं किया ।

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने पदांत में अपने नाम की छाप लगाई । अपने नाम के साथ विशेषण मूलक संरचना भी की है । तुलसी ने अपने लिए "दास तुलसी" (वि.25) और "कुटिल तुलसी" (वि.97) जैसी संरचना रची है । त्यागराजु ने अपने नाम की पदबंधीय रचना इस प्रकार की है : /ओर्पुगलगु त्यागराजु/ "सहनशील त्यागराजु" (त्या.462); /भवव्याजमुलेल्ल रोसिन त्यागराजु/ "सांसारिक झंझटों से विरक्त त्यागराजु" (त्या.381); /तत्वमुदेलिसिन त्यागराजु/ "तत्व ज्ञानी त्यागराजु" (त्या.287); /भक्त त्यागराजु/ (त्या.29 अ); /दास त्यागराजु/ (त्या.407) । दोनों की स्वनाम संरचना की प्रवृत्ति कुछ भिन्न है । त्यागराजु ने भर्त्सनापूर्ण विशेषण के साथ अपने नाम का पदबंध नहीं बनाया है ।

4.1.2.1.5 सामाजिक वर्ग :

1 ब्राह्मण वर्ग :

1.1. जातिवाचक संज्ञा :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ब्राह्मण वाची इन पर्यायों का जातिवाचक संज्ञाओं के रूप में प्रयोग किया है : विप्र (वि.25; त्या.573); भूसुर (वि.247; त्या.72) । तुलसी ने ब्राह्मण (गी.1/2) शब्द के अतिरिक्त भूमि पर आधारित इन पर्यायों का प्रयोग किया है : महिदेव (वि.40); भूमिदेव (गी.1/66) और त्यागराजु ने अवनीसुर (त्या.1) का प्रयोग किया है । तुलसी ने द्विज (वि.136) पर्याय भी लिया है । त्यागराजु ने तेलुगु शैली का एक पर्याय /मोदटि कुलजुडु/ "चतुर्वर्ण में प्रथम" (त्या.2) का प्रयोग किया है । इस प्रकार पर्याय रचना में दोनों प्रतियोगी हैं ।

त्यागराजु ने "वर" विशेषण जोड़कर विशेषणमूलक पदबंध भी रचा है: /विप्रवरुलु/ (त्या.160) ।

1.2. व्यक्तिवाचक संज्ञा :

व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में ब्राह्मण की तीन गतियों की अभिव्यक्ति की गयी है : दीन ब्राह्मण, क्षात्र धर्मी ब्राह्मण और पतित ब्राह्मण । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने दीन ब्राह्मण के रूप में /सुदामा/ {वि.99} तथा /कुचेलुडु/ "सुदामा" {त्या.597} का उल्लेख किया है । कृष्ण के द्वारा सुदामा की दीनता का अपहरण हुआ ।

तुलसी ने क्षात्र धर्म धारी द्रोण {वि.28} और त्यागराजु ने /पाण्डव द्रोही/ "अश्वत्थामा" {त्या.11} का उल्लेख किया है । द्रोण के लिए /धर्मधुर धारी/ {कृ.गी.60} के आधार पर विशेषण मूलक रचना भी की गयी है । द्रोण की हत्या अश्वत्थामा का अभिशाप इसके द्वारा सूचित है ।

तुलसी ने अजामिल के लिए "विप्र" {वि.112} जातिवाचक संज्ञा का प्रयोग भी किया है । इस जातिवाचक संज्ञा के साथ व्यक्तिवाचक अजामिल भी आया है : /विप्र अजामिल/ {वि.239} ।

विशेषण मूलक पदबंध रचकर तुलसी ने उसको शिव भक्त /सबुसेवक/ {वि.216} तथा पापी /अधाधाम/ {वि.144}, /पापमूल अजामिल/ {वि.217} बतलाया है । फिर प्रश्नवाचक रचना में कहा है कि क्या अजामिल सोमयज्ञ करनेवाला था - /किधौं सोमयाजी अजामिल/ {वि.106} । ऐसा पापी भी अपने पुत्र नारायण का सामान्य रूप से नाम लेकर स्वर्गगामी हुआ - यह सूच्य है ।

2 राजवर्ग :

2.1 राजा :

त्यागराजु ने राजा शब्द /राजु/ {त्या.92} जातिवाचक संज्ञा का प्रयोग किया है । दोनों कवियों ने पृथ्वी पर आधारित पर्यायों का भी प्रयोग किया है : /अवनिप/ {वि.51}, /भूपति/ {वि.100} तथा /क्षितिपति/ {त्या.284} । तुलसी ने /नृप/ {वि.93} पर्याय का प्रयोग भी किया है और त्यागराजु ने /प्रभु/ {त्या.160} का ।

व्यक्तिवाचक नामों के द्वारा राजाओं की कई कोटियाँ सूचित की गई हैं : पूर्णतः धर्मात्मा /धर्मपुत्रडु/ "युधिष्ठिर" {त्या.15}; अभिशाप्त और भक्त राजा /परीक्षित/ {त्या.593} और /परीछित/ {वि.220}; शत्रु और पीछे भक्त राजा /बलि/ {वि.52; त्या.117}; ब्राह्मण द्रोही राजा /सहसबाहु/ {वि.198}; अतिचारी और अन्यायी राजा /सुजोधन/ "दुर्योधन" {कृ.गी.61}; भगवत्सखा विरोधी राजा /बालि/ {वि.43; त्या.369}; भगवान विरोधी राजा /कंस/ {वि.49; त्या.571}; तथा /सिसुपाल/ {वि.214} ।

इनमें से त्यागराजु ने बालि का विस्तृत पर्याय रचना की है : इन्द्रपरक पर्याय - /शचीपति सुत/ {त्या.1}, /संक्रंदन तनय/ {त्या.306} और /वारिवाहन तनय/ {त्या.115} ; तारा पर आधारित पर्याय - /तारानायकुडु/ {त्या.93} और /ताराधीश/ {त्या.345} । तुलसी ने यह पर्याय रचना नहीं की ।

तुलसी ने विशेषणमूलक पदबंधों के द्वारा बलि के बल की ओर संकेत किया है : /बालिबल सालि/ {वि.25} तथा /करम-कपीस बालि बलि/ {वि.181} ।

तुलसी ने /सुजोधन/ {वि.28}, /कुरुराज/ {वि.93} और /कुरुपति/ {वि.240} जैसे पर्याय शब्द दुर्योधन के लिए प्रयुक्त किये हैं । त्यागराजु ने इनका नामोल्लेख तक नहीं किया ।

अभिशाप्त राजा पशु उद्धृत : नृग गिरगिट कृष्ण के द्वारा उद्धृत । तुलसी ने व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में /नृग/ {वि.218} का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने इसका उल्लेख नहीं किया । इसके लिए एक विशेषण प्रकृति के वाक्य की रचना तुलसी ने की --- । कबहुँ न डग्यो निगम-मग तें पग । {वि.240} । एक प्रकार से निरपराध राजा अभिशाप्त होकर उद्धार की योग्यता प्राप्त करता है ।*

---

* इहै जानि सुर-नर-मुनि-कोविद सेवत चरन ।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग-उद्धरन ।। - वि.213/4

2.2. राजवंशीय :

राजवंशीय में अनुकूल व्यक्ति "अर्जुन" (वि.28; त्या.626)है । इसके पारथ~पार्थ" (वि.24; त्या.402); "धनंजय" (वि.28) तथा /नरूडु/ "अर्जुन" (त्या.265) पर्यायों का प्रयोग मिलता है । दूसरा अनुकूल व्यक्ति "भीम" (वि.28) है जिसके लिए त्यागराजु ने "लंबोदर" (त्या.596) पर्याय का प्रयोग किया है ।

दुर्जन राजवंशी /दुसासन/ (कृ.गी.60) है । द्वन्द्वशील राजवंशी "भीष्म" (वि.28) है ।

संकर राजवंशी "विदुर" (वि.106) कृष्ण भक्त है ।

3. नारी वर्ग :

3.1. अभिशाप्त नारी : अहल्या :

अभिशाप्त नारी > जड़ शिला > उद्धृत : अहल्या > गौतम के द्वारा अभिशाप्त > पत्थर > राम के द्वारा उद्धृत । "अहल्या" (गी.1/52); त्या.121) व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग दोनों कवियों ने किया है । तुलसी ने "विप्र" (वि.218); "ऋषि" (गी.1/58); "मुनि" (गी.1/64) और "गोतम" (वि.241) शब्दों के साथ "तिय" (वि.241), नारि (गी.7/38), "रवनी" (गी.1/58) और बधू (गी.1/64) शब्द जोडकर इसकी पर्याय रचना की है । त्यागराजु ने यह रचना नहीं की । अभिशाप्त के फलस्वरूप अहल्या प्रस्तरीभूत हुई । इसके लिए तुलसी ने "जड़" (वि.99), "उपल" (वि.106), "पषान" (वि.101), "पाहन" (वि.78) और "सिला" (वि.100) जैसे शब्दों के प्रयोग के द्वारा अहल्या की सूचना दी है । त्यागराजु ने इन शब्दों का प्रयोग भी नहीं किया है । यह भी निरपराध अभिशाप्त के उद्धार के अभिप्राय को बतानेवाला सूत्र है । तुलसी ने अपने साहित्य में इसको कई प्रकार से सौंदर्य तात्त्विक संरचना प्रदान की है । त्यागराजु ने केवल नामोल्लेख किया है ।

3.2. अनजान में नाम साधना : गनिका :

तुलसी ने अनेक स्थानों पर "गनिका" §वि.94§ या /पिंगला/ "वेश्या" §वि.106§ का नामोल्लेख किया है । इस उल्लेख में नाम साधना की महिमा का कथन उद्दिष्ट है । गनिका ने अपने तोते को राम नाम कहना सिखलाया । इसी से उस पापात्मा का उद्धार हो गया ।

3.3. परवश आर्त नारी : द्रौपदी :

इस रूप में त्यागराजु ने "द्रौपदी" §त्या.335§ और तुलसी ने "द्रुपदसुता" §वि.206§ एवं "दुपदतनया" §कृ.गी.61§ का नामोल्लेख किया है । त्यागराजु ने "सति" §त्या.277§ जातिवाचक संज्ञा के द्वारा भी व्यक्तिवाचक संज्ञा की सूचना दी और तुलसी ने /नर-नारी/ "अर्जुन की पत्नी §वि.93§ की रचना भी इसी रूप में की है । त्यागराजु ने विशेषण मूलक संज्ञा पदबंध "नारीमणि" §त्या.629§ के द्वारा उसकी श्रेष्ठता ज्ञापित की है । तुलसी ने /समरधीर महावीर पाँच पति/ "जिस के पाँच वीर पति हों" §कृ.गी.60§ संज्ञा पदबंध के द्वारा भाग्य के व्यंग्य को सूचित किया - ऐसी नारी भी आर्त और विवश हो सकती है । इस रचना के द्वारा कृष्ण की आर्त वत्सलता सूच्य है ।

3.4 भक्त नारी : गोपी :

भक्त नारी के रूप में गोपियों ने दोनों ही कवियों की रचना को प्रेरित किया है । तुलसी ने "नारी" §कृ.गी.6§ जातिवाचक शब्द के साथ "वर" विशेषण जोड़कर गोपी की सूचना दी है । त्यागराजु ने गोपी वाचक नारी शब्द के ये संस्कृत पर्याय दिये हैं : "वनितलु" §त्या.3§, "ललनलु" §त्या.49अ§, "मुदितलु" §त्या.100§, "तरूणुलु" §त्या.100§ साथ ही नारी वाचक तेलुगु पर्याय भी उन्होंने दिये हैं : /चेलुलु/ "सखियाँ"§त्या.99§, /उविदलु/ "नारियाँ" §त्या.193§, "विरिबोणुलु" §त्या.211§, "मगुवलु" §त्या.49अ§, "वेलदुलु" §त्या.49अ§, "आडुवारु" §त्या.133§, "इंतुलु" §त्या.77§ । इस प्रकार तुलसी की

अपेक्षा त्यागराजु ने नारी के पर्याय शब्द बहुत अधिक प्रयुक्त किये हैं ।

तुलसी ने गोपी (कृ•गी•18) के ये पर्याय प्रयुक्त किये हैं : "ब्रजबनिता" (कृ•गी•57), "ब्रज नारि" (कृ•गी•20), "गोपिका" (वि•106), "ग्वाल-जुवति" (वि•98), "ग्वालिनि" (कृ•गी•4), "ग्वालि" (कृ•गी•5), "अहीर अबलनि" (कृ•गी•39) और त्यागराजु ने "गोपिकलु" (त्या•370), "गोपकन्या" (त्या•462), "गोपांगनामणुलु" (त्या•28अ), "गोपीजन" (त्या•3) जैसे पर्यायों का प्रयोग गोपी के लिए किया है । तुलसी ने "बियोगिनि" (कृ•गी•47) विशेषण भी गोपिकाओं के लिए दिया है । इससे यह सूचित होता है कि गोपियाँ विरहासक्ति की अनुगामिनी थीं ।

3•5• कृष्ण प्रियायें :

तुलसी ने उस "कूबरी" (कृ•गी•48) का नामोल्लेख किया है जिसके साथ कृष्ण ने कृपा-विवाह किया था । त्यागराजु ने "रुक्मणी" (त्या•165) और तुलसी ने "वैदर्भी" (वि•57) का मात्र नामोल्लेख कृष्ण प्रिया के रूप में किया है । त्यागराजु ने सत्य भामा (त्या•279) का उल्लेख भी किया है ।

4•1•4•1•6 वन्य जाति :

वन्य जाति के संज्ञा विधान का भक्तिमूलक अभिप्राय यह है कि अधम + राम की कृपा = भक्त ।

वनवासी राम के संपर्क में वनजन और गिरिजन आये हैं । तुलसी ने इन सभी के वाचक शब्द "वनचारी" (वि•160) का प्रयोग किया है । इन जातियों के उप विभागों का उल्लेख भी तुलसी ने किया है : "किरात" (वि•45); "केवट" (वि•271); "भील" (वि•154) या "शबर" (गी•4/17); "गुह" (वि•152) या "निषाद" (गी•2/68) । त्यागराजु ने सामान्य जातिवाचक संज्ञा का प्रयोग नहीं किया । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनके मस्तिष्क में वन वनजन का व्यापक बिंब नहीं था । किरात और केवट भी केवल तुलसी के

द्वारा प्रयुक्त हैं । केवट को लेकर तुलसी ने अनेक सौंदर्य सात्त्विक स्थितियाँ "मानस", "कवितावली" और "गीतावली" में प्रस्तुत की है । गुह या निषाद का बिंब त्यागराजु की कल्पना में भी तैर आया है -- "गुट्टुडु" {त्या.333} । इसी प्रकार भील जाति भी उनकी कल्पना में है ।

दोनों कवियों ने भील जाति का प्रतिनिधित्व "शबरी" {वि.106; त्या.19} से करवाया है । तुलसी ने "भीलनी" {वि.183} और "भील भामो" {वि.228} कहकर उसकी जाति की सूचना दी है । त्यागराजु ने यह सूचना दी नहीं दी । उन्होंने शबरी की अधमता द्योतक संज्ञापदबंधीय रचना नहीं की, जबकि तुलसी ने इस प्रकार की रचना की है : /अधम जाति सबरी/ {वि.166} तथा /प्रकृति-मलिन-कुजाति सबरी सकल अवगुन-खानि/ {वि.215} । इसी प्रकार त्यागराजु ने गुह-निषाद की भी पदबंधीय रचना नहीं की, जबकि तुलसी ने उसको /निषाद पति/ {गी.2/68} कहा तथा /परम अधम निषाद पाँवर/ {वि.215} जैसी विशेषणमूलक रचना भी की है । इस प्रकार निषाद और भीलनी की अधमता पर बलाघात करने की प्रविधि तुलसी ने अपनायी है, त्यागराजु ने नहीं । अधमता के विरोध में राम की वत्सलता और निषाद तथा भीलनी का भक्त रूप अधिक उदग्र हो जाता है ।

4.1.2.2. मानवेतर वर्ग :

जीव पतन की ओर भी चल सकता है और पुण्य की ओर भी । इस अभिप्राय को दोनों ही कवियों ने पशु, पक्षी, तथा राक्षस जाति की संज्ञा रचना के द्वारा प्रकट किया है ।

4.1.2.1. पशु :

इस रचना का अभिप्राय यह है : पशु पाशविक वृत्ति वाले जीव + राम की सहायता + राम कृपा = दास भक्त ।

तुलसी ने /पसु/ {वि.78} जातिवाचक संज्ञा का प्रयोग किया है । इसके पर्याय के रूप में /मृग/ {वि.225}; त्या 424} शब्द का प्रयोग दोनों

कवियों ने किया है । इस संज्ञा को संकुचित करके दोनों कवियों ने /वनचर/ (गी.1/16; त्या.276) शब्द का प्रयोग भी किया है, अर्थात् वन्य पशु । तुलसी ने /भालु-कपि/ (गी.5/23) की द्वन्द्वात्मक रचना करके अभीष्ट वनचरों की ओर रचना को प्रेरित किया है । त्यागराजु ने चाहे संकोचन की इस गति को स्पष्ट रूप से न ग्रहण किया हो, किंतु वे भी भालु और बंदरों को ही लक्षित करते दिखलाई पड़ते हैं ।

1. कपि :

1.1. जातिवाचक संज्ञा :

बंदर के लिए दोनों कवियों ने इन पर्यायों का प्रयोग किया है : "कपि" (गी.5/22; त्या.19), "मर्कट" (वि.43; त्या.223), "कीश" (वि.106; त्या.36), "वानर" (वि.98; त्या.107) । त्यागराजु ने /हरि/ "बंदर" (त्या.411) का भी प्रयोग किया है । इनके अतिरिक्त त्यागराजु के गीतों में तेलुगु पर्याय /कोति/ "बंदर" का बहुवचन रूप /कोतुलु/ (त्या.364) भी मिलता है ।

दोनों कवियों के गीतों में इसकी सविशेषण रचना भी मिलती है । उदाहरण के लिए तुलसी ने /सुभट मर्कट/ "वीर वानर" (वि.43) लिखा है । इससे राम-रावण-युद्ध संदर्भ संकेतित होता है । त्यागराजु ने "वर" विशेषण का प्रयोग ~~करके~~ इसके साथ किया है : /वर वानर/ (त्या.424) । इससे राम साहाय्य तथा उनकी भक्ति-भावना संकेतित होते हैं । एक स्थान पर उन्होंने /पेद कपुलु/ "दीन कपि" (त्या.516) का प्रयोग भी किया है । इससे यह संकेतित होता है कि दीनावस्था से वानर उदात्त अवस्था में संक्रमित हुए ।

1.2 व्यक्तिवाचक संज्ञा :

ऊपर वानर संबंधी जो जातिवाचक संरचना देखी गयी है उसका अर्थ व्यक्तिवाचक ही है । अर्थात् जातिवाचक नामों का प्रयोग ~~सुग्रीव~~ सुग्रीव, अंगद, नल, नील, हनुमान आदि के लिए हुआ है ।

1.2.1 सुग्रीव - अंगद तथा अन्य वानर :

सुग्रीव (गी.7/38; त्या.136) की सविशेषण संरचना इस प्रकार की गयी है : /कपि सुग्रीव/ (वि.166) तथा /ग्यान सुग्रीव/ (वि.58) । त्यागराजु ने /सुग्रीव प्रमुख/ (त्या.138) जैसी रचना की है ।

दोनों ही कवियों की कल्पना में सुग्रीव के पर्याय उभरते हैं । प्रमुख रूप से उसका राज रूप रचना में प्रतिबिंबित होता है । तुलसी ने जहाँ "कपिराज" (गी.4/2); "कपिनायक" (गी.4/2); "कपिपति" ~~(गी.4/2)~~ (वि.99); "कपि कुलपति" (वि.138) और "कपीस" (गी.6/9) जैसी रचनाओं का प्रयोग किया है तो त्यागराजु ने "वनचराधिप" (त्या.516); "हरिगणाधिप" (त्या.141); "वानराधिप" (त्या.1) और "वानरयूथपति" (त्या.61) जैसे शब्दों का प्रयोग किया है । इस संरचना के द्वारा दोनों ही कवि इस बात पर बल देना चाहते हैं कि राम की कृपा और सहायता से सुग्रीव को राजपद प्राप्त हुआ ।

त्यागराजु ने पितृमूलक पर्यायों का प्रयोग भी किया है, जैसे "रवि कुमारूडु" (त्या.93), "तरणिसुत" (त्या.37), "विभाकर सुत" (त्या.455), "इनजुडु" (त्या.421), "विरोचनसुत" (त्या.306) आदि ।

तुलसी ने राम और सुग्रीव की मैत्री को देखते हुए उसके लिए /मीत/ (वि.180) शब्द का प्रयोग किया है ।

तुलसी ने जहाँ "अंगद" (गी.6/2) शब्द का प्रयोग किया है वहाँ उन्होंने "बालिपुत्र" (गी.5/23) अंगद को भी लक्षित किया है । इससे यह संकेत मिलता है कि अंगद कितना बली था - "बली बालि को जायो" (गी.5/1) ।

तुलसी ने "नल" तथा "नील" (गी.5/32) का नामोल्लेख मात्र किया है । त्यागराजु ने इनको तो छोड दिया है, किंतु "गवय गवाक्ष" (त्या.620) वानरों का नाम दिया है ।

1.2.2 हनुमान :

वानरों में सबसे अधिक संरचनात्मक संदर्भ हनुमान * को दिया गया है। त्यागराजु ने /श्रीमतुडौ हनुमंतुडु/ §त्या.195§ जैसी विशेषणमूलक रचना के द्वारा हनुमान को सौभाग्यशाली बतलाया है जो राम का सेवक और कृपा भाजन बन सका।

नाम पर्याय रचना :

दोनों ही कवियों ने हनुमान की पर्याय रचना में प्रथ पर्याप्त रुचि ली है। पर्याय रचना की दिशायें ये हैं : §1§ मातृ सूचक पर्याय : त्यागराजु ने "आंजनेयुडु" §त्या.61§ पर्याय का प्रयोग किया है। तुलसी ने इस आधार पर पर्याय रचना तो नहीं की, किंतु एक विस्तृत आलंकारिक वाक्यांश की रचना अंजनी के आधार पर की है।[2] §2§ पितृ मूलक पर्याय : तुलसी ने केसरी के आधार पर पर्याय रचे हैं - /केसरी किसारे/ §वि.31§; /केसरी सुवन/ §वि.29§। त्यागराजु ने केसरी का नामोल्लेख तो नहीं किया, किंतु /कपिजु/ §प्रभवि.पृ.26§ का प्रयोग किया है जिसमें कपि का अर्थ है - केसरी।

§3§ पवन के आधार पर पर्याय : पौराणिक रूप से हनुमान पवन पुत्र हैं। हनुमान पवन पुत्र हैं। इसके आधार पर पर्याय रचना की गयी है। तुलसी ने पवन ~ समीर ~ मारुत ~ प्रभंजन ~ वात[3] + कुमार ~ सुत ~ पूत ~ सुवन ~ नंदन तनय[4] रचना की है। त्यागराजु ने हवा के अधिक पर्यायों का प्रयोग इस रचना में किया है : अनिल ~ पवमान ~ पवन ~ वात ~ जगत्प्राण ~ समीर ~ गंधवाह ~ सततगति ~ सततयान ~ आशुग[5] + सुत ~ कुमार ~ तनय ~ सून §सुवन§ आत्मज [5] [6]

---

* तुलसी ने "हनुमान" §गी.5/4§ तथा "हनुमंत" §गी.5/9§ जैसे व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग किया है और त्यागराजु ने "हनुमंतुडु" §त्या.107§ का।

2 /अंजनी-गर्भ-अंबोधि-संभूत बिधु/ - वि.25/1

3 वि.36 गी.5/2 गी.5/6 वि.58 वि.28

4 गी.6/9 गी.5/49 गी.5/6 वि.33 वि.36 वि.58

5 त्या.620 136 427 51 349 568 147 96 12 25

6 त्या.540 586 141 322 518

इनके अतिरिक्त /ज/ प्रत्यय का प्रयोग करके भी संस्कृत शैली के पर्याय उन्होंने रचे हैं - "अनिलज" (त्या.417); "पवनज- (त्या.379) आदि ।

(4) शिव के आधार पर पर्याय : तुलसी ने /रुद्रावतार/ "हनुमान" (वि.25) का प्रयोग भी किया है और वानर रूप में स्वयं शिव के रूप में भी उनको देखा -- /वानराकार विग्रह पुरारी/ (वि.27) । /रुद्राग्नी/ (वि.27), /कपाली/ (वि.26), /सूलपानी/ (वि.29) पर्याय के द्वारा एकादश रुद्रों में उनकी स्थिति प्रकट की है । त्यागराजु ने /शंकरांशुडु/ (त्या.25) के रूप में हनुमान को देखा है । (5) /रामदूत/ (गी.5/6; त्या.349) पर्याय तुलसी को भी प्रिय है और त्यागराजु को भी ।

इन पर्यायों के साथ कुछ विशेषणों का प्रयोग भी दोनों कवियों ने किया है । त्यागराजु ने /भीम/ (त्या.199), /वररमुडु/ (त्या.177) जैसे विशेषण लिये हैं तो तुलसी ने आलंकारिक रूप में /कपि केसरी/ "वानरों में साक्षात् सिंह" (वि.29) जैसा वीरतामूलक विशेषण लिया है ।

विशेषण संरचना :

1. रूपांग की विशेषण रचना :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने हनुमान के वर्ण की समान कल्पना की है । यदि तुलसी ने हनुमान को सूर्य के समान तेजस्वी कहा - /तरुन तेज रासी/ (वि.26), /बालार्क बर-बरन/ (वि.28) - तो त्यागराजु ने /तपन कोटि संकाश/ (त्या.349) कहकर भी यही वर्ण बिंब प्रस्तुत किया । यदि तुलसी ने /जाति रूपाचलाकार विग्रह/ (वि.28) कहकर उनके स्वर्ण वर्ण की व्यंजना की तो त्यागराजु ने भी /कांचनाद्रि सम देह/ (त्या.349) की रचना के द्वारा यही बिंब साकार किया ।

तुलसी ने हनुमान के मुख का बिंब इस अलंकृत रचना के द्वारा प्रकट किया है : /तरूणारूण वदनाब्ज/ (त्या.349) । तुलसी ने मुख के संबंध में तो आलंकारिक रचना नहीं की, किन्तु अन्य अंगों के संबंध में विशेषण रचना की जिस का त्यागराजु

के गीतों में अभाव है ।

तुलसी ने हनुमान के सर्वांग के लिए /ब्रज "वज्रसार" {वि.26}, "सुबिसाल" {वि.26} तथा बिकराल {वि.26} विशेषणों का प्रयोग किया है । तुलसी का हनुमान "कपिस-कर्कस-जटाजूट धारी" {वि.28}, "विकट भ्रकुटी" {वि.28}, "पिंगल नयन" {वि.28}, "बृहद बाहु" {वि.28}, "चंड-भुजदंड" {वि.25} है । कपि के रूप में पूछ, दसन और नख की विस्तृत रचना की गयी है । पूँछ विशाल है - "बालाधि बिसाला" {वि.28} । उनके दांत और नख विकट कुलिश के समान है - "वज्रदसन नख" {वि.28} । उनके शरीर की रोमावली बिजली की लताओं तथा अग्नि के समान है - "लसत्, लोम, विद्युल्लता ज्वाल माला" {वि.28} ।

स्वभाव :

हनुमान के स्वभाव की विशेषणमूलक संरचना दोनों कवियों ने समान की है । यदि तुलसी ने "करुना सुभाव" {गी.5/9} लिखा है तो त्यागराजु ने उनके स्वभाव को "करुणारस परिपूर्ण" {त्या.349} कहा है । त्यागराजु ने "विमल चित्त" {त्या.349} की रचना की है तो तुलसी ने "सीतल सुभाव" {गी.5/4} की ।

तुलसी ने सत्य और धर्म पर आधारित विशेषण रचना भी की है : "धर्मचारी" {वि.26}, "सत्यरत" {वि.26} । साथ ही हनुमान विरक्त वृत्ति के भी है - "ब्रह्मलोकादि-वैभव बे विरागी" {वि.29} ।

अलौकिकता :

तुलसी ने हनुमान की प्रभूता और विभुता को व्यक्त करनेवाले विशेषणों का भी प्रयोग किया है : /महादेव/ "देवताओं में श्रेष्ठ" {वि.26}, "बिधाता" {वि.25}, "विभो" {वि.29} । वे "त्रै भुवन भर्त्तार" {वि.25}, /संसार-पाता/ "संसार के रक्षक" {वि.25} भी है । ब्रह्म की शक्तियों के द्योतक विशेषण पदबंधों

की रचना भी तुलसी ने की है : /अघटि-घटन, सुघटन-विघटन/ §वि.30§, /अघट घटना-सुघट सुघट विघटन-बिकट/ §वि.25§ । त्यागराजु ने यह रचना नहीं की ।

त्यागराजु की कल्पना में एक विशेषण अवश्य है : /हरिदृयविनुत/ "इन्द्र के द्वारा स्तुत्य" §त्या.177§ । तुलसी ने शुक, नारद, वेद और विद्वानों के द्वारा उनको स्तुत्य कहा है §वि.25,26§ । साथ ही योगी, सिद्ध सुर के द्वारा वे "सेवित" §वि.26§ भी हैं ।

त्यागराजु ने /पारिजात तरु निवास/ "पारिजात वृक्ष पर निवास करने वाले" §त्या.349§ विशेषण का प्रयोग किया है । तुलसी की कल्पना में यह रूप नहीं आया है ।

ज्ञान-विवेक :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ज्ञानी के रूप में हनुमान को विशेषण संरचना का संदर्भ दिया है । ज्ञान वेद रूप है । त्यागराजु ने हनुमान के लिए "वेदशास्त्र निपुण वर्य" §त्या.349§ विशेषण प्रयुक्त किया है । प्रवृत्ति तो तुलसी की भी यही है, किन्तु इस वर्ग के विशेषणों का वैविध्य उनमें मिलता है : "बेद-बेदाग बिद" §वि.26§, "बेदांत-बिद्" §वि.26§, "सामगायक" §वि.28§ तथा "ब्रह्मवादी" §वि.26§ । "साम गायक" कहकर तुलसी ने हनुमान की वाणी विशेषता की ओर संकेत किया है । त्यागराजु ने भी "वागधिपति" §त्या.539§ विशेषण का प्रयोग किया है । तुलसी हनुमान को "बिबिध-विद्या-बिसद" §वि.26§ कहते हैं । विविध विद्याओं में ज्ञान-विज्ञान §वि.26§, निगम-आगम और व्याकरण §वि.28§, नाट्य विद्या और काव्य कला §वि.28,29§ आते हैं । तात्पर्य यह है कि हनुमान "बुद्धि बारिधि §वि.25§, "ज्ञानव्रत" §वि.26§, "विस्व विद्याग्रनी" §वि.27§ और "सर्वग्य" §वि.33§ हैं ।

बल-वीरता :

वीरता संबंधी विशेषण भी तुलसी ने ही अधिक रचे हैं, जैसे /बानैत/ "वीर बाने से युक्त" (वि.25), "बीर-बडोइ" (गी.5/5), "रनधीर" (वि.25), "बल बिपुल" (वि.28), "धीर धुरीन" (गी.5/5) आदि । वीर के रूप में हनुमान विख्यात है : "विख्यात विक्रम" (वि.28) "विश्व-विख्यात भट चक्रवर्ती" (वि.27) । बल-बुद्धि और वेग में गरूड भी उनके सामने कुछ नहीं - "बिहगेस-बल बुद्धि-बेगाति-मद-मथन" (वि.29) ।

त्यागराजु ने "कृतकार्य" (त्या.349) विशेषण के द्वारा उनकी कार्यशूरता का संकेत तो दिया है, किन्तु तुलसी के समान वे रचना वैविध्य में प्रविष्ट नहीं हुए ।

वेग :

हनुमान के चरित्र में वेग का स्थान भी प्रमुख है । त्यागराजु ने एक आलंकारिक विशेषण-"पवनतुल्यवेग" (त्या.349) का प्रयोग इसी अभिप्राय के लिए किया है । तुलसी ने इस अभिप्राय को सामासिक रचना के द्वारा व्यक्त किया है - "भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता" (वि.25) । वेग में वे गरूड को भी परास्त करने वाले हैं - "व्याल सूदन गर्वहर" (वि.28).।

विजयी :

दोनों ही कवियों ने अपूर्व विजयी के रूप में हनुमान की विशेषण रचना की है : "संग्रामजय" (वि.27) तथा "पाद विजित दुष्टग्रह" (त्या.349) । विजय का संदर्भ विस्तृत करने के लिए तुलसी ने "कामजेताग्रनी" (वि.27) विशेषण का भी प्रयोग किया है । गान विद्या में वे गंधर्वों को जीतने वाले हैं : "गान गुन-गर्व-गंधर्व-जेता" (वि.29) ।

क्रिया मूलक विशेषण :

1 दाता :

त्यागराजु ने /वरद/ "वर देनेवाले" ([त्या.349]) तथा /त्यागराजवरद/ ([त्या.171]) विशेषणों का प्रयोग किया है । तुलसी ने इसी शैली में /विभीषन वरद/ ([वि.26]) की रचना की है । "भक्त काम दायक" ([वि.27]) विशेषण के द्वारा हनुमान की भक्त वत्सलता प्रकट की गयी है । वे "धमार्थ कामापवर्गद" ([वि.29]), /भानुकुल-केतु-रन विजयदायी/ "राम को विजय दिलाने वाले" ([वि.25]), /गत राज दातार/ "सुग्रीव के खोये हुए राज्य को दिलानेवाले" ([वि.28]), "दुष्ट-रावन-कुंभकरन-पाकारिजित-मर्मभित्, कर्म-परिपाक-दाता" ([वि.26]) भी हैं ।

2. हर्त्ता :

यह हरण करने की क्रिया पर आधारित विशेषण रचना है । इस क्रिया के साथ इन कर्मों का प्रयोग करके विशेषण रचना की गयी है : "गर्व" ([वि.28]), "दनुजदर्प" ([वि.28]), "कालाग्नि" ([वि.27]), "जातुधानु-प्रचुर-हर्ष" ([वि.26]) आदि ।

त्यागराजु ने विरोधी शक्तियों के हर्त्ता के रूप में हनुमान को देखा है - "दशवदन सूनु तनु हरण" ([त्या.349]) ।

जहाँ हनुमान विरोधी शक्तियों का हरण करते हैं वहाँ वे "संकट-भयहरन" ([वि.25]), "लोकगन-सोक-संतापहारी" ([वि.25]), "जगदर्ति हर्त्ता" ([वि.26]), "संसार भारापहर" ([वि.27]), "हंतार संसार संकट" ([वि.28]) तथा "भक्त-संताप-चिंतापहर्त्ता" ([वि.29]) भी हैं ।

3. कर्त्ता :

इस रचना में प्रयुक्त कर् - "करनेवाले" है : "गर्व खर्वी करन" ([वि.25]), /पषान-जलजान कर/ "पत्थर का पुल बाँधने वाले" ([वि.26]) । कभी-कभी इस

क्रिया के बिना भी इस अर्थ की विशेषण रचना की गयी है - "उथपेथापन थपे उथपन" {वि.31}, /धनंजय-रथ-त्राण-केतू/ "अर्जुन के रथ की पताका पर बैठकर उसकी रक्षा करनेवाले" {वि.28} । त्यागराजु ने भी इस शैली की रचना की है : /पतित लोक पावन/ "पतितों को पवित्र करनेवाले" {त्या.349} । इस रचना के अन्य विशेषण ये हैं : "जन-रंजन" {वि.31}, "संतन-हितकारी" {वि.36}, "अमर मंगल हेतु" {वि.25}, /विबुध-बृंद-बंदि-छोर/ "देवताओं को मुक्त करनेवाले" {वि.31}, "भूमिनंदिनी-सोच-मोचन" {वि.25}, "सौमित्रि-रघुनंदनानंदकर" {वि.25}, "बालि-बल बालि-बध मुख्य हेतु" {वि.25}, "सुग्रीव-सिच्छादि-रच्छन" {वि.25}, "रावणादि के नाश के कारण" {वि.25}, "मंदोदरी केश-कर्षन" {वि.29} आदि ।

समुद्र लांघना हनुमान के जीवन का प्रमुख कृत्य है । इसके लिए तुलसी ने "जलधि लंघन" {वि.25} तथा त्यागराजु ने "वारिनीश तरण" {त्या.349} विशेषण का प्रयोग किया है ।

4.धार्त्ता :

कुछ रचनाओं के मूल में धर् - "धारण करनेवाला" क्रिया है । इसके कर्म ये हैं - "सस्त्रास्त्र" {वि.26}, /कुधर/ "पर्वत" {वि.26}, /तरुसैल पानि/ "वृक्षों और पर्वतों को हाथों में धारण करनेवाले" {वि.25} ।

त्यागराजु ने "करधृत रघुवर सुचरण" {त्या.349} रचना के द्वारा रामभक्ति की ओर संकेत किया है ।

5 नाशक :

विरोधी तत्वों के नाशक के रूप में भी हनुमान की वीरता है । तान्त्रिक प्रयोगों के "हंता" {वि.26} तथा भूत-प्रेतादि के "जंता" {वि.26} के रूप में भी हनुमान को देखा गया है । वे मनमथ-मथन {वि.29} हैं और अविद्या के नाशक {वि.26} भी ।

भौतिक रूप से /अरिगन-गंजन/ "शत्रु नाशक" {वि.31} /मुख-भंजन-खल/ "खलों के मुख को नष्ट करनेवाले" {वि.31}, "दुर्योधन की सेना के नाशक" {वि.28}

/विपिन दलन/ "अशोक वन के नाशक" §वि•25§, अमंगल मूल निकंदन" § वि•36§, "कालनेमि हंता" §वि•25§ जैसे विशेषण प्रयुक्त हुए हैं ।

अंत में तुलसीदास अपने आपको इस रचना में ले आते हैं : /दास तुलसी त्रास समन/ "तुलसीदास के त्रास का नाश करनेवाले" §वि•25§ ।

मोद-मंगल :

तुलसी ने इस अभिप्राय के ये विशेषण रचे हैं : "मूरति मोद निधान" §वि•30§, "मुद-मंगलमय" §वि•26§, "मंगल मूरति" §वि•36§, "मंगलागार" §वि•27§, "निर्भरानंद संदोह" §वि•29§ ।

राम भक्त :

इस अभिप्राय के विशेषण तुलसी में ये मिलते हैं : "रघुबीर पियारे" §वि•33§, "श्रीराम-प्रिय-प्रेम बारो" §वि•28§, "राम भक्तानुवर्ती", §वि•27§, "जानकीनाथ-चरनानुरागी" §वि•29§ ।

भक्त रूप में त्यागराजु जी हनुमान को रचना संदर्भ देते हैं : :
/परम भागवतवरेण्य/ "भक्तों में परमश्रेष्ठ" §त्या•349§, "रामनाम रसिक" §त्या•4§ ।

आलंकारिक विशेषण :

अन्य प्रकार की विशेषण रचनाओं की भांति तुलसी ने विविध आलंकारिक रचना भी की है । त्यागराजु ने केवल सांसारिक संताप को हरण करनेवाले हनुमान की आलंकारिक विशेषण संरचना की है : /कलिमलाभ्र गंधवाह/ "कलिमल रूपी मेघों के लिए वायु" §त्या•349§ तथा /घोरासुर वारानिधि कुंभतनय/ "घोर असुर रूपी समुद्र के लिए अगस्त्य" §त्या•349§ ।

तुलसी ने भी हनुमान को संसार रूपी रात्रि को समाप्त करनेवाला कहा है - /मोहमद-कोह-कामादि-खल-संकुला, घोर संसार-निसि किरन माली / §वि•26§ । अविद्या जन्य विकारों के वन और भवन को वे भस्म करने वाले

है ।*

तुलसी ने राम, सीता, लक्ष्मण आदि के साथ हनुमान के विविध संबंधों की भी आलंकारिक रचना प्रस्तुत की है ।[2] केसरी, अंजनी और मरुत के संदर्भों को भी इस रचना में लाया गया है ।[3] राक्षस विनाश संबंधी आलंकारिक विशेषण भी मिलते हैं ।[4] लंकादहन को भी अलंकृत किया गया है ।[5] शत्रुजयी हनुमान भी अलंकृत किये गये हैं ।[6] इस प्रकार हनुमान "मृगराज विक्रम" ॥वि.26॥ और "भट-मुकुट मनी" ॥वि.29॥ है । देव, ऋषि और सज्जनों को आनंद देनेवाले हनुमान भी इस संरचना में आये हैं ।[7] आलंकारिक रचना का इतना विस्तार त्यागराजु के गीतों में नहीं है ।

तुलनात्मक निष्कर्ष :

॥1॥ परिणाम और वैविध्य की दृष्टि से तुलसी की हनुमान संबंधी संरचना त्यागराजु की अपेक्षा बहुत विशद है ।

॥2॥ हनुमान के प्रति तुलसी और त्यागराजु की दृष्टि और प्रवृत्ति पचहत्तर प्रतिशत समान है । केवल विस्तार और वैविध्य में तुलसी की संरचना बहुत आगे बढ़ जाती है ।

॥3॥ तुलसी के गीति-काव्य में संरचना की दृष्टि से राम के पश्चात् हनुमान का ही स्थान है । इसका कारण यह है कि तुलसी के लिए हनुमान प्रेरणा स्रोत है और इष्टवत भी हैं । त्यागराजु की भावना हनुमान के प्रति इस रूप में नहीं है । उनके प्रेरणा-स्रोत नारद हैं । इसलिए त्यागराजु की नारदीय संरचना तुलसी की अपेक्षा बहुत अधिक है ।

॥4॥ जहाँ तक पर्याय संरचना का प्रश्न है त्यागराजु की स्थिति तुलसी से विशिष्ट है । इससे उनका पौराणिक ज्ञान और संस्कृत परंपरा से उनका संबंध सिद्ध होता है ।

---

* वि. 58 2 वही. 26, 27, 29, 31 3 वि.25,26,27,29

4 वही. 25,27 5 वही.25 6 वही.28 7 वही.25,26,27

§5§ "विनय पत्रिका" में हनुमान के प्रति कुछ स्त्रोत गीतों की रचना भी की गयी है । * इसलिए हनुमान की विशेषण मूलक संरचना बहुत सघन, सामासिक, वृत्तगंधी और आलंकारिक हो जाती है । त्यागराजु ने हनुमान के संबंध में केवल दो गीत[2] लिखे हैं । इसलिए उनकी हनुमान संबंधी विशेषण मूलक संरचना बहुत सीमित हो जाती है ।

§6§ हनुमान के जीवन के कुछ प्रसंग उल्लेखनीय हैं : सूर्य का निगलना, सुग्रीव की सहायता करना, समुद्र लांघकर सीता के लिए संदेश ले जाना, लंका दहन, सेतु बंधन और लंका का युद्ध । पहले प्रसंग को छोड़कर "गीतावली" में सभी प्रसंग आये हैं और इनसे संबंधित विशेषणों का प्रयोग भी "गीतावली" और "विनय-पत्रिका" में हुए हैं । त्यागराजु के गीतों में ये प्रबंधमूलक विशेषण बहुत ~~मह~~ सीमित हैं, क्योंकि "गीतावली" की भांति कथासूत्र में निबद्ध गीत उन्होंने नहीं लिखे ।

§7§ हनुमान जी की अलौकिकता से संबंधित तुलसी की विशेषण संरचना ब्रह्म और राम की विशेषताओं से युक्त भी हो जाती है । त्यागराजु की हनुमान संबंधी संरचना इस क्षेत्र में भी सीमित हो जाती है । साथ ही वे हनुमान को ज्ञानी तो कहते हैं, किन्तु ज्ञान की शाखाओं का उल्लेख करके विशेषणों की संरचना नहीं करते ।

भालु :

जातिवाचक संज्ञा के रूप में "भालु" §वि.58§ "रीछ" §गी.5/23§ और रीछ के अपभ्रंश रूप "रिच्छ" §वि.25§ का प्रयोग तुलसी ने किया है । रीछ के साथ "सकल" विशेषण जोड़कर /सकल रिच्छ/ §गी.5/16§ बनाया गया है जिससे जातिवाचक संज्ञा सुरक्षित बनी रही । इसके साथ /-राज/, /-नाथ/ जोड़कर "रीछराज" §गी.5/32§ और "भालुनाथ" §गी.5/1§ व्युत्पन्न किये गये हैं । इसका अर्थ /जामवंत/ §गी.4/7§ की ओर होता है ।

---

* वि. 25 से 36 2 त्या.147, 349

भालू के पूर्व "कुटिल" ﴾वि.165﴿ शब्द जोड़कर इस वर्ग के जीव की निम्न स्थिति की ओर संकेत किया गया है । यह जीव भी राम की कृपा पाकर उन्नत हो सका - इस अभिप्राय की व्यंजना की गयी है ।

त्यागराजु ने यह समस्त संरचना नहीं की । उन्होंने केवल जांबवंत के लिए /तात/ ﴾त्या.596﴿ शब्द का प्रयोग किया है ।

हाथी : अभिमानी : आर्त पुकार : उद्धार :

तुलसी और त्यागराजु ने हाथी के इन पर्यायों का समान रूप से प्रयोग किया है : "करि" ﴾वि.217; त्या.12﴿, "गज" ﴾वि.57; त्या.284﴿, नाग ﴾वि.93; त्या.356﴿ और "वारण" ﴾वि.206; त्या.171﴿ । इनके अतिरिक्त तुलसी ने गयंद ﴾वि.83﴿ तथा फारसी स्रोत के शब्द /पील/ "कील" ﴾वि.248﴿ का प्रयोग किया है और त्यागराजु ने दो विशिष्ट पर्याय प्रयुक्त किये हैं : "सामज" ﴾त्या.239﴿ और "इभ" ﴾त्या.237﴿ । इसकी विशालता को प्रकट करने के लिए दोनों कवियों ने नाम पर्यायों के साथ "राज" या "इन्द्र" का संयोग किया है । क्षिप्रता की दृष्टि से गज तुलसी में अधिक प्रयुक्त हुआ है और "इभ" त्यागराजु में ।

तुलसी ने इसके साथ एक विशेषण का प्रयोग भी किया है - /अभिमान सिंधु/ ﴾वि.144﴿ । इसके द्वारा यह ज्ञापित किया गया है कि उसकी मनःस्थिति विकृत थी । आगे का सूत्र भी इससे झंकृत हो जाता है कि संकटापन्न होने पर इसने आर्त पुकार की और भगवान ने उसका उद्धार किया है । त्यागराजु ने भक्त मानकर उसकी जीव कोटि का उन्नयन व्याकरणिक प्रक्रिया के द्वारा ज्ञापित किया है - /गजेंद्रुडु/ ﴾त्या.446﴿ ।

सर्प :

सर्प के भी दो रूप दिखलाई पड़ते हैं : उच्चाशय ﴾शेष﴿ तथा दुष्ट ﴾कालीय﴿ ।

शेष :

जातिवाचक संज्ञा : तुलसी और त्यागराजु दोनों ने समान रूप से इन पर्यायों का प्रयोग किया है : "अहि" (वि.243; 435); "उरग" (वि.55; त्या.184) और "नाग" (वि.98; त्या.295) । इनके अतिरिक्त तुलसी ने "सर्प" (वि.18) नाम भी दिया है और त्यागराजु ने "फणि" (त्या.20अ) तथा "भुजंग" (त्या.180) पर्यायों का विशेष प्रयोग किया है । त्यागराजु ने "शिवुनिकिभूषुडु" (त्या.107) कहकर शिव के साथ इसका संबंध जोडा है ।

व्यक्तिवाचक संज्ञा :

(क) सूच्य : उपर्युक्त पर्यायों के साथ "राज","पति," "इन्द्र", "अधिप", "ईस", "नायक" आदि शब्दों का संयोग करके इनका व्यक्तिवाचक प्रयोग भी सिद्ध किया गया है : /अहिराज/ (त्या.563) और (/अहि पति/ (त्या.435); /उरग नायक/ (वि.55; त्या.50अ) तथा /उरगराज/ (त्या.50); /सर्पेस/ (वि.18); /नागनायक/ (त्या.314); /नागाधिप/ (त्या.412); /नागेन्द्र/ (त्या.1) और /नागराजु/ (त्या.43); /फणिराज/ (त्या.482), /फणिपति/ (त्या.361) एवं /फणीन्द्र/ (त्या.210) ।

त्यागराजु ने एक विशेषण मूलक संज्ञा पदबंध भी रचा है : /शुभ्रनागेन्द्रुडु/ (त्या.1) । इससे भी शेष की सूचना मिलती है जिसका रंग श्वेत माना गया है ।

(ख) नामोल्लेख : तुलसी ने "शेष" के अतिरिक्त "उर्विधार" (वि.15) और भूधर (वि.38) पर्यायों का प्रयोग भी किया है । त्यागराजु ने "शेष" के साथ-साथ "अनंत" (प्रभवि.पृ.15) पर्याय का प्रयोग भी किया है ।

त्यागराजु ने तेलुगु व्याकरणिक प्रक्रिया के द्वारा इस जीव की उच्चतर जीव कोटि सूचना भी दी है - "शेषुडु" * (त्या.107) ।

---

* तेलुगु में /-डु/ प्रत्यय पशुओं के लिए प्रयुक्त नहीं होता है । इसका प्रयोग पुरुष के लिए और देवता के लिए ही होता है ।

एक विशेषण मूलक पदबंध के द्वारा शेष का दिव्यत्त्व भी ज्ञापित किया गया है - /आदिशेषुडु/ (त्या.149) ।

इस प्रकार सामान्य सर्प > शेष > शेषुडु (जीव की उच्च कोटि") > आदिशेष (दिव्यत्त्व) विकास क्रम के द्वारा जीव की प्रगति की सूचना दी गयी है ।

कालिय : कृष्ण शत्रु > कृष्ण से दमित > भक्त :

कालिय का उल्लेख कृष्ण संदर्भ में दोनों क ही कवियों ने किया है (वि.49; त्या.102) । कृष्ण के शरणागत होने पर इस जीव का स्तरांतरण हुआ । इस बात की सूचना त्यागराजु ने तेलुगु व्याकरणिक रचना के द्वारा दी है - "कालियुडु" ।

गिलहरी : तुच्छ जीव : भक्ति : राम कृपा :

केवल त्यागराजु ने /उडुता/ "गिलहरी" (त्या.112) का नामोल्लेख किया है । यह भी संकेत दिया गया है कि गिलहरी ने सेतु बंधन के समय राम के प्रति अपनी सेवा समर्पित की और राम उसके प्रति द्रवित और कृपालु हुए ।

तुलनात्मक निष्कर्ष :

गज और शेष संबंधी भावात्मक संरचना में आलोच्य कवियों में प्रवृत्तिगत साम्य है । विस्तार की दृष्टि से इन दोनों का रचना विस्तार त्यागराजु ने तुलसी की अपेक्षा अधिक किया है । त्यागराजु ने गिलहरी की भावात्मक संरचना संभवत: स्थानीय स्रोत से ग्रहण की है । तुलसी के कृतित्व में इसका अभाव है ।

4.1.2.2. पक्षी :

1 जातिवाचक :

पक्षियों के लिए कई पर्यायों का प्रयोग दोनों आलोच्य कवियों ने किया है : "खग" (गी.7/24; त्या.329), "पक्षी"~ पंछी (त्या.424 ~ गी.2/68), "पतंग" (कृ.गी.55), "बिहंग" (गी.7/33), "बिराज" (त्या.402) आदि ।

इनके अतिरिक्त प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप में (सुक (गी.2/67) कीर (गी.1/54); सारो (गी.2/66) सारिका (गी.3/9); राजमराल (गी.3/7) राजहंस ~ (गी.2/86)~मराल (गी.1/54); पिक (गी.2/45) कोकिला (गी.1/54); केकि (गी.1/54)~मयूर (गी.6/21)~मोर (गी.3/1); चकोर (गी.1/29); चकवाक (गी.1/39); चातक (कृ.गी.57)~पपीहा (वि.15); भृंग (कृ.गी.54) ~षट्पद (कृ.गी.57)~मधुकर (कृ.गी.34)~मधुप (गी.1/54)~अलि (गी.3/9)~ चंचरीक (गी.1/38); छेमकरी (गी.6/20); /तमचुरखग/ "कुक्कुट" (गी.1/39); खद्योत (गी.6/16); काक (वि.185)~काग (गी.5/29); बक (वि.185); उलूक (वि.222); सलभ (कृ.गी.45); कपोत (गी.47/11); कबूतर (गी.47/11) आदि का उल्लेख भी तुलसी ने अपने गीत-काव्य में किया है तो त्यागराजु ने भी इनका उल्लेख किया है : कीर (त्या.1)~चिलुक (त्या.69)~शुक (त्या.276); कोकिल (त्या.192); हंस (त्या.192); भृंग (त्या.192)~भ्रमर (प्रभवि.पृ.7); चकोर (त्या.153); /काकि/ "काग" (त्या.364); कोग (त्या.364); /ईग/ "मक्खी" (त्या.221); /चित्रपक्षुलु/ "खद्योत" (त्या.364) आदि ।

2. व्यक्तिवाचक :

2.1. गरुड :

2.1.1 जातिवाचक संज्ञा व्यक्तिवाचक संज्ञा :

(गरुड)

जातिवाचक संज्ञा + राज पति ईस अधिप = व्यक्तिवाचक संज्ञा : "खगराज" (वि.179; त्या.252): "खगपति" (वि.93), "विहगेस" (वि.29) और "विराजाधिपुडु" (त्या.523) । इस रचना के द्वारा गरुड की सूचना दी गयी है ।

2.1.2 नामोल्लेख : गरुड (वि.213; त्या.497) का नामोल्लेख दोनों कवियों ने किया है । त्यागराजु ने एक दिव्यता वाचक पदबंध भी दिया है : "गरुड देवुडु" (प्रभवि.पृ.5) । यह दिव्यत्व उसे विष्णु के संपर्क से प्राप्त हुआ ।

2.1.3 पर्याय रचना : ﴾1﴿ मातृवाची: "विनता सुत" ﴾प्रभवि.पृ.5﴿ ~ "तनय" ﴾त्या.486﴿, "वैनतेय" ﴾त्या.596﴿ । ये पर्याय तुलसी के गीत काव्य में नहीं मिलते । ﴾2﴿ स्वभाव वाची : स्वभाव से गरूड सर्प शत्रु है । इस पर आधारित और तुलसी के द्वारा प्रयुक्त पर्याय ये हैं : "उरगारि" ﴾वि.61﴿, "उरगरिपु" ﴾वि.117﴿, "व्यालारि" ﴾वि.54﴿ तथा "पन्नगारि" ﴾वि.64﴿ । त्यागराजु ने इसी रचना के ये पर्याय प्रयुक्त किये हैं : "नागारि" ﴾त्या.343﴿ । तुलसी का "व्याल सूदन" ﴾वि.28﴿ पर्याय इसी अर्थ का बोधक है । ﴾3﴿ गरूड की दूसरी प्रकृति सर्प भोजन की है । इस प्रकृति का वाचक पर्याय तुलसी में "व्यालाद" ﴾वि.59﴿ है । त्यागराजु ने /-अशन/ और /-भोजि/ ~ /-भोगि/ शब्दों का संयोग करके इन पर्यायों की रचना की है : "उरगाशनुडु" ﴾प्रभवि.पृ.5﴿; "नागाशन" ﴾त्या.522﴿; "अहिराज राज भोजि" ﴾त्या.523﴿ और "अहिराजराज भोगि" ﴾प्रभवि.पृ.6﴿ । ﴾4﴿ विष्णु परक पर्याय : त्यागराजु ने "विष्णु वाहनुडु" ﴾त्या.523﴿ पर्याय का प्रयोग किया है ।

त्यागराजु ने विशेषण मूलक पदबंध भी रचा है : "वरगुण सान्द्रा" ﴾प्रभवि.पृ.5﴿ । इसके साथ ही /-डु/ प्रत्यय का योग करके गरूड की जीव कोटि का भी उदात्तीकरण किया गया है - /सुपर्णुडु/ ﴾प्रभवि पृ.29﴿ ।

2.2 गीध :

2.2.1. जातिवाचक संज्ञा - व्यक्तिवाचक संज्ञा ﴾जटायु﴿

"खग" ﴾वि.57﴿, "बिहग" ﴾गी.3/8﴿, "पतंग" ﴾वि.99﴿ आदि का प्रयोग करके तुलसी ने जटायु की सूचना दी है । इसी प्रकार "गीध" ﴾गी.5/46﴿ या "गृद्ध" ﴾वि.57﴿ जातिवाचक शब्द जटायु के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं । इसका एक पर्याय "कंक" ﴾वि.185﴿ भी प्रयुक्त हुआ है ।

2.2.2. जातिवाचक संज्ञा + राज = व्यक्तिवाचक संज्ञा ﴾जटायु﴿

"खग राज" ﴾गी.3:8﴿, "खगपति" ﴾गी.3/13﴿, "गीधराज" "गी.3/12﴿ रचना के द्वारा भी तुलसी का जटायु सूच्य है ।

2.2.3. नामोल्लेख :

दोनों कवियों ने "जटायु" (गी.7/31; त्या.4) का नामोल्लेख किया है ।

2.2.4 विशेषण मूलक पदबंध :

तुलसी ने एक ओर भर्त्सना मूलक विशेषण के साथ पदबंध की रचना की है : /अगनित अवगुन मूल/ (वि.144) तो दूसरी ओर /जसी/ "यशस्वी" विशेषण प्रयोग करके जीव कोटि के उन्नयन की सूचना दी है – /गीध जसी जटायु/ (गी.7/31) । तुलसी ने /वरजटायु/ (त्या.4) की रचना करके इसी उन्नयन की सूचना दी है ।

2.2.5 राम सम्बन्ध :

राम ने जटायु को पितृ तुल्य माना । तुलसी ने जटायु के लिए "तात" (गी.3/16) शब्द का प्रयोग किया । त्यागराजु ने यह संबंध भावना व्यक्त नहीं की । तुलसी ने "गीध-स्राध" (वि.179) का उल्लेख करके तात (पिता) शब्द के अर्थ को व्यावहारिक प्रामाणिकता दी है ।

2.3 काक :

तुलसी के गीत-काव्य में एक उच्चाशय काक है – काक भुशुंडी । इसके लिए उन्होंने जातिवाचक शब्द /पतंग/ (वि.257) का प्रयोग किया है । यह राम और राम भक्ति के तत्व के ज्ञाता था । त्यागराजु ने इसका नामोल्लेख नहीं किया ।

एक छद्म काक है – जयंत । त्यागराजु ने /काकि/ जातिवाचक शब्द के द्वारा इसकी सूचना दी है । तुलसी ने इंद्र पर आधारित पर्याय रचना की है : "सुरपति सुत" (गी.7/38) तथा "पाकारिसुत" (वि.116) ।

इस रचना के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि उच्च वंश का जयंत अपने कर्म से नीच बनता है । इसीलिए त्यागराजु ने उसके लिए /काकासुर/ (त्या.93) शब्द का प्रयोग किया है । काक भुशुंडि के साथ इसका गुण परक विरोध है । राम द्रोही होकर जयंत "विकल" होता है । इसके आधार पर यह पदबंध त्यागराजु ने

रचा : /विकलुनि काकिनि/ "विकल जयंत" (त्या.66) । राम द्रोही जयंत की रक्षा करने में कोई भी समर्थ नहीं हुआ ।

तुलनात्मक निष्कर्ष :

(1) तुलसी और त्यागराजु की पक्षी की रचना संबंधी प्रवृत्ति को देखकर यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने जटायु की रचना में विशेष रुचि ली है और त्यागराजु ने गरुड की रचना में ।

(2) गिद्ध और कौआ दोनों ही अधम पक्षी हैं । दोनों ही कवियों ने इन अधम पक्षियों को विशेषण मूलक रचना के द्वारा उत्तम कोटि का सिद्ध किया है ।

4.1.2.2.3 राक्षस योनि :

(क) दुष्ट राक्षस :

जातिवाचक संज्ञा:

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने इस अर्थ के वाचक इन जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग किया है : "असुर" (वि.2, त्या.60); "दानव" (वि.249, त्या.48अ); "दनुज" (वि.93, प्रभवि.पृ.36); "निसिचर" (वि.106; त्या.276); "रतिचर" (वि.248); "रजनीचर" (गी.1/4); /रते /रेचारि/ "रजनीचर" (त्या.507) । त्यागराजु ने राक्षस के विकसित रूप /रक्कस/ (त्या.508) का भी प्रयोग किया है । इन जातिवाचक शब्दों का संकेत भी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के रूप में भी मिलता है ।

तुलसी ने "रिपु" (गी.6/23) जाति वाचक संज्ञा का प्रयोग रावण के लिए किया है । त्यागराजु ने रिपु के लिए एक पदबंध रचकर इस अर्थ का स्पष्टीकरण किया है : /निजदास वरूलकु रिपुलु/ "निज भक्तों के शत्रु" (त्या.93) ।

व्यक्तिवाचक संज्ञा :

तुलसी और त्यागराजु दोनों के गीतों में मिलनेवाले राक्षस वाची व्यक्तिवाचक संज्ञाये ये हैं : "मुरा" (वि.135; त्या.421); "कनक कश्यप" (वि.216:प्रभवि.पृ.2),

"मारीच" (वि.43; त्या.506), "सुबाहु" (गी.6/1; त्या.25अ), "रावण" (वि.162; त्या.75), "मेघनाद" (वि.25; त्या.422), "खर" (वि.59; त्या.83), "दूषण" (वि.58; त्या.281), "विराध" (गी.2/89; त्या.516) । इनके अतिरिक्त तुलसी ने कुछ और राक्षसों का उल्लेख किया है जिनको त्यागराजु ने छोड दिया है : "वृत्र" (वि.57), "राहु" (वि.25), "बिधुंतुद" (वि.58), "धूमकेतु" (वि.58), "रकत बीज" (वि.128), "मय" (वि.57), "त्रिसिर" (गी.6/21), "कबंध" (वि.238), "कालनेमि" (वि.25), "कुंभकर्ण" (गी.6/3), "बाणासुर" (वि.57) और "कालयवन" (वि.57) ।

त्यागराजु ने भी कुछ ऐसे व्यक्ति वाचक नाम दिये हैं जिनको तुलसी ने छोड दिया है : /पिशाच/ "दुंदुमार" (त्या.448), /शतमुख/ "मैरावण" (त्या.380), /सोमकुडु/ "सोमकासुर" (त्या.102), /पंदि/ "सुवर=गूकासुर" (त्या.448), /पद्मासुर/ (त्या.310), /मक राक्षस/ (त्या.345), /पामु/ "अजगर" (त्या.448), /गज/ "गजासुर" (त्या.448), /नरक/ "नरकासुर" (त्या.506), /केशि/ (त्या.587) और /विरावण/ (त्या.1) ।

चाहे नामावली भिन्न हो, किन्तु उल्लिखित राक्षसों की संख्या दोनों कवियों के गीत काव्यों में समान है । इससे यह सिद्ध होता है कि दोनों ही कवि साध्य के रक्षक रूप को राक्षस संदर्भ में अधिक उभारते हैं ।

पर्याय रचना :

दोनों ही कवियों ने कनक कश्यप के लिए पर्याय रचे हैं । तुलसी ने तो केवल "पिता" (वि.174) जातिवाचक संज्ञा का प्रयोग कनक कश्यप के लिए किया है, किन्तु त्यागराजु ने /हेम-1/ के साथ /-कश्यप/ का योग करके पर्याय योजना की है - "हेम कश्यप" (त्या.263) ।

जहाँ त्यागराजु ने मारीच शब्द का ही प्रयोग किया है वहाँ तुलसी ने जातिवाचक संज्ञा "मृग" (वि.225) या "कुरंग" (गी.3/3) का प्रयोग मारीच के लिए किया है ।

दोनों कवियों ने रावण की पर्याय रचना में सबसे अधिक रुचि ली है । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने दस मुखों के आधार पर "दस मुख" §गी.5/37; त्या.239§ पर्याय की रचना की है । तुलसी ने इस पर्याय का और भी विस्तार किया है : "दसानन" §गी.1/103§, "दस कंधर" §गी.1/22§; "दस कंठ" §गी.1/89§, "दसकंध" §वि.32§, "दस मौलि" §वि.58§, "दस बदन" §वि.198§ और "दस सीस" §वि.216§ । लंका के आधार पर तुलसी ने "लंकेस" §गी.5/43§, "लंकानाथ" §गी.5/13§ पर्याय लिखे हैं । "लंकेश" §त्या.312§ त्यागराजु में भी मिलता है ।

तुलसी ने राक्षस राज के रूप में रावण के पर्याय बनाये हैं : "दनुजेस" §वि.52§, "जातुधानेस" §गी.5/43§, "जातुधानुपति" §गी.5/28§ तथा "जातुधानुकै को तिलक" §गी.5/26§ ।

त्यागराजु ने देवताओं के आधार पर सुररिपु §त्या.94§ तथा मेघनाद के आधार पर "शक्रारिजनक" §त्या.355§, वासवरिपु जनक§त्या.1§ पर्यायों की रचना की ।

तुलसी ने मेघनाद के पर्याय में दिये हैं : "वारिदनाद" §वि.25§, "अबोधनाद" §वि §, "घननाद" §वि.25§, "पाकारिजित" §वि.26§ । इसके विपरीत त्यागराजु ने "इंद्रारि" §त्या.442§ और "वासवरिपु" §त्या.1§ पर्याय प्रयुक्त किये हैं ।

इस रचना सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकलता है कि रावण की पर्याय रचना में दोनों कवियों की प्रवृत्ति समान है, किन्तु अधिक संख्यक पर्याय तुलसी के गीति-काव्य में ही मिलते हैं ।

विशेषण रचना :

विशेषण के आधार पर तुलसी ने /महामद अंध दसकंध/ §गी.5/24§; /दुष्ट रावण/ §वि.26§; /महामोह रावन/ §वि.181§; /ससंक दसानन/ §गी.5/22§; /महाबल मारीच/ §गी.1/109§ जैसे संज्ञा पदबंधों का प्रयोग

किया है । त्यागराजु ने /दोष रावणु/ §त्या.93§; /मंकुरावणु/ "जिद्दी रावण" §त्या.363§; /खलमारीच/ §त्या.369§; /परम द्रोही शूर पद्मासुर/ §त्या.310§ पदबंध लिखे हैं ।

दोनों की पदबंध योजना प्राय: समान है । मुख्य रूप से दोनों ने राक्षसों की दुष्ट प्रकृति को व्यंजित किया है । त्यागराजु ने उनके द्रोही रूप को विशेष रूप से लिया है । दोनों ने ही बल तथा शूरता का बिंब उभारा है । तुलसी ने राक्षस में दो तत्व विशेष रूप से देखे हैं; अभिमान और शंका । दुमार्ग पर चलनेवाले के मन में शंका रहती ही है और अभिमान राक्षस-जाति के विनाश का कारण है ।

§ख§ साधु राक्षस :

विभीषण : इस रचना का अभिप्राय यह है : राक्षस + शरणागति = रामकृपा = भक्त ।

राक्षस जाति के प्रतिनिधि कुमार्ग गामी रावण और भक्त विभीषण दोनों हैं । "विभीषण" §गी.5/10; त्या.75§ दोनों ही आलोच्य कवियों की कल्पना में एक सशक्त भक्त बिंब * के रूप में आया है । जातिवाचक संज्ञा के रूप में पहले "निशिचर" §वि.257; त्या.276§ शब्द का प्रयोग दोनों कवियों ने किया है । इसका विकास व्यक्ति वाचक नाम विभीषण में हुआ है ।

रचना की दृष्टि से तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही शत्रु-बंधु होने की स्थिति को बलिष्ठ बनाया है । इस रचना का विधान इस प्रकार है : रावण = शत्रु + संबंध वाचक कारक या समास = विभीषण । रावण के तीन पर्यायों का प्रयोग तुलसी ने किया है : दसकंध: /दसकंध बंधु/ §गी.5/31§; जातु धानेस: /जातु धानेस भ्राता/ §गी.5/43§ तथा रावण : /रावणानुज/ §वि.43§ । त्यागराजु ने भी दशवदन /दशवदनानुज/ §त्या.455§ तथा रावण: /रावणानुज/ §वि.43§ । त्यागराजु ने भी दशवदन:/दशवदनानुज/ §त्या.455§

---

* इस शब्द का प्रयोग तुलसी ने लगभग 41 बार और त्यागराजु ने 11 बार किया है ।

/रावणुनिसोदरुड्/ {त्या.457} पर्यायों का प्रयोग किया है । किन्तु एक सामासिक रचना के द्वारा उन्होंने इस रचना में रावण के बिंब को अधिक विस्तृत किया है : /सुर मुनिजनवैरि सहोदरुड्/ {त्या.455} ।

तुलसी ने संबंधवाचक विशेषण की रचना के द्वारा विभीषण को शत्रु भ्राता कहा है : /रिपु को अनुज/ {गी.5/44} और त्यागराजु ने भी इस प्रविधि का प्रयोग किया है : /पगवानिकि सोदरुड्/ "शत्रु का भाई" {त्या.72} तथा /वैरितम्मुड्/ "शत्रु का भाई" {त्या.144} ।

तुलसी ने एक सामासिक रचना के द्वारा वंशगत अधमता और शत्रु भ्राता होने के तथ्य के साथ-साथ उल्लेख करके विभीषण के विम्ब को बलिष्ठ बनाया है : /रजनीचर अरु रिपु विभीषन/ {वि.215} । त्यागराजु ने द्वन्द्व कारकीय यह रचना नहीं की ।

इस रचना के द्वारा दोनों ही कवियों ने राम की कृपा को महिमान्वित किया है - राम की कृपा शत्रु-भ्राता राक्षस विभीषण की ओर भी प्रभावित हुई ।

तुलसी ने एक और विशिष्ट रचना के द्वारा विभीषण की दुर्बलता और विकलता को भी स्पष्ट किया है : /भय विकल विभीषण/ {वि.145} तथा दूबरो बिभीषन/ "दुर्बल विभीषण" {वि.262} । इस मन:स्थिति के साथ विभीषण शरणागत हुआ : /प्रनत-बंधु-भय-विकल-बिभीषन/ {वि.145} । त्यागराजु ने इस रचना के द्वारा विभीषण के बिंब को दैन्य युक्त नहीं बनाया । इस रचना के द्वारा तुलसी ने राम की कृपा पर अतिरिक्त बल निक्षेप किया - भगवान की कृपा दीन पर होती है ।

तुलसी ने विभीषण को "लंकापति" {गी.5/45} भी कहा । इससे राम की कृपा और शरणागति के फल की ओर संकेत है । इस प्रकार तुलसी की रचना में विभीषण का आद्यंत बिंब घटित हुआ है - व्याकुल विभीषण से लेकर लंकापति तक ।

अन्य :

रावण के परिकर के महोदर, महामति तथा माल्यवान {गी•5/24}
जैसे राक्षस भी साधु राक्षस कोटि में है ।

इनकी रचना का अभिप्राय यह है : राक्षस + विवेक । किन्तु मदांध
रावण ने इनका तिरस्कार ही किया । त्यागराजु ने इनकी रचना क नहीं की ।

राक्षसी नारी :

तुलसी ने जातिवाचक संज्ञा के रूप में "राच्छसी" {गी•5/17} शब्द
का प्रयोग किया है । त्यागराजु ने "रक्कसि" {त्या•10} का प्रयोग शूर्पनखा के
लिए किया है और तुलसी ने "तिया" {वि•152} जातिवाचक संज्ञा शब्द का प्रयोग
ताडका के लिए ।

तुलसी ने /सूपनखा/ "शूर्पनखा" {गी•7/38} तथा /ताडका/ {गी•1/52}
का प्रयोग व्यक्तिवाचक के रूप में ही किया है । "प्रबल" विशेषण जोडकर उन्होंने
संज्ञा पद बंधा क भी बनाया है - /प्रबल ताडका/ {गी•1/109} ।

तुलसी ने कृष्ण संदर्भीय "पूतना" {वि•214} का उल्लेख भी किया है ।
इसके साथ ही तंत्र की भयंकर शक्तियों का नामोल्लेख भी उन्होंने किया है -
"साकिनी-डाकिनी" {वि•26} ।

तुलसी ने व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में राक्षस नारी "मंदोदरी"
{गी•5/24} का उल्लेख भी किया है । इसके द्वारा यह ज्ञापित किया गया है
कि राक्षस जाति में भी विवेक जग सकता है । त्यागराजु ने मंदोदरी का उल्लेख
नहीं किया, क्योंकि "गीतावली" जैसी प्रबंधात्मकता उनके गीतों में नहीं है ।

4•2• जीव : विशेषण संरचना :

विशेषण संरचना दोनों कवियों ने इस प्रकार की है कि जीव की द्वन्द्वात्मक
स्थिति स्पष्ट हो जाती है । उदाहरण के लिए उपसर्ग दु - सु - की रचना देखी
जा सकती है । जिन संज्ञाओं से जीव को युक्त दिखलाया गया है वे भी परस्पर

विरोधी है, जैसे ज्ञान अज्ञान, सुख दुःख आदि । इस विशेषण संरचना को आगे विस्तार से देखा गया है ।

4.2.1. विशेषण :

विशेषण रचना के द्वारा जीव की अनुकूल और प्रतिकूल गति-प्रकृति को स्पष्ट किया गया है ।

(क) कुत्सार्थक :

कुत्सार्थक विशेषणों के द्वारा दोनों कवियों ने जीव की अज्ञानता, दीनता, दुर्बलता जैसे भावों को व्यक्त किया है। इन विशेषणों की सूची इस प्रकार है : अधम (वि.215; त्या.240), खल (वि.185; त्या.240), खोटो (वि.72), सठ (वि.207), कायर (वि.179), /लवार/ "झूठा" (वि.258), विकल (वि.114), दीन (वि.34; त्या.12), दुदीन (वि.114), छीन (वि.41), पोच (वि.145), नीच (वि.153; त्या.83), पामर (वि.132), पंगु (गी.5/42), छोटो (वि.72), /अल्पुडु/ "छोटा" (त्या.509), आरत (वि.34), मूढ़ (वि.240; त्या.417), अंध (वि.59), मंद (वि.92), जड़ (वि.73), बावरे (वि.66), /बेर्रिवाडु/ "बावरा" (त्या.573), कंगाल (वि.249) गरीब (वि.78) रंक (वि.85) /निरुपेद/ "गरीब" (त्या.597), बिकारी (वि.166) जाचक (वि.80) आदि ।

(ख) महत्तार्थक :

"कुत्सार्थक विशेषणों के विपरीत इन विशेषणों के द्वारा जीव के ज्ञान, आनंद, मानसिक विकारों से राहित्य जैसे भावों को अभिव्यक्त किया गया है । इनके वाचक विशेषण नीचे दिये जा रहे हैं -

भगत (वि.188) भक्त (त्या.427), सुचि (वि.240), उत्तम (प्रभवि.पृ.17), बड़ो (गी.5/42), ~~/प्रोद्दुल~~ /पेद्दुलु/ "बडे" (त्या.74), अतिबल (गी.5/42), सुलच्छन (वि.175), सम (वि.203), सीतल (वि.203),

पावन [वि.166], पुनीत [वि.239], परम पावन [त्या.5], बुध [वि.73; त्या.194], /विधुलु/ "बुध" [त्या.575], धन्य [गी.1/75; त्या.12], धीर [गी.7/3], /घनुडु/ "महान" [त्या.65], /सेविंचुवारु/ "सेवक" [त्या.36], /उपचारमु चेयुवारु/ "सेवक" [त्या.51] मुक्तुडु [त्या.580], जीवन्मुक्तुडु [त्या.600] आदि ।

4.2.2. उपसर्ग + संज्ञा :

इस रचना के द्वारा जीव की कुत्सा और महत्ता दोनों को ज्ञापित किया गया है ।

[क] कुत्सार्थक रचना :

कु+ संज्ञा : कुमति [वि.171], कुजाति [वि.207], कुपूत [वि.177], कुसेवक [वि.171]; कुजाचक [वि.177] । कुमति की तुलना में त्यागराजु के कुमति [त्या.573] तथा कुमतुलु [त्या.284] शब्द आते हैं । कुतर्कुडु [त्या.2] भी इस वर्ग का विशेषण है ।

नि + संज्ञा : निकाज [गी.5/27], निर्गुन [वि.153], निसंबल [गी.5/42], निराधार [वि.136] और निरधन [वि.37]

अ + संज्ञा : अभागी [वि.140], असाधु [वि.112], अगुन [वि.274], अबुध [वि.137], अग्य [वि.112], अधन [त्या.274], अनाथ [वि.79], /अनेरो/ "बेकाम" [वि.272], अजान्यो [वि.92] । त्यागराजु ने भी अनाथ [त्या.14] शब्द का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त अज्ञानुलु [त्या.426] तथा अज्ञुलु [त्या.508] शब्द भी मिलते हैं ।

[ख] महत्तार्थक रचना :

इस रचना में सु -, स-, महा - उपसर्ग विधिमूलक है तो अ -, नि: -, वि - निषेधात्मक । निषेध दुर्गुणों का किया गया है ।

<u>सु + संज्ञा :</u> सुशील {वि.239}, सुहृदय {गी.5/33}, सुचित {कृ.गी.37}, सुजान {वि.74}, सुमन {वि.194}, सुज्ञान {त्या.426} तथा सुमुख {गी.7/1} ~ सुमुखुलु {त्या.122} ।

<u>स + संज्ञा :</u> सनाथ {वि.270} /अनाथुडमुगानु/ "सनाथ" {त्या.14} ।

<u>महा + संज्ञा :</u> महात्मुलु {त्या.400} तथा महानुभावुलु {त्या.5} ।

<u>अ + संज्ञा :</u> अनघ {त्या.472}

<u>निः + संज्ञा :</u> निरामय {वि.36; त्या.525}, निर्मल {वि.136; त्या.7}, निरमत्सर {वि.118}, निरपराधुलु {त्या.334} एवं निरुपाधिकुडु {त्या.219} ।

<u>वि + संज्ञा :</u> विदेहुलु {प्रभवि.पृ.25} ।

इस रचना से यह स्पष्ट होता है कि दोनों कवियों ने महत्तार्थक रचना का ही अधिक विस्तार क किया है ।

<u>4.2.3. संज्ञा + प्रत्यय :</u>

संज्ञा के साथ प्रत्ययों या प्रत्ययवत प्रयुक्त शब्दों का संयोग करके भी द्विधाविभक्त जीवों की विज्ञप्ति की गयी है । इन प्रत्ययों के द्वारा अनुकूल या प्रतिकूल संज्ञाओं के राहित्य या साहित्य की सूचना दी गयी है ।

<u>{क} कुत्सार्थक :</u> करम बिहीन {वि.109}, साधन हीन {वि.166}, अंगहीन {वि.41}, बल बिहीन {वि.274}, नीतिहीन {वि.249}, विवेक हीन {वि.202}, बित हीन {वि.210}, कुल हीन {वि.212}, धर्म संबल हीन {वि.60}, गतिहीन {वि.278, त्या.210}, मतिहीन {त्या.129}, गौरवहीन {त्या.423}, हीन सुख {वि.63}, बेद-बाहिरो {वि.272}, निगम पथ त्यागी {वि.140}, कष्टरत {वि.10}, अनीतिरत {वि.143}, मोहित {वि.246}, दुःखित {वि.242}, भ्रमित {वि.60}, दुःखारी {वि.34} तथा गँवारू {गी.7/10} ।

ॣखॣ महत्तार्थक : /-ई/ : धरमी ॣवि.259ॣ, परमारथी ॣगी.1/64ॣ, पारमार्थिकुलु ॣत्या.581ॣ, /गनी/" धनी" ॣगी.5/42ॣ, बड़भागी ॣगी.3/8ॣ, सनेही ॣगी.7/1ॣ, सुखी ॣत्या.602ॣ, उपकारी ॣत्या.358ॣ; /-रत/: बरन-आस्रम-धरम-रत ॣगी.7/1ॣ, विषय-बिरत ॣवि.204ॣ, परहित-निरत ॣवि.203ॣ; /-रहित/: स्वारथ रहित ॣगी.1/64ॣ, द्वन्द्वरहित ॣवि.204ॣ, दुर्विषय रहितुडु ॣत्या.401ॣ, गर्वरहितुलु ॣत्या.157ॣ, राजस गुण रहितुडु ॣत्या.621ॣ, रागरहितुडु ॣप्रभवि.पृ.1ॣ ; /-वंतुडु/: ज्ञानवंतुडु ॣप्रभवि.पृ.12ॣ; /-मंतुडु/: बुद्धि मंतुडु ॣप्रभवि.पृ.12ॣ; /-गत/: खेदगत ॣवि.10ॣ; /-ज्ञ/: सर्वज्ञ ॣवि.106ॣ ।

इस रचना से स्पष्ट होता है कि दोनों ही कवियों ने महत्तार्थक रचना का अधिक विस्तार किया है ।

4.2.4. पदबंध :

विशेषण मूलक पदबंधों की रचना भी दोनों कवियों ने की है । यह रचना विशेषण + संज्ञा संज्ञा + विशेषण प्रकृति की हो सकती है । इस रचना के द्वारा भी कुत्सार्थक तथा महत्तार्थक जीव-स्थितियाँ ज्ञापित की गयी है ।

ॣकॣ कुत्सार्थक :

/अघी अघाई/ "बडा पापी" ॣवि.41ॣ, अघहृदय ॣवि.158ॣ, अघबस ॣवि.162ॣ, अपराधी ॣवि.271; त्या.19ॣ, अपराध सिंधु ॣवि.177ॣ, अपराध भवन ॣवि.110ॣ, अपराध निधि ॣ247ॣ, कृतापराधी ॣत्या.599ॣ, दुष्ट ॣवि.10; त्या.509ॣ, दोष-कोस ॣवि.258ॣ, कलुषात्मुडु ॣत्या.321ॣ, प्रसिद्ध पातकी ॣवि.79ॣ, पातक रूप ॣवि.214ॣ, पाकतरत ॣवि.242ॣ, पातकपीन ॣवि.44ॣ, मन-वचन-करम पातक रूप ॣवि.242ॣ, पातकुलु ॣत्या.291ॣ, पातकाग्रेसरूलु ॣत्या.448ॣ, पाप खानि ॣवि.241ॣ, पाप बस ॣवि.243ॣ, पाप मूल ॣवि.217ॣ, पाप जलधि ॣवि.141ॣ, अति पापकृतुलु ॣत्या.44ॣ, पापी ॣत्या.120ॣ, /परलोक भीतिलेनि पातकुलु/ "परलोक भय रहित पातकी" ॣत्या.241ॣ, अवगुन खानि ॣवि.215ॣ, अवगुन उदधि ॣवि.194ॣ, दुःखभाजन ॣवि.222ॣ, सोकसंपन्न ॣवि.56ॣ, खेद खिन्न ॣवि.56ॣ, खिन्नुडु ॣत्या.128ॣ,

शोकार्णव गतुड़ु (त्या.360), /व्यसन क्रांतुड़/ "दुख से आक्रांत" (प्रभवि.पृ.26), /चिंताक्रांतुड़/"दुःख से आक्रांत" (प्रभवि.19), लघुमति (गी.7/10), कुटिलमति (गी.2/74), नष्टमति (वि.10), खलमति (वि.140), विकलमति (वि.246), जड जीव (वि.117), जीवजड़ (वि.73), जड़जिय (गी.4/1), पापमति (त्या.412) संत-द्रोही (वि.137) तथा साई द्रोही (वि.72) ।

(ख) महत्त्वार्थक :

सगुन छीर निधि (कृ.गी.51), शीलनिधि (वि.106), मंगलमूल (वि.151), विषय उदास (वि.203), गतमान (वि.204), एक रस (वि.136), पुन्य पुंज (कृ.गी.1), चारूमति (वि.24), मतिधीर (वि.196), अमलमति (वि.47), ग्यानरत (वि.203), वेदविद (वि.239), ब्रह्मनिष्ठुड़ु (त्या.479), वेदांतुड़ु (त्या.537), ब्रह्मज्ञान निष्ठुड़ु (प्रभवि.पृ.24), भाग-भाजन (वि.228), भूरिभाग (गी.1/75, भूरि भागी (कृ.गी.2), भाग्यशाली (त्या.601), कृपापात्रुड़ु (त्या.45अ), खेदमति मोहनासी (वि.60), प्रपंच उदासी (वि.22), सर्वभूत हित (वि.204), विद्यागुनविभर्यो (वि.239), रघुबीर चरन चिंतक (गी.1/1), आनंदमगन (गी.1/98), प्रेममगन (गी.1/109), सनेह-बिबस(गी.1/64), ~~(गी/(गी.1/1)~~, भगति प्रेम दृढ़ (वि.204), ब्रह्मानंद परवशुड़ु (प्रभवि.पृ.33), गुणशील (त्या.490), करूणापूर्णुड़ु (त्या.523), राग ज्ञान सहितुड़ु (त्या.580), आनंद हृदय (त्या.389), आनंद भरितुड़ु (प्रभवि. पृ.8), कुलशीलुलु (त्या.490), सरलचित (वि.271), सुललित मतुलु (त्या.3 अ) निर्मल मतुलु (त्या.317), (निर्व्यलीक चित (वि.204), विमलांतरंग (प्रभवि.पृ.33), और अतिसय निजपर त्यागी (वि.118) ।

5. जीव : साधना :

5.1. भाव-साधना : संबंध परिकल्पना :

तुलसी और त्यागराजु के गीत विविध संबंधों की भावना से अनुप्राणित है । एक प्रकार से समग्र भक्ति-साहित्य इन्हीं भावनाओं से सजल है । विशेष रूप से ये भावनाएं गीत-काव्य के लिए तो एक मात्र उपजीव्य हैं । तात्त्विक संबंधों की भावात्मक परिणति पारिवारिक, सामाजिक और भक्तिमूलक संबंधों में हुई है ।

इन सभी संबंधों को अप्रस्तुत विधान से दोनों कवियों ने स्पष्ट भी किया है और लीला संदर्भों के द्वारा उदाहृत भी । संबंध-भावना दोनों कवियों में प्राय: समान है । अंतर अत्यल्प है । बल या क्षिप्रता में अन्तर हो सकता है ।

5.1.1. तात्त्विक संबंध :

ब्रह्म	जीव	तु.	त्या.
सुख जीवन	जीव	वि.269	त्या.42
मायापति	मायाबस	वि.177	त्या.437
ईस	जीव	वि.177	त्या.281

तात्त्विक संबंधों की दृष्टि से दोनों ही आलोच्य कवि पूर्ण रूप से समान है । इस संबंध परिकल्पना से ब्रह्म, माया और जीव का त्रिकोण बिंबित हो जाता है । यह संबंध जीव के अलगाव को व्यक्त करते है और अलगाव ब्रह्म प्रेरित माया के कारण है । तात्त्विक द्वैत अन्य संबंधों में संक्रमित होता है ।

5.1.2 पारिवारिक संबंध :

ब्रह्म	जीव	तु.	त्या.
पति *	पत्नी[2]	वि.109	त्या.464
माता-पिता[3]	पुत्र[4]	वि.177	त्या.479

* प्रानपति (गी.2/6), नाथ (वि.102; त्या.113), प्रिय (वि.135) जैसे पर्यायवाची शब्द भी प्रयुक्त हुए है ।

2 सति (त्या.553), कन्या (त्या.480)

3 तल्लिदंड्रि (त्या.480), अप्प (त्या.19), अय्या (त्या.143), जनक (वि.113), बाप (वि.221), जननि (वि.113, त्या.214) माय (वि.256) ।

4 बालक (वि.225; त्या.38), शिशु (त्या.47), तनय (त्या.214) ।

ब्रह्म	जीव	तु.	त्या.
सखा	सखी *	वि.202	त्या.174
नागर	नागरि	वि.269	-
शिशु	माता	-	त्या.18 अ

पारिवारिक संबंधों की दृष्टि से त्यागराजु का वैशिष्ट्य ही सिद्ध होता है । लीला संदर्भों क या उपचारों के द्वारा तुलसी ने इन सब संबंधों की विज्ञप्ति तो कर दी है, किन्तु रागात्मक रूप से त्यागराजु ने जिस प्रकार अपने को इन संबंधों में प्रविष्ट किया है, उस प्रकार तुलसी ने प्रायः नहीं की । सखा का भाव सुग्रीव के माध्यम से, माता-पिता का भाव दशरथ-कौसल्या के माध्यम से, पति-पत्नी भाव राम और सीता के माध्यम से अवश्य आये हैं, किन्तु त्यागराजु ने स्पष्ट रूप से अपने अस्तित्व को इन संबंधों में ढाला है ।

त्यागराजु ने जीव को माता और ब्रह्म को शिशु कल्पित करके वैशिष्ट्य का परिचय दिया है । तुलसी ने दशरथ और कौसल्या के माध्यम से ही इसको प्रकट किया है ।साथ ही शबरी के माध्यम से भी इस संबंध-भावना को प्रकट किया है ।[2] इय संबंध भावना को दशरथ प्रकरण के द्वारा बहुत घनीभूत किया है ।[3]

त्यागराजु ने माँ-बाप और शिशु के संबंध को रचना वैचित्र्य प्रदान किया है । कुछ उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं । त्यागराजु कहते हैं कि प्यार से बच्चे को दुलार करनेवाली माता की तरह मेरे पास आओ ।[4] माता पुत्र के पास आयेगी

~~यह~~

* /चेलि/ "सखी" (त्या.174)

2 "अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंब हित सब आनिके । - गी.3/17/3

3 "हा रघुपति कहि पर्यो अवनि, जनु जलतें मीन बिलगान्यो ।"
- गी.2/56/4

4 "~~अलरुचुव~~ अलरूचुवच्चु, अर्बकुनि तल्लिरीति" -त्या.47/5

या माता के पास पुत्र जाएगा ।* पुत्र से ब उदासीन माता पृथ्वी पर किसी जाति में है क्या ?[2] माता यदि बच्चे को मारेगी तो भी बच्चा माता के चरणों की ओर दौड़ेगा ।[3] पुत्र की अटपटी बातें भी मा-बाप के लिए मनोरंजक होती हैं ।[4] इन उक्तियों के द्वारा साधक का साध्य की ओर आकर्षित होना दोनों ज्ञापित है ।

तुलसी ने इस संबंध को लेकर एक उक्ति की है । आप स्वयं जानबूझ कर अपने सेवकों का ऐसा हित कर देते हैं जैसा कि सगे मा-बाप भी नहीं कर पाते ।[5]

5.1.3 सामाजिक संबंध :

ब्रह्म	जीव	तु.	त्या.
साहिब स्वामी	सेवक	वि.251	त्या.5
गुरू	शिष्य	वि. 88	त्या.301
वैद्य	रोगी	-	त्या.450-103

उपर्युक्त संबंधों में से तुलसी की समस्त रागात्मकता सेवक-सेव्य भाव पर केंद्रित हो गयी है । इसका इतना विस्तार अपने गीतों में किया है कि बहुत कम कवि इस क्षेत्र में तुलसी के समान कर पाते हैं । त्यागराजु ने भी इस संबंध की स्वीकृति करते हुए इसकी विस्तृत संरचना में तुलसी की तरह रूचि नहीं ली । अन्य संबंध दोनों में औपचारिक है ।

---

* "अलरुचुवच्चु अर्बकुनि तल्लि रीति" - त्या.214/1

2 वही.479/2 3 वही. 553/6

4 वही.174/4

5 "बूझि अपनी आपनो हितु आप बाप न माय ।" -वि.220/2

5.1.4 भक्ति संबंध :

ब्रह्म	जीव	तु.	त्या.
पतित पावन	पतित	वि. 160	त्या. 34
दीन बंधु	दीन	वि. 242	त्या. 259
आरति हर	आरत	वि. 242	त्या. 435
धनी	दरिद्र *	वि. 78	त्या. 5 अ
धनी धनी	लोभी	वि. 269	-
दाता	याचक	वि. 177	-
ग्याननिधान	मूढ़	वि. 244	-
नाथ	अनाथ	वि. 242	-
अभयंकर	सभीत	वि. 242	-
भ्रमभंजन	भ्रमित	वि. 242	-
ऋण	ऋणी	-	त्या. 297

उपर्युक्त संबंधों पर जीव संरचना संदर्भ में कुछ विचार किया गया है । इन संबंधों की संख्या त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी के ही गीतों में अधिक ~~मिलती~~ मिलती है ।

5.1.5. संबंध सूचक उपमान युग्म :

ब्रह्म	जीव	तु.	त्या.
बादल	सूखती हुई खेती	वि. 221	त्या. 618
बादल	मोर	गी. 2/26	-

* तुलसी ने "गरीब-गरीब निवाज" शब्द प्रयुक्त किया है ।

ब्रह्म	जीव	तु.	त्या.
बादल	चातक	वि. 75	-
बादल ⟩ स्वाति	कदलि ⟩	कृ.गी. 57	-
बादल ⟩	सीप ⟩		
नीर	मीन	कृ.गी. 54	-
जल	नाव	वि. 243	-
चंद्रमा	चकोर	वि. 80	-
जहाज	काग	गी. 5/29	-
मणि	फणि	वि. 269	-
सूर्य	चक्रवाक	-	प्रभावि.पृ. 37
सूर्य	कमल	-	प्रभवि.पृ. 31
चंद्रमा	कुमुद	-	त्या. 42
जल	कमल	-	त्या. 42
वृक्ष	पक्षी	-	त्या. 159
धेनु	बछडा	-	त्या. 214

उपर्युक्त उपमानों के द्वारा जीव और ब्रह्म का संबंध ज्ञापित किया गया है । त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी ने अधिक उपमानों का अन्वेषण और प्रयोग किया है । सभी रूढ़ और प्रसिद्ध उपमान ही इस संबंध रचना में आये हैं । इन उपमानों के द्वारा जीव की ब्रह्म के प्रति आकर्षित होना, जीव की ब्रह्म के ऊपर निर्भरता, जीव की ब्रह्म के प्रति अनन्य भावना और ब्रह्म के द्वारा जीव का कल्याण ही अभिव्यक्त हुए है । चाहे त्यागराजु ने कम उपमान प्रयुक्त किये हों, पर उपर्युक्त भाव प्रवृत्तियाँ दोनों में समान रूप से मिलती है ।

विशेष रूप से यह उल्लेखनीय है कि सबसे अधिक आवृत्ति घन-चातक संबंध की तुलसी ने की है । त्यागराजु की रचना में इस प्रकार से विशेष उल्लेखनीय कोई उपमान नहीं है । इसका कारण यह है कि तुलसी के बहुत से गीत प्रबंधक्रमे प्रसंगापेक्षी हैं । उन प्रसंगों में दशरथ, भरत, सीता, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण ऋषिगण, वनजन आदि उपमेयों की भीड़सी लगी हुई है । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने जहाँ अपने को उपमेय बनाया है वहाँ पूर्ण समानता मिलती है ।

निष्कर्ष यह है कि जीव-ब्रह्म संबंध को त्यागराजु ने मातृवत क्रियाओं के द्वारा व्यक्त किया है और तुलसी ने स्वामी की और सेवक की परस्पर क्रियाओं के द्वारा । दोनों ही कवियों ने जीव और ब्रह्म के परस्पर आकर्षण और ब्रह्म के द्वारा जीव की क्रियाओं के नियंत्रण पर बल दिया है । इन संबंधों में साध्य की अहेतुकी कृपा को अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई है ।

5.2 क्रियामूलक साधना :

जीव की कुछ क्रियाओं का निरीक्षण यथा स्थान किया जा चुका है । * उसकी साध्योन्मुख क्रियायें साधना के अंतर्गत आती हैं । व्यक्तित्व विश्लेषण के समय यह भी देखा जा चुका है कि त्यागराजु की साधना मूलतः संगीतमूलक क्रियाओं में घटित होती है । क्योंकि उनका विश्वास नाद ब्रह्म की नादात्मक साधना में था । संगीतात्मक क्रियायें ये हैं : गाना, बजाना और नृत्य करना । इन क्रियाओं का बहुविध वर्णन त्यागराजु ने किया है । गायन साध्य के नाम, रूप, गुण और लीलाओं का होता है । तुलसी ने भी इन क्रियाओं का उल्लेख बार- बार किया है । किंतु उनकी साधना त्यागराजु की भाँति पूर्णतः संगीतात्मक नहीं थी । उनकी दृष्टि में साध्य

---

* द्रष्टव्य प्रस्तुत प्रबंध के पहला, छठ्वाँ तथा सातवाँ अध्याय - क्रियामूलक साधना के विस्तृत विवेचन के लिए ।

के नाम, गुण, रूप, लीला और उनके मंगलमय कार्य तो है, पर पारिभाषिक रूप से नादब्रह्म पर उनकी साधना केन्द्रित नहीं है ।

साधना की अन्य क्रियायें नवधाभिक्त के प्रकरण में परिगणित की गयी हैं। नवधाभक्ति में भी गायन, कीर्तन की क्रियायें सम्मिलित हैं । कुछ क्रियाओं का संबंध मनके परिशोधन से है । कुछ क्रियायें साध्य विग्रह की सेवा, अर्चना आदि से संबंधित हैं । इन सभी क्रियाओं का दोनों कवियों ने अपने गीत-काव्य में उल्लेख किया है । साथ ही दोनों ने सत्संग की महिमा का बखान भी किया है । किंतु जहाँ त्यागराजु के गीत-काव्य में संगीतात्मक साधना की क्रियाओं की क्षिप्रता और आवृत्ति अधिक है वहाँ तुलसी के गीतों में भावासक्त मूलक क्रियायें और मन परिशोधन की क्रियाओं की आवृत्ति अधिक है । जहाँ तक विग्रहार्चन संबंधी क्रियाओं का प्रश्न है त्यागराजु के गीतों में ही इनका अधिक बाहुल्य मिलता है ।

दोनों कवियों ने कभी-कभी योग और ज्ञान की साधना का उल्लेख भी किया है । किंतु तुलसी की दृष्टि यह रही है कि योग और ज्ञान साधना की अपेक्षा भक्ति -भावना सरल और श्रेयस्कर है । * त्यागराजु ने इस प्रकार प्रतियोगिता नहीं करायी है । क्योंकि योग-साधना का नाद तत्व उनको स्वीकार्य है ।[2] फिर भी यह झलक तो मिल ही जाती है कि त्यागराजु भी भक्ति की साधना में निरत हैं और जीव के लिए उसी को ग्राह्य मानते हैं ।[3]

---

* नाना पथ निर्बान के, नाना बिधान बहु भाँति ।
तुलसी तू मेरे कहे, जपु राम-नाम दिन-राति ।। 5 वि. 192/4

2 " मूलाधारज नाद मेरुगुटे मुदमगु मोक्षमुरा " -- त्या. 580/3

3 " सहज भक्तितो राग ज्ञान सहितुडु मुक्तुडुरा "

\- वही. 580/5

6. मोक्ष :

जीव का ब्रह्मोन्मुख क्रियाओं में लीन होना ही साधना है और साधना का फल मोक्ष है । भक्त कवि मोक्ष को उतना महत्त्व नहीं देते जितना कि ज्ञान और योग साधना करनेवाले साधक देते हैं । इसलिए जहाँ ज्ञानवादी मोक्ष के वाचक कैवल्य, सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य सार्ष्टि जैसे शब्दों का प्रयोग भक्त कवियों ने औपचारिक रूप से किया है वहाँ उनकी दृष्टि सुख और आनंद पर केंद्रित रही है । साथ ही मोक्ष की अपेक्षा उनको रसात्मक भक्ति अधिक स्पृहनीय प्रतीत होती है । दोनों ही आलोच्य कवियों की मोक्ष संबंधी संरचना इन्हीं अवधारणाओं को लेकर चली है । अंतर इतना है कि जहाँ तुलसी के संस्कार पूर्णतः भक्ति में लीन हो गये हैं वहाँ त्यागराजु के संस्कारों में ज्ञान और योग झलकते मिलते हैं, यद्यपि इनका भी भक्तिमूलक संस्कार हो गया है । हो सकता है कि " गीता " की ज्ञानी भक्त की कल्पना और भक्तियोग की अवधारणा उनको प्रभावित कर रही हो । दोनों की संरचना के तुलनात्मक अध्ययन से ये अवधारणायें स्पष्ट हो जाती हैं ।

6.1 मोक्ष के वाचक शब्द :

तुलसी ने मोक्ष के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया है : गति (वि.4), सुगति (वि.13), सद्गति (वि.152), पद (वि.4), परमपद (वि.22), परधाम (वि.155), परमारथ (वि. 135), जनम-फल (गी.1/9), सुकृत फल (गी. 1/48), फल-चारि (वि.67), मुक्ति (वि.48), अपवर्ग (वि. 210) और निर्वाण (वि. 192) ।

त्यागराजु ने मोक्ष के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया है : गति (त्या. 172), सद्गति (त्या.553), परगति (त्या.264), परमु (त्या.22), पदमु (त्या.114), परम पदमु (त्या.348),

निर्जर राज पदमु (त्या.96), अपवर्ग (त्या. 580), अचलपदवि (त्या. 19), निर्वाण (त्या. 564), मुक्ति (त्या. 326), मुक्ति फलमु (त्या. 159), मोक्ष (त्या. 425 (सप्तदमु (त्या. 627) तथा कामितार्थ फल मु (त्या. 159) ।

6.2 संबद्ध लोक :

तुलसी ने भगवान के धाम में प्रवेश को ही मोक्ष कहा है । इस संरचना में भगवान के धाम के वाचक शब्द ये आये हैं : परलोक (वि. 156), स्वर्ग (वि. 210), स्वलोक (वि.214), अपनोधाम (वि.217), पुररावरो (वि. 210) तथा हरिधाम (वि. 46) ।

त्यागराजु ने इन वाचक शब्दों का उल्लेख भगवान के धाम के लिए किया है : स्वर्ग (त्या.580), दिव्यधाम (त्या.496) तथा परलोक (त्या.) ।

6.3 मोक्ष के प्रकार :

तुलसी ने मोक्षों के चार प्रकार बताये है : "चारि सुगति " (गी.2/82)। इस समूहवाचक शब्द के द्वारा सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य और साष्टिर्ट ही निर्दिष्ट है । तुलसी ने कैवल्य (वि.136) का उल्लेख भी किया है । त्यागराजु ने भी सायुज्य (त्या.464), सारूप्य (त्या.569) आदि का उल्लेख किया है । इनमें से सारूप्य का संबंध संगीत-साधना से इन्होंने माना है । *

मोक्ष की एक सीढ़ी के रूप में त्यागराजु ने जीवन्मुक्ति को भी स्वीकार किया है : जीवन्मुक्त हुए बिना मोक्ष नहीं मिलती [2] और जीवन्मुक्त होने के लिए संगीत ज्ञान आवश्यक है ।[3]

---

* " संगीत शास्त्र ज्ञानमु सारूप्य सौख्यदमे मनसा " - त्या.561/1

2 त्या. 425 3 वही. 600

6.4 मोक्ष के अर्थ :

6.4.1 अद्वैत :

तुलसी ने भगवान में लीन होने को भी मोक्ष कहा है । * त्यागराजु ने " सोहम् " के द्वारा इसी अर्थ को अभिव्यक्त किया है ।[2] तुलसी ने अपने गीत-काव्य में जीव और ब्रह्म के अद्वैत की स्पष्ट व्यंजना नहीं की है । त्यागराजु अद्वैतवाद की ओर झुके हुए होने के कारण इसकी व्यंजना करते हैं । उनके अनुसार ब्रह्म की कृपा से जीव और ब्रह्म के बीच पूर्ण अद्वैत या तादात्म्य स्थापित हो जाता है । यही जीव की चरम परिणति है ।[3] इस संदर्भ में उन्होंने " जीवात्मा " का प्रयोग किया है ।

6.4.2 जन्म-मरण राहित्य :

त्यागराजु ने जन्म-मरण के छूट जाने को भी मोक्ष माना है - " पुनरावृत्ति रहित पदमु " ।[4] तुलसी इसके संबंध में मौन हैं ।

6.4.3 हरि रस :

तुलसी ने हरिरस ﴾ वि. 203﴿ तथा प्रेम भगति रस ﴾ वि. 203﴿ को मुक्ति के समकक्ष कहा है । वास्तव में यह मोक्ष से भी उच्चतर है । इसीलिए तुलसी ने यह भी कहते मिलते हैं कि मोक्ष लक्ष्य नहीं है । भक्त के लिए भक्ति ही परम काम्य है । " विनयपत्रिका" में सभी देवताओं से मोक्ष की याचना न करके तुलसी ने रामभक्ति की ही याचना की है । साथ ही उन्होंने चारफल की इच्छा न करके भक्ति की ही इच्छा की है ।

---

* वि. 214/4 2 त्या. 41/4

3 करुण एलागटे नी विधमे कल्याण सुंदर राम परमात्मुडु जीवात्मुडु योकडे बरगुचुंडु भक्तपराधीनुनि " - त्या. 155/1,2

4 त्या.105/3 तथा दृष्टव्य 47/3, 627/1

6.4.4 परमसुख : आनंद :

मुक्ति ही सर्वोच्च सुख है । तुलसी ने सुख से पूर्व इन विशेषणों का संयोग किया है : परम - (वि. 203) और सहज- (वि.88) । साथ ही आनंद शब्द का प्रयोग भी किया गया है । इसके साथ आलंकारिक रचना भी की गयी है : आनंद सुधा (वि.152), आनंदसिंधु (वि.136) आदि ।

इसी प्रकार की रचना त्यागराजु ने भी सुखमु (त्या.10) के साथ इन विशेषणों का प्रयोग करके किया है : सोहमनु सुखमु (त्या.96), / कमलभवसुखमु / " ब्रह्मानंद " (त्या.5), / सर्वोन्नितमौ सुखमु / " सर्वश्रेष्ठ सुख " (त्या. 12), परब्रह्मानुभव सुखमु (त्या. 417) । तुलसी की भांति आनंद (त्या. 25) शब्द का भी त्यागराजु ने प्रयोग किया है । इसके साथ ऐ विशेषण भी संलग्न किये गये है : नित्य (त्या.490), परम (त्या.2), ब्रह्म (त्या.5), रघुवीर - (त्या.228) आदि । आनंद के लिए कुछ आलंकारिक रचना भी त्यागराजु ने की है : आनंदसागरमु (त्या.28) । तेलुगु क्षेत्र में प्रचलित (शर्ममु / " आनंद " (त्या. 239) का प्रयोग त्यागराजु में मिलता है ।

जीव संबंधी संरचना समान गति से दोनों ही आलोच्य कवियों के गीत-साहित्य में प्रधावित हुई हैं । सारी संरचना ब्रह्म, माया और जीव के त्रिकोण में विकसित होती है । अविद्या से ग्रस्त जीव एक ओर मुक्ति के लिए विविध उपाय करता है, दूसरी ओर उसकी करुणा, उसकी दीनता और उसकी विवशता साध्य की ओर चलकर भगवान के षड्गुणों को उत्तेजित करती है। गति, अगति, सुगति, आदि की संरचनाओं में चलता हुआ जीव अंतत: मूल स्थिति में पुनर्गमन करता है । दोनों ही आलोच्य कवियों का गीत-काव्य जीव की करुण अवस्था तथा भगवान की कृपा का संरचनात्मक विस्तार है ।

: :

छठवां अध्याय

काव्य संगीत : मिश्रित संरचना

काव्य संगीत : मिश्रित संरचना

०. प्रास्ताविक :

कला गतिशील सम-विषम तत्वों की सक्रिय और समंजस संरचना है । अंतर्गति में लीन तात्त्विक अद्वैत की मूल इच्छा से प्रेरित बहिर्गति ही जीव और जगत का रूप लेती है । अंतर्गति की बहिर्गति में परिणति "लीला" शब्द में प्रतीकायित है । जीव स्रोत से विच्छिन्न होकर प्रवाही बनता है और उसकी अंत: प्रकृति बहिर्प्रकृति से संपृक्त होकर एक गतिशील व्यवस्था में ढलती है । यह व्यवस्था स्वत: विरोधी तत्वों की संरचना ही है - गति-अगति, जड़-चेतन, प्रकृति-विकृति आदि विषमान्वित तत्व एक रचना तंत्र में परिणत होते हैं । प्रवाही जीव में जहाँ अणु-परमाणु एक संबंध-सूत्र में ढलकर वृत्ताकार गति से रेखागति में परिणत होते हैं वहाँ जीव के भीतर अप्रतिहत गतिवाला मनस्तत्व जन्म लेता है । जगत की मरीचिका में मनस्तत्व की

गति चकित-भ्रमित भी हो सकती है और संसार के यथार्थ ज्ञान से इसकी गति मूल केन्द्र की ओर भी उन्मुख हो सकती है । भक्ति-साधना अंत: प्रकृति और बहिर्प्रकृति के बीच के विरोधाभासों को एक समन्वित और सहयोगी संरचना में लाकर भ्रमित गति को विकल्पों से मुक्त करके संकल्पित गति में परिणत करती है । यह प्रक्रिया कला की प्रक्रिया के समकक्ष ही है । इसलिए भक्ति-साधना कला-साधना से एकाकार होकर ही चलती आयी है ।

आध्यात्मिक दृष्टि से "तत्व" संरचना में परिणत होता है और तत्व संरचना के बीच अभेद स्थापित हो जाता है । संरचना "तत्व" को लक्षित भी कराती है और तत्व की अंतर्मुख और अंतर्गति वाली स्थितियों को प्रेष्य भी बनाती है । भक्तिगत कला की रचना मात्र प्रेषण नहीं है । यह विभिन्न प्रक्रियाओं को प्रतीकायित करती है । भक्ति मूलक कला की संरचना में साध्य और साधक की संरचना का भी समावेश होता है और यह समावेश इतना सघन हो जाता है कि इनके बीच द्वैत या भेद नहीं रहता । अंतर्जगत में घटित कला-संरचना जब बहिर्मुख होती है तो अंत:प्रकृति और बहिर्प्रकृति का अद्वैत मूलक रचना-तंत्र घटित होता है । समस्त बिखरा हुआ ऐन्द्रिय जगत सामंजस्य प्राप्त करता है । लयहीन और बेसुरा कोलाहल संगीत बनता है । यह बाह्य वातावरण का पुनर्जन्म ही है । भक्त कवियों ने इसी धरातल पर कला-साधना की । भक्त भाव-जगत की अतीन्द्रिय संरचना को बाह्य और औपकरणिक कला में परिणत करके ऐंद्रिय पद्धति से उसका पुनर्ग्रहण करता है । चेतन और जड का द्वन्द्व इस पद्धति से घुल जाता है । अंतर्गति और बहिर्गति की कलात्मक और सामंजस्य पूर्ण परिणति ही उसका लक्ष्य है । यही भक्त का भावाद्वैत है ।

जिस प्रकार आदि मानव अपने टोने या धर्म के अनुष्ठानों को समस्त कलाओं से अभिमण्डित करता था या अपने को और अपने इष्ट को सभी

कलाओं के माध्यम से समवेत देखता था, उसी प्रकार भक्त-साधक अपनी भावोद्भूत अर्चना और अपने अनुष्ठान में सभी कलाओं का विनियोग करता है । मंदिर {स्थापत्य}, विग्रह {मूर्तिकला}, लीलापट {चित्रकला}, कीर्तन-गायन {संगीत} और हरिकथा {काव्य} की समन्वित संरचना ही उसकी समग्र साधना को रूपायित करती है । आगम साहित्य विशेष रूप से मंदिर निर्माण की और मूर्ति निर्माण की प्रविधियों का विस्तृत निर्देश करता है । परम वैष्णव इन दोनों कलाओं का ज्ञाता होता था और विग्रह के समक्ष अपने व्यक्तित्व को संगीतात्मक काव्य या काव्यात्मक संगीत में लीन करके प्रभु को निवेदित हो जाता था । सौंदर्य बोध के इसी विविध कलात्मक धरातल पर तुलसी और त्यागराजु जैसे भक्तों की स्थिति माननी चाहिए । जिस प्रकार रसायनिक मिश्रण अपने संयोजकों से गुण और प्रभाव में अलग होता है उसी प्रकार समस्त कलाओं का यह समन्वित विधान एक अखंड सौंदर्यबोध को जन्म देता है । पाँचों संयोजकों में से एक की भी हानि होने पर सगुण भक्ति-साधना विकल हो जाती है । तुलसी और त्यागराजु तथा अन्य भक्त कवि इसी अखंड सौंदर्यबोध के साधक, प्रापक और प्रेषक होते थे । जिस मधुमती भूमिका को ये भक्त कवि जीते थे उसका अविकल प्रक्षेपण समस्त कलाओं के समन्वय के बिना संभव नहीं हो सकता । तुलसी और त्यागराजु जैसे भक्त कवियों ने केवल ललित कलाओं का विनियोग ही नहीं किया, उनको लोकोत्तर छवियाँ और परिष्कृतियाँ भी प्रदान कीं । शब्दार्थ के स्थूल धरातल को संगीत स्वरों के आरोह-अवरोह के द्वारा अतिरिक्त अर्थ छायायें प्रदान कीं । काव्य और संगीत की यह मैत्री अभूतपूर्व रही और इस मैत्री ने दोनों ही आलोच्य कवियों को श्रव्य और पाठ्य भी बनाया और गये भी ।

1. आध्यात्मिक काव्य संगीत : परंपरा

संगीत का तात्पर्य है - एक संपूर्ण सामंजस्य वाली स्वर रचना । इस स्वर रचना में परस्पर विरोधी तत्व भी सामंजस्य में ढल जाते हैं - अनेकता में एकता की और विषमता में समता की स्थापना हो जाती है । वाद्य, नृत्य और गायन-तीनों मिलकर एक अंतर्बाह्य समंजस स्थिति घटित करते हैं । वादन और नृत्य की संगति पाकर ही गायन संपूर्ण बनता है । इन तीनों की सहज स्थिति ही पूर्ण इकाई बनती है । मध्य कालीन भक्तों ने इन तीनों के समन्वय के साथ काव्य का भी योग कर दिया । भक्ति-काव्य संगीत से और संगीत काव्य से परस्पर उपकृत हुए ।

यह बाहरी सामंजस्य मात्र नहीं है । भक्त की साधना और उसकी भाव स्थितियां संगीत के माध्यम से सामंजस्यपूर्ण आंतरिक संरचना में संक्रमित हुई । यहां तक कि संगीत मय साध्य की भी कल्पना हुई । संगीत का विस्तार अलौकिक जगत से लौकिक जगत तक सिद्ध किया जाता है । संगीत और उसके उपादानों की अलौकिक उत्पत्ति संगीत के ग्रंथों में बतलाई गई । * लौकिक दृष्टि से इसकी उत्पत्ति बाह्य प्रकृति से अनुकरण प्रक्रिया के माध्यम से हुई । भरत ने मृदंग की उत्पत्ति पत्तों पर गिरने वाले जलबिंदुओं के आघात शब्द से मानी है ।[2] दामोदर पंडित ने सप्त स्वरों की उत्पत्ति विभिन्न पक्षियों का पशुओं से मानी है - मोर से षड्ज, चातक से ऋषभ, बकरा से गंधार, कौआ से मध्यम, कोयल से पंचम, मेंढक से धैवत और हाथी से निषाद की उत्पत्ति हुई ।[3] कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत के उपकरण एक व्यापक परिवेश से ग्रहण किये गये हैं । इन सबसे संगीत की वह संरचना हुई जो मात्र कोलाहल से भिन्न है । बाह्य संरचना अनुभूतियों और संवेदनाओं की आंतरिक संरचना से प्राणवान होती है और उनके द्वारा संवहनीय और

---

* संगीत रत्नाकर, संगीत दर्पण, नाट्य शास्त्र आदि में इस परंपरा को देखा जा सकता है ।

2 नाट्य शास्त्र, 33/10 3 संगीत दर्पण, श्लो. 148-149

संप्रेष्य बनती है । इस प्रकार यही वह संरचना है जिसमें मन, प्राण और भौतिक शरीर की समन्वित साधना सक्रिय होती है । * मानव की सहज प्रवृत्तियाँ अपनी स्वाभाविक प्राणवत्ता को रखते हुए भी एक सामंजस्यपूर्ण उर्ध्व मुखी ■ साधना में परिणत हो जाती हैं । इन्हीं संरचनात्मक विशेषताओं को देखकर सदा से संगीत आध्यात्मिक साधना का सहवर्ती रहा है ।

कुछ आध्यात्मिक साधनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें संगीत का योगदान स्वीकार किया नहीं जाता । कुछ धर्मों, व्यवस्थाओं में ललित कलाओं का प्रवेश वर्जित भी है । किंतु अधिकांश साधनाएँ संगीत को लेकर चली हैं । वैदिक यज्ञानुष्ठान साम संगीत की अनुभूति से भर उठा था ।[2] वाद्य [3] और नर्तन [4] के उल्लेख भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं । नवोदित उषा को वैदिक ऋषि ने सुसज्जित नर्तकी के रूप में देखा ।[5] संगीतात्मक प्रकृति के कारण ही सामवेद के श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ । इसीलिए भगवान कृष्ण ने गीता में अपने को - "वेदानां सामवेदोऽस्मि"[6] कहा है । वैदिक ऋचाएँ उद्गीत का रूप धारण करके ही साधना के अभीष्ट लक्ष्यों की ओर गतिशील होती थीं । सामवेद से वैदिक ऋषि साधक के संगीत ज्ञान का ही परिचय नहीं मिलता, बल्कि इससे उसकी सस्वर प्रार्थनामय और स्तुतिमय साधना का भी परिचय मिलता है । कर्मकांड का वातावरण संगीत से ही स्निग्ध होकर भक्ति के तत्वों से भर जाता था ।

ब्राह्मण ग्रंथों में ऋक् (काव्य) और साम (संगीत) के परस्पर संबंधों पर बल दिया गया ।[7] उपनिषद् ने भी सवाक् साधना में इन दोनों का संयोजन आवश्यक माना ।[8] महाकाव्य काल में ही शब्द और स्वर की समन्वित

---

* डा. वासुदेव शरण अग्रवाल, संगीत (मार्च, 1960), पृ. 15

2 "गायत साम नमन्यं यथावे" - ऋग्वेद, 1/173/1

3 ऋग्वेद, 1/28/3 4 वही. 5/33/6 5 वही. 1/92/4

6 गीता. 10/22 7 आश्वलायन गृह्य सूत्र, 1/5/8

8 बृहदारण्यक, 3/22

संरचना किसी न किसी प्रकार चलती रही । इस कालखंड में संगीत का अभ्यास उपासना के रूप में स्पष्ट रूप से स्वीकृत हुआ । रावण ने संगीत के माध्यम से ही शिवजी की आराधना की । * लव कुश ने शास्त्रीय संगीत में ही गायन किया ।[2] विभिन्न उत्सवों के अवसर पर दिव्य और लौकिक तत्वों का समन्वय संगीत के माध्यम से ही माना जाता था । रामचन्द्र के जन्म और विवाह का वर्णन इसका प्रमाण है ।[3] महाभारत में सप्त स्वरों का उल्लेख भी मिलता है और अर्जुन को गांधर्व विद्याविशारद भी कहा गया है । जैन परंपरा[4] और बौद्ध परंपरा [5] भी संगीत साधना से शून्य नहीं थी । विशेष रूप से द्रष्टव्य यह है कि थेरी गाथा में बौद्ध भिक्षुणियों के 522 भाव-प्रवण गीतों का संग्रह है । इससे यह सिद्ध होता है कि बौद्ध साधना के कुछ रूप संगीतात्मक थे ।

"याज्ञवल्क्य स्मृति" में कहा गया है कि नादानुसंधान करनेवाला ही परमपद को प्राप्त कर सकता है । [6] पुराणों में तो गीत और गाथा की एकांत प्रतिष्ठा मिलती है ही है । इतिहास काल में लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में संगीत का महत्व बढ़ता गया । इस दृष्टि से राजपूत काल विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।[7]

इसलाम के आगमन से संगीत साधना को क्षति भी पहुँची और सूफियों के संपर्क से इसका विकास भी हुआ ।

संगीतकार मध्यकाल में वाग्गेयकार बन गया । वाग्गेयकार वे होते थे जो उच्च कोटि की कविता लिखकर उसे भावानुरूप राग एवं ताल में निबद्ध करते थे । काव्य, राग और ताल का समुचित निर्वाह इस काल के

---

* रामायण, उत्तर, 16/3-34 2 वही. बाल.4/36 3 वही.बाल.18/16-17,73

4 ठाणांग सत्त, 9,678 5 दीर्घ निकाय, पृ.6; ललित विहार,12, पृ.139

6 याज्ञवल्क्य स्मृति,4/112-116

7 Capt.Day, Music of Southern India, P.51.

संगीत की विशेषता थी । * उत्तर और दक्षिण के अधिकांश भक्त कवि इसी श्रेणी में आते हैं । स्वामी हरिदास, बैजू बावरा, पुरंदरदास, नामदेव, सूरदास, तुलसीदास, त्यागराजु, दीक्षितार, श्यामा शास्त्री आदि इसी कोटि में आते हैं ।

इस प्रकार तुलसी और त्यागराजु संगीत, काव्य और ताल की समन्वित संरचना का प्रतिनिधित्व करते हैं । संगीत के सिद्धान्तों को मनोराग, संवेदन और अनुभूतियों से समन्वित करके इन्होंने अपनी साधना के क्षणों को लौकिक और अलौकिक से एक साथ जोडा । एक अंतर अवश्य प्रतीत होता है । जहाँ तुलसी में शब्द का आग्रह अधिक है वहाँ त्यागराजु में स्वर का । शब्दों के आग्रह के कारण ही तुलसी के गीतों के "अंतरे" कहीं कहीं अधिक लंबे हो गये हैं । इस लंबाई का कारण तुलसी की वर्णन-प्रियता है और वर्णन में शब्द प्रधान हो जाते हैं । उदाहरण के लिए नीचे की दो पंक्तियों को लिया जा सकता है :-

मन, इतनोई या तनु को परम फलु ।
सब अंग सुभग बिंदुमाधव-छवि, तजि सुभाव,
अवलोक एक पलु ।[2]

इसमें राग जैतश्री के अनुसार टेक तो सहज है पर अंतरा अधिक लंबा हो गया है । फिर भी यह वर्णन मोह सभी पदों में संगीत की स्वाभाविक धारा का अवरोधक नहीं बना है । शब्द का आग्रह अधिक काव्यमयता के कारण भी हो सकता है । शब्द का आग्रह संगीत विधान को एक सीमा तक कुंठित कर

---

* "The Vaggeyakara has to combine in his work the three elements - (i) poetic composition, (ii) melodic type and (iii) tala pattern".

- D.G.Vyas, Harmony of poetic composition with mood of rasa aspect of Indian music, P.17.

2 वि.63

देता है । विशेष रूप से "गीतावली" के प्रसंगापेक्षी या कथात्मक गीतों में ऐसा हुआ है । "विनयपत्रिका" में शब्द का आग्रह कुछ अधिक अवश्य है । इसके विपरीत त्यागराज के संकीर्तन सदा ही स्वर प्रधान मिलते हैं । शब्द का आग्रह संगीत के स्वर प्रवाह को बाधित नहीं करता ।

2. भक्ति और काव्य संगीत :

भारतीय अध्यात्मक विद्या और आध्यात्मिक साधना की मानसिक और औपकरणिक संरचना में संगीत का स्थान रहा है । सृष्टि के पौर्वापर्य को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है - "समस्त सृष्टि में पृथ्वी तत्व रस तत्व से युक्त है जिसका मूलाधार जल है । जल से ओषधि और ओषधियों से मनुष्य, मनुष्य से वाक् और वाक् से कविता, कविता से संगीत तथा संगीत से प्रणवनाद {ओंकार} तात्त्विक रूप में जुड़ते जाते हैं ।" * प्रणव संगीत और भगवान के बीच अभेद स्थापित हो जाता है । संगीत भक्ति-आंदोलन से प्रेरित भक्ति-साधना और भक्ति-साहित्य का एक प्रमुख संरचक हो गया । यह भक्ति-भाव की अनुभूति की प्रक्रिया में भी अंत:स्यूत रहा और साधक की मानसिकता के आरोहण और उन्नयन में भी इसका योगदान स्वीकार किया गया । भावों की अंतर्भूमियों में अनुस्यूत संगीत तत्व दिव्य अनुभूतियों की अभिव्यक्ति और उसके प्रसारण की विधियों में भी संघटित हुए । संभवत: अखिल भारतीय स्तर पर कोई भी प्रमुख भक्त-कवि ऐसा नहीं हुआ जिसने भक्ति की सर्वांग संरचना में संगीत को स्थान न दिया हो । स्वामी हरिदास जी और त्यागराज स्वामी जैसे भक्तों की साधना तो संगीत की पर्याय बन ही गयी थी, तुलसी जैसे भक्त महाकवियों को भी एक स्थिति में संगीत-संरचना को अपनाना पड़ा ।

नवधा-भक्ति में कीर्तन-भजन का भी स्थान है जो संगीताश्रित है । भक्त वाग्गेयकारों ने मुक्ति की साधना में संगीत की महिमा गाई है ।

---

* छांदोग्येपनिषद्, श्लोक

त्यागराजु ने संगीत को मुक्ति हेतु के रूप में ग्रहण किया है -

> "संगीत शास्त्र ज्ञानमु सारूप्य सौख्यदमे मनसा ।
> शृंगार रसाद्यखिल सार पू
> रित राम कथानंदाब्धियुत ।" *

संगीत और भक्ति का योग ही सन्मार्ग है जिसके द्वारा भगवदुपासना सुगम होती है । त्यागराजु ने संगीतात्मक आध्यात्मिक साधना की परंपरा के आदि सूत्रों की ओर संकेत किया है - भृंगी, नटेश, हनुमान, अगस्त्य, मातंग मुनि, नारद आदि इसी प्रकार के साधक थे ।[2] उनकी दृष्टि में सहज भक्ति के साथ राग ज्ञान से युक्त मनुष्य ही जीवन मुक्त है ।[3]

तुलसी ने स्पष्टतः संगीत ज्ञान और भक्ति का संबंध निरूपण तो नहीं किया, किन्तु "विनयपत्रिका", "गीतावली" तथा "श्रीकृष्णगीतावली" में ही नहीं "रामचरितमानस" आदि अन्य रचनाओं में भी 450 बार "गाना"[4] या तद् सूचक क्रिया शब्द का प्रयोग करके भक्ति-साधना में संगीत का महत्त्व स्वीकार किया । उनकी दृष्टि में वेद,देव, पुराण, ऋषि, मुनि - सभी राम के चरित्र गायक हैं ।

3. काव्य और संगीत : प्रवृत्तिगत भेद :

तुलसी और त्यागराजु के व्यक्तित्त्व, भाव और साहित्य की संरचना में एक मौलिक भेद है । तुलसी साहित्य की मूल संरचना काव्य की है । इस रूप में स्फुट काव्य से आरंभ होकर यह महाकाव्य में चरम स्पर्शी होती है । यह क्रम "कवितावली" और "रामचरितमानस" के ध्रुवांतों के बीच

---

* त्या.569

2 त्या.568; इसी प्रकार की सूची "संगीत रत्नाकर" शार्ङ्गदेव, पदार्थ संग्रह प्रकरण, श्लोक 15-21 में दी गयी है ।

3 त्या.580/1

4 इसकी सूची परिशिष्ट में दी गयी है ।

घटित है । साहित्य सृजन और साधना के भाव-सघन क्षणों में रचनांतरण अपरिहार्य हो गया । काव्य-संरचना संगीत-संरचना में संक्रमित हुई या संगीत-संरचना का अध्यारोपण मूल काव्य-संरचना पर हुआ । लोक शैली का कथात्मक संगीत यदि इस संरचना का एक बिंदु है तो दूसरा बिंदु "गीतावली" तथा "विनयपत्रिका" का है । इसके विपरीत त्यागराजु की आद्यंत संरचना संगीतात्मक है । भक्ति-भाव काव्य-संरचना का संबल ~~ह~~ लेकर उनकी संगीत-संरचना में प्रविष्ट हुआ है । त्यागराजु की संगीत-संरचना का एक बिंदु "नौकाचरित्रमु", "प्रह्लाद भक्ति विजयमु" और "सीताराम विजयमु" का लोकगत गीत-नाट्य रूप है तो उसका चरम बिंदु शास्त्रीय ताल, लय में निबद्ध संकीर्तन में है । तात्पर्य यह है कि तुलसी साहित्य की संरचना में काव्य और संगीत की संरचनाएं जितनी स्पष्ट रूप से विभाज्य हैं उतनी त्यागराजु के सृजन में नहीं है ।

तुलसी के काव्य-सृजन को छोड़कर त्यागराजु के साथ उनकी तुलना की जा सकती है । दोनों की आरंभिक संगीत कृतियों में मांसल और सहज प्रवृत्ति का बोधक राग-बोध मिलता है । इस दृष्टि से तुलसी की "पार्वतीमंगल" एवं "जानकीमंगल" रचनाओं की तुलना त्यागराजु की कथा-नाट्य-संगीत की संयुक्त संरचना में ढली हुई "सीताराम विजयमु", "नौकाचरित्रमु" तथा "प्रह्लाद भक्ति विजयमु" जैसी रचनाओं से की जा सकती है । भाव-संरचना की दृष्टि से दोनों कवियों की ये रचनाएं समान स्तरीय हैं । किंतु इनकी शैली-संरचना में अन्तर है - तुलसी की इन रचनाओं ~~क~~ में कथा और गीत समन्वित हैं तो त्यागराजु की इन रचनाओं में नाट्य और गीत । वैसे कुछ जातियों के वैवाहिक अवसर पर मंगल काव्य का गायन भी नृत्य-नाट्य पद्धति से ही होता है ।

आलोच्य कवियों की संगीत-संरचना का दूसरा स्तर प्रसंगापेक्षी संगीत-रचना का है । गीत और संगीत की संरचना एक भाव प्रसंग की सीमाओं में निबद्ध होकर स्फीति प्राप्त करती है । तुलसी की "गीतावली",

"श्रीकृष्णगीतावली" प्रसंगापेक्षी संगीतात्मक गीत गुच्छों के ही अनुक्रम हैं। इसी प्रकार त्यागराजु के कुछ संकीर्तनों की संरचना भी प्रसंग के स्तंभों पर खड़ी है।* इस गीत रचना में दोनों कवि समान हैं।

गीत-संगीत की आगे की रचना स्थिति स्तोत्र गीतों की है। विशेषण बहुल सामासिक एवं ध्वनि चमत्कार से युक्त यह गीत-रचना दोनों ही आलोच्य कवियों में अनुकूल संगीत-संरचना के साथ मिलती है। तुलसी की "विनयपत्रिका" के आरंभिक गीत और त्यागराजु के स्तोत्र परक गीत इसी संरचना के हैं। प्रगीत रचना की अंतिम स्थिति आत्मपरक गीतों की है। इसमें "लघु" और "महान" की अलग-अलग संरचनाएँ एक दूसरी में विलीन होती हुई मिलती हैं। "विनयपत्रिका" के स्तोत्रेतर गीत और त्यागराजु के आत्मपरक संकीर्तन इस संरचना के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।[2]

इस तुलनात्मक आधार पर दोनों कवियों की प्रगीत-संरचना के अन्तर का कथन इस प्रकार किया जा सकता है -

1) तुलसी में कथापरक संगीत प्रविधि मिलती है, त्यागराजु में नहीं।

2) त्यागराजु में नाट्याश्रित संगीत प्रविधियाँ मिलती हैं जो तुलसी में अप्राप्य हैं।

3) परिमाण की दृष्टि से तुलसी की गीत-रचना में प्रसंगापेक्षी गीत अधिसंख्यक हैं। इसके विपरीत त्यागराजु के साहित्य में इस प्रकार के गीत अल्प संख्यक हैं।

4) तुलसी के गीति-काव्य में काव्य-सौंदर्य की सूक्ष्म सरणियाँ अधिक हैं और त्यागराजु की गीत-संरचना संगीतात्मक ताल और लय के सूक्ष्म स्तरों पर स्थित है।

---

* त्या. 105, 233, 404, 442, 516, 540, 554, 577, 18(अ)

2 इन पर काव्य-रूपवाले अध्याय में विचार किया गया है।

4. तुलसी, त्यागराजु और काव्य संगीत :

4.1. संगीत ज्ञान :

जैसा कि आलोच्य कवियों के व्यक्तित्व की संरचना के प्रसंग में देखा जा चुका है, त्यागराजु ने विधिवत संगीत का प्रशिक्षण प्राप्त किया और शास्त्रीय संगीतज्ञों में शिरोमणि हो गये । उनके संकीर्तन शास्त्रीय संगीत की पारिभाषिकता की कसौटी पर खरे उतरते हैं । सम्भवत: तुलसी को शास्त्रीय संगीत का इतना निर्भ्रान्त ज्ञान नहीं था । न इसका ही प्रमाण मिलता है कि उनको शास्त्रीय संगीत का कोई विधिवत प्रशिक्षण मिला था । साथ ही उनको शास्त्रीय संगीत के प्रति न कोई विशेष आग्रह ही है । फिर भी उनके सभी पद शास्त्रीय पद्धति से गेय हैं । * इसका दूसरा प्रमाण यह है कि त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी ने कम राग रागिनियों का प्रयोग किया है ।[2] हो सकता है कि उनको अधिक रागों का ज्ञान न हो । यही कारण है कि तुलसी को संगीतज्ञ के रूप में उतनी ख्याति नहीं मिली जितनी कि स्वामी हरिदास और त्यागराजु को मिली ।

4.2. संगीत की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग:

तुलसी और त्यागराजु की भाव-रचना और साधना की रचना संगीत रचना के साथ एकमेक हो जाती है । इस बात का एक प्रमाण यह है कि दोनों ने संगीत संबंधी पारिभाषिक शब्दावली और उसके उपादानों का उल्लेख अपने गीतों में यत्र-तत्र किया है । इससे यह भी व्यक्त होता है कि उनका संगीत-ज्ञान कितना विशद था और यह भी कि उनकी अभिव्यंजना विधि में संगीत के उपादानों का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान था । आगे इसीको स्पष्ट किया गया है ।

---

* विनयकुमार, तुलसी का प्रगीत-काव्य, पृ.55-57

2 तुलसी ने केवल 25 रागों का प्रयोग किया है, जबकि त्यागराजु के संकीर्तनों पर 203 रागों के नाम अंकित हैं ।

4.2.1. नाद :

संगीत संरचना का आधार बिंदु नाद है । यह लौकिक और दिव्य संदर्भों का संयोजक है । भारतीय अध्यात्म विद्या में नाद को ब्रह्म कहा गया है । "प्रणव" या "ॐ" ब्रह्म का ही नादात्मक प्रतीक है । वेद से लेकर सभी परवर्ती दार्शनिक विचारधाराओं और साधनाओं में नाद ब्रह्म की व्याप्ति है । वेद में यह "ॐ" के रूप मिलते है तो योग के आधारभूत दो तत्व नाद और विंद कहे जाते हैं । इस प्रकार संगीत संरचना का ही यह मूल बिंदु नहीं है, अपितु आध्यात्मिक तत्व रचना का भी यह मूल प्रतीक है । त्यागराजु ने संगीत कला और अध्यात्म विद्या के इस मूल तत्व का उल्लेख किया है । उन्होंने "नाद",* "ओंकार"[2] और "प्रणव"[3] - तीनों ही पारिभाषिक शब्दों को अपने काव्य की शब्द संरचना, अप्रस्तुत संरचना और भाव-संरचना में स्थान दिया है ।

योग विद्या के अनुसार नाद का उत्पत्ति-स्थान मूलाधार चक्र है । यह वैखरी, मध्यमा और पश्यंति से भी परे की परावाणी है । इस वाणी में वृत्तियों के अनन्य भाव से एकाग्र करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।[4] प्रणव की आकार संरचना को त्यागराजु ने "दिव्य"[5] कहा है । इस नाद तत्व का सुस्वर गायन मोक्ष प्राप्ति का कारण बन सकता है ।[6] त्रिमूर्ति - ब्रह्मा, विष्णु, महेश - का आश्रय भी नादोपासना ही है ।[7] वैसे नाद तत्व का अधिष्ठान शंकर तत्व है । यही निगम परंपरा के उत्तम सामवेद का सार है ।[8] त्यागराजु ने अपने साध्य को नादात्मक या नाद रूप

---

* त्या. 41/3 2 वही. 438/3 3 वही. 425/3

4 "मूलाधारज नाद मेरुगुटे मुदमगु मोक्षमुरा" - त्या.580/3

5 "दिव्यमौ प्रणवाकारमुनु" - वही. 505/3

6 "एदला दोरिकितिवो -- सुस्वरपुनादफलमो" - वही. 59/3

7 "नादोपासनचे शंकर
नारायण विधुलु वेलसिरि यो मनसा" - वही. 274/1

8 "नाद तनु मनिशं शंकरं नमामि मे मनसा शिरसा ।
मोदकर निगमोत्तम सामवेद सारं वारं वारं"।- वही.271/1,2

कहा है ।* यह साध्य की नाद संरचना का संकेत है । साधन रूप में नाद-गायन कर्मफल की प्राप्ति करा सकता है ।[2]

तुलसी ने नाद या उसकी अंतर छायाओं के वाचक पारिभाषिक शब्द का प्रयोग नहीं किया है । कारण यह हो सकता है कि त्यागराजु की भाँति तुलसी के शैव प्रेरणा का वरदान नहीं मिला है । किंतु नाद के विकसित रूपों से संबंधित शब्दावली का प्रयोग तुलसी में भी मिलता है ।

नाद का मूल अर्थ है - अव्यक्त ध्वनि । इस रूप में यह चेतना में अंतर्व्याप्त रहता है । यह ब्रह्म के समान ही नित्य, एकरस और अविकृत होता है ।[3] इसीलिए इसका संबंध योगियों के ब्रह्मानंद से माना जाता है । इसका अनुभव अंतर्मुख होता है । नाद से संगीत की उत्पत्ति होती है ।[4]

4.2.2. संगीत के विभाग :

गायन, वादन और नर्तन - ये संगीत के तीनों पक्ष नाद से ही संलग्न हैं ।[5] संगीत के अन्य उपादान नाद से ही उत्पन्न होकर एक संगीत परिवार में परिणत होते हैं । नाद से उत्पन्न उपादानों का प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप में उल्लेख दोनों ही आलोच्य कवियों ने किया है । तुलसी ने विविध प्रसंगों में संगीत के तीनों विभागों - गायन, वादन और नर्तन का उल्लेख किया है । राम जन्म के अवसर पर देवता गाते, बजाते और नाचते हैं ।[6] साथ ही कौसल्या चुटकी बजाती है, राम को नचाती है और स्वयं गाती है ।[7]

---

* "~~नाद तनु मनिशं शंकर नमामि मे मनसा शिरसा~~ ।
~~मोदकर निगमोत्तम सामवेदसार वारं वारं ॥~~" - वही. 209/5, 305/2, 272/1

2 नादलोलुडै ब्रह्मानंद मंदवे ओ मनसा ।
स्वादु फलप्रद सप्तस्वर रागनिचय सहित ।। - वही. 270/1,2

3 संगीत शती, "संगीत", (अक्तूबर 1980) पृ. 20

4 वृहद्देशी, मतंग, नादोत्पत्ति प्रकरणम्, श्लोक 16

5 संगीतरत्नाकर, शार्ङ्गदेव, प्रथम भाग, 1/2।

6 गी. 1/5/2; 1/94/2 7 वही. 1/33/4

त्यागराज ने इन तीनों अंगों का एक साथ उल्लेख तो नहीं किया, किन्तु दो-दो का उल्लेख इस प्रकार किया है कि तीनों ही आ जाते हैं। यदि एक स्थान पर वाद्य और नृत्य का उल्लेख है * तो दूसरे स्थान पर गायन और वाद्य का।[2] साथ ही नृत्य और गीत का युग्म बना गया है।[3] इस प्रकार तुलसी और त्यागराज की भक्ति भावोद्वेलित अंत:चेतना का निजी संबंध ही संगीत से नहीं है, बल्कि वह उसकी संरचना का ही भाग है।

4.2.21 वादन :

अनाहत नाद को आहत नाद में उतारने के लिए वाद्यों का सहारा लिया जाता है। दोनों ही कवियों ने कुछ वाद्य यंत्रों का उल्लेख करके अपने संगीत प्रेम को व्यक्त किया है। तुलसी ने सामान्य रूप से नाम न लेते हुए वाद्य वृंद की ओर संकेत किया है - "बहु बिधि बाज बधाई"।[4] विभिन्न लीला प्रसंगों में देव गण "दुंदुभी"[5] और "निसान"[6] का वादन करके अपने उल्लास को व्यक्त करते हैं। अन्य वाद्यों का उल्लेख भी तुलसी ने किया है। एक सूची इस प्रकार है - "घंटा-घंटि, पखाउज - आउज, झाँझ, बनु डफ-तार[7]।" एक दूसरी सूची इस प्रकार दी गयी है : झिल्लि, झाँझ, झरना, डफ, नव मृदंग निसान,।[8] एक स्थान पर राम के जागरण पर वेणु और वीणा के बजाने का उल्लेख है।[9] इसी प्रकार "पनव" और निसान" को जोड़कर सूची तैयार की गयी है।[10] एक स्थान पर शैव वाद्य डमरू और डिंडिम का उल्लेख भी तुलसी ने किया है।[11] कहीं-कहीं एक बाजे का उल्लेख करके उस पर बल दिया गया है। उदाहरण के लिए - "मुरली-तान-तरंग"[12] जैसे कथन को लिया जा सकता है।

---

* त्या. 12/4 2 वही. 165/3 3 वही. 41/3 4 गी. 1/1/5

5 "सुर दुंदभी बजावहिं" - वही. 1/2/3 6 "सुरपुर बाजिहैं निसान" - वही. 1/22/13

7 वही. 1/2/13 8 वही. 2/47/10 9 वही. 7/2/1

10 गी. 7/21/17 11 वि. 10/5 12 कृ.गी. 54/4 ; वि. 20/2

वाद्य कोलाहल में कभी-कभी विविध आभूषण वाद्य वृंद के रूप में अपने स्वर मिलाने लगते हैं । मंजीर, नूपुर और कंकन जैसे स्त्रियों के आभूषण सौंदर्य-वर्द्धन के साथ-साथ वाद्य का काम भी कर रहे हैं ।* आभूषणों और वाद्य वृंदों की सम्मिलित संगति देखिए :-

घंटा-घंटि, पखाउज - आउज, झांझ, बनु डफ-तार ।
नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कंकन - झनकार ।।[2]

देव और मनुष्य तो बजाते ही है, किंतु तुलसी के गीत-संसार में पक्षी भी वादन करते हैं ।[3]

त्यागराजु ने इतने वाद्य यंत्रों को चाहे उल्लेख न किया हो, किंतु सभी प्रमुख वाद्य उनके कीर्तनों में आ गये हैं । जैसे - तंबुरा,[4] वीणा,[5] तंत्री,[6] मृदंग,[7] मद्देल,[8] घंटा,[9] मुरली,[10] वेणु[11] और ताल ।[12] इन में से तंबूरे की सबसे अधिक आवृत्ति है । वाद्य यंत्रों के साथ-साथ तुलसी की भांति इन्होंने कुछ आभूषणों को भी वाद्य यंत्रों के रूप में लिया ~~मयर~~ है - मंजीर[13] और नूपुर ।[14]

4.2.22 गायन :

गायन एक ऐसी व्यापक क्रिया है जिसका संबंध देव से, मर्त्य से, मुनि से, मनुष्य से, आदि मानव से और सभ्य मानव से है । साथ ही गायन लौकिक दृष्टि से भी हो सकता है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी । तुलसी के

---

* गी. 7/18/5   2 वही. 1/2/13   3 वही. 2/48/3
4 त्या. 149/3   5 वही. 425/3   6 वही. 274/3   7. वही. 624/3
8 वही. 580/4   9 वही. 388/1   10 वही. 588/3
11 वही. 526/1   12 वही. 624/5   13 वही. 560/3
14 वही. 167/3   ~~14 वही. 167/3~~

काव्य-संसार में देव गायन कर रहे हैं - "सुर गन गावत" ।* सूत और मागध जैसी जातियाँ भी प्रशस्त गायन करते हैं ।[2] किन्नर भी गायन करते हैं ।[3] यहाँ तक कि पक्षी भी कलगान करते हैं - "गायक सुक कोकिल"[4] और नारियाँ जब चलती हैं तो गान करती हुई चलती हैं - "चली गान करत ।"[5] सीता जी के जब पुत्र जन्म हुआ तो मुनिबधू भी गा उठीं ।[6] भक्त तुलसी अभय होकर राम के भजन गाता है ।[7] वेद, आगम, पुराण, शेष, शुक, शंभु, सनकादि और मुनि राम के चरित्र का गान करते हैं ।[8] सामवेद का इस संदर्भ में विशेष उल्लेख किया गया है - "गुन गन गायक साम सो ।"[9] तुलसी ने सबसे अधिक वेद के गायन का ही उल्लेख किया है । इस प्रकार तुलसी का काव्य-संसार गायन से गुंजित है ।

त्यागराजु के साहित्य में गायन की क्रिया वेद,[10] नारद,[11], गोपी,[12] भक्त,[13] ज्ञानी[14] और स्वयं त्यागराजु[15] के द्वारा संपन्न होती है । इस प्रकार गायकों की सूची तुलसी की गायकों की सूची से बहुत कम है । साथ ही गायन क्रिया की व्यापकता भी कम है । त्यागराजु और तुलसी दोनों ही नाम गायन[16] और गुण गान[17] आदि की बात कहते हैं ।

त्यागराजु की साधना की संरचना गीतमय है । उनका आदर्श नारद है जो हाथ में स्वर्ण वीणा लेकर प्रभु का गायन करता रहता है ।[18]

---

* कृ.गी. 61/1   2 गी.7/2/1   3 वही.1/3/2   4 वही.2/48/3

5 वही. 1/96/2   6 वही.7/34/1   7 वही.5/28/8   8 वि.52/1

9 वही.157/2   10 त्या.5/3   11 वही.282/4   12 वही.4 133/2

13 वही.439/2   14 वही. 91(अ)/3

15 वही.247/5   16 त्या.360/5; गी.1/23/1

17 त्या.165/3 ; वि.182/6

18 त्या.282/4

लगभग इसी प्रकार की झाँकी स्वयं हनुमत त्यागराजु की है -

वेकुव जामुन वेलयुचु दंबुर
जेकोनि गुणमुल जेलुवोंद बाडुचु
श्रीकरनिकि श्रित चिंतामणिकि
आकलिदीर बालारगिपनु जेसे कोलुवमरेगदा कोदंडपाणि ।।*

इस प्रकार की झाँकियाँ ही सूरदास, नामदेव, तुकाराम, हरिदास जैसे भक्तों की मिलती हैं । किंतु एक वाद्य यंत्र लिए हुए संगीत साधना में लीन तुलसी का कोई चित्र प्रचलित नहीं है । वैसे तुलसी ने अनन्य भाव से गान-साधना में लीन रहने की बात कही है - "रसना और न गैहौं" ।[2] त्यागराजु की भाँति तुलसी भी दत्त चित्त होकर राम चरित गान करने को परम साधन मानते हैं ।[3] अपने इष्टदेव से तुलसी प्रार्थना करते हैं कि मुझे ऐसी बुद्धि दीजिए कि मैं आप का चरित गान कर सकूँ ।[4] भक्तिमय साधना के फल की ओर भी तुलसी ने संकेत किया है - इससे अमृत रस प्राप्त होता है ।[5] इसी प्रकार त्यागराजु ने भी कहा है कि भक्ति रस गान ही परम सुख है ।[6] तुलसी ने भी अनायास सुख प्राप्ति को राम गुण गान का फल माना है ।[7] साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि समस्त दुःख, दरिद्र राम के यश गान से मिट जाता है ।[8] त्यागराजु भी भक्ति-गान से यम त्रास के मिटने की ओर संकेत करते हैं ।[9]

तुलसी ने एक रूपक की शैली में यह भी कहा है कि जैसे सामान्य राजा के दरबार में गायक अपनी कला दिखाकर याचना करता है, उसी प्रकार राम के दरबार में गायन करके तुलसी मुँह माँगा फल,[10] रघुपति भक्ति[11] और राम के प्रति पवित्र प्रेम[12] की याचना करता है । इस प्रकार गायन परक साधना

---

* "हे कोदंडपाणी । सुशोभित विभावरी वेला में तंबुरा लेकर आनंद विभोर हो कीर्तन करते हुए श्रीकर श्रित चिंतामणि को दूध-निवेदन सेवा-(भाग्य) मिल गया ।" - वही.165/3

2 वि.104/3 3 चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं । - गी.1/18/3
4 वही.1/39/3 5 कृ.गी.16/4 6 त्या.417/6
7 वि.142/4 8 गी.5/14/4 9 त्या.189/5
10 वि.224/3 11 वही.6/5 12 गी.7/24/4

में दोनों ही कवियों का अटूट विश्वास है । तुलसी के गीतों में गायन क्रिया का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है । इसका कारण यह है कि राम के संबंध में जो कुछ भी कथन किया गया है उसको तुलसी ने गायन क्रिया के अंतर्गत ही रख लिया है ।

<u>﴾क﴿ स्वर :</u>

स्वर संगीत का महत्वपूर्ण उपादान है । श्रुतियों का अनुरणन ही स्वर कहलाता है । 22 श्रुतियों से ही ~~मरस्पता~~ सप्त स्वर संबद्ध हैं ।* गायन में सात स्वरों की मान्यता है । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने "स्वर" शब्द का प्रयोग किया है ।[2] त्यागराजु के अनुसार सप्त स्वर शिव जी के सद्योजात, अघोर, तत्पुरुष, ईशान और वामदेव नामक पाँच मुखों से नि:सृत हुए हैं ।[3] सप्त स्वरों से संबंधित अंगांगों की सूची भी त्यागराजु ने दी है - नाभि, हृदय, कंठ, रसना और नासा ।[4] त्यागराजु ने कुछ कीर्तनों की स्वर लिपियाँ भी दी हैं - कानडा, शहना, मोहन, तोडी, सारंग, सावेरी, नट, बिलहरि, अठाणा, हिन्दोल वसंत, पंतु वरालि और कल्याणि । इस प्रकार की स्वर लिपि का प्रयोग राग नट के कीर्तन में उदाहरण के रूप में त्यागराजु ने किया है -

" पन्नगशायी परूल वेड्लेनु
निसगगा मगम-गमप मापमप - मपनि सानि पनि
मपाम गमाप सरीस सगा गमा मपा पनीनि -
सानिपाम गमपम गमरिस "[5]

त्यागराजु ने यह भी कहा है कि कोलाहल युक्त सप्त स्वरों के गृहों को ﴾उत्पत्ति स्थानों को﴿ समझकर साधना करना ही मोक्ष प्रद होता है ।[6]

---

* शार्ङ्गदेव, संगीत रत्नाकर, श्लोक 35-38 2 गी.7/19/4; त्या.602/3

3 त्या.271/3 4 वही. 567/1,2 5 त्या.292/2

6 कोलाहल सप्त स्वर गृहमुल
गुरुते मोक्षमुरा ओ मनसा । - वही.580/3

एक स्थान पर स्वरों के प्रकाशक के रूप में त्यागराजु ने राम का स्मरण किया है ।* उन्होंने राम के धनुष में संलग्न क्षुद्र घंटियों से ही सप्त स्वरों की प्राप्ति मानी ।[2] अपने एक कीर्तन में त्यागराजु ने नारद कृत "स्वरार्णव" ग्रंथ का भी उल्लेख किया है ।[3]

(ख) राग :

तुलसी और त्यागराजु ने अनेकत्र "राग" शब्द का प्रयोग किया है ।[4] त्यागराजु ने अपने एक कीर्तन में "श्रीराग"[5] का नामोल्लेख किया है । तुलसी ने त्यागराजु की अपेक्षा अधिक रागों की ओर संकेत किया है – "रागनट",[6] "राग सारंग, गुड-मलार, सोरठ,[7] "रागसूहो" ।[8] इसके अतिरिक्त कुछ लोक रागों का भी उल्लेख तुलसी ने किया है । इनमें जन्म के समय गाया जाने वाला "सोहिलो"[9] प्रमुख है । होली गीत चाचर[10] और झूमक[11] का उल्लेख भी कई स्थानों पर हुआ है । त्यागराजु ने लोकगत रागों का उल्लेख नहीं किया । भक्ति क्षेत्र में कीर्तन शैली बहुप्रचलित है । इसका उल्लेख तुलसी ने भी किया है[12] और त्यागराजु ने भी ।[13] गीत[14] और पद [15] शैली का नामोल्लेख दोनों कवियों के गीत-साहित्य में मिलता है ।

---

* ~~कोलाहल सप्त स्वर मूलमुल~~
~~मुले मोक्षमुरा ओ मनसा~~ – त्या. 588/3

2 वही.272/3 3 वही. 580/6

4 गी.7/22/5; त्या.272/3 5 त्या.571/5

6 कृ.गी.20/1 7 गी.7/19/4 8 वही.7/18/5

9 वही.1/2/1 10 वि.203/18 11 गी.7/22/5

12 वही.2/43/2 13 त्या.285/3

14 गी.1/2/15; त्या.341/3

15 गी.1/2/15; त्या.348/6

(ग) तान-लय :

तुलसी ने संगीत के पारिभाषिक शब्द "तान" * का कई स्थानों पर प्रयोग किया है । त्यागराजु ने "लय"[2] शब्द का प्रयोग किया है । प्राय: लय का प्रयोग स्वर, राग और भाव के साथ हुआ है ।[3] तुलसी ने लय का प्रयोग नहीं किया है । किंतु लय के वाहक "छंद-प्रबंध"[4] का प्रयोग किया है । वास्तव में नाद का संचरण लय के द्वारा होता है और छंद का आधार भी लय है । तुलसी ने "बंधान"[5] शब्द का प्रयोग भी किया है ।

अन्य पारिभाषिक शब्दों में ये आते हैं - मूर्च्छना,[6] आलाप,[7] यति[8] और ताल ।[9] इन शब्दों का प्रयोग त्यागराजु में विशिष्ट है ।

त्यागराजु ने संगीत के उपादानों के आधार पर राम के धनुष का सांग रूपक भी खड़ा किया है - "धनुष में रहने वाली क्षुद्रघंटियां सात हैं । उन घंटियों से उत्पन्न होनेवाली ध्वनियां ही सात स्वर हैं । राग संगीत के लिए प्रधान है । यह राग कोदंड है । घन नय देश्यमुलु तीन हैं । ये ही तीन कोदंड के त्रिगुण - प्रत्यंचा हैं । निरति गति से चलनेवाले बाण ही लय है । श्रीराम जी के मुँह से निकलने वाली बातें (वाक्) ही सरस संगतियां हैं । इस रूप में श्रीराम का भजन करना ही नर जन्म का भाग्य है ।"[10] तुलसी ने पारिभाषिकता क लिए हुए इस प्रकार की रचना नहीं की ।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गायन की पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति दोनों ही कवियों में समान रूप से

---

* कृ.गी. 54/4, गी.7/19/4 — 2 त्या.5/6; 28/2

3 वही. 47/3, 5/11 — 4 गी.1/2/15

5 वही.2/47/13 — 6 त्या.505/2

7 वही.247/3 — 8 वही.622/3

9 वही.398/3 — 10 वही.272

मिलती है । किंतु पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग की ओर त्यागराजु विशेष रूप से झुके हुए हैं । सम्भवत: पारिभाषिक रूप से संगीत-साधना क्र में त्यागराजु तुलसी से आगे थे और संगीत का पारिभाषिक ज्ञान भी त्यागराजु को अधिक था ।

4.2.23 नर्तन :

भक्ति-साधना की संरचना में जहाँ गायन और वादन की परिव्याप्ति है वहाँ नर्तन का भी समावेश इसमें रहता है । सभी संगीतज्ञ - भक्त गायन करते करते नृत्य भी कर उठते थे । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही नृत्य संबंधी शब्दावली का प्रयोग काव्य रचना में किया है ।

तुलसी ने स्वर्ग में अप्सराओं को नृत्य करते हुए बतलाया - "नाचहिं नभ अपसरा" । * अन्य देव भी नाचते हैं - "सुरगन नाचे" ।[2] उल्लास के अवसरों पर नर-नारी भी नाचते-नाचते विस्मृति में चले जाते थे - "नाचहिं पुर नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई ।"[3] नृत्य करनेवाले नट और नटी का भी उल्लेख है - "नृत्य करहिं नट-नटी" ।[4] किरात और किरातनी राम को देखकर नृत्य कर उठते हैं ।[5] राम की माया के वशीभूत होकर शिव और ब्रह्मा भी नाचते हैं ।[6] उसी राम को कौसल्या चुटकी बजाकर नचाती है ।[7] होली के अवसर पर स्त्रियाँ पुरुषों को नचा देती हैं ।[8] तुलसी के गीत-संसार में मयूर और हंस भी नृत्य करते हैं ।[9] ताण्डव नृत्य का उल्लेख भी मिलता है ।[10] इस प्रकार भक्ति के विधान में तुलसी ने बहुत से नृत्य संदर्भों को समाविष्ट किया ।

त्यागराजु के कीर्तनों में भी नारद,[11] तुंबुर,[12], गणपति,[13]

---

* गी.1/3/2 2 वही.1/94/2 3 वही. 1/1/8 4 वही.1/2/14

5 वही.2/47/19 6 वि. 98/3 7 गी.1/33/4

8 वही.7/22/6,7 9 वही.2/48/3 10 वि.10/5

11 त्या.282/4 12 वही.12/4 13 वही.539/1

अप्सरा,* नारियाँ [2] तथा स्वयं त्यागराजु [3] नटन शील है । नृत्य संबंधी पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग, दोनों में से किसी कवि ने नहीं किया ।

5. तुलसी - त्यागराजु : राग चयन :

5.1. प्रयुक्त राग :

तुलसी ने अपने 670 गीतों को 25 रागों में निबद्ध किया है और त्यागराजु ने 659 कीर्तनों को 203 रागों की संरचना में ढाला है । दोनों कवियों में समान रूप से प्राप्त राग 17 हैं । इनकी आवृत्ति सहित सूची नीचे दी गयी है -

समान राग	तुलसी में आवृत्ति	त्यागराजु में आवृत्ति
1. केदारा	108	→ 3
2. कल्याण	80	18
यमुना कल्याण	-	5
पूरी कल्याण	-	2
अमीर कल्याण	-	2 → 27
3. सोरठ~सौराष्ट्र	71	→ 18
4. गौरी	46	→ 1
5. धनाश्री~धन्यासी	44	8
सिंधु धन्यासी	-	1 → 9
6. आसावरी	31	→ 9
7. टोडी~तोडी	28	26
देशिक तोडी	-	5 → 31
8. बिहाग~बेहाग	28	→ 1

---

* त्या. 247/3 2 वही. 133/2

3 वही. 494/4

9	कान्हरा~कानडा	24	6
	नवरस कन्नडा	-	2
	सिंधु कन्नडा	-	1 → 9
10	भैरव	15	→ 1
11	भैरवी	6	17
12	सालग भैरवी	-	2
	नट भैरवी	-	1
	आनंद भैरवी	-	3
	वसंत भैरवी	-	2 → 25
12	सारंग	14	7
	बृन्दावन सारंग	-	1 → 8
13	जैतश्री~जयंत श्री	12	→ 1
14	नट	11	2
	चायनाट	-	1 → 3
15	ललित	10	1
	पूर्ण ललित	-	1 → 2
16	मारू~मलय मारुतमु	10	→ 1
17	बसंत	8	1
	वीर वसंत	-	1
	कल्याण वसंत	-	2
	हिन्दोल वसंत	-	1
	विजय वसंत	-	1 → 6
		546	155

उपर्युक्त सूची को देखने से यह स्पष्ट होता है कि समान रागों में तुलसी के अधिक गीत मिलते हैं। दूसरी बात यह दिखलाई पड़ती है कि राग केदारा त्यागराजु का प्रिय राग नहीं है। तोडी राग सम्भवत: दोनों कवियों को

समान रूप से प्रिय हैं । भैरव और भैरवी भी आवृत्ति की दृष्टि से दोनों को ही प्रिय प्रतीत होते हैं । समानता का तीसरा क्षेत्र बसंत राग का है । शेष रागों में समानता की अपेक्षा वैसादृश्य ही अधिक मिलता है । एक और बात द्रष्टव्य है । समान रागों के अधिक भेद त्यागराजु के संकीर्तनों में मिलते हैं । जहाँ तुलसी ने केवल कल्याण का प्रयोग किया है वहाँ त्यागराजु ने यमुना कल्याण, पूरी कल्याण तथा अमीर कल्याण जैसे उपभेदों का प्रयोग भी किया है । धनाश्री का भी एक उपभेद सिंधु धन्यासी त्यागराजु में मिलता है । तोडी के अतिरिक्त देशिक तोडी, कान्हरा के अतिरिक्त नवरस कन्नडा, सिंधु कन्नडा, भैरवी के अतिरिक्त सालग भैरवी, नट भैरवी, आनंद भैरवी और वसंत भैरवी, सारंग के अतिरिक्त बृन्दावन सारंग, नट के अतिरिक्त चायनाट, ललित के अतिरिक्त पूर्ण ललित तथा बसंत के अतिरिक्त वीर वसंत, कल्याण वसंत, हिन्दोल वसंत और विजय वसंत का प्रयोग त्यागराजु ने किया है । इससे भी रागों के भेदोपभेदों में त्यागराजु की गहरी पैठ सिद्ध होती है ।

उपर्युक्त 17 समान रागों के अतिरिक्त तुलसी द्वारा स्वीकृत अन्य राग आठ ही हैं । इसकी तुलना में त्यागराजु की पद रचना राग रचना की नई दिशाओं में विस्तृत हुई है । दोनों कवियों के द्वारा प्रयुक्त अन्य रागों की आवृत्ति सहित सूचियाँ निम्नांकित हैं -

<u>तुलसी के अन्य राग :</u>

एक बार	:	दंडक
दो बार	:	चंचरी, सूहो बिलावल
पाँच बार	:	सूहो, विभास,
बीस बार	:	मलार
तीस बार	:	रामकली
उनसठ बार	:	बिलावल

त्यागराजु के अन्य राग :

एक बार : गौल, मनोरंजनि, जंगला, सरस्वती, वनालि, आंदाली, चारुकेशि, गुट क्रिया, श्याम, मालव श्री, देवामृत वर्षिणी, मानवती, गांगेय भूषणी, सिद्ध सेना, श्रुतिरंजनि, श्रीमणि, वकुलाभरणम्, बिंदुमालिनि, सरस्वती मनोहरि, नाग गांधारी, दीपक, कीरवाणि, वाचस्पति, गौरी मनोहरि, रेव गुप्ति, मार्ग हिंदोल, वेग वाहिनि, कलानिधि, शुद्ध सीमंतिनि, गमनश्रम, भूषावलि, धेनुक, गानवार्दि, कोकिल प्रिय, भूपाल, रंजनि, आभेरि, देव क्रिया, चित्तरंजनि, नभोमणि, उमा-भरणम्, कमला मनोहरि, नाद वरंगिनि, सिंह वाहिनि, मालवि, रूपावति, वागधीश्वरी, मंदारि, जुजाहुलि, वनस्पति, मनोहरि, मंजरि, कांतामणि, वसंत वरालि, शूलिनि, स्वरावलि, झंकार ध्वनि, हंस नाद, बहुदारि, कोलाहल, वर्धिनि, माररंजनि, जय नारायणि, नलिनकांति, ऋषभप्रिय, सरसांगि, सूर्यकांतम्, सारवति, सुपोषिणि, टक्का, आंदोलिका, मणिरंगु, दिलीपक, जंजोटि, दुंदुभि, नवनीतम्, षण्मुखप्रिया, स्वर भूषणि, विजयश्री, सुप्रदीपम्, घुर्जरी, परजु, चेंचु कांभोजि, कैकवशी, जयंत सेना, प्रतापवरालि, विवर्धनि, सामम्, भवप्रिया, कल कंठि, पल रंजनि, नाग स्वरालि, अमृत वाहिनि, राम प्रिया, पल मंजरि, कल्गडा, कोकिल वरालि, कापि नारायणि, भिन्नषड्जम्, तीव्र वाहिनि, नाग नंदिनि, राम मनोहर, चूर्णिका, बौलि ।

दो बार : गरुड ध्वनि, छाया तरंगिनि, चक्रवाकम्, कलावति, किरणावलि, शुद्धदेशी, कन्नड गौल, नाद नाम क्रिया, नाट कुरंजि, कोकिल ध्वनि, सिंधु राम क्रिया, आभोगि, रविचंद्रिका, चंद्रज्योति, नारायणि, ईश मनोहरि, हिन्दोलम्, जगन्मोहिनि, हंस ध्वनि, पूर्ण षड्जम्, [illegible] राग पंजरम्, कमास ।

तीन बार : श्रीराग, नारायण गौल, देव मनोहरि, नायकि, कुंतलवरालि, बंगाल, शुद्ध बंगाल, पूर्ण चंद्रिका, जनरंजनि, जय मनोहरि ।

<u>चार बार</u> : मायामालव गौल, आहिरि ।

<u>पाँच बार</u> : गौलि पंतु, शुद्ध सावेरी, श्रीरंजनि ।

<u>छः बार</u> : नीलांबरि, कांभोजि ।

<u>सात बार</u> : बलहंस, हुसेनि ।

<u>आठ बार</u> : घंटा, सुरटि ।

<u>नौ बार</u> : हरिकांभोजि, मुखारि, खरहर प्रिया ।

<u>दस बार</u> : यदुकुल कांभोजि, बिलहरि, शहना, दरबारु, बेगडा, रीति गौल ।

<u>ग्यारह बार</u> : मोहन, पुन्नाग वरालि ।

<u>बारह बार</u> : कापि ।

<u>तेरह बार</u> : आरभि, अठाणा, केदार गौल, देव गांधारी ।

<u>चौदह बार</u> : पंतुवरालि ।

<u>पन्द्रह बार</u> : वशालि, मध्यमावति ।

<u>उन्नीस बार</u> : सावेरी ।

<u>छब्बीस बार</u> : शंकराभरणम् ।

उपर्युक्त अन्य रागों की सूचियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए कुछ ही रागों का सहारा लिया है और त्यागराजु ने अनेक रागों का । तुलसी का लक्ष्य भक्ति ही था जबकि त्यागराजु का लक्ष्य भक्ति के साथ-साथ संगीत-साधना भी । राग बहुलता का शायद यही कारण हो ।

5.2. रागों का नाम विकास :

संस्कृत के तत्सम नामों के स्थान पर कुछ विकसित शब्द प्रयुक्त होने लगे थे । ध्वनि विकास की कई प्रक्रियायें इसमें दृष्टिगोचर होती है : च > स : खमाच > खमास *; श > स : धनाश्री > धन्यासी [2]; ड > ठ : अडाणा > अठाणा[3]; ड > ल : बडहंस > बलहंस[4]; ड > द : हिन्डोला > हिन्दोला[5]; ट > ल : वराटी > वराली;[6] इ > ए : बिहाग > बेहाग;[7] अ > उ : यमन > यमुना[8]; र > ल : रामक्री > रामकिरी > रामकली;[9] त > ट : तोडी > टोडी:[10] ए > इ : वेलाउली > विलावल ।[11] इस प्रकार विकास की प्रवृत्तियाँ तो दोनों में समान है । केवल स्थानीय भेद दोनों को अलग करता है । कभी-कभी त्यागराजु शुद्ध तत्सम रूप का प्रयोग भी करते है और तुलसी उस के विकसित रूप का । त्यागराजु ने तत्सम रूप सौराष्ट्र का प्रयोग किया है जबकि तुलसी में इसका विकसित रूप सोरठ मिलता है ।

5.3. कोमल स्वरवाले राग :

अन्य भक्त कवियों की भाँति तुलसी और त्यागराजु ने भी कोमल स्वर वाले रागों का विशेष प्रयोग किया है । कोमल स्वरों वाले मुख्य राग ये हैं - तोडी, भैरव, आसावरी, धनाश्री, केदारा, सोरठ आदि । इन रागों के द्वारा करुण की निष्पत्ति सुचारु रूप से होती है । इसके द्वारा भक्त के आर्त हृदय को अभिव्यक्ति मिलती है । साध्य से मिलने की व्याकुलता भक्ति भाव का प्रधान केंद्र है ।

---

*	त्याग 598	2	वही. 116	3	वही. 8
4	वही. 32	5	वही. 389	6	वही. 4
7	वही. 321	8	वही. 281	9	वि. ~~X62~~ 6
10	गी.1/45	11	कृ.गी. 22	12	त्या.24
13	वि.162				

5.4. शुद्ध स्वरवाले राग :

शुद्ध स्वरवाले राग वीर और उल्लास की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त होते हैं । आशावादी क्षण उल्लास और उत्साह से मंडित होते हैं । वीर भाव के व्यंजक रागों में मारू, भूपाली, हिन्दोल आदि प्रमुख हैं । तुलसी में केवल राग मारू का प्रयोग मिलता है जबकि त्यागराजु ने उक्त सभी रागों का प्रयोग किया है ।

5.5. संधि प्रकाश राग [समस सिद्धान्त] *

भक्त कवियों को प्राय: संधि प्रकाश के राग अधिक प्रिय रहे हैं । संधि प्रकाश का तात्पर्य है - दिन और रात की संधि । उष:काल और गोधूली वेला इसी प्रकार के काल हैं । उष:काल में ललित, भैरवी और रामकली जैसे राग गाये जाते हैं और गोधूली में पूर्वी थाट के राग । भक्ति के करूण और शांत दोनों ही भाव संधि प्रकाश रागों में नियोजित किये जा सकते हैं । इन दोनों में ही गंभीरता का समावेश अधिक रहता है । इनका प्रभाव भी गंभीर होता है ।[2] तुलसी और त्यागराजु ने भी इस सिद्धान्त का पालन यथा संभव किया है ।

प्रात:काल वाले राग में शुद्ध माध्यम का प्राधान्य है और उत्तरांग का प्राबल्य होता है जिसके फलस्वरूप प्रात:कालीन संधि प्रकाश राग एक ऐसे ध्वनिपरक वातावरण का निर्माण करते हैं जैसा वातावरण प्रात:कालीन प्रकृति की नैसर्गिक ब शोभा में दृष्टिगत होता है । फलत: ललित, भैरव, राम कली आदि प्रात:कालीन संधि-प्रकाश रागों में तुलसी ने जो पद बांधे हैं उनमें या तो प्रात:कालीन शोभा का निरूपण है अथवा भगवद्-नाम स्मरण या राम को सोते जगाए जाने का उल्लेख मिलता है । उदाहरण के लिए एक पद पर्याप्त होगा ।

---

* नारद कृत संगीत मकरंद [तृतीय पाद] 10-23 में सबसे पहले समय सिद्धान्त का म उल्लेख हुआ है ।

2 भातखंडे, संगीत शास्त्र, भाग-1, पृ. 73

"विभास" राग में राम के प्रात: कालीन जागरण का वर्णन किया गया है .

"भोर भयो जागहु रघुनंदन"। *

सायंकालीन संधि प्रकाश राग में खिन्नता, करूणा आदि का वर्णन होता है । सायंकाल का वर्णन तथा गौवों को चराकर लौटना आदि की अभिव्यक्ति इसमें होती है । राग गौरी सायंकालीन संधि प्रकाश राग है जिसमें संध्यावंदन तथा अन्य उपासना संबंधी पदों की योजना की गई है । हृदय की क्लान्ति का वर्णन भी होता है । अधिकांश इस राग में उन पदों की रचना होती थी जिन को भगवान के मंदिर में सायंकाल के समय गाया जाता था । इन संधि प्रकाश रागों में पूर्वांग और तीव्र मध्यम प्रबल होता है । राग गौरी में संध्याकालीन भगवत भजन का पद कितनी सुंदरता से अभिव्यक्त हुआ है - संगीत का शास्त्रीय विधान और स्वाभाविक लय सब मिलकर सामूहिक राग की व्यवस्था करते हैं । अंत में "रे" की टेक से कीर्तन का सा भाव आ जाता है -

"राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।"[2]

तुलसी की ही भाँति त्यागराजु में भी प्रात:काल तथा सायंकाल से संबंधित रागों की ही बहुलता देखी जा सकती है । प्रात:काल से संबंधित रागों में भगवान को जगाने से लेकर प्रात:कालीन निवेदनों से संबद्ध कार्यक्रम गीत के वर्ण्य बनते हैं । साथ-साथ भाव की दृष्टि से आत्म निवेदन का प्राधान्य रहता है । लीला पुरूषोत्तम की प्रात:कालीन झाँकियाँ भक्तों को आकृष्ट करने वाली भी हैं । त्यागराजु का उष:कालीन यह कीर्तन बहुत प्रसिद्ध है -

"मेलुकोवय्य मम्मेलुको राम" ।[3]

---

* गी. 1/36 - इसी के साथ के पद 37, 38, 39 भी द्रष्टव्य है तथा राग भैरव में विनयपत्रिका में कवि ने भगवत भजन के पदों का निर्माण किया है - 65, 66, 67 द्रष्टव्य है ।

2 वि. 189 और द्रष्टव्य पद 192, 193 और 195

3 त्या. 20(अ) और भी द्रष्टव्य 29, 50, 51, 53, 247 आदि ।

सायंकालीन स्थितियों में शय्या लीला अंतिम मानी जा सकती है । दिन भर की थकान के बाद शय्या पर लेटने की शोभा का वर्णन भी भक्त के हृदय को मुग्ध करनेवाला ही है । इसमें भक्त के द्वारा भगवान से श्रम परिहारार्थ शय्या पर सुशोभित होने की प्रार्थना मंजुल रूप में प्रस्तुत होती है । त्यागराजु का निम्न लिखित कीर्तन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है -

"बडलिकदीर बव्वलिचवे ।" *

तुलना की दृष्टि से यह स्पष्ट ही है कि दोनों भक्त कवियों का मन सेवा संदर्भों के साथ रमा है और प्राय: सायंकालीन राग बहुसंख्यक भी हैं । इसमें दोनों कवियों की प्रवृत्ति समान है ।

वैसे राम मंदिरों की व्यवस्था के अनुसार भी प्रात:कालीन और सायंकालीन समय को अधिक रागमय किया जाता है । इसी समय इष्ट विग्रह की मार्मिक झाँकियाँ नियोजित रहती हैं । प्रात:काल को दिन के दूसरे प्रहर तक खींचा जा सकता है । इसी प्रकार संध्याकाल को रात के दूसरे प्रहर तक । दिन के तीसरे प्रहर के राग तुलसी में हैं ही नहीं । त्यागराजु को भी यह विशेष प्रिय नहीं है । प्रात:कालीन स्तुति में तुलसी ने राग केदारा को अधिक ग्रहण किया है जब कि त्यागराजु ने प्रात:कालीन स्तुतियाँ भैरवी में अधिक की है । इस प्रकार समय सिद्धान्त की दृष्टि से आलोच्य कवियों में वैषम्य के स्थान पर प्रवृत्तिगत साम्य ही दिखलाई पड़ता है ।

5.6. राग और ताल :

पदों के साथ राग के नामोल्लेख की परंपरा देश और काल में बहुत व्यापक है । सिद्धों से लेकर भक्ति-काल के कवियों तक और दक्षिण से लेकर उत्तर के कवियों में यह प्रवृत्ति मिलती है । कुछ भक्त कवियों ने रागोल्लेख के साथ तालोल्लेख भी किया है । उदाहरण के लिए महाराष्ट्र के सन्त मानपुरी

---

* त्या.363 और भी द्रष्टव्य - 11(अ), 13(अ), 14(अ), 19(अ) इत्यादि ।

और समर्थ रामदास के कुछ पदों पर तालों का नाम भी अंकित है । त्यागराजु के सभी कीर्तनों पर ताल का संकेत है । * तुलसी ने केवल राग का उल्लेख किया है । तालों की रचना में मात्राएं, गति तथा उनका विभाजन मिलता है । यह एक विचित्र संयोग है कि संतों ने अधिकांश आदि ताल का प्रयोग किया है । त्यागराजु के कीर्तन भी अधिकांश इसी ताल में ~~तुलसी ने~~ हैं । तुलसी ने ताल का उल्लेख नहीं किया है पर उनके पदों में भी आदि ताल ही विशेष रूप से लक्षित की जा सकती है ।

6. राग और भाव संरचना :

6.1. रागों का वर्गीकरण :

रागों के वर्गीकरण की प्रवृत्ति भी मिलती है । वर्गीकरण के कई आधार हैं । कभी भाषा और देश के आधार पर जाति, गायन, ग्राम राग, भाषा राग, विभाषा राग आदि भेद किये जाते हैं ।[2] मध्यकाल में वर्गीकरण का आधार भाव हो गया । प्रतीकात्मक रूप से बीस पुरुष राग, चौबीस स्त्री राग और तेरह नपुंसक रागों का उल्लेख मिलता है ।[3] पुरुष रागों का

---

*

ताल	आवृत्ति
आदि	308
देशादि	104
रूपक	96
चापु	90
झप	29
त्रिपुट	23
त्रिशलघुवु	7
खंड लघुवु	1
एक तालम्	1
	659

2 भरत के नाट्य शास्त्र और मतंग के वृहद्देशी में यही ग्रहण किया गया है ।
3 नारद, संगीत मकरंद § 7वीं-9वीं शती § ।

संबंध रौद्र तथा वीर से है, स्त्री राग क शृंगार, हास्य तथा करूण के लिए उपयुक्त होते हैं और भयानक, बीभत्स और शांत भावों की अभिव्यक्ति नपुंसक रागों में होती है । वैसे वर्गीकरण के अन्य आधार भी मिलते है ।* किंतु भक्त कवियों ने भावगत वर्गीकरण को ही मुख्य रूप से ग्रहण किया । थाट के आधार पर जो वर्गीकरण हुआ है वह भी मान्य रहा । "राग तरंगिणी" में 12 थाटों का उल्लेख है - मेघ, गौरी, टोडी, कर्नाट, केदारा, ईमन, सारंग, भैरवी, धनाश्री, पूर्वी, मुखारी और दीपक । कहीं-कहीं 20 थाटों का उल्लेख भी है ।[2] संख्या में और भी वैविध्य मिलता है । थाटों का नामकरण उससे उत्पन्न मुख्य रागों के नाम से हुआ है । इन थाटों में से संभवतः तुलसी को केदारा अधिक प्रिय है और त्यागराजु को तोडी । विष्णु नारायण भातखंडे ने जिन 10 थाटों का उल्लेख किया है उनमें केदारा राग का उल्लेख नहीं है । किंतु तोडी का उल्लेख सभी प्रकार के वर्गीकरणों में मिलता है ।

6.2. भाव संरचना और संगीत :

काव्य के अभाव में संगीत काव्यार्थ बोध तथा रस निष्पत्ति में पूर्णतः सक्षम नहीं होता । वैसे संगीत भी अपनी निजी व्यवस्था के द्वारा भाव प्रकाशन और भाव-बोध तो कर सकता है, किंतु काव्य के भाषिक व्यवहार के बिना यह शक्ति अत्यंत सीमित ही रहती है । संगीत के निराकृत भावों को काव्य साकार बनाता है ।[3] एक प्रकार से ये दोनों कला व्यवस्थाएँ परस्पर पूरक हैं । भरत के अनुसार जो भावनायें काव्य की पकड से बाहर रह जाती हैं वे भी संगीत में अभिव्यक्त हो जाती हैं - "यस्तु काव्येननोक्त स्यात्तद्गीतेन प्रसाध्यतो" (भरत) । तात्पर्य यह है कि काव्य के भाव को संगीत उद्दीप्त करता है । इसी तत्व को ध्यान में रखकर त्यागराजु जैसे वाग्गेयकारों ने काव्य और संगीत के समन्वित कला रूप को अपनी साधना

---

* O.C. Gangooli, Rag and Raginies, Appendix.FGI.

2 रामामात्य, स्वर मेल कलानिधि

3 विष्णु दिगंबर पलोस्कर, काव्य संगीत अंक, पृ. 79

का अंग बनाया । इन्होंने अपने काव्य में संगीत के बाह्य उपकरणों को भी सम्मिलित किया और आंतरिक संगीत के द्वारा कीर्तन काव्य में प्राण प्रतिष्ठा की । इनकी नाद साधना में संगीत और काव्य दोनों की समन्विति है । * संगीत का लय तत्व ही कीर्तन काव्य में छंद के रूप में मिलता है ।[2] दोनों ही कलाओं में तुलसी और त्यागराजु ने सौंदर्य बोध का संक्रमण लोकोत्तर भाव भूमि में किया है । दोनों ही कवि यह विचार लेकर चले हैं कि काव्य और संगीत का प्राण संस्थान रस है । रागों का प्रयोग दोनों ने ही भाव प्रकाशन और रसाभिव्यक्ति के लिए किया है । दोनों ही कलाओं का और इन की सम्मिलित व्यवस्था का लक्ष्य आनंदोपलब्धि ही है । यह आनंद एक आध्यात्मिक मूल्य के रूप में दोनों के द्वारा स्वीकार किया गया है । दोनों ही इस साधना के द्वारा मधुमती अवस्था को प्राप्त करते हैं । इसीलिए नाद {संगीत} और शब्द {काव्य} को दोनों ही आलोच्य कवियों ने उपासना का सर्वोत्तम रूप माना है । इससे ईश्वर प्रसन्न होता है ।

दोनों आलोच्य कवि ही नहीं प्राय: सभी प्रमुख भक्त कवि संगीत की ओर आकर्षित हुए । इससे गेय काव्य की परंपरा सुदृढ़ हुई । भक्ति भाव और संगीत इस परंपरा में अभिन्न हो गये । भक्ति-भाव संगीत का संबल लेकर भक्त की भावात्मक तन्मयता का कारण बना । क्योंकि भक्तिमय गायन में भगवान का निवास है ।[3] उसको पाने का भी यही मार्ग है ।[4]

6.3. भाव सिद्धान्त :

रागों का भाव सिद्धान्त भी संगीत के ग्रंथों में विवेचित है । जहाँ तक भक्ति की भाव योजना का संबंध है, उसमें प्रमुखत: तीन भावों की बुनावट रहती है - शांत, करुण और श्रृंगार । अन्य भाव परिधिगत होते हैं ।

---

* डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दोनों की उत्पत्ति नाद से ही मानी है । साहित्य का मर्म, पृ.11

2 O.Goswami, The story of Indian music, P.160.

3 ~~अहोबल~~ अहोबल पंडित, संगीत पारिजात, पृ. 5. श्लोक.16

4 शार्ङ्गदेव. संगीत रत्नाकर. अध्याय तीन, श्लोक ।

इन्हीं भावों के उद्बोधक रागों का चयन भक्त कवियों ने किया है । भाव ही परिपक्व होकर रस वृक्ष का रूप धारण करते हैं । * भाव के बिना रस और रस के बिना भाव की स्थिति असंभव है ।[2] भक्ति काव्य और अध्यात्म विद्या में रस आनंद का वाचक शब्द है । अग्निपुराण ने रस स्वरूप परब्रह्म के सहजानंद की अभिव्यक्ति को ही रस कहा है ।[3]

भाव और रस, काव्य और संगीत दोनों में समान रूप से मान्य हैं । संगीत के तीनों रूपों में रस का निवास क रहता है ।[4] रसानुभूति की प्राप्ति संगीत सहज रूप से करा सकता है । भाव और राग परस्पर संबद्ध हैं ।[5] इसीलिए भरत ने संगीत के विषय में सभी रसों का विवेचन किया । यहाँ तक कि संगीत के सप्त स्वरों की भी रसात्मक प्रासंगिकता का कथन किया गया : हास्य, श्रृंगार = म तथा प ; वीर, रौद्र और अद्भुत = स तथा रे ; करूण = ग तथा नि ; बीभत्स तथा भयानक = ध ।[6] रस और संगीत स्वरों का संबंध पीछे भी स्वीकार किया जाता रहा ।[7] इस संबंध में थोडा बहुत अंतर भी प्राप्त होता है, किन्तु यह सिद्धान्त सर्व सम्मत है कि रस और स्वर के बीच सहज संबंध है । इसी प्रकार राग और रसों का संबंध जोडा जाता है ।

---

* नाट्य शास्त्र, भरत, 6/28

2 अग्निपुराण ﴾काव्य शास्त्रीय भाग﴿, सं. रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ.39

3 वही. तृतीय अध्याय,

4 श्रीकंठ, रस कौमुदी ﴾गायकवाड सिरीज़﴿, 7/2

5 Anita Begum, Sangeeth of India, P.50.

6 नाट्य शास्त्र, भरत, 19/38

7 शार्ङ्गदेव, संगीत रत्नाकर, 3/59; अहोबल पंडित, संगीत पारिजात, श्लोक. 94; नारद, संगीत मकरंद, श्लोक.47-48

6.4. लय सिद्धान्त और रस :

लय राग का एक समंजसकारी तत्व है । लय में भावावेग को उद्दीप्त करने की अपूर्व क्षमता रहती है । मात्रा की चाल या गति को लय कहते हैं । लय तीन प्रकार की होती है - विलंबित, मध्यलय तथा द्रुतलय । स्वरों के उच्चारण से ही लय उत्पन्न होती है । भाव के उद्दीपन और उसके परिपाक में लय का विशेष बाध रहता है । भाव की दृष्टि से विलंबित लय शांत और करूण के लिए उपयुक्त होती है । मध्य लय का प्रयोग हास्य और श्रृंगार के लिए होता है । वीर, रौद्र, अद्भूत तथा बीभत्स रसों के अनुकूल द्रुतलय उपयुक्त मानी जाती है । लय का संवाहक तत्व ताल है । ताल भी गंभीर और चंचल प्रकृति की हो सकती है । मध्य लय और ताल श्रृंगार और करूण रस के लिए अनुकूल होती है । तन्मयता के क्षणों में द्रुतलय का प्रवेश भी हो जाता है । भक्ति संगीत में विलंबित और मध्य लय विशेष रूप से गृहीत रही ।

6.5. भक्ति भाव संरचना :

6.5.1. लीला की भाव संरचना :

लीला तीन बिंदुओं के बीच में घटित भाव संदर्भ है - अवतरण, रक्षण और रंजन । अवतरण की भाव-भूमि आर्त के दैन्य और स्तुत्य की करूणा के द्वारा संरचित है । रक्षण की भूमिका में रिरन्सा है । रिरन्सा की प्रेरणा दैन्य और करूणा के से प्राप्त होती है और इसकी क्रियान्विति वीर भाव के साथ संघटित होती है । रंजक लीलाओं का मूल प्रेम है । भक्ति क्षेत्रीय विरह भी उतना ही मधुमय होता है जितना कि संयोग । यही लीला की भाव संरचना है ।

लीलामय की लीला के परिचायक "नाम" भी हो सकते हैं, "गुण" भी हो सकते हैं और 'लीला का व्यापार' भी हो सकता है । पहले दो प्रतीक जहां संज्ञा और विशेषण संरचना को स्फीत बनाते हैं वहां लीला-व्यापार वाक्य और अंतर्वाक्य संरचना में घटित होता है । इन तीनों से संबंधित पद-कीर्तन होते हैं जिनका गायन भक्त कवियों ने किया है । तुलसी और त्यागराजु की

भाव-प्रबलता तीनों ही संरचनाओं में निवास करती है, किंतु बल का अन्तर है । त्यागराजु के संकीर्तन जहाँ नाम और गुण के आस-पास घनीभूत होते चलते हैं वहाँ तुलसी के गीत वाक्य संरचना वाली लीला में फैलते हैं । इसके परिणामस्वरूप दोनों की आध्यात्मिक संदर्भ की भाव-राग-संरचना में भी अंतर आ जाता है ।

6.5.2. शृंगार और शांत के राग :

संगीत का संबंध भी मुख्यत: शृंगार रस से माना जाता है । इसकी एक विशेषता यह है कि यह लौकिक तथा दैवी संदर्भों को जोड़नेवाली वृत्ति है । संगीत का अंगीरस शृंगार ही स्वीकार किया जाता है । शृंगार का अनेक रागों से संबंध भी है ।

भक्ति-भावना में शृंगार और शांत प्रमुख रूप से संचारित रहते हैं । सोरठ, आसावरी, तोड़ी, धनाश्री, बसंत, मलार, गूजरी आदि शृंगार और शांत दोनों के ही वाहक हैं । वैसे ये दोनों रस परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं । किन्तु भक्ति के क्षेत्र में इनके बीच एक अनूठा सामंजस्य ही मिलता है । काकु जैसी शक्तियों के द्वारा शृंगार और शांत की अभिव्यक्ति एक ही राग से की जा सकती है । तुलसी की भाव-संरचना में यद्यपि शृंगार की उपेक्षा है पर शृंगार परक रागों का प्रयोग उन्होंने भी किया है । भक्त भगवान के साथ स्वयं विरह और मिलन का अनुभव करता रहता है । मिलन अद्वैत की स्थिति ही है । त्यागराजु की भाव-संरचना में यह प्रवृत्ति पायी जाती है ।

7. तुलसी और त्यागराजु के राग और भाव : संरचना :

संगीत में शब्द लय तथा भाव का अन्योन्याश्रित संबंध है । शास्त्र-विधान में रागों का भाव या रस के साथ संबंध निर्देश भी किया गया है ।*

---

* 'Raga means passions, emotions and feelings'. - Antiya Begum, Sangeeth of India, P.50.

इतना ही नहीं समय और स्थान का भी रागालापन के लिए निर्देश है और साथ-साथ पद संरचना विधान का भी । निम्न तालिका से राग, समय, भाव या रस के बीच का संबंध निर्देश स्पष्ट होता है ।*

	राग	थाट	समय	भाव या रस
1.	केदारा	कल्याण	रात का प्रथम प्रहर	करूण ।
2.	कल्याण	कल्याण	रात का प्रथम प्रहर	गंभीर तथा शांत, श्रृंगार तथा वीर ।
3.	सोरठ	खमाच	रात का दूसरा प्रहर	समस्त भाव ।
4.	गौरी	भैरव	सायंकाल	विप्रलंभ ।
5.	धनाश्री	भैरवी	प्रात:काल	शांत, भक्ति, श्रृंगार, वीर ।
6.	आसावरी	आसावरी	दिन का दूसरा प्रहर	विनय, संयोग तथा विप्रलंभ श्रृंगार ।
7.	तोडी	तोडी	दिन का दूसरा प्रहर	भक्ति, श्रृंगार, वीर ।

* दोनों कवियों के द्वारा प्रयुक्त यह समान रागों की तालिका निम्नलिखित संगीत के शास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर तैयार की गयी है :- संगीत रत्नाकर - शार्ङ्गदेव ; संगीत पारिजात - अहोबल पंडित ; संगीत दर्पण - दामोदर पंडित ; भातखंडे संगीत शास्त्र ; संगीत समय सार - आचार्य्य बृहस्पति ; राग-लक्षण - गीत मालिका - पंडित फिरोज फ्राम जी ; मारिफुन्नगमात - राजा नवाब अली; संगीत-विशारद - वसंत ।

8.	बिहार	बिलावल	रात्रि का दूसरा प्रहर	संयोग तथा वियोग श्रृंगार ।
9.	कान्हरा	खरहरप्रिय	रात का प्रथम प्रहर	विप्रलंभ ।
10.	भैरव	भैरव	प्रात:काल	शांत, भक्ति, वीर, रौद्र, श्रृंगार ।
11.	भैरवी	भैरवी	प्रातःकाल	शांत, भक्ति, श्रृंगार ।
12.	सारंग	काफी	दिन का दूसरा प्रहर	स्वभाव चंचलता
13.	जैतश्री	पूर्वी	सायंकाल	प्रबोधात्मक आदेश-संदर्भ
14.	नट	बिलावल	रात का दूसरा प्रहर	वीर तथा संयोग श्रृंगार ।
15.	ललित	मारवा	प्रात:काल	वीर तथा संयोग श्रृंगार ।
16.	मारू	-	सायंकाल	वीर तथा संयोग श्रृंगार ।
17.	बसंत	पूर्वी	प्रात:काल	श्रृंगार ।

7.1. समान राग : भाव विश्लेषण :

तुलसी और त्यागराजु के द्वारा प्रयुक्त राग और राग एवं समय सिद्धान्त के परिचय के उपरांत राग तथा भाव संरचना विधान का निर्देश भी आवश्यक है । भाव संरचना के विश्लेषण क में दोनों कवियों में प्राप्त समान रागों का ही तुलनात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत है ।

7.1.1. राग केदारा :

तुलसी ने राग केदारा में 108 पदों की रचना की है जबकि त्यागराजु के केवल तीन ही कीर्तन इस राग में मिलते हैं । दोनों ही कवियों ने इसको करूण भाव की अभिव्यक्ति में प्रयोग किया है । यह विप्रलंभ में भी प्रयुक्त हो सकता है ।

"विनयपत्रिका" में राग केदारा की आवृत्ति छः बार हुई है । इन सभी पदों में केन्द्रीय भाव करूणा का ही है । भक्त अपनी करूण दशा से राम को अवगत कराते हुए शरणागति की करूण प्रार्थना करता है ।* साथ ही करूण के साथ राम के गौरव की गंभीरता भी करूणा का सहवर्तिनी है ।[2] दो पदों में[3] तुलसी अपनी करूण कथा को राम तक पहुँचाने के लिए सीता से भी प्रार्थना करता है - "कबहुँक अंब अवसर पाई" । सीता के तत्व ने भक्त की करूणा को द्विगुणित कर दिया । गंभीरता और करूणा राग केदारा की भाव-संरचना के भाग हैं ।

"गीतावली" में राग केदारा की आवृत्ति सबसे अधिक है । इसका प्रसंगगत विवरण इस प्रकार है:

---

* वि. प. 212, 213

2 वही. 43. 44

3 वही. 41, 42

प्रसंग	कांड	आवृत्ति	भाव
1. बाल राम का चित्रण	बाल	18 पद	गभीर उल्लास
2. राम वन गमन	अयोध्या	30 पद	करूणा
3. मारीचवध	अरण्य	1 पद	करूणा तथा शरणागति
4. राम विरह, सीता की खोज	किष्किंधा	2 पद	करूणा मिश्रित विप्रलंभ
5. राम विरह, सीता का अशोक वन में विरह तथा विभीषण की शरणागति	सुंदर	30 पद	करूणा तथा विप्रलंभ एवं शरणागति
6. लक्ष्मण मूर्च्छा	लंका	7 पद	करूणा
7. राम का भव्य रूप वर्णन	उत्तर	4 पद	गभीर उल्लास
		कुल : 92 पद	

इसी प्रकार श्री कृष्ण गीतावली की प्रसंगगत तालिका यह है :-

प्रसंग	आवृत्ति	भाव
1. कृष्ण की बाल लीला	6 पद	गभीर उल्लास
2. गोपी विरह तथा भ्रमर गीत	4 पद	विप्रलंभ
	कुल : 10 पद	

इन तालिकाओं से प्रकट भाव-योजना पूर्णतः केदारा राग की भाव-योजना के अनुसार है । राम और कृष्ण के बाल रूप का दर्शन करके कवि मानस में

गभीर उल्लास संचरित होता है । साथ ही भक्त और भगवान के बीच प्रवहमान कारूण्य भी इसके द्वारा व्यक्त हुआ है । लीलागत विरह का वहन भी इस राग ने किया है ।

त्यागराजु ने इस राग में लीलागत विरह और गभीर उल्लास की अभिव्यक्ति नहीं की । उन्होंने भक्त के द्वारा करूणा निवेदन * और शरणागति के लिए भक्त की करूणा पुकार[2] को इस राग में गूंथा है । यह प्रवृत्ति "विनयपत्रिका" में प्रयुक्त राग केदार के समान ही है ।

7.1.2. राग कल्याण :

तुलसी के राग क्रम में दूसरा स्थान राग कल्याण का है । जिस प्रकार लीला संदर्भीय "गीतावली" तथा "श्रीकृष्णगीतावली" में राग केदारा का अधिक प्रयोग है उसी प्रकार राग कल्याण का अधिक प्रयोग विनय संदर्भीय "विनय पत्रिका" में है । "विनयपत्रिका" में इसकी आवृत्ति सत्तर है तथा 'गीतावली' में दस । आवृत्ति की दृष्टि से राग कल्याण त्यागराजु का भी प्रिय राग प्रतीत होता है - इसकी[3] आवृत्ति सत्ताईस है ।

शास्त्रीय दृष्टि से राग कल्याण के द्वारा गभीर भाव सुवहनीय होते हैं । रस की दृष्टि से इसका संबंध शांत, शृंगार तथा वीर से माना गया है । तुलसी और त्यागराजु दोनों की ही कल्याण रागाश्रित भाव स्फीति की प्रवृत्ति भी समान है ही है । दास्य,[4] विनय,[5] प्रबोध;[6]

---

* त्या.128 2 वही. 394, 469

3 कल्याण के साथ त्यागराजु ने यमुना कल्याण, पूरी कल्याण तथा अमीर जैसे उपभेदों का भी प्रयोग किया ।

4 वि.260, 261 ; त्या.96, 630

5 वि.223, 224, 225, 226 ; त्या.286

6 वि.235, 236, 237, 238 ; त्या. 374, 376

शरणागति की प्रार्थना और कामना * तथा अपनी करूण स्थिति का निवेदन[2] जैसी भाव स्थितियाँ दोनों कवियों ने राग कल्याण के स्वरों में उतारी है । यह भक्ति भावगत निर्वेद के अन्तर्गत समाविष्ट हो सकती है । दूसरा संदर्भ राम के रूप और उनके गुणों की अलौकिकता की प्रतीति के लिए भी इस राग को ग्रहण किया गया है ।

तुलसी ने राम की अलौकिकता, बाल संदर्भ,[3] विश्वामित्र का अनुसरण करने वाले अवतारी राम का संदर्भ,[4] वन पथ पर राम-लक्ष्मण और सीता के सहगमन संदर्भ,[5] मारीचवध संदर्भ[6] तथा उत्तर कांड के संदर्भ[7] में देखी है ।

त्यागराजु ने इन लीला संदर्भों को तो नहीं लिया है, किंतु त्यागराजु की भाँति राम के अवतारी रूप अथवा उनके ब्रह्मत्व की अनुभूति राग कल्याण के माध्यम से की है - राम के सर्वांतर्यामी रूप,[8] राम के मंगलमय रूप,[9] राम की सर्वोच्चता[10] आदि का ज्ञापन त्यागराजु ने इसी के माध्यम से किया है । भक्त-संदर्भीय शांत रस का स्तर दोनों ही कवियों में समान रूप से मिलता है ।[11]

7.1.3 राग सोरठ :

राग सोरठ का तुलसी के राग प्रयोग में तीसरा स्थान है और त्यागराजु में चौथा स्थान । तात्पर्य यह है कि यह राग दोनों को ही प्रिय है । इस राग की भावाभिव्यक्ति संबंधी संभावनाएँ सभी रागों से अधिक है । समस्त भावों को यह राग आत्मसाथ कर सकता है ।

---

* वि. 208 से 215 तक ; त्या.286, 339
2 वि. 245, 246 ; त्या.471, 3 गी.1/25, 4 वही.1/54
5 वही.2/18 6 वही.3/2, 3/4,
7 वही. 7/3, 7/4, 7/5, 7/6, 7/7,
8 त्या.81, 122 9 वही. 154, 472
10 वही. 158
11 वि.268; त्या. 281, 285

दोनों कवियों के जो पद इस राग में मिलते है उनमें भाव संदर्भ का वैविध्य लक्षित किया जा सकता है । तुलसी ने बालकाण्ड से लेकर उत्तर काण्ड तक के विभिन्न लीला संदर्भों में इस राग का व्यवहार किया है ।* 'श्रीकृष्णगीतावली' के भ्रमर गीत प्रसंग में भी इसका प्रयोग हुआ है ।[2] त्यागराजु ने तुलसी के समान विभिन्न लीला संदर्भों में इस राग का प्रयोग नहीं किया । "विनयपत्रिका" के तुलसी[3] और त्यागराजु[4] की स्थिति इस संदर्भ में समान है । जीव विरह, जीव की करूण स्थिति, साध्य का महत्व, स्तुति, करूण पुकार आदि को दोनों ही कवियों ने इस राग में समायोजित किया है ।

त्यागराजु ने भाव वैविध्य से पूर्ण इस राग का प्रयोग रामेतर विभिन्न देवताओं की स्तुतियों में भी किया है : कृष्ण,[5] शिव[6] तथा गणपति ।[7]

---

* बाल लीला (गी.1/8, 1/9), विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण चले जाने के बाद कौसल्या विरह (गी.1/99, 1/100, 1/101), अयोध्याकाण्ड का करूणा विगलित वन गमन प्रसंग (गी.2/4, 2/12, 2/51, 2/56, 2/85, 2/86), अरण्य काण्ड के मारीच वध (गी.3/3), सीताहरण (गी.3/7), जटायु वध प्रसंग (गी.3/8, 3/11), सुन्दर काण्ड का मुद्रिका प्रदान प्रसंग (गी.5/3, 5/4), लंका काण्ड का लक्ष्मण शक्ति का प्रसंग (गी.6/6, 6/7), कौसल्या विरह (गी.6/19), उत्तरकाण्ड का राज्याभिषेक प्रसंग (गी.7/1) तथा सीता वनवास प्रसंग (गी.7/25 से 7/33) इसी राग में है ।

2 कृ.गी.33, 34, 35 3 वि. 162 से 178 ;

4 त्या.21, 26, 75, 241, 317, 324, 348, 355, 417, 449, 484, 516.

5 वही. 24, 100, 102, 118, 118

6 वही. 241

7 वही.539 ।

7.1.4. राग गौरी :

इस राग के प्रयोग के संबंध में दोनों कवियों का वैषम्य ही प्रकट होता है । तुलसी की राग योजना में इसका स्थान चौथा है (आवृत्ति = 46) । त्यागराजु ने केवल एक कीर्तन इस राग में रचा है । शास्त्र इसको विप्रलंभ शृंगार से जोड कर देखते हैं ।

"गीतावली" के बालकांड और उत्तरकांड के लीला संदर्भों में इस राग का प्रयोग * विप्रलंभ से शून्य है । शेष सभी प्रसंगों में विरह की अभिव्यक्ति के लिए ही यह राग नियोजित हुआ है । विरह या विरह की संभावना से व्याकुल पात्र ये हैं : दशरथ,[2] कौसल्या,[3] भरत[4] तथा राम ।[5] "श्रीकृष्ण गीतावली" में भी कृष्ण के बाल संदर्भ में इस राग की भावगत प्रासंगिकता का अभाव है ।[6] किन्तु भ्रमरगीत प्रसंग में विरहिणी गोपियाँ इसी राग में संमूर्तित हैं ।[7]

त्यागराजु ने इन विरह विगलित प्रसंगों को प्राय: छोड ही दिया है । तुलसी ने "विनयपत्रिका" में इस राग के भाव सिद्धान्त का पूर्णत: परिपालन नहीं किया है । स्तुतियों और राम के महत्त्व के ज्ञापन में कुछ पद इस राग में रचित हैं ।[8] त्यागराजु ने जो एक पद इस राग में लिखा है, उसकी भाव संपदा "विनयपत्रिका" के तुलसी से तुलनीय है । इसमें भगवान के प्रति भक्त का भावातिरेक, नाम महिमा, आत्मनिवेदन, भक्त की व्याकुलता आदि वर्णित हैं ।[9]

---

* गी. 1/76, 1/77, 7/21

2 वही. 2/59 3 वही. 2/2, 2/3, 2/83, 2/84, 6/20

4 वही. 2/60 से 2/66 5 वही. 3/9, 3/10

6 कृ.गी. 9 से 13 7 वही. 56 से 59

8 वही. 19, 20 9 त्या. 201

7.1.5. राग धनाश्री :

वीर, शांत और श्रृंगार रसों से संबंधित राग धनाश्री की आवृत्ति तुलसी के गीत साहित्य में चवालीस है जबकि त्यागराजु ने इस राग में नौ कीर्तन रचे हैं । यह राग भक्ति भाव का भी वहन करने में सक्षम माना गया है ।

'गीतावली' और 'श्री कृष्ण गीतावली' के प्रसंगों की तालिका इस प्रकार है :-

प्रसंग	कांड	आवृत्ति	भाव
बाल राम के महत्त्व का कथन *	बाल	1 पद	महत्त्वानुभूति
विभीषण शरणागति[2]	सुंदर	2 पद	भक्ति भाव
राम की वन लीलाओं का महत्त्व[3]	लंका	1 पद	महत्त्वानुभूति
गोपी प्रसंग [4]	-	6 पद	गोपी प्रेम

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि महत्त्व बोध परक भक्ति भाव को इस राग में गाया गया है । यह भक्ति मूलक शांत के अंतर्गत समाविष्ट होता है ।

---

* गी. 1/16   2 वही. 5/45, 5/46

3 वही. 6/21   4 कृ.गी. 26 से 31

"विनय पत्रिका" में इसकी आवृत्ति कहीं अधिक है : चौंतीस पदों की रचना इसी राग में हुई है । त्यागराजु ने कोई भी लीला प्रसंग इस राग में प्रस्तुत नहीं किया है । त्यागराजु ने जिस भक्ति भाव* को इस राग के द्वारा प्रस्तुत किया है लगभग वही भक्ति भाव "विनयपत्रिका" के गीतों में[2] भी है । भाव संरचना में शांत और विनय ही मुख्य हैं ।[3] तुलसी ने पाँच स्तुतियाँ भी इस राग में संजोई है : शिव स्तुति,[4] हनुमान स्तुति,[5] लक्ष्मण स्तुति,[6] भरत स्तुति,[7] एवं शत्रुघ्न स्तुति ।[8] भाव की दृष्टि से स्तुतियाँ भी महत्वानुभूति से प्रेरित रहती हैं ।

7.1.6 राग आसावरी :

इस राग में तुलसी ने 31 और त्यागराजु ने 9 गीतों की रचना की है । विनय, श्रृंगार तथा करुण विप्रलंभ जैसी मार्मिक अनुभूतियाँ इस राग के स्वरों के साथ सामंजस्य रखती हैं ।

"गीतावली" में बाल लीला संबंधी अनुभूतियों को तुलसी ने इस राग को समर्पित किया है ।[9] इस राग में आबद्ध अन्य प्रसंग ये हैं : सीताराम और लक्ष्मण का वनगमन,[10] ग्रामवधुओं का वार्तालाप,[11] विभीषण का लंका त्याग,[12] वनवास की अवधि के अंत की सूचना[13] तथा उत्तरकांड में

---

* त्या. 116, 251, 301, 444, 538, 551, 563, 24 (अ)

2 वि. 91 से 105 3 वि. 85 से 90 ; त्या. 106

4 वि. 4,5,10,11,12 5 वही. 25 से 29

6 वही. 38 7 वही. 39 8 वही. 40

9 गी. 1/12 से 1/15, 1/22, 1/30 10 वही. 2/29

11 वही. 2/30, 2/31 12 वही. 5/23 से 5/27

13 वही. 6/17, 6/18.

राम के आगमन पर अयोध्या की शोभा ।* "श्रीकृष्णगीतावली" में भी बाल कृष्ण को ही मूर्तिमान किया गया है ।[2] द्रौपदी प्रसंग की करुणा भी इस राग में प्रवाहित हुई है ।[3]

त्यागराजु ने कोई लीला प्रसंग इस राग में स्वर बद्ध नहीं किया है । "विनयपत्रिका" में और "त्यागराज संकीर्तन" में समान रूप से दोनों ही कवियों ने राम से मिलने की उत्कट इच्छा जन्य विरह वेदना को इस राग के द्वारा व्यक्त किया है ।[4] विशेष रूप से तुलसी ने राम की वंदना[5] में और त्यागराजु ने कावेरी नदी की वंदना[6] में भी इस राग में एक एक गीत लिखा है ।तात्पर्य यह कि "विनयपत्रिका" के तुलसी और त्यागराजु परस्पर पूर्ण तुलनीय हैं । दोनों ने ही विप्रलंभ शृंगार का अभिनिवेश करके शास्त्रीय सिद्धान्त का परिपालन भी किया है ।

7.1.7 राग टोडी ~ तोडी :

राग टोडी में तुलसी ने 28 और त्यागराजु ने 31 पद रचे हैं । इससे सिद्ध होता है कि यह दोनों के ही समान रूप से प्रिय राग है । त्यागराजु ने तोडी के एक उपभेद देशिक तोडी का भी उल्लेख किया है । इस राग की भावात्मक संरचना में हर्ष, विप्रलंभ तथा भक्ति का समावेश रहता है । यही भक्त की मानसिकता की बुनावट है ।

"गीतावली" के बाललीला के हर्ष विह्वल क्षणों के साथ तुलसी ने इस राग की संगति बिठाई ।[7] बालकांड के सभी हर्ष के अवसरों पर इस राग का प्रयोग हुआ है । राम लक्ष्मण का जनकपुरी जाना और पुरवासियों का

---

* गी.7/20 2 कृ.गी. 3 से 6 3 वही. 60, 61

4 वि. 183 से 188 ; त्या. 85, 202, 234, 260, 412

5 वि. 62 6 त्या. 594

7 गी. 1/45, 1/46

हर्ष,* पुष्प वाटिका का प्रसंग,[2] धनुर्भंग और उससे हर्षित नर-नारी और सीता के द्वारा राम का वरण।[3] बाल काण्ड के पश्चात् की भूमि इस राग के लिए जैसे वर्जित भूमि ही हो। बस लंका विजय के पश्चात् राम का अयोध्या में पुनरागमन और नर-नारियों का हर्षातिरेक इस राग को एक बार फिर आकर्षित कर सका।[4]

"विनयपत्रिका" में दास्य भावापन्न भक्त का भगवान के प्रति आत्मनिवेदन इस राग के माध्यम से भी हुआ है।[5] त्यागराजु के राग तोडी के संकीर्तन मुख्य रूप से दिव्योपचार,[6] भक्ति और भक्त की महत्ता,[7] राम की स्तुति[8] तथा निर्वेद[9] को लिए हुए हैं। इस प्रकार इस राग की भाव-संरचना दोनों कवियों की भक्ति, संगीत विधि एवं काव्य विधि को जोड़ती है।

7.1.8 राग भैरव और भैरवी :

राग तोडी की भांति राग भैरव तथा भैरवी का क्षेत्र भी दोनों आलोच्य कवियों के राग-रुचि साम्य को प्रमाणित करता है। तुलसी ने इस राग में 21 और त्यागराजु ने 26 गीत गाये हैं। यह राग अनेक विरोधी भावों की संरचना में भी प्रयुक्त हो सकता है - भक्ति तथा विनय, शांत, श्रृंगार, वीर और रौद्र।

---

* गी, 1/61, 1/64, से 1/69 2 वही. 1/71, 1/72

3 गी. 1/73, 1/74, 1/84 से 1/88, 1/92, 1/94 से 1/96

4 वही. 6/23 5 वि. 78 से 82

6 त्या. 29, 165, 248, 440

7 वही. 87, 91, 110, 115, 167, 199, 236, 421, 510; 625

8 वही. 259

9 वही. 134, 208, 360, 485, 486

"विनयपत्रिका" में केवल एक बार काशी स्तुति * में इस राग को नियोजित करके तुलसी ने अपने विनय गीतों[2] का आरंभ इसी राग में किया है । विनय के साथ साध्य की महत्ता का भाव भी स्वाभाविक रूप से रहता है । "गीतावली" में जहाँ अयोध्या कांड के वनपथ पर बनवासी राम की छवियाँ इस राग में तुलसी ने अंकित कीं[3] वहाँ उत्तरकांड में भी राम के रूप को लेकर इस राग का प्रयोग किया है ।[4] राग भैरवी में भी भक्ति भाव को प्रकट किया गया है ।[5]

त्यागराजु के भैरव और भैरवी में बद्ध पद भक्ति भाव की भूमियों का ही स्पर्श करते हैं - भक्ति उपासना,[6] राम भक्ति के प्राप्त होने पर मिलनेवाली आनंदानुभूति,[7] राम से कृपा की माँग,[8] भक्त का भगवान को उलाहना देना,[9] राम के प्रति अनन्यता[10] आदि । त्यागराजु ने राग भैरवी के एक पद में श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ जलक्रीडा का भी वर्णन किया है ।[11] देवी ललिता की स्तुति[12] भी इस राग में की गयी है । सालग भैरवी,[13] आनंद भैरवी[14] और वसंत भैरवी[15] में भी विनय और भक्ति से संबंधित भाव ही निरूपित हैं । नट भैरवी में सीता राम की एकांत सेवा की भव्यता का निर्देश करके त्यागराजु ने इस दिव्य दर्शन से उत्पन्न होनेवाले निर्वेद भाव को प्रस्तुत किया है ।[16]

---

* वि. 22 2 वही. 65 से 73 3 गी. 2/27, 2/28

4 गी.7/12, 7/14, 7/15 5 वि. 198 से 203

6 त्या.50, 214, 261, 269, 547, 559, 585, 22{अ}

7 वही. 27, 84 8 वही. 51, 295 9 वही. 45

10 वही. 315, 416 11 वही. 212

12 वही. 487 13 वही. 103, 327

14 वही. 299, 450, 628 15 वही. 304, 29 {अ}

16 त्या. 166

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि त्यागराजु ने तुलसी की अपेक्षा इस राग में अधिक भाव वैविध्य प्रकट किया है, चाहे आवृत्तिगत समानता ही हो ।

7.1.9 अन्य समान राग :

राग	शास्त्रोक्त भाव	विशेष	
		तुलसी	त्यागराजु
विहाग	संयोग तथा वियोग	भक्ति,* दर्शन,[2] मनोहारपूर्ण उलाहना ।[3]	विप्रलंभ ।[4]
कान्हरा	विप्रलंभ	बालराम,[5] वीरराम के दर्शन का उल्लास[6] और भक्ति का प्रताप ।[7]	आनंदोल्लास,[8] कृपा याचना[9]

* वि. 107, 108, 109, 110, 113, 114, 115, 118, 121, 122, 123, 125 से 134

2 वही. 111, 116, 117, 120, 124

3 वही. 112 4. त्या. 321

5 गी. 1/23, 1/26, 1/32

6 वही. 1/55, 1/56, 1/60, 1/65, 1/103, 1/109, 1/110, 5/12, 6/16, 6/17

7 कृ.गी. 25, 50, 51 8 त्या. 290 9 वही. 341

सारंग	मन की चंचलता	विविध भाव,* मन की चंचलता[2] और स्तुति ।[3]	विभिन्न भाव और मन की चंचलता [4] और स्तुति ।[5]
जैतश्री	-	प्रबोधात्मक आदेश संदर्भ ।[6]	मन की उद्दण्डता और राम से प्रार्थना ।[7]
नट	वीर और संयोग शृंगार	निर्वेद-मन से राम के सम्मुख होने का अनुरोध,[8] आध्यात्मिक संयोग,[9] लीला-जन्य उल्लास,[10] गोपी भाव ।[11]	आध्यात्मिक संयोग - विजयी राम का ऐश्वर्य,[12] राम से अवतार लेने की प्रार्थना[13] ।

* गी. 1/47, 1/48, 1/52, 2/42, 2/46

2 वि. 155, 156, 157, 1/78, 1/79, 1/80, 1/93, 1/98

3 वि. 30 4 त्या. 92, 109, 133, 311, 409

5 वही. 98, 143 6 वि. 63, 83, 84, गी. 1/2, 1/4, 1/6, 1/29, 5/9, 5/17, 5/47, 6/22, 7/10

7 त्या. 399 8 वि. 58, 59, 60

9 गी. 1/40, 1/41, 1/42,

10 वही. 1/49, 1/50, 1/51, 1/53

11 कृ.गी. 20 12 त्या. 292

13 वही. 35

ललित	वीर तथा संयोग श्रृंगार	आध्यात्मिक संयोग का संकेत,* अनन्य और दास्य भक्ति,[2] राम रूप ।[3]	संबंधेच्छा,[4] सान्निध्य की अभिलाषा ।[5]
बसंत	श्रृंगार	संयोग-मंगलेच्छा-तादात्म्य,[6] बसंत ऋतुवर्णन और फाग ।[7]	आनंदानुभूति,[8] राम के ऐश्वर्य,[9] आचार का औचित्य,[10] तादात्म्य की इच्छा तथा आध्यात्मिक संयोग,[11] कृपायाचना[12] ।
मारू~ मलय मारुत	वीर और संयोग श्रृंगार	वीर रस पूर्ण चंडी स्तुति,[13] धनुर्भंग का वीर प्रसंग,[14] रावण के दरबार में वीर हनुमान,[15] वानर सेना का अभियान ।[16]	राम में लीन होने का आदेश ।[17]

* वि॰75,76, गी॰1/33,1/34, 1/43, 1/44, कृ॰गी॰2 2॰ वि॰77
3॰ गी॰7/2, 7/11, 4॰ त्या॰596 5॰ वही॰147 6॰ वि॰64, गी॰5/16
7॰ गी॰2/48, 2/49,9/22 8॰ त्या॰59 9॰ वही॰89 10॰ वही॰153
11॰ वही॰474 12॰ वही॰302 13॰ वि॰15 14॰ गी॰1/89, 1/90
15॰ गी॰5/13,1/14, 6/8, 6/9 16॰ वही॰5/22 17॰ त्या॰385

ऊपर के तुलनात्मक विवेचन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं -

§1§ दोनों ही कवियों के द्वारा चुने हुए समान राग शास्त्रीय दृष्टि से शांत, भक्ति, और श्रृंगार से संबंधित है ।

§2§ भाव सिद्धान्त का परिपालन एक सीमा तक ही दोनों कवियों ने किया है । वीर और रौद्र भावों को प्राय: छोड दिया गया है । तुलसी ने केवल राग मारू के प्रयोग में शास्त्रोक्त वीर का ध्यान रखा है ।

§3§ रागों की तुलना अधिकांशत: "विनयपत्रिका" के पदों और त्यागराजु के कीर्तनों के बीच करना ही उचित है । क्योंकि तुलसी द्वारा रचित "गीतावली" और "श्रीकृष्णगीतावली" के जैसे लीलामय पद त्यागराजु ने नहीं रचे या बहुत कम रचे ।

§4§ भाव की दृष्टि से दोनों ही कवियों ने समान रागों में प्राय: भक्त के भावों को स्थान दिया है । साध्य के भावों की ओर केवल संकेत किया गया है या उसको उद्दीप्त किया गया है ।

§5§ दोनों कवियों ने अधिकांश रूप से श्रृंगार के विप्रलंभ पक्ष को चुना है और सामान्य रूप से संयोग पक्ष को ।

§6§ शांत रस के अंतर्गत केवल मन प्रबोध आता है । संसार के मिथ्यात्व का संकेत अत्यल्प है ।

§7§ राग के भाव सिद्धान्त की समानता तो दोनों कवियों में कभी कभी नहीं मिलती ।

§8§ तुलसी का राग भाव क्षेत्र त्यागराजु की अपेक्षा इसलिए विस्तृत हो जाता है कि उन्होंने लीला गीतों की रचना अधिक की है ।

7.2. असमान राग :

यद्यपि अब असमान रागों की तुलना असमीचीन है, फिर भी गायक कवि की प्रवृत्ति और रुचि को परखने में अधिक सहायता इस क्षेत्र में भी मिल सकती है । जिस प्रकार राग बिलावल (आवृत्ति.59) तुलसी को प्रिय रहा है, उसी प्रकार राग शंकराभरणम् (आवृत्ति,26) त्यागराजु को । भाव निर्देशन की दृष्टि से श्रृंगार रस के संयोग तथा वियोग पक्षों एवं वीर रस से संबंधित यह राग तुलसी के तीनों गीत काव्यों * में प्रयुक्त हुआ है । भाव, थाट और समय निर्देशन की दृष्टि से इसी से संबंधित राग शंकराभरणम्[2] त्यागराजु के कीर्तनों में प्रमुख स्थान पाता है ।

भैरव थाट से संबंधित राग रामकली (आवृत्ति.30) तुलसी को प्रिय रहा है तो इसी थाट से संबंधित राग सावेरी (आवृत्ति.19) त्यागराजु को । इसी तरह अन्य रागों में भी थाट या भाव संबंधी साम्य देखे जा सकते हैं । यहाँ असमान रागों के क्षेत्र में दिशा निर्देशन ही समीचीन होगा ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि दोनों ही आलोच्य कवियों ने अपनी मनो आध्यात्मिक अनुभूतियों की प्रवणता और अभिव्यंजना के लिए काव्य और संगीत की समन्वित संरचना का उपयोग किया है । काव्य का शब्दार्थ व्यापार जिन भावों को वैखरी वाणी की संरचना में संमूर्तित करता है, उसको नाद की सूक्ष्म सरणियों को समर्पित करके अर्थ के वे सूक्ष्म और अतिरिक्त स्तर प्रकट किये जाते हैं जो शब्दार्थ की पकड से बाहर रह जाते हैं । आलोच्य कवियों का व्यक्तित्व, मानसिकता और साधना की जिस बहु आयामी संरचना में घटित हुए थे उसकी मात्र अभिव्यक्ति इनका लक्ष्य नहीं है । उनको नाद और शब्द की ऐसी संरचना की सृष्टि करनी है जो उनकी साधना की रचना के साथ एकाकार हो सके । भाव प्रवण व्यक्तित्व, भावात्मक काव्य

---

* वि. 30 पद, गी. 22 पद, कृ.गी. 7 पद ।

2 त्या. 26 पद ।

और भाव युक्त संगीत – ये सब एक सूत्र होकर आलोच्य कवियों के कृतित्व में प्रस्तुत हुए । इस भाव-संरचना की परिधि में साध्य को भी करूण आदि भावों से युक्त बनाकर समाविष्ट कर लिया जाता है । अंतत: एक ऐसा सर्वातिशय भावात्मक वातावरण रह जाता है जो पूर्ण और अखंड होता है । भावात्मक आग्रहों के अनुसार ही रागों का चुनाव किया जाता है और चुने हुए रागों में कवि अपने व्यक्तित्व को उतार कर उसे साध्य को समर्पित कर देते हैं । विविध भावात्मक स्थितियों में दोनों ही आलोच्य कवियों की मानसिकता अपनी पहचान संगीत की संरचना में पाती है और वह भाव सूत्र एक सूक्ष्म नाद से झंकृत होता है जिसमें साध्य और साधक बंधते हैं । भावात्मक लीला संगीत तुलसी का वैशिष्ट्य कहा जा सकता है जिसका स्पर्श मात्र त्यागराजु में लक्षित किया जा सकता है ।

...

सातवां अध्याय

काव्यरूप गत संरचना

काव्य रूपगत संरचना

०. प्रास्ताविक :

भक्ति-साधना का लक्ष्य है - अरूप को रूपायित करके भाव योग या रस योग की प्रक्रिया में लाना । अरूप को रूपायित करने के लिए भक्त जागतिक सामग्री, वस्तु संरचना और विविध समाज संदर्भीय मानवीय संरचनाओं का उपयोग करता है । अरूप के मानसिक रूप को अभिव्यंजना की विविध संरचनाओं में लाकर वह व्यक्तिगत अनुभव को स्फीत भी करता है और उस अनुभव को जाने-अनजाने सामाजिक भी बनाता है । अभिव्यंजना की बृहत्तम इकाई काव्य-रूप है जो वस्तु, रुचि और परिवेश के अनुसार विविध रूप धारण करता है । काव्य के इन्हीं रूपों में से एक गीत है । गीत काव्य रूप भारत के अधिकांश भक्त कवियों को ग्राह्य रहा । तुलसी और त्यागराजु ने इसी काव्य-रूप के माध्यम से अरूप या मानसिक वस्तु को रूपायित किया ।

तुलसी और त्यागराजु के साहित्य की वस्तु-संरचना ब्रह्म केन्द्रीय है । औपनिषदिक अरूप और निरपेक्ष ब्रह्म माया शक्ति से सक्रिय और सापेक्ष होता है । सक्रिय और सापेक्ष ब्रह्म लीला की संरचना में आकर आस्वाद्य बनता है । लीला की जो स्थिति उद्देश्य से निरपेक्ष होती है वही सृष्टि, रंजन या रक्षण परक भी होती है । भक्त कवियों के लिए लीला ही "वस्तु" है । इस लीला वस्तु के अनुरूप ही काव्य-रूप का ग्रहण किया जाता है । रक्षण परक लीला का कारण-कार्य अनुक्रम और उसकी देशकालगत क्रमिक गति स्पष्ट होते हैं । इसलिए रक्षण परक लीलाएँ प्रबंधात्मक काव्य-रूपों में संरचित होती हैं या हो सकती हैं । इसके विपरीत रंजन परक लीला कार्य-कारण के अनुक्रम और देश कालगत परिवेश से अपेक्षाकृत मुक्त होती है । फलत: यह प्रगीत, प्रगीतात्मक प्रसंग काव्य या गीत-नाट्य जैसे काव्य-रूपों में विलसित होती है । त्यागराजु ने शुद्ध रूप से इसी काव्य-रूप को संमूर्तन विधि के रूप में ग्रहण किया है । इस दृष्टि से तुलसी की स्थिति कुछ भिन्न है । तुलसी की मूल प्रवृत्ति प्रबंधात्मक है । क्योंकि उनकी दृष्टि मुख्यत: रक्षण परक लीलाओं पर केन्द्रित है । किंतु उनके व्यक्तित्व में रक्षण परक और रंजन परक लीलाओं के अभिप्रायों को लेकर एक द्वन्द्व दिखलाई पड़ता है । इसके फलस्वरूप काव्य-रूप गत द्वन्द्व भी लक्षित किया जा सकता है । उनकी "गीतावली" इस द्वन्द्व का प्रमाण है ।

साध्य परक गीतों के लीला-प्रसंग या लीला कथा को लेकर चलनेवाले प्रगीतात्मक रूपों के साथ-साथ एक और रूप मिलता है जिसमें प्रसंग या लीला कथा संज्ञा या विशेषण पदों में सिकुड़ कर एक सामासिक श्रृंखला बना देते हैं जिसमें कभी गुणों की और कभी लीला संकेतों की विवृत्ति होती चलती है । पारिभाषिक रूप से इस गीत-रूप को स्तोत्र नाम दिया जा सकता है । यह गीत-रूप दोनों ही कवियों में समान रूप से मिलता है ।

यह तो रही साध्यगत काव्य-रूप की बात । जब साधक अंतर्मुख होकर अपनी भाव-संरचना की पारमार्थिक परिणतियों में प्रवृत्त होता है तब गीत को

छोड़कर अन्य किसी काव्य-रूप के चयन का कोई विकल्प नहीं रह जाता । साधक के मन, चित्त, अहंकार, बुद्धि और आत्मा परस्पर संवादी स्थितियों में आते हैं तथा ये सभी समवेत रूप से साध्य के साथ संवादी स्थिति में भी प्रविष्ट होते हैं । इस स्थिति में न कथात्मक विस्तार ही रहता है और न प्रसंगात्मक स्फीति ही । शुद्ध भावात्मक स्थिति बनी रह जाती है । इस भावात्मक सघनता में प्रसंग या कथा सिकुड़कर उदाहरण संकेत बन सकते हैं जिनसे मन प्रबोध की भावात्मक स्थिति विश्वास की दृढ़ता प्राप्त करती है अथवा ये बिंदु साध्य के प्रति समर्पित होकर साध्य को उद्धार के लिए औक्तिक शैली में प्रेरित या उत्तेजित करते हैं । अविरल भाव प्रवाह में ये उदाहरण बुद्-बुद् जैसे ही होते हैं । यह साधक मूलक गीत-रूप तुलसी की "विनय पत्रिका" और त्यागराजु के अधिकांश गीतों से प्रमाणित होता है । यह काव्य-रूप दोनों आलोच्य कवियों में पूर्ण रूप से समान है । आगे इन प्रगीत रूपों की संरचना पर विस्तार से विचार किया गया है ।

1. आत्मपरक गीत :

1.1 स्तोत्र :

स्तोत्र या स्तुति गीत धात्वर्थ की दृष्टि से प्रशंसा गीत है । यह विश्वास है कि स्तुति से स्तुत्य संतुष्ट होता है - "स्तोत्र कश्यन तुष्टये" । वैदिक साहित्य का मुख्य भाग स्तुतियां ही हैं । उपनिषदों की स्तुतियां तत्व की व्याख्या और उसके निरूपण में लगीं । पौराणिक संरचना में स्तुति काव्य रूप बहुत स्फीत हुआ । ब्रह्म वैवर्त्त पुराण और श्रीमद्भागवत इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । पुराणेतर संस्कृत साहित्य में भी स्तोत्र की समृद्ध परंपरा मिलती है । भक्ति-आन्दोलन और उससे संबंधित आचार्यों ने विष्णु परक स्तोत्र ग्रंथ रचे । *

---

* रामानुजाचार्य और सभी परवर्ती आचार्यों ने स्तोत्र परंपरा को समृद्ध किया ।

1.1.1 उद्देश्य :

साध्य की संतुष्टि स्तोत्र का प्रमुख उद्देश्य है । इनके द्वारा आराध्य देव के प्रति कृतज्ञता भी ज्ञापित की जा सकती है । अरक्षा जन्य पीडा की पुकार और रक्षा की याचना भी स्तोत्र के उद्दिष्ट हैं । यह भी विश्वास किया जाता है कि स्तोत्र एक शक्तिशाली शब्द रचना है जिससे स्तुत्य देव भी शक्तिशाली बनता है । औपनिषदिक स्तुतियों में ब्रह्म की शरण में जाने की आकांक्षा भी है ।* श्रीमद्भागवत में स्तुति परक वैधी भक्ति से प्रेम लक्षणा भक्ति की प्राप्ति सम्भव बतलाई गयी है ।[2] इस प्रकार भक्ति-साधना और साहित्य में स्तुति का महत्वपूर्ण स्थान हो गया ।

1.1.2 श्री संप्रदाय में स्तुति या स्तोत्र-साहित्य :

सभी भक्ति-संप्रदायों में न्यूनाधिक रूप से स्तोत्र मिलते हैं । श्री वल्लभाचार्य जी[3] और विठ्ठल नाथ जी ने भी कृष्ण परक स्तोत्रों की रचना की थी । निंबार्काचार्य जी ने "श्री कृष्ण प्रातःस्मरण" आदि स्तोत्र लिखे । किन्तु अन्य संप्रदायों की अपेक्षा श्री संप्रदाय में स्तोत्र साहित्य की समृद्ध परंपरा मिलती है । श्री यामुनाचार्य जी ने जहाँ "चतुःश्लोकी" में लक्ष्मी का स्तवन किया है वहाँ "महापुरूष निर्णय" में विष्णु की स्तुति है । श्री वेदांत देशिकाचार्य का मन "भगवद्ध्यान सोपान" के द्वारा रंगनाथ के नख शिख सौंदर्य में विलीन हुआ । इन्होंने एक "दशावतार स्तोत्र" की रचना भी की । साथ ही "षोडसायुध स्तोत्र" में विष्णु के विविध आयुधों को स्तुत्य बनाया । "पादुका सहस्र" में रंगनाथ की पादुकाओं की महिमा का गायन है । त्यागराजु का मुख्य रूप से और तुलसी का अव्यक्त रूप से रामानुज संप्रदाय से संबंध रहा । इन दोनों कवियों ने स्तोत्र प्रधान

---

* श्वेताश्वतर 6.7 ; 6.18

2 श्रीमद्भागवत 7.9.50

3 द्रष्टव्य षोडस ग्रंथ, मधुर मोहन पुस्तकालय, काशी, द्वि. सं.

गीत-साहित्य तो नहीं लिखा । फिर भी श्री संप्रदाय की स्तोत्र परंपरा की गंध इन दोनों कवियों में अवश्य मिल जाती है । दोनों ही कवियों ने मुख्य रूप से राम संबंधी स्तोत्रों का गायन किया है और गौण रूप से अन्य देवताओं का ।

1.1.3. तुलसी और त्यागराजु की स्तुतियाँ :

1.1.31 वैष्णवेतर देवों की स्तुतियाँ :

दोनों ही कवियों के आराध्य और स्तुत्य देव राम ही हैं । किन्तु दोनों ने ही वैष्णवेतर देवों के प्रति भी कुछ स्तुतियाँ समर्पित की हैं । तुलसी ने "विनय पत्रिका" के आरंभ में विविध दिव्य शक्तियों की स्तुतियों की संरचना ही रखी है । त्यागराजु ने इस प्रकार की योजना तो नहीं की । किंतु बीच-बीच में विविध देवों की स्तुतियाँ अनुस्यूत अवश्य हैं । दोनों के समान रूप से स्तुत्य अवैष्णव देव शिव * और गणेश[2] हैं । शैव देवी पार्वती[3] त्यागराजु की स्तुतियों की आराध्या है । तुलसी ने पार्वती को कोई स्तुति समर्पित नहीं की । इसके अतिरिक्त शिव के पुत्र षडानन[4] की स्तुति भी त्यागराजु ने की है, तुलसी ने नहीं ।

तुलसी ने शैव पीठ काशी[5] की स्तुति भी की है, किंतु त्यागराजु ने काशी अथवा अन्य किसी प्रकार के पीठ की स्तुति नहीं की । उन्होंने अपने स्तोत्रों में भैरव[6] को भी स्थान दिया है । त्यागराजु ने इनके संबंध में कोई स्तुति नहीं लिखी । गंगा शिव और विष्णु को जोडनेवाली शक्ति है - वह विष्णु पदोद्भवा है और शिव ने अपने शिर पर उसे धारण किया है । काशी भी गंगा के तट पर स्थित है । तुलसी ने गंगा[7] स्तुतियाँ लिखी हैं । शैव शक्तियों के प्रति

---

* वि. 3 से 10 ; त्या. 48, 50, 98, 232, 242, 271, 530, 531, 621

2 वि. 1 ; त्या. 176, 539

3 त्या. 7, 21, 47, 69, 140, 172, 231, 257, 316, 366, 402, 487, 524, 536

4 वही. 310, 499

5 वि. 22 6 वही. 11 से 14

7 वही. 17 से 20

दोनों ही कवि समान रूप से आकृष्ट हैं, किन्तु स्तुत्य के चयन में विविधता है ।

तुलसी ने हरिहर की समन्वित भक्ति-भावना को एक "हरिशंकरी" * स्तुति में रूपायित किया है । त्यागराजु ने इस रचना का कोई गीत नहीं लिखा ।

शाक्त शक्तियों के प्रति भी दोनों ही कवि झुके हैं । शैव स्तुतियों की अपेक्षा दोनों ने ही शक्ति की स्तुति कम की है । तुलसी ने देवी को दो स्तुतियां[2] समर्पित की हैं, किन्तु त्यागराजु के पांच स्तुति गीतों[3] के केन्द्र में त्रिपुर सुंदरी है - देवी त्रिपुर सुंदरी ।

तुलसी ने सूर्य स्तुति[4] भी लिखी है ।

1.1.32. वैष्णव स्तुतियां :

मूल विष्णु की स्तुति वैष्णव संप्रदायों में अधिक लोक प्रिय नहीं थी । फिर भी दोनों आलोच्य कवियों ने विष्णु के रूप या विग्रहों की स्तुतियां रची हैं । तुलसी ने नारायण[5] को स्तुत्य बनाया है और बिंधु माधव[6] विग्रह की स्तुति भी की है । त्यागराजु के स्तुत्य कावेरी तटवर्ती श्रीरंगनाथ[7] और कांची में प्रतिष्ठित श्रीवरदराज[8] के विग्रह हैं । इस प्रकार विष्णु विग्रहों के संबंध में दोनों कवियों की समान प्रवृत्ति है ।

वैष्णव भक्ति और साहित्य में दशावतार की रूढ़ि अपेक्षाकृत लोक प्रिय रही । जयदेव की अष्टपदी की लोकप्रियता इसका प्रमाण है । तुलसी[9] और त्यागराजु[10] दोनों ने एक एक स्तुति दशावतार संरचना की प्रस्तुत की है ।

---

* वि. 49
2 वि. 15,16
3 त्या. 172, 334, 605, 606, 618
4 वि. 2
5 वि. 60,
6 वि. 61, 62, 63
7 त्या. 440, 519
8 वही. 497
9 वि. 52
10 त्या. 239

दोनों ही कवियों ने रामावतार * तथा कृष्णावतार[2] से संबंधित स्तुतियों की रचना की है । इनके अतिरिक्त तुलसी ने किसी अन्य अवतार को व्यक्तिगत रूप से स्तुत्य नहीं बनाया । किन्तु त्यागराजु ने नरसिंह[3] और श्री वेंकटेश्वर[4] (बालाजी) को भी कुछ स्तुतियाँ समर्पित की है । विष्णु के वाहन गरुड[5] की स्तुति त्यागराजु ने की है, तुलसी ने नहीं । विष्णु भक्त नारद[6] भी त्यागराजु के ही स्तुत्य हैं । त्यागराजु ने उस कावेरी[7] का भी महिमागान किया है जिसके तट पर श्री रंगनाथ विराजमान हैं । विष्णु प्रिया तुलसी[8] भी त्यागराजु की भावना में ही उतरी है ।

तुलसी ने कृष्ण लीला से संबंधित यमुना[9] की स्तुति की है ।

1.1.33. राम स्तुतियाँ :

राम दोनों कवियों के आराध्य हैं और स्तुत्य भी । दोनों ने ही अधि-संख्यक राम स्तुतियाँ ही लिखी हैं । राम की नित्य शक्ति स्वरूपा सीता[10] की स्तुतियाँ भी दोनों ही कवियों ने रची हैं । राम भक्त हनुमान[11] भी दोनों के स्तवन के आलंबन हैं । अंतर यह है कि तुलसी ने भरत,[12] लक्ष्मण[13] तथा शत्रुघ्न[14] की स्तुतियाँ भी लिखी हैं जबकि त्यागराजु की स्तवन प्रक्रिया में इनका प्रवेश नहीं हुआ । दूसरा अंतर यह है कि त्यागराजु ने राम के कुछ अंग विशेषों को भी स्तुत्य बनाया है जैसे - चरण,[15] कर[16] तथा नेत्र ।[17] तुलसी ने केवल प्रभु के कर-कमल[18] पर एक स्तुति गीत लिखा है । तीसरा अंतर यह है कि त्यागराजु ने राम के आयुध रामबाण[19] के संबंध में भी स्तुति की रचना की है । तुलसी के गीत-साहित्य में

---

* (क) वि.43, 44, 45, 46, 50, 51, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 64
(ख) त्या.1,4,48(अ), 60(अ), 61, 65,95,118,157,171,191,200,201, 202,203,237, 238,241,247,249,259,264,265,266,299, 303,305, 312,408,432, 503, 508, 628,
2. (क) कृ.गी.23 (ख) त्या.100
3. त्या.263, 544
4. वही.528
5. वही.522
6. वही.301, 543,559
7 वही.414, 594
8. वही.22,220, 243, 558,
9. वि.21
10. (क) वि.41,42 (ख) त्या.245,541,582
11. (क) वि.25 से 36 (ख) त्या.349
12. वि.39
13. वही.37,38
14. वही.40
15. त्या.~~5162~~ 516/1
16. वही.516/2
17. वही.516/4
18. वि.138
19. त्या.442, 516/3

ऐसी स्तुतियाँ अप्राप्य हैं । चौथा अन्तर यह है कि तुलसी ने राम से संबंधित चित्रकूट * का भी स्तवन किया है, त्यागराजु ने नहीं ।

1.1.4 स्तुति संरचना :

1.1.41. मानसिक संरचना :

स्तोत्र गीतों के संबंध में दोनों ही कवियों की मानसिक संरचना की तुलना की जा सकती है । मानसिक संरचना के केन्द्र में राम ही है । सीता को जोड़कर दोनों की मनःस्थिति द्विकेंद्रीय हो जाती है । इन दोनों केन्द्रों के साथ परम पार्षद हनुमान को जोड़कर एक भावात्मक त्रिकोण बनता है । इस त्रिकोण के बाहर दोनों कवियों की मानसिक संरचना कुछ अलग हो जाती है । त्यागराजु की मानसिकता सीधे दशावतार पर होती हुई विष्णु पर रम जाती है, किन्तु तुलसी दशावतार तक पहुँचने से पहले राम के अंश विस्तार रूप राम के भाइयों के प्रति समर्पित होती है । इसके पश्चात् दशावतार पर पहुँचती है । दशावतार संबंधी तुलसी की मानसिकता इतनी विस्तृत नहीं है जितनी त्यागराजु की । विष्णु के संबंध में भी दोनों की मानसिकता का अंतर मिलता है । तात्पर्य यह है कि तुलसी की चेतना का राम संबंधी केन्द्र अधिक घनीभूत है । शेष परिधियाँ औपचारिक हैं । इसके विपरीत त्यागराजु की मानसिक संरचना में दशावतार और विष्णु मात्र औपचारिक नहीं । इसका कारण यह है कि विष्णु की आराधना का जो परंपरा सूत्र त्यागराजु को सीधे प्राप्त होता है, वह तुलसी को प्राप्त नहीं होता ।

दोनों कवियों की मानसिक संरचना की बाहरी परिधि जो वैष्णवेतर देवों से निर्मित है प्रायः समान है । दोनों के लिए ही इष्टदेव तक पहुँचने के लिए यह परिधि एक द्वार बनाती है ।

1.1.42. वस्तु संरचना :

वस्तु संरचना के तीन आयाम हैं - स्तुतिकर्ता, उद्देश्य और स्तुत्य ।

---

* वि. 23, 24

§क§ स्तुति कर्ता :

स्तुति कर्ता की भावात्मक संरचना इस प्रकार की होती है - "स्तुत्य के सम्मुख विनत: शक्तिवान की तुलना में निर्बलता का अनुभव करने वाला : दीनता की प्रत्यक्ष या परोक्ष स्वीकृति और उसकी ओर स्तुत्य का ध्यान आकर्षित करके उसकी कृपा के उद्रेक का यत्न : स्तुत्य के साथ रागात्मक संबंध : स्तुत्य के प्रति विश्वास क से आपूरित : अरक्षा की भावना से पीड़ित : सुरक्षा की याचना ।"* यह भावात्मक रचना तुलसी और त्यागराजु दोनों की ही है । अविद्या माया, कलियुग की शक्ति और मन की चंचलता के कारण दोनों ही कवि निर्बलता का अनुभव करते हैं । दोनों ही कवि दास रूप में स्तुत्य के साथ संबंध स्थापित करते हैं और उससे याचना करते हैं । याचना की रचना में अंतर है । समान रूप से दोनों रक्षा की याचना करते हैं । त्यागराजु बार-बार "मामव"[2], "पाहि मा"[3]/ब्रोवु/=[4] "रक्षा करो" जैसे शब्दों से इस याचना को प्रकट करते हैं । तुलसी के स्तोत्रों में भी "पाहि"[5] शब्द इसी अर्थ में आया है । किन्तु अंतर यह है कि तुलसी रक्षा की याचना केवल राम से करते हैं । अन्य देवों से राम भक्ति की याचना करते हैं -

"माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहि राम सिय मानस मोरे ।"[6]

किन्तु त्यागराजु ने अन्य देवों से भी रक्षा और उनकी भक्ति की याचना की है । जहाँ वे सीता जी से कहते हैं - "देहि तव पद भक्तिम् वैदेही पतित पावनी मे सदा"[7] और राम से याचना करते हैं - " /रावे नी पद पंकज भक्ति नीवे भावजारिनुत/[8] अर्थात् "हे शिव से स्तुत्य §राम§ ! आओ, तुम्हारी पद-पंकज भक्ति दो" वहाँ शिव से भी कहते हैं - "देव श्री तपस्तीर्थ पुर निवास देहि भक्ति मधुना ।"[9] इस प्रकार तुलसी की भावना केन्द्राभिसारी (centripetal) तथा त्यागराजु की केन्द्रापसारी (centrifugal) है । मूल मानसिकता समान है ।

---

* डा. चन्द्रभान रावत, कृष्ण भक्ति साहित्य में प्रयुक्त काव्य रूप, पृ.38
2 त्या.408 3. वही.351 4. वही. 370 5. वि.54 6. वही.1 7.त्या.245
8 त्या.478 9 वही.244

(ख) उद्देश्य :

उद्देश्य की रचना दोनों ही कवियों ने तर्क मूलक नहीं भाव मूलक की है, यद्यपि नैतिकता का तर्क कहीं-कहीं दिखलाई पड जाता है । उद्देश्य एक ही है - असाधु शक्तियों से सुरक्षा । अंतर इतना है कि त्यागराजु ने सुरक्षा की सीधे-सीधे याचना की है जबकि तुलसी ने भक्ति और सुरक्षा को अधिकांशत: पर्याय मानकर भक्ति पर बल अधिक दिया है । उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दोनों ही कवियों को राम की कृपा में अधिक विश्वास है, अपने कर्तृत्व में कम । उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दोनों ही कवि प्रपत्ति या शरणागति की प्रार्थना करते हैं ।*

(ग) स्तुत्य :

स्तुति के द्वारा स्तुति कर्ता स्तुत्य की शक्ति को उत्तेजित करके अपने अनुकूल करना चाहता है । यह भाग स्तोत्र का सर्व प्रमुख भाग होता है । इसमें स्तुत्य की उदारता, उदात्तता, सुंदरता, दयालुता जैसे गुणों का कथन रहता है । इन तत्वों पर साध्य की रचना के साथ विस्तार से विचार किया जा चुका है । तुलसी त्यागराजु की अपेक्षा स्तुत्य की दयालुता पर अधिक बल देते हैं । सामान्य रूप से स्तुत्य की संरचना दोनों में एक सी ही है ।

1.1.43 स्तोत्र की भाषा :

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही लोक भाषा को अपनी काव्य-रचना के लिए अपनाया है । किंतु दोनों की भाषा का न्यूनाधिक संबंध संस्कृत पदावली से भी है । स्तोत्र की भाषा में संस्कृत भाषा के शब्द सब से अधिक प्रयुक्त होते हैं । एक अचेतन विश्वास यह प्रतीत होता है कि संस्कृत की सशक्त पदावली के प्रयोग से साधक और साध्य का संबंध अधिक दृढ़ होता है । साथ ही इस पदावली से एक शक्ति भी स्फूर्त होती है जिस का तादात्म्य मंत्र शक्ति से है । कवियों को यह चेतना बनी रहती है कि स्तुत्य की ज्ञानरूप सत्ता सर्वोपरि है । इस ज्ञान रूप ब्रह्म से संबंधित

---

* (क) तुलसी : वि. 187 ; (ख) त्यागराजु : की. 430.

औपनिषदिक शब्दावली प्रयुक्त होने लगती है । वैसे तो सभी स्तुतियों में संस्कृताभास रहता है । किंतु कुछ स्तुतियों में इस प्रकार की शब्दावली बहुत अधिक मिलती है । कुछ स्तुतियों को देख कर यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि यह लोक भाषा की रचना है । क्रिया का प्राय: अभाव रहता है जिसमें भाषा का रूप स्पष्ट होता है । औपनिषदिक दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग निम्न लिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है -

तुलसीदास :

अनघ, अद्वैत, अनवद्य, अव्यक्त, अज, अमित,
अविकार आनंदसिंधो ।
अचल, अनिकेत, अविरल, अनामय, अनारंभ,
अंभोदनादहन - बंधो ।। *

त्यागराजु :

गतमोहाश्रितपालाद्भुत सीतारमण ।
भवसारसभव मानस भवनामरविनुत ।।[2]

(क) स्तोत्र भाषा के विभाग :

स्तोत्र के चार विभाग माने जाते हैं : नमस्कार, ध्यान, आशीर्वाद और प्रशस्ति ।[3] नमस्कार में वंदनकर्ता और वंदनीय के बीच उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष की भाषिक संरचना रहती है । नमस्कार वाचक शब्द "नमोनमो" या "वंदौ" का प्रयोग होता है । स्तुत्य का निर्देश नाम या विशेषण में रहता है ।

---

* वि. 56/8 2 त्या. 171/1

3 डा. चन्द्रभान रावत : कृष्ण भक्ति साहित्य में प्रयुक्त काव्य रूप, पृ.39

वंदना शब्द	संबोधन शब्द
॥क॥ तुलसी : नौमि	नारायन, नर, करूनायन, ध्यान परायन, ग्यान मूलम् । *
त्यागराजु : नमोनमो	राघवाय अनिश नमोनमो राघवाय । [2]
॥ख॥ तुलसी : वंदौ	रघुपति करुना निधान । जाते छूटे भव-भेद-ग्यान । [3]
त्यागराजु : वंदनमु	रघुनंदन सेतुबंधन । [4]

ध्यान में साध्य का विशेषणमय शब्द चित्र रहता है । यह प्राय: रूप परक या गुण और क्रियापरक होता है । कोई एक लीलाखंड भी ध्यानस्थ किया जा सकता है । तुलसी ने बिंधु माधव का रूपचित्र इस प्रकार उतारा है :-

" इहै परमफलु परम बडाई ।
नख शिख रूचिर बिंधु माधव-छबि निरखहिं नयन अघाई। "[5]

त्यागराजु ने राम का यह रूप चित्र ध्यानस्थ किया है :-

" कनकनरूचिरा निन्नु कनकवसन । "[6]

आशीर्वाद में तुलसी [7] और त्यागराजु [8] दोनों ने "जय" और "जयति" जैसे शब्दों का प्रयोग किया है ।

---

* वि. 60   2 त्या. 259
3 वि. 64   4 त्या. 496   5 वि. 62
6 त्या.4 " हे कनकवसन आप को निरंतर देखने की अभिलाषा है । "
7 वि.34 " जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन "
8 त्या.200 " जय जय सीताराम जय जय रघुराम । "

स्तोत्र का अंतिम भाग प्रशस्ति होता है । यह मुख्यत: क्रियामूलक शब्दों से रचित होता है । क्रिया से व्युत्पन्न विशेषण मुख्यत: रचना के आधार होते हैं । दोनों ही आलोच्य कवियों ने ही इस प्रकार के शब्द विधान को इस भाग का उपजीव्य माना है । *

1.1.44 स्तोत्र की शैली संरचना :

शैली की दृष्टि से तुलसी और त्यागराजु के स्तोत्रों के दो भाग किये जा सकते हैं - (1) आरंभिक भाग (ध्यान + प्रशस्ति) तथा (2) अंतिम भाग (आशीर्वाद + याचना) ।

आरंभिक भाग की शैली स्फोटमय होती है । शैली में विशेषणों का बाहुल्य रहता है और क्रिया का प्राय: अभाव । विशेषण शब्द क्रिया से भी व्युत्पन्न हो सकते हैं [2] और बिंबपरक [3] भी । अलंकृत सूची बद्ध परिगणन भी रह सकता है जिस में अंगों, [4] उपकरणों [5] आदि का उल्लेख मात्र रहता है । सामासिकता इस शैली की प्रमुख विशेषता है जिससे मंत्र शक्ति स्पूर्त मानी जाती है । उदाहरण के लिए तुलसी की हनुमान स्तुति की दो पंक्तियाँ ली जा सकती हैं :-

जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत बिधु, बिबुध-कुल-
कैरवानंदकारी ।
केसरी-चारु-लोचन- चकोरक-सुखद, लोकगन- सोक
संतापहारी ।।[6]

त्यागराजु ने भी इस शैली में विशेष कौशल दिखलाया है । उदाहरण के लिए निम्न-लिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

---

* (क) तुलसी : वि.60 , कृमी.23 (ख) त्यागराजु : की. 506

2 (क) वि.56/1 (ख) त्या.294/1   3 (क) वि.63/1 (ख) त्या.629/1

4 (क) वि.64/2 (ख) त्या.411/4   5 (क) वि.56/7 (ख) त्या.380/8

6 वि.25/1

स्वरजित घनरव माधुर्ये
सुरवैरिनिचयतमस्सूर्ये निरूपमशौर्ये ।
विकसित सरसीरुह नेत्रे
मकशकोटि सन्निभगात्रे कौशिक मित्रे । *

सामासिक शैली के साथ प्रासयोजना भी स्तोत्र की प्राण शक्ति है । प्रास योजना मृदुल और उद्धत दोनों प्रकार की हो सकती है । प्रास योजना के प्रति दोनों कवियों का झुकाव है । तुलसी का यह उदाहरण द्रष्टव्य है -

भूरि-भूषण, भानुमंत, भगवन्त, भव-भंजनाभयद,
भुवनेस भारी ।
भावनातीत, भववंद्य, भव भक्तहित, भूमि-उद्धरन,
भूधरन-धारी ।।[2]

त्यागराजु का निम्नांकित उदाहरण भी द्रष्टव्य है -

चारुनेत्र श्रीकलत्र श्रीरम्यगात्र
तारकनामसुचरित्र दशरथ पुत्र ।[3]

जहाँ स्तुति का आरंभिक भाग शब्द संरचना और उसकी प्रासमय सामासिकता लिए रहता है वहाँ स्तुति के अंतिम भाग में मृदु सरल शब्दों का प्रयोग हो जाता है और शैली कुछ वाक्यमय हो जाती है । ज्ञानपरक चेतना की अपेक्षा रागात्मकता अधिक हो जाती है । साध्य की कृपालुता पर ध्यान केंद्रित हो जाता है और विश्वास पर आधारित याचना की भावना जग जाती है । निम्न उदाहरणों से स्तुति के अंतिम भाग की संरचना स्पष्ट हो जाती है -

तुलसी : दास तुलसी चरन सरन संसय-हरन देहि,
अवलंब वैदेहि भर्त्ता ।[4]

---

* त्या. 411/3,4 2 वि. 56/2

3 त्या. 604/3 ; 4 वि. 44/9

त्यागराजु : मुनु दासुल ब्रोचिन देल्ल जाल
विनि नी चरणाश्रितु डैतनय्य
कनिकरंबुन ना कभय मिव्वुमय्य
वनजलोचन श्री त्यागराजविनुत । *

1.2. विनयगीत :

संरचना की दृष्टि से यदि मंत्र का विकास स्तोत्र में हुआ तो स्तोत्र का विकास विनयगीत में । स्तुति की संरचना शक्ति केन्द्रित थी तो विनयगीत की संरचना भाव केन्द्रित है । जहाँ स्तुत्य स्तोत्र में शक्तिवान होता है वहाँ विनय केन्द्रित देव राग से उद्वेलित होता है §कृपानिधान§ या परम रूपवान और गुणवान होता है । तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही मुख्यत: विनय की संरचना को अपनाया है ।

विनयगीत की भाव संरचना को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है : "विनय में §1§ इष्ट की महिमा को स्वीकृत करके उसके सम्मुख विनत होना, §2§ अपने मनोविकारों और दुष्प्रवृत्तियों से प्रेरित-संचालित जीवन क्रम की सलज्ज और पश्चाताप पूर्वक स्वीकृति, §3§ आत्म संयम पूर्ण आदर्श आचरण की प्राप्ति की कामना, §4§ मन प्रबोध और अज्ञान से ज्ञान की ओर चलने की उत्कंठा, §5§ मनोविकारों से मुक्ति और आदर्श जीवन की प्राप्ति के लिए भगवान की कृपा को साधन मानना तथा §6§ भगवान से कृपा पूर्वक यह कार्य करने के लिए अनुनय - ये सभी अर्थ-छायाएँ मिलती हैं ।"[2] इस संरचना को तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही अपनाया है । नीचे इस के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

---

* " हे वनजलोचन । हे श्री त्यागराज विनुत । भक्तों पर आप की कृपा के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुनकर मैं तेरे चरणाश्रित हुआ हूँ । दया करके मुझे अभयदान दे दो ।" - त्या.138/3

2 डा. चन्द्रभान रावत, कृष्ण भक्ति साहित्य में प्रयुक्त काव्य रूप, पृ.58-59

§1§ इष्ट की महिमा :

तुलसी : देव, दूसरो कौन दीन को दयालु ।
सीलनिधान सुजान - सिरोमनि, सरनागत-प्रिय प्रनत-पालु ।।*

त्यागराजु : नीवु लेक ये तनुवुलु निरतमुगा नडुचुनु ?
नीवु लेक ये तरुवुलु निक्कमुगा मोलचुनु ?
नीवु लेक ये वानलु नित्यमुगा गुरियुनु ?
नीवु लेक त्यागराजु नीगुणमुलेटुल पाडुनु ?[2]

§2§ आत्म स्वीकृति :

तुलसी : मोहि मूढ मन बहुत बिगोयो ।
याके लिए सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुख रोयो ।।
. . . .
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब, मै निज दोष कछू नहि गोयो ।
डासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ । नींद भर सोयो ।।[3]

त्यागराजु : निन्ननवलसिन देमि राम नन्ननवले गाक
कन्न तण्ड्रि नीकन्न वेल्पु लेव
रुन्नारुरा यापन्न रक्षक ने ।। नि ।।[4]

§3§ आदर्श आचरण की कामना :

तुलसी : कबहुँक हौं यह रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ।।

---

* वि. 154

2 " आपके सहारे के बिना कोई शरीर कैसे चल सकता है? आपके बिना कोई भी पौधा कैसे उग सकता है? आपके बिना कहीं भी वर्षा कैसे हो सकती है? आपके बिना यह त्यागराजु आपका गुण गान कैसे कर सकता है? " - त्या. 280

3 वि. 245

4 "हे आर्तरक्षक और प्रिय पिता तुमसे बढ़कर महान देवता कौन है । ऐसे तुम्हें क्यों दोष दूं? दोष तो मुझे ही देना है ।" - त्या.286

- -

परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भक्ति लहौगो ।।*

त्यागराजु : भक्तुनि चारित्रमु विनवे मनसा सीताराम ।।भ।।
आसक्ति लेक ता गोरूचु जीवन्मुक्तुडे यानदमु नोंदु ।।भ।।
जप तपमुलु ता जेसिति ननादु अदिगाक मरि
कपटात्मुडु मनमै बल्करादु ।।[2]

§4§ मन प्रबोध :

तुलसी : सुन मन मूढ़ । सिखावन मेरो ।
हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ । यह समुझ सबेरो ।।
. . . .
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, स्रुति संदेहु निबेरो ।
तुलसिदास सब आस छाँडि करि, होहु राम को चेरो ।।[3]

त्यागराजु : ओकमाट ओक बाणमु ओक पत्नी व्रतुडे मनसा ।
ओक चित्तमु गलवाडे ओक नाडुनु मरवकवे ।।[4]

§5§ भगवान से कृपा की याचना :

तुलसी : ऐसे राम दीन-हितकारी ।
अतिकोमल करूनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी ।।

---

* वि. 172

2 "भक्त का चरित्र सुनो । उसे किसी भी विषय के प्रति आसक्ति न दिखाते हुए जीवन्मुक्त रहकर आनंद का अनुभव करना चाहिए । जप एवं तपस्या करते हुए भी अहंभाव को प्रकट करते हुए उसकी बड़ाई नहीं करनी चाहिए । स्वयं कपटी बनकर नहीं बोलना चाहिए ।" - त्या.378

3 वि.87

4 "राम का एक ही बाण है §जिससे वह महान् से महान् कार्य कर सकता है § । हे मन । वह एक पत्नीव्रत है । उसका एक ही चित्त है अर्थात् वह जो कार्य करता है उसे शुद्ध मन से करता है । ऐसे राम को तुम मत भूलो ।" - त्या.124

- -

कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी ।
कलिमल-ग्रसित दास तुलसी पर, काहे कृपा बिसारी ।।*

त्यागराजु : मरि मरि निन्ने मोरलिड नी मनसुन दयरादु ।
करि मोर विनि सरगुन चन नीकु गारणमेमि सर्वांतर्यामि ।[2]

विनय की दार्शनिक संरचना भी है । तुलसी और त्यागराजु का ब्रह्म सगुण है । वह आनंद स्वरूप भी है और ज्ञान स्वरूप भी ।[3] भगवान के लीलात्मक रसास्वादन के लिए दोनों ने ही कैंकर्य अनुभूति को प्रधान माना है । इसकी प्राप्ति के लिए कैंकर्य अनुभूति में भगवान की कृपा का प्रधान स्थान है । भगवान के प्रति भक्त की प्रीति और भक्त के प्रति भगवान की भी प्रीति मिलकर ही प्रपत्ति की भूमिका बनाती हैं । भक्ति ज्ञान रूपा भी है ध्यान रूपा भी । ज्ञान रूप से वह भक्त को जीव और ब्रह्म की स्थितियों का बोध कराती है और ध्यान में इष्ट को बिंबित करती है । स्मृति रूप ध्यान में भगवान का सामीप्य लाभ होता है । विनय दर्शन में आराध्य की महत्ता और उसकी स्वीकृति का प्रमुख स्थान है । यही सेवक-सेव्य भाव की दार्शनिक पृष्ठभूमि है । रसिक भक्त को शरणागति में ही शान्ति मिलती है ।[4] कृपा की प्राप्ति में लक्ष्मी या सीता का योगदान भी महत्वपूर्ण होता है । तुलसी ने "विनयपत्रिका" के स्तुति भाग में लिखा है -

"कबहुँक अंब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ ।।"[5]

त्यागराजु ने भी सीता की स्तुति करते हुए कहा है -

---

* वि. 166

2 " बार बार मैं तुम्हारी विनती करता हूँ तो भी तुम्हें दया नहीं आती । हे सर्वांतर्यामी । गजराज की पुकार सुनते ही रक्षार्थ जो दौडे पडे उसका क्या कारण है? " - त्या.396

3 रामानुजाचार्य, वेदार्थ संग्रह, पृ. 3

4 रामानुजाचार्य ने "शरणागत गद्य" में इसी तत्व का प्रतिपादन किया है ।

5 वि. 41

"देहि तव पद भक्तिम् वैदेही पतित पावनी मैं सदा

. . . .

शरणागतपालने - शतमुखमददमने

तरुणारुणाब्जनयने - त्यागराज हृत्सदने ।।" *

कृपा ~~xxx~~ इष्ट का अहेतुक उपहार है । विनय की यही दार्शनिक रचना है ।

विनयगीतों की भाषिक संरचना में सबसे प्रमुख स्थान भगवान के भक्त-वत्सलता-परक और उद्धार की क्रिया से संबंधित नाम और विशेषणों के प्रयोग की है । महिमामय नाम इस प्रकार के हैं - "जगदीश", "जगतपिता", "प्रभु", "स्वामी" आदि । विष्णु परक नाम इस प्रकार के हैं - "गोविंद," "हरि", "विश्वंभर" आदि । कृपापरक नाम इस प्रकार है - "कृपानिधि", "करुणासिंधु", "दीनबंधु", "भक्तवत्सल" आदि । गुणपरक विशेषणों में प्राय: इष्ट की उदारता की अभिव्यक्ति रहती है । क्रिया परक विशेषण इस प्रकार के हैं - "वरद", "भक्त उधारण", "सेवक सुखकारी", "आरतिहरन" आदि । दीन या पतित भक्त और भगवान का संबंध इस प्रकार के विशेषणों से स्पष्ट होता है - "पतित पावन", "दीन उद्धरन", "अशरण शरण", "दीनबंधु" आदि । इस प्रकार विनय गीत में भक्त और भगवान का रागात्मक संबंध ~~xx~~ ज्ञापित किया जाता है । इन सम्बन्धों को पुष्ट करने के लिए विनय गीतों में उदाहरणों की योजना भी रहती है । प्रमुख रूप से द्रौपदी, गज, प्ह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, शबरी, जटायु आदि के नाम आये हैं । साथ ही भगवान की क्रियाओं को पुष्ट करने के लिए दोनों ही कवियों ने श्रुति, पुराण और लोक के साक्ष्य की चर्चा की है । अपनी हीनता को प्रकट करने के लिए विनय गीतों में दोनों आलोच्य भक्तों ने माया और अविद्या के संदर्भों को भी अनुस्यूत किया है । इन सभी पर यथा स्थान विस्तृत रूप से विचार किया गया है ।

---

* त्या॰ 245

1.3. संकीर्तन पद :

त्यागराजु के सभी पद गीतों को संकीर्तन के नाम से जाना जाता है । यह तो नहीं कहा जा सकता कि तुलसी के पद गीत संकीर्तन के रूप में प्रसिद्ध थे, किन्तु यह अवश्य है कि सूर आदि कृष्ण भक्त कवियों के पदों को संकीर्तन ही कहा जाता है । चाहे तुलसी के विनयगीत संकीर्तन के रूप में प्रसिद्ध न हों, फिर भी उनकी प्रकृति संकीर्तन पद के समान ही है ।

कीर्तन शब्द (कृत् + ल्युट्) की पद्धति से व्युत्पन्न हुआ है ।* इसका अर्थ है – कथन, वर्णन । साथ ही यह भी अर्थ विकसित हुआ कि कथन किसी की कीर्ति संबंधी ही होता है । इसके अर्थ विकास के संबंध में एक मत इस प्रकार है : "ईश्वर या उसके अवतारों के लिए भजन आदि कहने अथवा उनके गुणों या यश का वर्णन करने के प्रसंग में "कीर्तन शब्द" के "कथन", "वर्णन" अर्थ में लगातार प्रयुक्त होते रहने से "कीर्तन" शब्द में ईश्वर या उसके अवतारों से संबंध भजनों का भाव संक्रान्त हो गया और कालान्तर में "कीर्तन" शब्द या उसके अवतारों के संबंध में गाते-बजाते हुए भजन और कथा आदि कहने को लक्षित करने लगा ।"[2] श्रीमद्भागवत में भी इस रूप में इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है ।[3] भक्ति के प्रकारों में भी स्मरण, श्रवण के साथ-साथ कीर्तन का विधान मिलता है । अंततः कीर्तन शब्द इसी रूप में रूढ़ हो गया । इस काव्य रूप का संबंध इष्ट के नाम, गुण, रूप तथा लीला से है । जहाँ तुलसीदास ने "विनयपत्रिका" में नाम, रूप और गुण परक कीर्तन पदों की रचना की वहाँ "गीतावली" तथा "कृष्णगीतावली" में लीला कीर्तन का विशदीकरण किया । त्यागराजु के संकीर्तनों में नाम, रूप, गुण से संबंधित कीर्तनों का प्राधान्य है । लीला कीर्तन की प्रवृत्ति शिथिल है ।

यदि परंपरा की दृष्टि से देखा जाय तो नाम संकीर्तन निर्गुणियों के "जप" का रूपान्तरण ही है । लीला संकीर्तन दशावतार चरित्र से संबद्ध है ।

---

* मोनियर विलियम्स, संस्कृत-~~हिन्दी~~ इंगलिश डिक्शनरी ।

2 डा. केशवराम पाल, हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ परिवर्तन, पृ.338

3 ~~7~~ भागवत 7.5.23

वैष्णव मन्दिरों में संकीर्तन के दोनों ही रूप चलते हैं, बल्कि मन्दिर के सेवा-विधान का अनिवार्य अंग लीला संकीर्तन है । दक्षिण के वैष्णव मंदिरों में आल्वार ग्रंथों के गायन के साथ-साथ त्यागराजु संकीर्तन चलता है । कीर्तनिया के रूप में सूरदास का सम्बन्ध श्रीनाथ जी के मन्दिर से था । तुलसी के गीत इस प्रकार के मन्दिर में गाये जाते थे या नहीं यह स्पष्ट नहीं है, किन्तु उनकी भक्ति साधना के सहवर्ती उनके गीत अवश्य हैं ।

यह कीर्तन काव्य रूप अनिवार्य रूप से संगीतात्मक होता है । "आइने अकबरी" में सत्रह प्रकार के गायकों की सूची दी गयी है । उसमें "कीर्तनिया" का भी स्थान है । वहां विवरण इस प्रकार दिया गया है - कीर्तनिया ब्राह्मण होते थे । ये पुराने वाद्य-यंत्रों का प्रयोग करते थे । ये सुन्दर बालकों को स्त्री का वेष धारण कराके उनसे कृष्ण की लीलाओं और स्तुतियों का गान कराते थे । ब्रज की रास-विधा इसी का विकसित रूप है । तुलसी के गीतों के आधार पर तो नहीं, किन्तु उनके "रामचरित मानस" के आधार पर राम लीलाएं अवश्य होती थीं ।

कीर्तनों की रचना में अभिनय और नृत्य की प्रविधियों और उनके ताल बंधान का ध्यान रखा जाता था । इसका गायन प्राय: पदों में होता था । पदों की परंपरा अखिल भारतीय है । तुलसी और त्यागराजु दोनों को पदों की समृद्ध परंपरा प्राप्त हुई थी । राग-रागिनियों के नामोल्लेख के साथ हिन्दी पदों की परंपरा सिद्धों और नाथों से लेकर निर्गुण संतों में होती हुई सगुण भक्त कवियों तक चली आयी । तुलसी से पूर्व रामानंद जी के पद प्राप्त होते हैं । उधर आल्वारों से लेकर पुरंदरदास, अन्नमाचारी और क्षेत्रय्या में होती हुई यह परंपरा त्यागराजु से जुड़ जाती है । चैतन्य संप्रदाय की साधना में जयदेव, चंडीदास और विद्यापति के पदगीतों का महत्वपूर्ण स्थान था । *

---

* हंस कुमार तिवारी, बंगला और उसका साहित्य, पृ.60

धार्मिक क्षेत्र में गेय पदों की परंपरा संस्कृत में भी मिलती है । वैदिक ऋचाएँ भी गेय छंद में ही हैं और गेय ऋचाओं का संकलन ही सामवेद है ।* इनका गायन उद्‌गाता (= पुरोहित विशेष) करते थे । संस्कृत के गीत गोविंद के अनेक मात्रिक छंदों के रागों और तालों में गाये जाने का विधान है ।[2] क्षेमेन्द्र की विरहाकुला गोपियों ने गोविंद का गुणगान राग के साथ ही किया था ।[3]

पद कीर्तन की संरचना के कई आधार हैं । ऋतूत्सवों और अष्टयाम कीर्तनों में संगीत के ऋतु और समय सिद्धान्त की रचना रहती है । इस प्रकार के गीत तुलसी और त्यागराजु दोनों ने लिखे हैं जिन पर विचार अन्यत्र किया जा चुका है । दूसरी संरचना छंद की है । मुख्य रूप से मात्रिक छंदों में गेय पदों की रचना की गयी है । कहीं वर्णिक छंद भी मिलते हैं । तीसरी रचना संगीत की रहती है । संगीत रचना में ताल और लय का समावेश रहता है । ताल की संरचना बहुत पुरानी है ।[4] भरत ने भी छंद की ताल-बद्धता की ओर संकेत किया है ।[5] हिन्दी की परंपरा में पदों के साथ तालों का उल्लेख नहीं मिलता, किंतु त्यागराजु के पदों के साथ तालों का उल्लेख है । तालों में मात्राओं, गति और विभाजन के अनुसार भिन्नता आती है ।

ताल के साथ लय की संरचना होती है । तुलसी और त्यागराजु ने काव्य संदर्भ और लय का सामंजस्य किया है । कोमल और मधुर भावों के लिए द्रुत गति और छोटे-छोटे चरण उपयुक्त होते हैं । अनुभूत्यात्मक वातावरण की विषमता को प्रकट करने के लिए छोटे-बडे चरणों, लघु-दीर्घ वर्णों की आवृत्ति रहती है । तुलसी और त्यागराजु दोनों ही लय की अनुभूत्यात्मक संरचना में सावधान दिखलाई पडते हैं ।

---

* बलदेव उपाध्याय, आर्य संस्कृति के मूलाधार, पृ. 22

2 मालव रागे रूपक ताले अष्ट पदी ।
वसंत रागेण यति तालेन गीयते ।। - गीत गोविंद, प्रथम सर्ग

3 गुप्त/पल्लवे (गोकुल) गुणगण गोप्य : सरागा जदु : । - दशावतार, 8.173

4 विक्रमोर्वशीय के अनेक मात्रिक छंद चर्चरी गान में गाये गये हैं ।

5 नाट्यशास्त्र, 32.29

2. वृत्त गीत : लीला गीत :

तुलसी और त्यागराजु दोनों के ही संदर्भ में वृत्त का तात्पर्य राम वृत्त ही है । जहाँ तुलसी ने राम के महाकाव्यात्मक वृत्त की प्रगीतात्मक अनुभूति वृत्त गीतों में की है वहाँ त्यागराजु के गीतों में यह काव्य रूपात्मक संक्रमण नहीं मिलता है । डा. रमेश कुंतल मेघ ने तुलसी के वृत्तात्मक गीतों की तालिका इस प्रकार दी है :-*

वृत्त गीत	रामलाल नहछू	- लोकगीत शैली
	कृष्ण गीतावली	- पद शैली
	गीतावली	

त्यागराजु के वृत्त गीतों में कथात्मक या सूत्रों का प्रगीतात्मक ग्रहण नहीं हुआ है । इसका प्रमाण यह है कि "गीतावली" की भाँति उनके वृत्त गीत किसी कथा-सूत्र में पिरोये हुए नहीं मिलते । राम की लीला की अनुभूतियाँ स्पष्ट रूप से स्फूर्त होकर विनय गीतों के बीच-बीच में अनुस्यूत हो गयी है, जबकि तुलसी में ये दोनों योजनाएँ अलग-अलग है । जहाँ तक लोक गीतों का प्रश्न है दोनों ही कवियों ने लोक संस्कारों से सघन अवसरों पर लोक गीतों का प्रयोग किया है । तुलना की दृष्टि से तुलसी और त्यागराजु के वृत्त गीतों की संरचना को इस प्रकार समझा जा सकता है : समान गीत वृत्त ये है - §1§ बाल लीला §2§ जनक पुरी वृत्त §3§ वन गमन §4§ पंचवटी §5§ लंकावृत्त और §6§ राम राज्य तुलसी के विशिष्ट गीत वृत्त ये हैं - §1§ चित्रकूट वृत्त §2§ अशोक वाटिका और §3§ उत्तर राम चरित । इनका गायन त्यागराजु ने नहीं किया । त्यागराजु ने केवल एक ऐसे वृत्त को कीर्तन बद्ध किया है जिसको तुलसी ने छोड दिया है - अवतार §कारण-कार्य§ । दोनों कवियों की विस्तारगत प्रवृत्तियों का तुलनात्मक परिचय निम्न लिखित तालिका से प्राप्त किया जा सकता है -

---

* तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ. 164

वृत्त	विस्तार	तुलसी	त्यागराजु
1 बाल लीला	1) बधाई	✓	×
	2) नामकरण	✓	×
	3) दुलार	✓	×
	4) गृह खेल	✓	×
	5) बाल सखा खेल	✓	✓
2 जनकपुरी	1) विश्वामित्र के साथ जाना	✓	×
	2) अहल्या उद्धार	✓	✓
	3) जनकपुरी की शोभा	✓	×
	4) पुष्प वाटिका	✓	×
	5) जनक का रोष	✓	×
	6) लक्ष्मण की प्रतिक्रिया	✓	×
	7) धनुर्भंग के पूर्व कुंवरों को सावधान करना	✓	×
	8) रंगभूमि/धनुर्भंग	✓	✓
	9) विवाह की तैयारी	✓	×
3 वनगमन	1) राज्याभिषेक की तैयारी	✓	×
	2) वनगमन	✓	✓
	3) कौसल्या की विरह वेदना	✓	×
	4) दशरथ का देहत्याग	✓	×

	5) भरत अयोध्या में	✓	×
	6) भरत का चित्रकूट प्रस्थान	✓	×
	7) राम विधुरा अयोध्या	✓	×
4 चित्रकूट	1) वनपथ पर	✓	×
	2) चित्रकूट वर्णन	✓	×
	3) राम-भरत मिलन.	✓	×
5 पंचवटी	1) वन विहार	✓	×
	2) जयंत उद्धार	×	✓
	3) मारीच वध	✓	×
	4) सीता हरण	✓	×
	5) जटायु वध	✓	×
	6) वियोगी राम	✓	×
	7) शबरी	✓	✓
6 अशोक वाटिका			
	1) सीता जी की खोज का उपक्रम	✓	×
	2) अशोक वाटिका में हनुमान	✓	×
	3) भस्म होने के लिए विरहिणी सीता का त्रिजटा से आग मांगना	✓	×

	4) जानकी त्रिजटा संवाद	✓	×
	5) हनुमान की उपस्थिति में सीता-रावण संवाद	✓	×
	6) हनुमान विभीषण भेंट	✓	×
	7) हनुमान का प्रेम संदेश	✓	×
	8) हनुमान-रावण संवाद	✓	×
7 लंका वृत्त	1) लंका यात्रा	✓	×
	2) अंगद का दौत्य	✓	×
	3) रावण की मंत्रणा	✓	✓
	4) विभीषण शरणागति	✓	×
	5) मंदोदरी प्रबोध	✓	×
	6) लक्ष्मण मूर्च्छा	✓	✓
	7) विजयी राम	✓	✓
8 राम राज्य	1) अयोध्या में राम की प्रतीक्षा	✓	×
	2) राज्याभिषेक	✓	×
	3) राम राज्य	✓	✓
	4) राम रूप	✓	×
	5) ऋतूत्सव (हिन्दोल, दीपमालिका, वसंत)	✓	✓
	6) अयोध्या की शोभा	✓	×
	7) आनंद	✓	×

9	उत्तर राम चरित्र	1) सीता वनवास	✓	×
		2) लवकुश जन्म	✓	×

उपर्युक्त तालिका के आधार पर निम्न लिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :-

1) तुलसी के लीला गीतों की संरचना प्रबंध मूलक है, यद्यपि प्रबंधोचित कड़ियाँ कहीं-कहीं अंतर्लीन रहती हैं । इसके विपरीत त्यागराजु के लीला कीर्तनों की संरचना शुद्ध प्रगीतात्मक है ।

2) तुलसी के लीला गीतों में मार्मिक या भावात्मक प्रसंगों का चयन भावात्मक विस्तार के लिए किया गया है, जबकि त्यागराजु ने इस प्रकार का न चयन किया है, न इनका अधिक भावात्मक विस्तार ही ।

3) त्यागराजु के कुछ गीतों में रक्षण परक या उद्धार परक वृत्त सूत्र अधिक विस्तृत हुए हैं जबकि तुलसी के गीतों में इन सूत्रों की विस्तृति कम है या नहीं है ।

4) तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु की दृष्टि भाव चमत्कार की अपेक्षा औक्तिक चमत्कार की ओर अधिक है ।

अन्तिम अभिप्राय के प्रमाण स्वरूप राम के सखा संयोग संबंधी त्यागराजु का एक कीर्तन लिया जा सकता है । राम खेलते खेलते माता कौसल्या के पास साश्रु और खिन्न मना होकर आते हैं और कहते हैं कि मुझ को बालक इसलिए आँख मिचौनी नहीं खेलाते कि मेरी आँखें बड़ी हैं जो उनके हाथों से पूर्णत: बंध नहीं हो पाती :-

"कनुलु मूसि याडिनारू कर
मुन कण्णनि नेत्र मनि कसरेदरू ।" *

---

* त्या. 18 (अ)/9

तुलसी ने इस प्रकार के औक्तिक चमत्कार के स्थान पर भाव चमत्कार को ही अधिक प्रकट किया है ।

लीला गीतों को यदि एक इकाई के रूप में देखा जाये तो इस इकाई का एक आरंभिक बिंदु है और दूसरा समापन बिंदु । आरंभिक बिंदु अवतारगत अभिप्रायों से संग्रथित है । त्यागराजु में यह बिंदु स्पष्ट है -

" दंडि रक्कसुल मदमणचनु आ
खंडलादि सुर कोटुलनु भू
मंडल सुजनुल बालिपनु गो
दंडपाणि रूपमुतो वेलसिन
वाडेरा दैवमु मनसा ।" *

तुलसी के लीला गीतों की योजना में यह बिन्दु अव्यक्त है ।

समाहार बिंदु की योजना में दोनों कवि समान है । जहाँ लीला गीतों का समाहार तुलसी एक समग्र "चरित गीत" में करते हैं जिसमें अवतार के अभिप्राय से लेकर राम राज्य तक के अभिप्राय गुंफित हैं,[2] वहाँ त्यागराजु भी अपने लीला कीर्तनों का समापन एक "चरित गीत" में ही करते हैं जिसकी संरचना तुलसी के चरित गीत के समान है ।[3]

तुलसी साहित्य के पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनको तीन प्रसंग बहुत अधिक प्रिय रहे - (1) पुष्प वाटिका (2) चित्रकूट और अशोक वाटिका । इन तीनों अवसरों का रागात्मक विशदीकरण और मौलिक नियोजन तुलसी के काव्य की प्रमुख विशेषताओं में है । इन प्रसंगों की भूमिका शुद्ध मानवीय तत्वों से निर्मित है । ये ही वे अवसर हैं जिनमें तुलसी का साध्य अलौकिकता से अपेक्षाकृत अधिक मुक्त

---

* "हे मन । बलवान राक्षसों के मद दमन के लिए, इंद्रादि देव गणों तथा पृथ्वी के सज्जनों की रक्षा करने के लिए जो कोदंडपाणि रूप से अवतार लिया है, वही देवता है ।" - त्या. 508

2 गी. 7/38

3 त्या. 516

होकर मानव स्वभाव और व्यवहार की छवियों से दीप्त हो उठता है । स्थूल अवतारवादी अभिप्राय द्रवीभूत होकर मानवीय राग की गहराई में खो जाते हैं । किंतु त्यागराजु ने इन भाव प्रवण अवसरों को स्पर्श ही नहीं किया । सम्भवत: उनकी चेतना राम के अलौकिक और अवतारवादी अभिप्रायों में ही रसात्मक चमत्कार का अन्वेषण करती रही ।

उत्तर राम चरित का प्रसंग ~~महाकाव्यकार~~ महाकाव्यकार तुलसी को रूचिकर नहीं रहा । राम के आदर्श चरित्र को चरमावस्था पर लाकर तुलसी के "मानस" ने विराम लिया । उत्तर राम चरित का प्रसंग अत्यन्त करूणा कलित है । साथ ही राम के आदर्श चरित्र पर वह प्रश्न चिह्न भी है, किंतु गीतकार तुलसी का जो रागात्मक पुनर्जन्म होता है उसमें इस प्रसंग का प्रवेश हुआ । त्यागराजु ने इस प्रसंग को छोड ही दिया । इस दृष्टि से महाकाव्यकार तुलसी और संगीतकार त्यागराजु से तुलनीय है : गीतकार तुलसी इस विशिष्ट संदर्भ में गीतकार त्यागराजु से तुलनीय नहीं हैं ।

3. <u>लोक गीत :</u>

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही राग-रागिनियों और तालों के अनुसार नामांकित संगीत की शास्त्रीय विधि में आत्मपरक गीतों की रचना की । किंतु जैसे ही उनकी चेतना लीला प्रसंगों को संगीत में ढालने के लिए अग्रसर हुई, शास्त्रीय संगीत के आभिजात्य ने कुछ अवसरों पर साथ नहीं दिया । वातावरण की रागात्मक यथार्थता और समूह मानस के उमडते हुए उल्लास की अभिव्यक्ति के लिए दोनों ही कवियों को यत्किंचित लोकगीत का जीवंत संस्पर्श देकर शास्त्रीय संगीत विधियों का अवसरोचित नवसंस्कार करना पड़ा । दोनों के द्वारा प्रयुक्त लोकगीत की आंतरिक संरचना लोकगीत की ही रही, चाहे उसकी बाह्य रचना शास्त्रीय आभिजात्य को लिए हुए मिलती हो । शिष्ट साहित्य में लोकगीत की स्थिति और उसकी प्रयोग-विधि के संबंध में डा. चन्द्रभान रावत का मत उल्लेखनीय है : "जब साहित्यिक या कवि लोक जीवन के किसी संदर्भ खंड को प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप से उठाता है तो उसके साथ संलग्न

लोकगीत भी आ जाते है । कवि प्राय: लोकगीत को ज्यों का त्यों लेकर उस संदर्भ खंड की साहित्यिक परिणति में स्थान नहीं देता । वह संबद्ध लोकगीत लोकगीत की शैली, उसकी शब्दावली और उसके अर्थभाग को अपनी निजी संरचना में ढालता है । इस प्रक्रिया में लोकगीत एक काव्य रूप बन जाता है । लोकगीतों का ग्रहण वैदिक काल से ही चला आ रहा है । वैदिक ऋषि ने किसी संदर्भ विशेष की भूमिका को यथार्थ का रंग देने और उसे जीवंत बनाने के लिए लोकगीतों का प्रयोग किया है ।" * दोनों ही आलोच्य कवियों ने लोकगीत का उपयोग इसी प्रविधि के अनुसार किया है ।

3.1. लोक गीतों के प्रयोग के अवसर :

लोकगीत के काव्यगत प्रयोग के भी लगभग वे ही अवसर हैं जो जीवन में उनके उपयोग के अवसर होते हैं । इन अवसरों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है : मानव-सामाजिक अवसर तथा मानव-प्राकृतिक अवसर । मानव-सामाजिक अवसरों के तीन प्रकार हो सकते हैं - श्रम, खेल और संस्कार । संस्कार के लोक-साहित्य में श्रमगीतों, क्रीडा गीतों और संस्कार संबंधी गीतों की स्थिति मिलती है । ये सभी गीत प्राय: सामूहिक होते हैं और जो सामूहिक मानस के उल्लास को व्यक्त करते हैं ।

मानव-प्राकृतिक अवसरों में उनकी गणना की जाती है जहाँ मानव-प्रकृति और बाह्य-प्रकृति के बीच संपूर्ण सामंजस्य स्थापित हो जाता है । उदाहरण के लिए ऋतुपरक गीतों को लिया जा सकता है । ऋतुएँ वे अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है जो मानव के लिए आर्थिक समृद्धि भी लाती हैं और सामंजस्यजन्य उल्लास भी ।

यह लोकगीतों की सहज स्वाभाविक स्थिति है । इन अवसरों से संबद्ध लोकगीत एक विशिष्ट संस्कार के साथ स्वाभाविक स्थिति से विच्छिन्न होकर भी अनुप्रयुक्त हो सकते हैं । साहित्य में अपनी प्रकृति स्थिति से विच्छिन्न गीतों का ही प्रयोग होता है । प्रकृति स्थिति का स्थान भावनात्मक या कल्पनात्मक स्थिति ले लेती है ।

---

* कृष्ण भक्ति साहित्य में प्रयुक्त काव्य रूप, पृ. 100

तुलसी और त्यागराजु दोनों ने ही कुछ अवसरों के लिए लोकगीत चुने हैं । इनके प्रयोग के द्वारा दोनों ने ही साध्य की अलौकिकता को लौकिकता में संक्रमित करने की चेष्टा की है । साध्य सामाजिक मानव की भांति जन्म लेता है, उसका लालन-पालन होता है, उसकी बाल-लीलाएं विस्तृत होती हैं, उसके विविध संस्कार होते हैं, उसका विवाह होता है और पारिवारिक विकास होता है । प्राकृतिक रूप से शरद और वसंत ऋतु की कमनीयता में भी वह रमणशील होता है । तात्पर्य यह कि समग्र प्रत्यक्ष व्यापार मानवोचित हो जाता है ।

(क) जन्म :

पुत्र जन्म कौटुंबिक और सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अवसर है । वैष्णव संदर्भ में पुत्र जन्म ही अवतार लेना है । इस अवसर की वस्तु संरचना द्विविध हो जाती है : अवतारगत अभिप्राय और लौकिक जन्म संस्कार की विधियां परस्पर गुथ जाती हैं । भक्त कवि इस द्विविध वस्तु संरचना को ही गेय बनाता है । तुलसी ने इस अवसर को मानवोचित रखने के लिए सोहर नामक लोक गीतों का उपयोग किया है । ~~सोहर नामक लोक गीतों का उपयोग किया है~~ । सोहर से पहले बधाई गाई गयी । आवृत्ति सोहर गीत की ही अधिक है । * सोहर शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में कई मतभेद हैं : शोभन > सोहर > सौर ग्रह > सोहर ;[2] सुघर > सोहर ;[3] सतिका गृह > सुइहर > सोहर :[4] शोभावत > सोहलक > सोहला ।[5]

---

* सहेली सुनु सोहिलो रे ।
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज ।। - गी.1/2/1

2 हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, 16 वां भाग, पृ. 208

3 कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ. 76-77,

4 भगवती प्रसाद शुक्ल, बघेली लोक रागिनी, पृ. 4

5 वासुदेव शरण अग्रवाल, पद्मावत व्याख्या, पृ. 264

सोहर गीतों के प्रयोग की दृष्टि से जायसी, रामभक्त कवि और कृष्ण भक्त कवि समान हैं । सबसे अधिक विस्तार तो कृष्ण भक्त कवियों ने किया है । तुलसी के सोहर गीत भी काफी बड़े हैं । सोहर गीत की संरचना में दशरथ का प्रासाद, शुभ लग्न, शुभ प्रभाव लोक प्रथाएं, दान-दक्षिणा आदि का समावेश रहता है । साथ ही अवतारवादी सूत्र भी रहता है,* पर बहुत झीने रूप में ।

त्यागराजु ने लोकगीत की इस मंगलमय भूमिका की संरचना को नहीं अपनाया है । उन्होंने विष्णु के सूर्यवंश में जन्म लेने का अवतारमूलक कथन ही किया है ।[2] इस गीत में त्यागराजु ने अवतार के कारणों की एक लंबी सूची दी है । यह सूची तुलसी के लोक गीत में नहीं है ।

§ख§ नामकरण :

जन्म के पश्चात् नामकरण के अवसर पर भी तुलसी ने लोकगीत की योजना की । इस गीत में शुभ नक्षत्र, शुभ सामग्री, गृह सज्जा, वेद-ब्राह्मण, लोक रीति तथा अनुष्ठान विधि का समावेश है । उसके प्रभाव स्वरूप "भये अमंगल लंक में, संक-संकट गाजे" तथा "भुवन चारिदसके बड़े दुख-दारिद भाजे"[3] को लिये जा सकते हैं ।

त्यागराजु ने नामकरण को भी अपने कीर्तनों में गेय नहीं बनाया ।

§ग§ दुलार :

दुलार गीतों में वस्तु-संरचना और भी लौकिक हो जाती है । मातृ हृदय अपनी समस्त रागात्मकता के साथ उल्लसित होता है । इन गीतों की संरचना में बाल राम को सुलाना, दूध पिलाना, नहलाना, लोरी गाना, अभिलाषायें करना तथा राम की विविध बाल चेष्टाओं की वस्तु-संरचना रहती है ।[4]

---

* "अमर, नाग, मुनि, मनुज सपरिजन बिगतबिषाद गलानी ।
मिलेहि माँझ रावन रजनीचर लंक संक अकुलानी ।।" - गी. 1/4/4

2 त्या. 508   3. गी. 1/6/17

4 गी. 1/8 से 1/13

त्यागराजु ने माता के द्वारा लाल-पालन की क्रियाओं का वर्णन नहीं किया है । फिर उनकी दृष्टि में मंदिर प्रमुख हो जाता है और विग्रह के साथ में ये क्रियायें अवश्य की जाती हैं,* किंतु कौसल्या के द्वारा नहीं ।

(घ) पालना :

सोहर गीतों में पालना भी सम्मिलित है । पालने पर सुलाना एक उत्सव ही है । लोकाचार में इस समय पालने के गीत गाये जाते हैं । सूरदास जी ने समस्त लोकाचार के साथ पालना गीत प्रस्तुत किया है । तुलसीदास जी ने भी दोहों की शृंखला जोड़कर पालना गीत की दीर्घतर रचना की है ।[2] पालने में सुशोभित राम को भी दो गीत समर्पित किये गये हैं ।[3] राम को नहलाकर पालने में सुलाया जाता है : "जननि उबटि, अन्हवाइके ..... पौढ़ाए पटु पालने" ।[4] सुमित्रा आदि निछावर कर रही है - "सखी सुमित्रा वारहीं मनि भूषन बसन बिभाग ।"[5] गीत गायन से वातावरण गूंज रहा है - "गीत सुमित्रा सखिन्हके सुनि सुनि सुर मुनि अनुकूल" ।[6] आशीर्वादों की वर्षा हो रही है - "दे सब असीस जय जय कहैं हरषैं बरषैं फूल ।"[7] इस प्रकार तुलसी ने लोक शैली में पालना गीत गाकर बालराम को बिंबित किया ।

त्यागराजु ने भी पालने के गीत गाये हैं । पर उस पालने की स्थिति भी कौसल्या के घर में नहीं, मंदिर में है और वह पालना बालराम का नहीं युवा राम का है । झूलने का वातावरण भी अलौकिक है :-

" कमलजाद्यखिलसुरलु निनु गोल्व
विमलुलैन मुनींद्रुलु ध्यानिंप
कमनीय भागवतुलु गुणकीर्त
नमुन नालापंबुलु सेयग

---

* दूध पिलाना - त्या. 29 ; स्नान करना - त्या.165/4 ; लोरी गाना - त्या. 19(अ) ; सुलाना - त्या.363

2 गी.1/22 3 वही. 1/23, 1/24 . 4 वही. 1/22/2 5 वही.1/22/10

6 वही.1/22/15 7 वही. 1/22/15

उय्याल लूगवय्या श्री राम
सय्याट पाटलनु सत्सार्व भौम ।" *

त्यागराजु के साध्य का झूला स्वर्ण का बना हुआ है - "अपरीज" ।[2] तुलसी का झूला भी "कनकरतनमय"[3] है जिसको कामदेव ने बनाया है ।

{ड.} विवाह गीत :

जन्म के पश्चात् सबसे महत्वपूर्ण अवसर विवाह का ही है । दिव्य विवाह "मंगल गीत" के नाम से हिन्दी क्षेत्र में प्रचलित रहे । तेलुगु क्षेत्र में मंगल {विवाह} के लिए "कल्याणमु" शब्द का प्रयोग होता है । निर्गुण संतोंने भी मंगल गीतों की रचना की है जिसमें आत्मा और परमात्मा के दिव्य विवाह की चर्चा है ।[4] मीरा के मंगल गीत भी प्रसिद्ध हैं । जहाँ कृष्ण भक्त कवि सूर और नंददास ने "रुक्मिणी मंगल" की रचना की है वहाँ राम-भक्त तुलसी ने "जानकी मंगल" और "पार्वती मंगल" जैसे बृहद् गीत लिखे हैं । तेलुगु क्षेत्र में भी "राधामाधवमु" जैसा मंगल प्रबंध, "जानकी कल्याणमु" और "गौरी कल्याणमु" जैसी रचनाएँ प्राप्त होती हैं । इस प्रकार वैवाहिक गीतों का दिव्य संस्कार सभी भारतीय भाषाओं में मिलता है । इन गीतों की रचना में लोकाचार की सांस्कृतिक भूमिका रहती है, मंगल कामना और बधाइयाँ रहती हैं । तुलसी ने "जानकी मंगल" की रचना इसी संरचना में की है । त्यागराजु ने इस प्रकार के कथात्मक मंगल गीत की रचना नहीं की ।

तुलसी ने "गीतावली" में विवाह संदर्भीय बधाई गीत लिखा है - "बाजे अवध बधाई" {गी.1/103} । विवाह का मंडप रचा जाता है और विवाह की सज्जा की जाती है । एक और गीत में विवाह संपन्न कराया गया है । अयोध्या में आने पर माता आरती करती है - "मुदित मन आरती करै माता" {गी.1/110} । इस प्रकार लोकगीत शैली में तुलसी ने राम के विवाह को

---

* त्या. 53   2 वही. 14{अ}   3 गी. 1/22/1

4 डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के नाम से प्रचलित मंगल गीतों का उल्लेख किया है {हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ. 103} ।

गेय बनाया है । वस्तु संरचना में अलौकिक तत्वों का अनुपात अत्यल्प है ।

त्यागराजु ने भी वैवाहिक गीतों की रचना में रूचि ली है । इस संदर्भ के तीन गीत हैं । पहले गीत की टेक है - "सीता कल्याण वैभोगमे" * (= सीता कल्याण की शोभा है, रे ।) । दूसरा गीत वैवाहिक उबटन से संबंधित है - "नलिन लोचन नीकु नलुगु बेट्टेरा" (= हे नलिन लोचन । तुम्हें उबटन करूँगा) ।[2] तीसरा गीत शोभन आरती गीत (= विवाहोपरांत आरती गीत) है - "पतिकि हारतीरे सीता पतिकि" (= सीतापति को आरती दो) ।[3]

पहले गीत की टेक से लोकगीत की शैली स्पष्ट हो जाती है । किंतु शेष रचना विशेषणमय है - राम को विविध विशेषणों से विभूषित करके उनके विवाह की शोभा को देखने के लिए भक्तों का आह्वान दिया गया है । इसमें वैवाहिक लोकाचार नहीं है । "उबटनगीत" की रचना में भी राम के ऐश्वर्य, माधुर्य और सौंदर्य को विशेषण बद्ध किया गया है । विवाहोपरान्त आरती तुलसी ने जहाँ कौसल्या के द्वारा करायी है[4] वहाँ कौसल्या का नाम न लेते हुए त्यागराजु ने इसको स्त्रियों के द्वारा संपन्न बतलाया गया है ।[5] त्यागराजु के सीता और राम गरूड पर आसीन हैं :-

"बंगरूरंजु भुजगुनि पैनि चे
लंगुचुनु मरकतांगुडु मेरपु ते
रंगुन मेरयु तन यंगनतो बलु
कंग जूचि युप्पोंगुचु .... ।"[6]

किंतु तुलसी के सीताराम घर में हैं । केवल इसमें प्रवृत्तिगत साम्य देखा जा सकता है । तुलसी की वृत्ति दिव्य युगल को लौकिक परिवेश में लाकर अद्भुत छवियों में लीन हो रही है । किंतु त्यागराजु का दिव्य युगल वैकुंठ के अलौकिक परिवेश को नहीं छोड पा रहा है ।

---

* त्या. 4(अ)   2 त्या. 6(अ)   3. वही. 9(अ)

4 "मुदित मन आरती करै माता ।" - गी.1/110

5 "राजमानमगु गाजुलु घल्लन
राजित त्यागराजनुलुनिकि श्री
पतिकि हारतीरे ।" - त्या. 9(अ)/5   6 त्या. 9(अ)/3

(च) ऋतूत्सव :

जिस प्रकार लौकिक जीवन में ऋतुओं तथा उनसे संबंधित उत्सवों के गीत प्रचलित हैं, उसी प्रकार वर्षोत्सव के रूप में वैष्णव मंदिरों में भी इनको मनाया जाता है । मंदिर से संबंधित कीर्तनों में इन उत्सवों का प्रमुख स्थान है । इन उत्सवों में मुख्य रूप से वर्षा ऋतु का हिन्डोला, शरद् ऋतु की दीपावली और वसंत ऋतु की होली प्रसिद्ध है । तुलसी ने इन सभी के संबंध में गीत रचे हैं ।* त्यागराजु ने ऋतूत्सव गीतों की रचना में विशेष रूचि नहीं ली । केवल एक हिन्डोला गीत उनके गीतों में प्राप्त होता है । इस गीत की टेक है - "लालि यूगवे मापालि दैवमा" ।[2] इस गीत में राम की स्थिति वैकुंठ में नहीं धरती पर है । किंतु यह स्पष्ट नहीं होता कि इस झूले में त्यागराजु ने बालराम को झुलाया है या प्रौढ़ राम को । प्रतीति यह होता है कि उन्होंने श्रावण के उत्सव के रूप में हिन्डोला की कल्पना की है । क्योंकि इस अवसर पर सीता राम को तांबूल भेंट करती है - "कम्मनि विडेमोसगु या जनकात्मज तोनु" ।[3] तुलसी के युवा राम भी हिंडोले में झूलते हैं ।[4] वातावरण भी श्रृंगार पूर्ण है । पृष्ठभूमि वर्षा की है । वर्षा ऋतु का राग मल्हार का प्रयोग हुआ है । झुलानेवाली सुंदरी युवतियाँ है जो गीत गाती हुई झुला रही है :-

" सो समौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि ।
गुन-रूप-जोबन-सींव सुंदरि चलीं झुंडनि झारि ।।
x x x x
झूलहिं, झुलावहिं, ओसरिन्ह गावैं सुहो, गौंड मलार ।
मंजीर नूपुर-बलय-धुनि जनु काम-करतल-तार ।। "[5]

---

* हिन्डोला गी. 7/18 ; दीपमालिका, गी.7/20 वसंत विहार गी.7/21

2 त्या. 16(अ) 3 त्या. 16 (अ)/3

4 गी. 7/18

5 वही. 7/18/4,5

किंतु त्यागराजु की भाँति तुलसी ने इस अवसर पर सीता का उल्लेख नहीं किया है । त्यागराजु का झूला प्रसंग तुलसी के इसी झूले के प्रसंग से आंशिक समानता रखती है ।

तुलसी ने वर्षा ऋतु में झूलने के उत्सव का बहुत विस्तार से वर्णन किया है । उत्तर कांड के उन्नीसवें गीत में पूर्णत: लोक शैली को अपनाया गया है । त्यागराजु की ही शैली में दोलायमान राम के दर्शन के लिए तुलसी ने एक भीड इकट्ठी की है । राम के ही घर में नहीं अयोध्या के घर घर में झूला पडा है । दीपमालिका और वसंतोत्सव को त्यागराजु ने छोड दिया है ।

इन समस्त स्थितियों को मांसल तथा जीवंत बनाने में लोक मानस की सहज वृत्तियों को रूपायित करनेवाला लोकगीत पर्याप्त योगदान देता है । साध्य का परामानवीय और परा प्राकृतिक रूप इस बाह्य संरचना में अंतर्भूत हो जाता है । परिणाम स्वरूप एक शुद्ध भावात्मक संरचना उल्लसित होती है जो अध्यात्मक के कठोर शासन को या तो मानती नहीं या एक सीमा तक ही मानती है ।

(छ) मंदिर : अनुष्ठान गीत :

साध्य की लौकिक स्थिति पुराण-विधा में कथात्मक संरचना प्राप्त करती है और इसी संरचना के अंतर्गत काव्य शास्त्रीय भाव-विभाव की संरचना अनुस्यूत हो जाती है । जब प्रतीक रूप में अर्चा विग्रह मंदिर में प्रतिष्ठित हो जाता है तो पौराणिक और रसात्मक संरचनाएँ विग्रह में प्रतीकायित हो उठती है । अर्चा विग्रह के चतुर्दिक पूजा, अर्चा और अनुष्ठान की संरचना फैल जाती है । इनके बीच में खड़ा कीर्तनकार काव्य और संगीत की सम्मिलित संरचना के द्वारा मंदिर की आंतरिक संरचना को गीत और नाद में बांधता है । अष्टयाम चर्या, शुद्ध भाव और कल्पना में रूपायित होती है ।

इस प्रक्र अवसर पर कीर्तनकार के सामने दो मार्ग होते है : पहला मार्ग यह कि वह पुराण विधा और रस की संरचना को सुरक्षित रखता हुआ विग्रह का चर्या गान करें अथवा पौराणिक संरचना पर आधारित विभाव की संरचना को छोड्कर वह अर्चक और विग्रह के बीच एक नये संबंध की स्थापना करें ।

इस दृष्टि से तुलसी और त्यागराजु में एक अन्तर आ जाता है । तुलसी पहले मार्ग का अनुसरण करते हैं । उनके विग्रह संबंधी चर्यागान में कौसल्या, लक्ष्मण तथा उनके अंतरंग परिकर की अन्य इकाइयाँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं । प्रात:काल की पहली झाँकी के समय वे ही जागरण के गीत गाते हैं, किंतु यह कल्पना छायी रहती है कि उनको कौसल्या जगा रही है । इसी प्रकार की संरचना अन्य अवसरों की भी होती है । इसके विपरीत त्यागराजु जब अर्चा विग्रह की लीला चर्या को कीर्तन बद्ध करते हैं, तो वह पौराणिक और विभावात्मक संरचना से मुक्त होकर अर्चक और विग्रह के बीच एक संबंध रच लेते हैं । इसका फल यह होता है कि तुलसी के लोक गीतों के प्रयोग के अवसरों पर जहाँ अलौकिकता विरल हो जाती है वहाँ त्यागराजु इन अवसरों की संरचना में अलौकिकता को सघनता से गूँथ देते हैं । इसको प्रमाणित करने के लिए तुलसी और त्यागराजु के "सुप्रभात" गीतों की संरचना की तुलना प्रस्तुत की जा सकती है ।

तुलसीदास की सुप्रभात रचना यह है :

(अ) जगानेवाली माता कौसल्या *

(आ) सुंदरता या अन्य गुणों पर आधारित विशेषणों से भरा संबोधन[2]

(इ) प्रभात कालीन प्राकृतिक सौंदर्य का कथन[3]

(ई) राम के जागने की प्रतीक्षा में सखा[4]

(उ) राम का जागरण - "सुनत वचन पिय रसाल, जागे अतिसय दयाल"[5]

(ऊ) जगने के बाद का प्रभाव[6] या लीला व्यापार का आरंभ ।[7]

---

* "जननी कहै बार-बार भोर भयो प्यारे ।" - गी.1/38

2 "राजिवलोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल,
ललित कमल-बदन उमर मदन कोटि वारे ।।" - वही.

3 "बोलत खगनिकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु ।" - वही

4 "अनुज सखा सब बोलन आये ।" - गी. 1/36

5 वही. 1/38

6 "भागे जंजाल बिपुल, दु:ख-कदंब दारे ।" - गी. 1/38

7 द्रष्टव्य पद गी.1/39

लोकगीत की भाव-सुरक्षा और अवसर की मानवोचित सहजता की सुरक्षा की दृष्टि से तुलसी धरती के संदर्भ को वैकुंठ में नहीं ले जाते ह । यदि उनके मनमें साध्य की अलौकिकता अभिव्यक्ति के लिए मचल ही उठती है तो प्रस्तुत रूप में नहीं, वह अप्रस्तुत रूप में आती है, जैसे पक्षी गान कर रहे हैं और तुलसी एक उत्प्रेक्षा की संरचना के द्वारा अलौकिकता का कथन करने लगे :-

"मनहुँ बेद-बंदी-मुनि बृंद-सूत-मागधादि
बिरुद बदत "जय जय जय जयति कैट भारे ।" *

त्यागराजु के सुप्रभात की संरचना में जगानेवाली माता कौसल्या नहीं है । विशेषण बहुल संबोधन अधिक समृद्ध है ।[2] प्रभात कालीन प्राकृतिक सौंदर्य के संबंध में भी त्यागराजु का सुप्रभात अधिक उत्साह नहीं दिखाता - केवल "मित्रोदयमौ वेल"[3] (= सूर्योदय के समय में) कहकर चुप हो जाता है । द्वार पर प्रतीक्षाकुल सखा वृंद की स्थिति भी नहीं है । बस नारद गा रहे हैं, देवता लोग अणिमादि सिद्धियों को उनकी सेवा के लिए ले आये हैं, बिबुध वर्ग राम के जागरण की प्रतीक्षा इसलिए कर रहे हैं कि उनकी पूजा कर सकें, राजा, दिग्पाल - सभी इसलिए राम के जगने की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि उनसे राजनीति का ज्ञान प्राप्त कर सकें और ब्रह्मा और शिव उनकी सेवा के लिए खड़े हुए हैं । जहाँ तुलसीदास के राम की माता कौसल्या - "मन भावतो कलेउ कीजै"[4] कहती है वहाँ त्यागराजु के अर्चक यह कहते हुए मिलते हैं -

" वेन्नपालु बंगारु गिन्नेल ने नुचिनानु
तिन्न गारगिंचि तेट कन्नुलतो नन्नु जूड"[5]

लोक गीतों के प्रयोग की संरचना का यह अंतर प्रायः सभी प्रकार के लोकगीतों में लक्षित किया जा सकता है ।

---

* द्रष्टव्य पद गी. 1/38

2 "राजराजेश्वर भराजमुख साकेत
राज सद्गुण त्यागराजनुत चरण" - त्या. 20(अ)/5

3 त्या. 21(अ)/2 4 गी. 1/36/5

5 त्या. 21(अ)/4

4. निष्कर्ष :

इस प्रकार दोनों ही आलोच्य कवियों ने काव्य रूप का चयन समान रूप से किया है । काव्य रूप का संरचनात्मक अंतर इस बात को लेकर है कि तुलसी महाकाव्यकार हैं । इसलिए उनकी गीतावली के गीत कथा तंतु में संग्रथित हो जाते हैं । इसके विपरीत त्यागराजु शत प्रतिशत गीतकार है और कोई योजना बद्ध कथा तंतु उनके गीतों में संचरित नहीं है । जहाँ तक "विनय पत्रिका" और "त्यागराज कीर्तनलु" के आत्मपरक गीतों का प्रश्न है दोनों की संरचना पूर्णतः समान है । लोकगीत शैली का प्रयोग दोनों ने ही किया है, किंतु त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी ने इस संरचना में अधिक रूचि ली है । जहाँ तक त्यागराजु और तुलसी के प्रगीतों की वस्तु संरचना का प्रश्न है, दोनों के आत्मपरक गीतों में अलौकिक ऐश्वर्य की सघन बुनावट ही मिलती है । किंतु तुलसी के लीला गीतों की वस्तु संरचना त्यागराजु से भिन्न हो जाती है । जहाँ त्यागराजु की कल्पना में वैकुंठ लोक का ऐश्वर्य ही बिंबित होता रहता है वहाँ तुलसी के लीला गीतों की संरचना में दिव्य ऐश्वर्य के शुद्ध लोक संदर्भों में संक्रमित होने की छवियाँ अधिक विलसित हो जाती हैं ।

.....

उपसंहार

उपसंहार

तुलसी उत्तर भारत की रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि हैं तो त्यागराजु दक्षिण की रामभक्ति काव्यधारा के। दोनों का ही व्यक्तित्व सामान्य स्थिति से भास्वरता की ओर गतिशील हुआ है। युगीन परिवेश दोनों की व्यक्तित्व संरचना में सक्रिय रहा। किन्तु पारिवारिक वातावरण दोनों को एक सा नहीं मिला। तुलसी जहां एक उपेक्षित तथा परित्यक्त बालक के रूप में इधर उधर मारे-मारे फिरते रहे और जीवन के कटु यथार्थों से जूझते रहे वहां त्यागराजु को पारिवारिक वातावरण बहुत कुछ अनुकूल ही मिला और तुलसी के समान कटु संघर्ष नहीं करना पड़ा। उनके परिवार में भक्ति और संगीत की मिली-जुली परम्परा रही जिस ने त्यागराजु के मानस को वांछित संस्कार भी प्रदान किये। दोनों ही कवि भ्रमणशील थे। भ्रमण से उनको गुरु और संत संसर्ग प्राप्त हुआ। विभिन्न तीर्थों के वातावरण ने उनके व्यक्तित्व को भक्ति साधना में प्रेरित भी किया। गुरु की खोज तो दोनों ही कवियों ने की। किन्तु दोनों को भिन्न प्रकृतियों का प्रसाद प्राप्त हुआ। त्यागराजु को संगीत साधना की प्रेरणा प्राप्त हुई और उन्होंने

अपने कुछ परिजनों से प्रभाव ग्रहण करके इस संगीत साधना को क्रमश: आध्यात्मिक नाद-साधना में परिणत किया । तुलसी की प्राथमिक साधना संगीत की न होकर राम तत्व से संबन्धित रही । राम के लीला चरित्र की अनुभूतियां उनके मानस में घुल गयीं । इन्हीं अनुभूतियों के साथ दार्शनिक तत्व समन्वित होते गये और भक्ति साधना की दार्शनिक पृष्ठभूमि घटित होती गयी । त्यागराजु की नाद-साधना भी अन्तत: दार्शनिक तत्वों से समन्वित होकर सृजन के लिए एक उदात्त भूमिका प्रस्तुत करने लगी ।

दोनों कवियों के दार्शनिक संस्कारों में भी कुछ अन्तर रहा । जहां तुलसी अव्यक्त रूप से रामानुज संप्रदाय की भावभूमि और दार्शनिक पीठिका में दीक्षित हुए वहां त्यागराजु को भी यही सांप्रदायिक प्रभाव प्राप्त हुआ । किन्तु तुलसी के दार्शनिक संस्कार अद्वैतवादी दार्शनिक छाया से मुक्त रहे । जब कि त्यागराजु के अद्वैतवादी संस्कार प्रकट या प्रच्छन्न रूप से उनके व्यक्तित्व के साथ अनुस्यूत रहे । साथ ही योग की भक्ति मिश्रित भूमियां जितने त्यागराजु के व्यक्तित्व में संरचित मिलती हैं उतनी तुलसी के व्यक्तित्व में नहीं ।

उपर्युक्त व्यक्तित्व की संरचना ने दोनों कवियों में विभिन्न साहित्यिक परिणति ली । तुलसी के रामचरित्र के संस्कार उनकी सर्जना को प्रबन्धोन्मुख करने लगे और प्रगीत काव्य प्रबन्ध के पूरक के रूप में प्रस्तुत हुआ । संगीत परक पदरचना भक्ति साहित्य की एक मूलभूत प्रवृत्ति थी जिसने उनके प्रगीत साहित्य में प्रवेश पाया । इस के विपरीत त्यागराजु के व्यक्तित्व की बुनावट शुद्ध गीत-संगीत साधना के उपयुक्त सिद्ध हुई । लीला प्रसंगों का संस्पर्श केवल भावों की स्फीति के लिए रहा ।

व्यक्तित्व और सृजन की उपर्युक्त संरचना समाज में भी भिन्न प्रकार से प्रतिफलित हुई । तुलसी की सामाजिक चेतना, उनकी वर्ग चेतना और कलियुग के व्याज से वर्णित सामाजिक विकृतियों की अनुभूति त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी में बहुत अधिक है । त्यागराजु तुलसी की अपेक्षा वैयक्तिक

साधना के क्षणों में गहरे उतरे हैं। विग्रह और मन्दिर के साथ उनका व्यक्तित्व एकाकार हुआ और भगवान के सामने संगीत की सूक्ष्म सरणियों को प्रस्तुत करने में उन्होंने अपने को कृतकार्य माना। लोकप्रियता दोनों को ही प्राप्त हुई और इस लोकप्रियता ने दोनों के व्यक्तित्व को मिथकीय तंत्र में रखकर भी देखा। दोनों ने ही सामान्य प्रलोभनों का परित्याग करके प्राकृत जन की स्तुति को छोडा और प्रभु स्तुति में अपने को समर्पित कर दिया। इस प्रकार दोनों कवियों के व्यक्तित्वों की संरचना कभी परस्पर तुलनीय होती हुई और कहीं कुछ भिन्न होती हुई चली। दोनों ने ही अलौकिक स्रोतों की प्रेरणा को व्यक्तित्व का केन्द्र माना। तुलसी के प्रेरणा स्रोत हनुमान और त्यागराजु के नारद हैं।

दोनों ही आलोच्य कवियों के साध्य राम हैं। साध्य की संरचना दोनों के ही गीतकाव्य में त्रि-स्तरीय मिलती है। पहला स्तर ब्रह्म की संरचना का, दूसरा स्तर विष्णु की संरचना का और तीसरा स्तर लीला और मर्यादा से समन्वित संरचना का है। ब्रह्म की संरचना औपनिषदिक प्रकृति की है। दोनों ही कवियों ने औपनिषदिक पद्धति से ब्रह्म की अनुभूति की है। दोनों ने ही ब्रह्म की शक्तियों को माया के द्वारा संचालित और जगत की ओर उन्मुख दिखलाया है। किन्तु अन्तर इतना है कि त्यागराजु के गीतों में औपनिषदिक ब्रह्म की रूपरेखा जितनी स्पष्ट और सबल है उतनी ~~त्यागराज~~ तुलसी के गीतों में नहीं। साथ ही विष्णु की संरचना में भी कुछ अन्तर परिलक्षित होता है। त्यागराजु का संबन्ध जिन भक्ति क्षेत्रों से था उनमें विष्णु के मंदिर भी थे और लक्ष्मीनारायण की उपासना भी प्रचलित थी। इसलिए शुद्ध विष्णु केन्द्रित संस्कार तुलसी की अपेक्षा त्याग-राजु को अधिक मिले। विष्णु के परिकर की संरचना में वैकुण्ठ, क्षीर-सागर, शेष, गरुड, विष्वक्सेन, आदि को जितना महत्वपूर्ण स्थान त्यागराजु ने दिया है उतना तुलसी ने नहीं। साथ ही त्यागराजु की गीत संरचना श्री वेंकटेश्वर (बालाजी) को भी केन्द्रस्थ मानकर चली है। तुलसी के गीतकाव्य

में चाहे बिन्दुमाधव का उल्लेख हो, किन्तु उनकी भाव रचना में श्री वेंकटेश्वर जैसा प्रमुख स्थान किसी का नहीं है ।

ब्रह्म और विष्णु की संरचना में तुलसी की अपेक्षा त्यागराजु ने अधिक रुचि ली । इस का प्रमाण यह है कि त्यागराजु ने अधिक पर्यायों का प्रयोग इस रचना में किया है और दीर्घतर भाषिक रचनाएं भी की हैं । विष्णु के संदर्भीकरण का क्षेत्र भी त्यागराजु के गीतों में अधिक विस्तृत है ।

दोनों ही कवियों के गीतों में राम की संरचना अवश्य ही प्रमुख है । दोनों ने ही राम नाम को भक्ति साधना में प्रमुख स्थान दिया है । और राम की नाम संरचना को वैविध्यपूर्ण भी बनाया है । राम के नाम जहां ब्रह्म और विष्णु मूलक हैं वहां पारिवारिक और भक्तमूलक अधिक हैं । पारिवारिक और स्थलीय नाम रचना करने में तुलसी त्यागराजु से आगे बढ जाते हैं । किन्तु पर्याय चमत्कार त्यागराजु की नाम रचना में ही अधिक है । नाम की आलंकारिक रचना में दोनों कवि रुचि तो लेते हैं, किन्तु तुलसी इस को अधिक विस्तार देते हैं । राम नाम के अतिरिक्त कृष्ण नाम की संरचना भी दोनों कवियों ने की है । तुलसी कीकृष्ण नाम-संरचना में कृष्ण लीला संदर्भ कुछ अधिक संलग्न हुए हैं । दोनों ही कवियों ने इष्ट की नाम-रचना को यथार्थ रूप से सगुण बनाया है । गुणपरक नामों की क्षिप्रता ही दोनों कवियों के साहित्य में अधिक है ।

दोनों ही कवि नाम संरचना के पश्चात् साध्य की रूप संरचना में प्रवृत्त होते हैं । रूप चाक्षुस होने के कारण दोनों कवियों की कल्पना में अनेक बिम्बों में उतरता है । दोनों ने ही रूप की नख-शिख रचना की है और इस रचना को विशेषणों और अलंकारों की रचना से विशिष्ट बनाया है । सामान्य रूप से दोनों कवियों ने प्रसिद्ध और रूढ उपमानों का ही प्रयोग किया है । अंगों पर प्रकट शुभ चिह्न, उनके दिव्य उपकरण, उनका वर्ण और वस्त्राभूषण --- सभी की विस्तृत संरचना की गयी है । दोनों में प्रवृत्तिगत साम्य मिलता है, चाहे व्यावहारिक परिणति में उन्नीस-बीस का अन्तर हो ।

वैष्णव भक्ति-दर्शन और साधना में `लीला` का सर्वाधिक महत्व है। लीला वस्तुत: एक व्यापक तत्व है। वैष्णव लीलावाद ने शंकर के मायावाद या अद्वैतवाद को दार्शनिक धरातल पर ललकारा था। लीला वस्तुत: साध्य की ऐश्वर्यमूलक, अवतारमूलक, कृपामूलक और लौकिक व्यवहारमूलक क्रियाओं की ही मंगलमय समन्विति है। दोनों ही कवियों ने साध्य की क्रियाओं को लीला की व्यापक संरचना में ढालने का व्यापक आयोजन किया है। इन्हीं क्रियाओं के द्वारा ब्रह्म, माया, जीव और जगत को संरचनात्मक अन्विति सिद्ध होती है। इन के बीच तात्विक और व्यावहारिक संबन्ध स्थापित होता है।

ब्रह्म की संरचना तत्व से आरंभ होकर लीला तक फैलती है। प्रगीतात्मकता तत्व से अधिक पुष्ट न होकर नाम, रूप, लीला से क्रमश: अधिक भावप्रवण बनती चलती है। इस सारे लीला-विधान का सब से अधिक घनीभूत बिन्दु जीव है। जीव की तात्विक और जागतिक -- दोनों ही स्थितियां आलोच्य कवियों के प्रगीतों को प्राणवान बनाती हैं। साहित्यशास्त्र और भक्तिशास्त्र की जितनी भी भाव-संरचनाएं हैं, सभी जीव पर केन्द्रित होती हैं। यहां तक कि ब्रह्म की रागात्मक क्रियाएं भी जीव की ओर उन्मुख होकर लीला का रूप ग्रहण करती हैं। इसलिए दोनों ही भक्त गीतकारों ने जीव की संरचना को बहुत विस्तृत और व्यंजना पूर्ण बनाया है। जीव संरचना का अधिकांश ब्रह्म-जीव संबन्ध भावना को लेकर चला है। प्रिय और प्रिया, पित और शिशु, सेवक और सेव्य, दीन-और दीन बन्धु, आदि की संबन्ध संरचना दोनों कवियों के गीतकाव्य का प्राण संस्थान है। भक्त के कर्म और भगवान की कृपा एक विशिष्ट संरचना में ढलकर जीव की पुनर्रचना करती है। जीव की कोटियों का विस्तार दोनों ही कवियों ने किया है। इस विस्तार में अत्यल्प अन्तर ही मिलता है।

ब्रह्म और जीव संबन्धी तात्विक और भावात्मक संरचना की विस्तृतियों का वहन न अकेला काव्य ही कर सकता है, न केवल संगीत ही। यदि काव्य की संरचना लौकिक और लोकोत्तर अर्थों को जोडती हुई उनको

उदात्त बनाती है तो संगीत की संरचना उदात्त अर्थों को गहराइयां और ऊंचाइयां प्रदान करती है। दोनों ही कवियों ने काव्य और संगीत को मिश्रित संरचना की है जिससे कि प्रेष्य और प्रेषण-यंत्र के बीच सामंजस्य घटित हो सके। अन्तर केवल इतना है कि जहां तुलसी के गीतों का काव्य पक्ष अधिक स्फीत और गर्भित है, वहां त्यागराजु के गीतों का गीत-संगीत पक्ष अधिक उर्वर और दूरगामी है। इस अन्तर का कारण स्पष्ट है। दोनों ने ही राग और समय, राग और भाव, राग और मन:स्थिति के संबन्ध सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर प्रगीत संरचना की है। किन्तु इन सिद्धान्तों का पारिभाषिक पक्ष जितना त्यागराजु के गीतों में स्पष्ट झलकता है उतना तुलसी के काव्य में नहीं। जितने राग रागिणियों और तालों में त्यागराजु की भावानुभूतियों संरचित हुई हैं उतने रागों में तुलसी ने नहीं गाया है।

जहां तक काव्यरूपगत संरचना का प्रश्न है, वहां संरचना के दो स्तर मिलते हैं। एक स्तर स्तोत्र और विनय गीतों का है। इस स्तर पर दोनों की रचना बहुत कुछ समान है। दूसरा स्तर वृत्तगंधी या प्रसंग गीतों का है। साध्य के लीला क्रम में गीतों के लिए अनेक अवसर आते हैं। इन गीतों की संरचना त्यागराजु की अपेक्षा तुलसी ने अधिक विस्तृत की है। किन्तु त्यागराजु में इस का अभाव नहीं है।

ये ही निष्कर्ष हैं जो संरचना के आधार पर निकाले गये हैं। संरचना की मूल प्रेरणाएं और प्रवृत्तियां बहुत कुछ समान हैं। केवल विस्तृति, बल और प्रकृति की दृष्टि से थोडा बहुत अन्तर परिलक्षित होता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में आलोच्य कवियों की समग्र संरचना का सर्वेक्षण किया गया है। विशेषीकरण के आग्रह की दृष्टि से इस के किसी भी एक अंग की संरचना का व्यापक अध्ययन हो सकता है।

----ooo----

परिशिष्ट

परिशिष्ट - (१)

तुलसी साहित्य में `गाना` शब्द का क्रिया और संज्ञा रूपों में प्रयोग

आवृत्ति गत सूची

रामलला नहछू : ११।१, ११।२, ३।२, ८।२, १८।१, १६।२, १६।२, २०।२, २०।२ =(६ बार)

रामाज्ञा प्रश्न : १।२।६, १।३।२, १।४।५, १।६।७, ४।७।३, ४।७।५, ६।३।१, ६।७।४ =(८ बार)

जानकीमंगल : २, १५, ४२, ६३, ७६, ११८, ११६, १२७(दो बार), १२६, १४६, १५४, १५६, १६०, १८०, २०४, २१६(दो बार) = (१८ बार)

रामचरित मानस : बालकाण्ड : १०(ख), १०।३, १०।४, ११।५, १२, १२।५, २५।४, २६।३, ३२।४, ३३।४, ३६।६ (दो बार), ३७।१, ४५।१, ५०।४, ५०(छं०), ५८।३, ६०।२, ६५।२, ७६।१, ६३।३, ६५।१, ६८।२, ६६।१, १०२ (छं०), १०५।२, १०७।३, ११२।३, ११३।४, ११७।२, १२०।१, १२१।१, १२५।३, १२७।२(दो बार), १३८, १३६।२, १३६।३, १४१।१, १८५(छं०२), १६१।छं०२, १६१।छं०४, १६३।२, १६३।३ दो बार, १६५।१, २००, २०३।१, २०५।१, २१५।१, २२७।२(दो बार), २४७ (दो बार), ३४७।३, २६१।२, २६१।३(दो बार), २६२।१, २६३, २६३।४, २६४।२, २८५।१, २६६।२, २६६।४ (दो बार), ३००।४ (दो बार), ३०१।३, ३०१।४, ३०५।१, ३०८।२, ३१०।छं०, ३१२।२ (दो बार), ३१७।२, ३१७।४, ३१७।छं०, ३१८।२, ३१८।छं०, ३१६।२, ३२१।२, ३२१।छं०, ३२२।३, ३२२।छं०१, ३२४, ३२५।छं०, ३२६।छं०१, ३२६।छं०२, ३२८।१, ३२६।१, ३३०।४,

३३९, ३४४।३, ३४५।४, ३४७, ३४७।१, ३४८।३(दो बार),
३५१, ३५४।१, ३५७।३, ३६०।२, ३६०।छं०, ३६१ ।

अयोध्या काण्ड : ७।४, ३६।३(दो बार), ७३।३, १३२,
१३७।४, २३५।४, २५३।४, २९८।१, ।

अरण्यकाण्ड : सो० १।१, सो० ५(क), सो० ५।छं०, ९।६,
१५।६, २७, ३०।३, ३१।छं०३, ३३।१, ३५, ३९।४, ४०।५,
४५।४, ४६(क) ।

किष्किंधा काण्ड : १।२, ६।१२, ९।छं०१, २९।छं० (दोबार) ।

सुन्दर काण्ड : ३४।छं०१, ४९।४, ५५।१, ५८।२, ५८।४,
५९।२, ५९।छं० (दो बार), ६० ।

लंका काण्ड : ८।१, ९।४, १५।२, ४०।छं०, ४७।४, ६५।२
(दो बार), ६७।४, ७०।६, ७६।२, ८७।४, १००।२, १००।छं०२,
१५०।छं०, १०२(क), ११०।छं०२, ११२।छं०७, १२०।छं०२।

उत्तर काण्ड : १।३, २।३, ३(क), ८।३, १०।३, ११।छं०१,
१२(ग), १२।६(छं), १४।२, २४।३, २५।४, २७।छं०, २९।१,
३०, ३६।१, ४१।२, ४१।३, ४१।४, ४२।४, ४४।१, ४९।५,
५०, ५०।४, ५२।४(दो बार), ५६।४, ५९, ६०।३, ६३।५
६५।१, ६७।३, ६८।३, ७३।२, ८१।२, ८४(क), ८७।४, ८८।२,
८९(क), ९०।१, ९०।२, ९४।२, ९६।३, १०२।२, १०२।३
(दो बार), १०३(क), १०५।७, १०९।२, ११०(क), ११०।३,
१११।४, ११३।६, १२१।१, १२३।१, १२५(क), १२५।४,१२८।१,
१२८।३, १२९।२, १२९।३, १२९।४, १२९।छं०२ ।

=(२२२ बार)

पार्वती मंगल : २, ४, ३६।२, ६६, १०४, १२६, १३१, १४२, १४७।१, १५४, १६४ । = (११ बार)

गीतावली : बालकाण्ड : १।७, १।११, २।३, २।६, २।११, २।१८, २।२५, ३।२, ३।४, ४।१, ४।८, ४।६, ४।१४, ५।२, ६।४, ६।१२, ६।२७, ७।२, १०।४, १७।५, १८।३, १६।४ (दो बार), २२।१०, २२।१५, २३।१, ३१।६, ३३।४, ३६।४, ३६।३, ४५।६, ४६।३, ५०।३, ५४।४, ६५।५, ७०।२, ७२।४ (दो बार), ७४।४, ८०।७, ८४।५, ६१।४।, ६३।३, ६४।१, ६४।२, ६८।४, १०२।७, १०५।५, १०८।१०,

अयोध्या काण्ड : ३३।३, ३६।६, ४०।५, ४३।२ (दो बार) ४४।४, ४५।४, ४७।१०, ४७।११, ४७।१३, ४७।१६, ४७।२२, ४८।३, ८६।४ ।

अरण्य काण्ड : १।२, ५।५, १७।२, १७।८ ।

सुन्दरकाण्ड : ४।६, १०।४, १४।४, १५।४, १६।१३, २५।१, ३५।४, ४४।१, ५०।६, ५७।७, ।

लंका काण्ड : १।७, २१।७, २२।११, २३।४, २३।५, ।

उत्तर काण्ड : २।१, ३।१, १३।७, १४।४, १८।५, १६।४ १६।५, २०।४, २१।१२, २१।१७, २१।१६, २२।५, २२।११, २४।४, २५।६, ३३।५, ३४।१, ३८।१ ।

= (१०२ बार)

विनयपत्रिका : १।१, ६।५, ७।४, २६।८, २८।५, २६।३, ३१।६, ३५।६ ३७।३, ३६।५, ४१।४, ४४।८, ५१।५, ५२।१, ६२।१३, ८२।३ ८२।४, ८४।३, ६६।१, ६६।३, १००।३, १०४।३, १०६।२, १०६।५, ११३।३, १२०।५, १२१।५, १३२।३, १३६।५, १३६।१२, १४२।४, १४२।६, १५५।४, १५७।२, १८२।६, १६१।७ (दो बार), १६३।७, १६६।५, २००।४, २०६।४, २२४।३, २३२।४, २३७।१, २४२।३, २४३।१, २४४।५, २४५।४,

२६२।२, २७६।६ ।

= (५० बार)

श्रीकृष्ण गीतावली : ४।५, १६।४, २०।१, ४८।४, ५०।३ (दो बार), ५१।२, ५४।४, ६१।१ ।

= (६ बार)

वैराग्य संदोपिनी : ५२ ।

= (१ बार)

दोहावली : ३५, ४३, १३७, १६६, ५१२, ५४२, ६४२ ।

= (७ बार)

कवितावली : बालकाण्ड : १३।१, १४।१, १७।१ (दो बार) ।

अयोध्या काण्ड : ६।१ ।

लंकाकाण्ड : ५७।२ ।

उत्तर काण्ड : २।२, ११।२, २४।१, ६३।१ ।

= (१० बार)

हनुमान बाहुक : ६।१, ३१।२, ।

= (२ बार)

कुल आवृत्ति ४४६

परिशिष्ट - (२) : सहायक ग्रंथ सूची

(क) आधार ग्रंथ

१ - तुलसीदास : विनयपत्रिका, (सं) वियोगी हरि, रामदास गौडवाल एण्ड सन्स, वाराणसी, १९६१ ।

२ - " : गीतावली, (व्याख्याता - हनुमान प्रसाद पोद्दार), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०२३ वि० ।

३ - " : कृष्ण गीतावली, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०१५ वि० ।

४ - त्यागराजु : त्यागराजु कीर्तनलु, संपादक विस्सा अप्पाराव, आन्ध्र गानकला परिषत्तु, राजमहेन्द्र वरमु, १९४८ ।

५ - " : प्रह्लाद भक्ति विजयमु, सं० सांबमूर्ति, श्रीवेंकटेश्वर विश्व विद्यालय, तिरुपति, १९६५ ।

(ख) संस्कृत ग्रंथ

१ - अहोबल पण्डित : संगीत पारिजात, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०) द्वितीय संस्करण, १९५६ ।

२ - जयदेव : गीत गोविन्द, सं० नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली । प्रथम संस्करण, १९७६ ।

३ - दामोदर पण्डित: संगीत दर्पण, संगीतकार्यालय, हाथरस, उ० प्र०, प्रथम संस्करण, १९५० ।

४ - नारद महर्षि : नारद भक्ति सूत्रमुलु, अनु० श्री दोड्ल वेंकटरामि रेड्डि, श्रीरामकृष्ण मठमु, मैलापुर, मद्रास, प्रथम संस्करण, १९५३ ।

५ - बृहस्पति, आचार्य : संगीत समय सार, श्रीकुन्द, कुन्दभारती प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० १९७७ ।

६ - भरत : नाट्यशास्त्र ।

७ - भोज : सरस्वती कण्ठाभरण ।

८ - रूप गोस्वामी : हरिभक्ति रसामृत सिन्धु ।

९ - व्यास महर्षि : श्रीमद् भागवत पुराणम्, गीता प्रेस गोरखपुर, एकादश संस्करण, सं० २०३७।

१० - `` : श्रीमद् भगवद् गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

११ - शांण्डिल्य : शांडिल्य भक्ति सूत्रम्, अनु० तथा टीकाकार डा० श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी, भारत मनीषा प्रकाशन, वाराणसी, १९७३ ।

(ग) हिन्दी

१ - डा० इन्द्रपाल सिंह `इन्द्र` : तुलसी साहित्य और साधना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं० १९७४ ।

३ - डा० इन्द्रनाथ मदान (सं०) : तुलसीदास : चिन्तन और कला, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९६५ ।

४ - डा० उदयभानु सिंह : तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६५ ।

५ - `` : तुलसी काव्य मीमांसा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६६ ।

६ - `` : तुलसी दर्शन मीमांसा, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २०१८ वि० ।

७ - डा० उमा मिश्र : काव्य और संगीत का पारस्परिक संबन्ध, दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली, १९६२ ।

८ - डा० उषा गुप्ता : हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत, लखनऊ विश्वविद्यालय, वि० २०१६ ।

९ - डा० किशोरीलाल गुप्त : गोसाईं चरित , वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, सं० २०२१ वि० ।

१० - डा० केशवराम पाल : हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ परिवर्तन, प्राची प्रकाशन, मेरठ, १९६४ ।

११ - गुरुदत्त : ब्रह्म सूत्र, खण्ड (१) और (२), शाश्वत संस्कृति परिषद, नई दिल्ली, १९७१ ।

१२ - चन्द्रबली पाण्डेय, आचार्य : तुलसी की जीवन भूमि, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०११ वि० ।

१३ - डा० चन्द्रभान रावत : कृष्ण भक्ति साहित्य : वस्तु, स्रोत और संरचना, श्री वेंकटेश्वर विश्व विद्यालय, तिरुपति, १९७७ ।

१४ - " : कृष्ण भक्ति साहित्य में प्रयुक्त काव्यरूप, श्री वेंकटेश्वर विश्व विद्यालय, तिरुपति, १९७८ ।

१५ - " : तुलसी साहित्य बदलते प्रतिमान, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, १९७१ ।

१६ - डा० चन्द्रभान रावत,
डा० रामकुमार खण्डेलवाल : समकालीन साहित्य समीक्षा, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, १९७६ ।

१७ - जगदीश सहाय कुलश्रेष्ठ : संगीत शास्त्र, संगीत कार्यालय, हाथरस, चतुर्थ संस्करण, १९५६ ।

१८ - जार्ज अब्रहाम ग्रियरसन : अनु० भगवती प्रसाद सिंह, तुलसीदास : व्यक्तित्व और रचना संदर्भ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७५ ।

१९ - दुर्गाशंकर मिश्र : भक्ति काव्य के मूल स्रोत, नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं० १९५८ ।

२० - देवकीनंदन श्रीवास्तव : तुलसीदास की भाषा, लखनऊ विश्व विद्यालय, वि० २०१४ ।

२१ - डा० धीरेन्द्र बहादुर सिंह : तुलसीदास की कलागत चेतना, इलाहाबाद, १९७३ ।

२२ - डा० धीरेन्द्र वर्मा : अष्टछाप, रामनारायणलाल बुक सेलर, इलाहाबाद, प्र० सं० ।

२३ - नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य : सूरदास, पहला खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २००५ ।

२४ - नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य (सं०) : सूरदास, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं०२०२६ ।

२५ - डा० पांडुरंगा राव, ई० : सन्त त्यागराजु, आन्ध्र प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, हैदराबाद, १९७५ ।

२६ - डा० प्रदीप कुमार दीक्षित : नायक-नायिका भेद,और राग रागिणी वर्गीकरण (तुलनात्मक अध्ययन), भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण प्रथम १९६७ ।

२७ - फिरोज फ्राम जी, पंडित : राग लक्षण गीति मालिका, दूसरा भाग, पूणे, १९३६ ।

२८ - बलदेव उपाध्याय : भागवत सम्प्रदाय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१० ।

२९ - बलदेव प्रसाद मिश्र : तुलसी दर्शन, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २०१३ ।

३० - डा० भगवान शरन भारद्वाज : हिन्दी जीवनी साहित्य : सिद्धान्त और अध्ययन, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं० १९७८ ।

३१ - भाग्यवती सिंह : तुलसी की काव्यकला, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, १९६२ ।

३२ - डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, नवम् संस्करण, १९७७ ।

३३ - मनमोहन गौतम : सूर की काव्य कला, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९५८ ।

३४ - डा० मलिक मुहम्मद : वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र० सं० १९७१ ।

३५ - माता प्रसाद गुप्त : तुलसीदास, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, १९५३ ।

३६ - रामचन्द्र मिश्र : हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास ; हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, १९६२ ।

३७ - रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० १९९३ ।

३८ - रामचन्द्र शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, वि० सं० २००८ ।

३९ -(सं०) रामचन्द्र शुक्ल : तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खण्डा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१५ वि० ।

४० - रामदत्त भारद्वाज : गोस्वामी तुलसीदास : व्यक्तित्व दर्शन साहित्य, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९६२ ।

४१ - रामनरेश त्रिपाठी : तुलसीदास और उनका काव्य, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५१ ।

४२ - राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग , ज्ञान मण्डल, वाराणसी, सं० २०१८ वि० ।

४३ - राजाराम रस्तोगी : तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, वि० २०२० ।

४४ - राम अवतार वीर : शास्त्रीय कण्ठ संगीत, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, १९५७ ।

४५ - डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, १९५८ ।

४६ - डा० रामनाथन, के० : हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य(तुलनात्मक अध्ययन) : विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, १९६८ ।

४७ - डा० राममूर्ति त्रिपाठी : आगम और तुलसी , दि मैक मिलन कंपनी आफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, १९७७ ।

४८ - रामरतन भटनागर : मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, १९६२ ।

४९ - डा० रमेश कुन्तल मेघ : तुलसी : आधुनिक वातायन से , भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९७३ ।

५० - (सं०) लक्ष्मीनारायण गर्ग : भातखण्डे संगीत शास्त्र(हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) संगीत कार्यालय, हाथरस, उ०प्र०, दूसरा भाग, १९५६ । तथा चौथा भाग, १९५७ ।

५१ - (सं०) लक्ष्मी रंजनम्, खण्डवल्लि : तेलुगु साहित्य का इतिहास,
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद, १९६६ ।

५२ - वसंत : संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथ रस, उ० प्र०,
द्वितीय संस्करण, १९५८ ।

५३ - वासुदेव शास्त्री, के० : संगीत शास्त्र, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग
उ० प्र०, प्रथम संस्करण, १९५८ ।

५४ - विनकुमार : तुलसी का प्रगीत काव्य, दिल्ली, १९६२ ।

५५ - विश्वंभर नाथ भट्ट : संगीत अर्चना, संगीतकार्यालय, हाथ रस, उ० प्र०
द्वितीय संस्करण, १९५० ।

५६ - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य : तुलसी की साधना, लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९७८ ।

५७ - 〃 : गोस्वामी तुलसीदास, वाणी वितान प्रकाशन,
वाराणसी, सं० २०२२ वि० ।

५८ - वैनाप्रसाद श्रीवास्तव, 'भाई' : बेला विज्ञान, संगीत कार्यालय, हाथरस,
उ० प्र०, द्वितीय संस्करण, १९५७ ।

५९ - डा० श्यामसुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा,
वाराणसी, सं० २००८ ।

६० - डा० श्यामसुन्दर दास
पीताम्बर बड़थ्वाल : गोस्वामी तुलसी दास, हिन्दुस्तानी अकादेमी,
इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, १९५२ ।

६१ - डा० श्रीधर सिंह : तुलसी की कारइत्री प्रतिभा का अध्ययन, हिन्दी
प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, १९६८ ।

६२ - डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' : रामानुजाचार्य : विशिष्टाद्वैतिक भक्ति
दर्शन, अजमेर, १९५७ ।

६६ - सीताराम चतुर्वेदी, आचार्य : ~~चौखम्भा~~ गोस्वामी तुलसीदास, चौखंभा विद्या-
भवन, वाराणसी, १९५६ ।

६७ - सुन्दर रेड्डो, जी०, आचार्य : हिन्दी और तेलुगु : एक तुलनात्मक अध्ययन, दिल्ली, १९६७ ।

६८ - ,, : दक्षिण की भाषाएं और उनका साहित्य, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, १९६७ ।

६९ - सुधा कालरा : हिन्दी वाक्य विन्यास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७१ ।

७० - हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य : मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९५६ ।

७१ - हनुमान प्रसाद पोद्दार (सं०) : रामचरित मानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०१५ ।

७२ - हरगोविन्द तिवारी, पण्डित : तुलसी शब्द सागर, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, प्र० सं० १९५४ ।

७३ - हरवंशलाल शर्मा, डा०, : सूर और उनका साहित्य, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, द्वितीय संस्करण, सं० २०१५ ।

७४ - हरिकृष्ण अवस्थी : तुलसीदास : परिवेश प्रेरणा, प्रतिफलन, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०३२ ।

७५ - हरिकृष्ण देवसरे : तुलसी के गीतकाव्य, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, प्र० सं० १९६३ ।

(घ) तेलुगु

१ - अच्युतराव, टेकुमल्ल : आन्ध्र वाङ्मय चरित्र, भाग (२), मद्रास विश्व विद्यालय, १९४० ।

२ - अनन्तकृष्ण शर्मा, राल्लपल्लि : त्रिवेणी पब्लिषर्स, मचिली पट्टनम्, १९५० ।

३ - अप्पाराव, विस्सा : व्यासावली , राजमहेन्द्र वरमु, प्र० सं० १९५६ ।

४ - एल्लोरा : मन प्राचीन कललु, पुट्टु पूर्वोत्तरालु, आदर्श ग्रंथ मंडली, विजयवाडा ।

५ - कामेश्वर राव, भमिडिपाटि : त्यागराजु आत्म विचारमु, राजमहेन्द्रवरमु, १९५६ ।

६ - गंगाधरम्, नेदुनूरि (सं०) : त्यागराज कृति रत्नाकरमु, कोंडपल्लि वीरवेंकय्या एण्ड सन्स, राजमंड्री, १९६८ ।

७ - दोरसामि शर्मा, राव्रूरि : तेलुगु साहित्यमु : रामकथा, आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद, १९७२ ।

८ - पार्थसारथी, एन्० सी० तथा
श्रीमती द्वारका पार्थसारथी : गानकलाबोधिनी, बालसरस्वती बुक डिपो, कर्नूल ।

९ - पोतना : श्रीमदान्ध्र भागवतमु, वाविल्ल रामस्वामि शास्त्रुलु एण्ड सन्स, मद्रास, १९६१ ।

१० - रजनीकान्त राव, बालांत्रपु : आन्ध्र वाग्गेयकार चरित्रमु, विशालांध्रा पब्लिशिंग हाउस, विजयवाडा, १९५८ ।

११ - रामलिंग शास्त्री, मंगिपूडि : आन्ध्र गायकुल चरित्रलु ; विश्व साहित्य माला, राजमहेन्द्र वरमु, १९४७ ।

१२ - लक्ष्मी रंजनम्, खण्डवल्लि : आन्ध्र साहित्य चरित्र संग्रहमु, भाग-१ ; वेंकटरमणा पब्लिकेषशन्स। सुल्तान बाजार, हैदराबाद, १९५८ ।

१३ - वराह नरसिंहा चार्युलु, विंजमूरि : श्री त्यागराज चरित्र, मद्रास, १९३८ ।

१४ - वेंकटरंगय्या, मामिडिपूडि (सं०) : संग्रह आन्ध्र विज्ञान कोशमु, हैदराबाद, १९६० ।

१५ - वेंकटशास्त्री, दर्भा : त्यागराजीयमु, भीमवरमु, १९६२ ।

१६ - डा० वेंकटावधानि, दिवाकर्ल : आन्ध्र वाङ्मय चरित्र संग्रहमु, वाविल्ल रामस्वामि शास्त्रुलु एण्ड सन्स, मद्रास, १९४८ ।

१७ - ˮ : आन्ध्र वाङ्मय चरित्रमु, आन्ध्र सारस्वत परिषद, हैदराबाद, १९७१ ।

१८ - सांबमूर्ति, पी० (सं०) : त्यागराज, नेशनल बुक ट्रस्ट (इंडिया), नई दिल्ली, १९६७ ।

१६ - सुब्बाराव, एका (सं०) : श्री संगीतविद्या दर्पणमु, मारोसुपेट,
तेनाली, गुण्टूरु ।

२० - शमंतकमणि, पंडा : तेलुगु साहित्यमु लो रामकथा, आन्ध्र सारस्वत
परिषद्, हैदराबाद, १६७२ ।

२१ - डा० श्रीधर बाबु : पारिजातालु (निबन्ध संग्रह), हैदराबाद, १६७२ ।

२२ - श्रीमान तिरुमलनल्लान चक्रवर्ती : शतराग रत्नमालिका, श्रीनिवासा
निलयम्, गुण्टूरु, १६४१ ।

२३ - श्रीनिवास अय्यंगार, के० वी० : आदि संगीत सुधाम्बुधि, एम्० आदि
कंपनी ।

२४ - संगीत विद्वान राममोहिनी : गांधर्व वाणी, साहिती सदनमु, तिरुपति ।

(ड.) पत्र-पत्रिकाएं
----

१ - नाट्यकला (श्री त्यागराज द्विशत जयंती विशेषांक) (तेलुगु) : सं० पसल
सूर्यचन्द्राराव, आन्ध्रप्रदेश संगीत नाटक आकादमी,हैदराबाद, १६६७ ।

२ - तेलुगुवाणी : विश्व तेलुगु सम्मेलन संस्मारिका, हैदराबाद, १६७५ । (हिंदी)

३ - भारती (तेलुगु साहित्यिक मासिक) : (सं०) शिवलेंक शंभु प्रसाद
अक्तूबर, १६५६; नवम्बर, १६५६; फरवरी, १६५७ ।

४ - संगीत राग विशेषांक (हिन्दी) : संगीत कार्यालय, हाथरस, उ०प्र० जनवरी, ५०।

५ - संगीत - कल्याण अंक : संगीत कार्यालय, हाथरस, उ० प्र०, जनवरी, १६५४ ।

६ - सप्तगिरि (तेलुगु मासिक) : तिरुपति तिरुमल देवस्थानम्, जनवरी १६८० ।

७ - हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्मारिका अंक : सं० राघवाचारी और श्रीराम
शर्मा, स्वागत समिति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हैदराबाद, ७७ ।

८ - हिन्दुस्थानी संगीत की एनसाइक्लोपीडिया, पंडित फिरोज फ्रामजी,

वाल्यूम		वाल्यूम	१६३२
वाल्यूम	१६३६	वाल्यूम	१६३४
वाल्यूम	१६३४		

(च) अंग्रेजी

1. Das Gupta, S.N. Dr. - History of Indian Philosophy, Vol.V, Cambridge University Press, 1951.
2. Fox Strangways, A.H. - The music of Hindustan, Oriental Books Reprint Corporation, New Delhi, 1975.
3. Jean Piaget - Structuralism, London, 1971.
4. Jonathan Culler - Structuralist Poetics, London, 1975.
5. Purushothaman, E.N. - Tyagopanishad, Andhra Pradesh Sangeetha Nataka Academi, Hyderabad, 1975.
6. Raghavan, V. Dr. - The Spiritual Heritage of Tyagaraja, Madras, 1957.
7. Raju, P.T. - Telugu Literature, Bombay, 1944.
8. Raymond Boudon - The uses of Structuralism, London, 1971.
9. Roger Fowler - Style and Structure in Literature, Cornell University Press, New York, 1975.
10. Schrader, O - An Introduction to Pancharatra and Ahirbudhnya Samhita, Madras, 1916.
11. Shuddananda Bharati - St. Tyagaraja (The Divine Singer) Madras, 1968.
12. Srinivasachari, P.V. - The Philosophy of Vishistadvaita, Madras.
13. Vladimir Miltner - The Hindi sentence structure in the works of Tulasidas, Munshiram Manohar Lal, Delhi, 1967.
14. Wallace, L. Chafe - Meaning and Structure of Language, London, 1971.

15. Sambamurthy, P. - The Walajahpet Manuscripts, S.V. University Oriental Research Centre, Tirupathi.

16. Soveneer (Special Issue) - The Volume of Tyagaraja, Music and Dance Academi, Hyderabad, 1967.